छायावादी काव्य में परंपरा और प्रयोग

(इलाहाबाद विश्वविद्यालय की डी० फ़िल० उपाधि के लिए प्रस्तुत)

शोध-प्रबंध

निर्देशक
डा० राजेन्द्र कुमार
रीडर
हिन्दी विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय
इलाहाबाद

प्रस्तुतकर्त्री
सन्तोष सक्सेना, एम० ए०
शोध छात्रा
हिन्दी विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय
इलाहाबाद

१९७८

आ मु ख

छायावाद हिन्दी की बहुचर्चित काव्यधारा है जिसके विषय में अनेक मनीषी विद्वान बहुत कुछ लिख चुके हैं। छायावाद संबंधी जितनी भी आलोचनायें अब तक प्रकाश में आई हैं, उनमें आलोचकों के दो अतिवादी दृष्टिकोण लक्षित होते हैं। एक वर्ग इस काव्यधारा के प्रति विशेष आग्रही और मोहासक्त प्रतीत होता है। दूसरा वर्ग छायावाद को अपनी साहित्यिक परंपरा से सर्वथा भिन्न, पश्चिम अथवा बंगला काव्य की अनुकृति मानने के कारण उसके प्रति उचित न्याय नहीं कर सका है। छायावाद अपने गुण दोषों के बावजूद हिन्दी की युगानुरूप विकसित काव्यधारा है। वह हिन्दी कविता के स्वाभाविक विकास क्रम की एक कड़ी है। छायावाद हिन्दी काव्य क्षेत्र में एक व्यापक आन्दोलन के रूप में आविर्भूत हुआ था।

छायावाद अपने साथ हिन्दी काव्य में भाव, विचार, भाषा तथा शैलीगत क्रान्ति लेकर आया। वह अपने पूर्ववर्ती द्विवेदी युग की रूढ़िवादिता के प्रति घोर विद्रोही था। रूढ़ियों के प्रति अनास्थावादी होने के फलस्वरूप छायावादी कवियों ने हिन्दी काव्य की प्रचलित परिपाटियों का खण्डन किया तथा काव्य के विभिन्न क्षेत्रों में अनेक नए प्रयोग किये। परन्तु वे परंपरा का सर्वथा त्याग नहीं कर सके। छायावाद के प्राय: सभी तत्व खोजने पर पूर्ववर्ती कवियों की रचनाओं में बीज रूप में मिल जाएंगे। इस प्रकार उपर्युक्त भूमिका में छायावादी काव्य में परंपरा और प्रयोग के तत्वों का विश्लेषण प्रस्तावित अध्ययन की सीमा रही है।

इस तथ्य के लिए कारण रूप थी युगीन परिस्थितियां। साहित्य चाहे वह किसी भी भाषा, किसी भी युग का हो अपनी समसामयिक परिस्थितियों के संदर्भ में ही एक निश्चित स्वरूप प्राप्त करता है। जीवन और जीवन के अनुगामी साहित्य में क्रान्ति तत्कालीन युग की मांग थी, छायावादी कवियों ने उसे पूर्णता दी। इस क्रान्ति में उन्हें अंग्रेजी के रोमांटिक भावधारा के कवियों तथा बंगला

से रवीन्द्रनाथ ठाकुर के विचारों से पर्याप्त प्रेरणा और बल मिला, क्योंकि छायावादी कवियों की मानसिक चेतना जो कि समाज और साहित्य में व्यक्तित्व की प्रतिष्ठा की अभिलाषी थी - का बहुत कुछ साम्य उपर्युक्त स्वच्छंदतावादी कवियों से था । अंग्रेज़ी और बंगला काव्य की भाव और शैलीगत अनेक विशेषतायें ग्रहण करने के साथ ही अपने परंपरागत काव्य तत्वों को भी छायावादी कवियों ने अपनी प्रतिभा तथा प्रायोगिक क्षमता के आधार पर मौलिक ढंग से नया आकार देकर प्रस्तुत किया । छायावादी काव्य के नए पन का वस्तुत: यही रहस्य है ।

जीवन में आदान-प्रदान का एक क्रम चलता रहता है । प्रत्येक युग अपने मूल्यवान विचार, आदर्श तथा गंभीर चिन्तन की संपत्ति अपने बाद आनेवाले युग को सौंप जाता है और वह युग अपनी पूर्ववर्ती धरोहर को और अधिक सजा संवारकर अपने पीछे आनेवाली पीढ़ी को दे जाता है । इसी क्रम को परिपाटी अथवा परंपरा की संज्ञा दी जाती है । जीवन का यही क्रम साहित्य पर भी लागू होता है, क्योंकि वह भी जीवन से भिन्न न होकर उसी की प्रतिच्छाया है ।

इस प्रकार छायावादी काव्य के नए प्रयोगों का निश्चित सम्बन्ध उसकी पूर्ववर्ती काव्य परंपरा से जोड़ा जा सकता है । छायावादी काव्य की परख इस विशिष्ट दृष्टिकोण को लेकर क्रमबद्ध रूप में अब तक किसी अनुसंधाता के द्वारा नहीं की जा सकी है ।

छायावाद में परंपरा और 'प्रयोग' दोनों को स्थान मिला है । काव्यालोचन की विभिन्न शास्त्रीय कसौटियों पर छायावादी काव्य को रखकर उसमें परंपरानुगमन के स्थलों पर प्रकाश डालना, सर्वथा नए प्रयोगों की खोज, उनकी व्याख्या और विश्लेषण तथा 'परंपरा' और 'प्रयोग' की दृष्टि से छायावादी काव्य के स्वरूप का उद्घाटन ही मेरे अध्ययन का मुख्य क्षेत्र और मेरे शोध का लक्ष्य रहा है ।

मेरे मन में छायावादी काव्य के प्रति अनुराग का अंकुरण वर्षों पूर्व श्रद्धेय डाक्टर रामकुमार वर्मा के मुख से सुने हुए उनके गीतों द्वारा हुआ था शोधछात्रा के रूप में भी उनका स्नेह और आशीर्वाद मेरा मूल्यवान संबल रहा है ।

लखनऊ विश्वविद्यालय की एम०ए० कक्षाओं में मुझे आधुनिक काव्य पढ़ानेवाले मेरे परम आदरणीय गुरुवर डा० भगीरथ मिश्र, डा० केसरी नारायण शुक्ल एवं स्वर्गीय डा० व्रज किशोर मिश्र के प्रति मैं सदैव श्रद्धावनत हूं जिन्होंने अपनी विद्वत्तापूर्ण व्याख्याओं के द्वारा मेरे ज्ञान के क्षितिज को विस्तार देकर शोध कार्य के योग्य बनाया ।

शोध कार्य संबंधी विविध विभागीय सुविधाएं प्रदान करने हेतु मैं इलाहाबाद विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग के अध्यक्ष आदरणीय डा० रघुवंश का परम आभार स्वीकार करती हूं ।

इस शोध प्रबंध का प्रणयन डा० राजेन्द्र कुमार वर्मा, रीडर, हिन्दी विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय के निर्देशन में हुआ है । इसकी रूपरेखा तैयार करने से लेकर इसे अंतिम रूप देने तक उन्होंने अपनी सूक्ष्म विश्लेषणात्मक दृष्टि, मूल्यवान समय और सहृदयतापूर्ण व्यवहार के द्वारा मेरी जितनी अधिक सहायता की है, उसे शब्दबद्ध कर पाना कठिन है । मैं उनके प्रति अत्यन्त कृतज्ञ हूं ।

हिन्दी साहित्य सम्मेलन संग्रहालय और इलाहाबाद विश्वविद्यालय पुस्तकालय के वे सभी कर्मचारी एवं अधिकारीगण, विशेष रूप से श्री सूरज प्रसाद राय मेरे धन्यवाद के पात्र हैं जिन्होंने मेरे लिये उपयोगी पुस्तकों को सुलभ कराने में मेरी सहायता की है ।

हिन्दी संसार के उन समस्त विद्वज्जनों की मैं चिर ऋणी रहूंगी जिनके चिन्तन से मैं लाभान्वित हुई हूं तथा जिनके शोध प्रबंधों, समीक्षा ग्रंथों एवं स्फुट निबंधों के अंशों का उपयोग मैंने अपने शोध प्रबंध में किया है ।

श्री पी०एम०ललोरिया (मेरे पति) का मेरे कार्य में पूर्ण सहयोग मेरा सहज अधिकार अवश्य था, किन्तु अपने प्राप्तव्य से कुछ अधिक ही मैंने उनसे लिया है। डा० वी०के०ललोरिया और डा० आर०के०ललोरिया ने भी मेरी बहु विधि सहायता की है । अन्य अनेक आत्मीयों एवं स्नेहियों की प्रेरणाओं तथा शुभकामनाओं ने मुझे क्लोत्साहित होने से बचाया है किन्तु इन सब की आत्मीयता के अवमूल्यन के भय से किसी प्रकार की औपचारिक शब्दावली के बदले मैं इन्हें अपनी मौन कृतज्ञता ही भेंट करती हूं ।

श्रीमती सन्तोष सक्सेना

१८ अगस्त, १९७८ .

(सन्तोष सक्सेना । ललोरिया)

अ नु क्र म णि का

पृष्ठ

पृष्ठ

पृष्ठ

पृष्ठ

पृष्ठ

पृष्ठ

-0-0-0-0-

विषय - प्रवेश

परंपरा और प्रयोग

छायावादी काव्य का परंपरा और प्रयोग की भूमिका में विश्लेषण करने के पूर्व " परंपरा " और " प्रयोग " की प्रकृति एवं व्याप्ति को समझ लेना प्रासंगिक होगा ।

परंपरा : अर्थ और सीमायें -

" परंपरा " शब्द की अर्थ परिधि अत्यंत व्यापक है । " परंपरा " में पूर्ववर्ती युगों से निरंतर स्वीकृत और प्रचलित विचारधाराओं, विधियों, प्रणालियों आदि की अभिव्यक्ति होती है, जिन्हें किसी समाज के व्यक्ति पीढ़ी-दर-पीढ़ी सहज विश्वास के आधार पर ग्रहण करते चले आते हैं । इस प्रकार जीवन प्रवाह के समग्र रूप से " परंपरा " का संबंध स्थापित किया जा सकता है और जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में प्रचलित आचार मान्यताएं, रीतियां, प्रणालियां, नीति-नियम, भाषा, लोकगाथाएं, गीत, वेशभूषा आदि सभी कुछ परंपरा के वृत्त में आ जाते हैं । किन्तु यहां हमारा प्रयोजन परंपरा के व्यापक अर्थ से न होकर उसके साहित्यिक रूप मात्र से है और वह भी काव्य के विशेष संदर्भ में ।

काव्य के क्षेत्र में परंपराओं से तात्पर्य उन मान्यताओं, विश्वासों, आदर्शों, विचारों एवं प्रवृत्तियों से है, जो स्थापनाओं में प्रतिष्ठित हो जाती है और जिन्हें पूर्ववर्ती रचनाकारों से उत्तरवर्ती रचनाकार उत्तराधिकार रूप में ग्रहण करते हुए अपने काव्य सृजन में स्थान देते हैं । काव्यात्मक परंपराओं के स्वरूप का बोध काव्यांगों अर्थात् कविता की वस्तु, भाव, तुक, लय, छंद , रूप, भाषा, शैली, अलंकार आदि के क्षेत्र में प्रचलित रूढ़ियों के माध्यम से होता है ।

काव्य परंपराओं का अन्य काव्यांगों (रस, ध्वनि, गुण, अलंकार आदि) की भांति कोई प्रामाणिक आधार अथवा लिखित रूप नहीं होता ।

उनका विकास रचनाओं के माध्यम से होता है । कविता के विभिन्न क्षेत्रों में जब कुछ बंधी बंधाई रीतियाँ, प्रणालियाँ आदि मूल्य रूप में पीढ़ियों तक काव्य- सर्जनाओं में अभिव्यक्ति पाती रहती है, तो उन्हें ही परंपरा के अंतर्गत स्थान प्राप्त हो जाता है । इस प्रकार पूर्व मान्यताओं की स्वीकृति ही परंपरा का मूलाधार है ।

कविता में सत्य के दो रूप- वस्तुगत और प्रतीयमान माने गए हैं । शब्द और अर्थ के सीमित साधनों के द्वारा कवि जब वस्तुगत सत्य की अभिव्यक्ति में असफल रहता है , तब वह कल्पना का आश्रय लेकर अपनी अभिव्यक्ति को सशक्त और प्रभावशाली बनाने की चेष्टा करता है । उसकी इसी मनोवृत्ति ने विविध कल्पित घटनाओं की उद्भावना की, जो बाद में अपनी रोचकता तथा वस्तुगत सत्य की व्यंजना में सहायक होने के नाते अन्य कवियों के द्वारा भी यथारूप स्वीकृत हो गई ।" कवि प्रसिद्धियों" के जन्म का यही इतिहास है । इन्हें भी काव्य-परंपरा का महत्वपूर्ण अंग कहा जा सकता है । हंस का नीर - क्षीर के विवेचन , चकोर का अंगार चुगना, रात्रि में चकवा-चकवी वियोग, विष्णु का क्षीर सागर-शयन, शिव के मस्तक पर द्वितीया के चंदमा की स्थिति, शेष का पृथ्वी धारण आदि अनेक कवि प्रसिद्धियाँ सैकड़ों वर्षों से प्रचलित है । इनका कोई भौतिक प्रमाण-अप्राप्य है, किन्तु कवि-समाज में इन्हें मान्यता प्राप्त है और इन पर सर्व स्वीकृति की मुहर लगी मिलती है । मिथ्या होने पर भी, सामान्य कवियों से लेकर महाकवियों तक के द्वारा इनकी स्वीकृति से स्पष्ट है कि जन-विश्वास एवं गतानुगतिकता परंपरा के मुख्य नियामक तत्व है ।

इस प्रकार परंपरा की अभिव्यक्ति दो रूपों में प्रतिफलित होती है, कल्पनाश्रित घटनाओं से संबद्ध तत्वों के रूप में, जिन्हें अनुकरण की प्रवृत्तिवश कवि-वर्ग विविध युगों में अपनाता रहा है तथा भाव, भाषा, शैली, अलंकार आदि काव्यांगों के अन्तर्गत प्रचलित हो जानेवाली रूढ़ियों एवं परिपाटियों के रूप में, जिन्हें पूर्ववर्ती युगों से उत्तरवर्ती कवि उत्तराधिकार रूप में ग्रहण करते आए हैं । रीति: सिद्धान्त के प्रतिपादक आचार्य वामन ने वैदर्भी, पांचाली आदि

जिन काव्य-रीतियों का उल्लेख किया है, वे भी कविता के शैली-पक्ष से संबंधित काव्य परंपराओं की ही रूप है ।

काव्य परंपराओं की कोई निश्चित संख्या नहीं होती । कवि-वर्ग की स्वीकृति ही उनकी मूल आवश्यकता है । यह स्वीकृति उन्हें जब तक मिलती रहे तभी तक उनका जीवन रहता है । साहित्य के आदि युग से वर्तमान युग तक जाने कितनी परंपरायें बनती और मिटती रही है । जीवन और समाज के बदलते हुए परिवेश समय-समय पर साहित्यिक परंपराओं में परिवर्तन के कारण बनते हैं । जो परंपराएं परिस्थितियों के साथ नहीं चल पाती, वे मृत हो जाती है,अथवा नवीन परंपराओं में रूपान्तरित होकर नई दिशाओं एवं नूतन रचना-पद्धतियों का उद्घाटन करती है । जो परंपरायें स्वस्थ और सशक्त होती है वे ही लम्बी अवधि तक साहित्य में स्थायित्व प्राप्त करती है ।

बाह्य परिस्थितियों के अतिरिक्त मनुष्य का स्वभाव भी परंपराओं में परिवर्तन अथवा उनके विकास का कारण कहा जा सकता है । क्योंकि अनुकरण वृत्ति के साथ साथ अन्वेषण शील प्रवृत्ति भी मनुष्य स्वभाव की महत्वपूर्ण अंग है । कोई प्रतिभावान कवि जब स्वीकृत विधियों के अनुरूप चलकर ही सन्तोष नहीं पाता, तो वह अपनी नवनवोन्मेषशालिनि प्रतिभा के द्वारा नई नई खोजों में प्रवृत्त होकर नवीन रचना विधियों का निर्माण करता है, जिनकेे द्वारा नई परंपरायें स्थापित होती हैं ।

परंपराओं के मूल में सामाजिक रुचि का विशेष महत्व रहता है क्योंकि जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, सामाजिक मान्यता ही परंपराओं की प्रथम आवश्यकता है । जो परंपरायें लोक-रुचि से मेल नहीं खातीं, उनके प्रति प्राय: तीन प्रकार की प्रतिक्रियाएं कवि-वर्ग में दिखाई देती है - पूर्ण उपेक्षा भाव, सुधार संस्कार और विद्रोह । उदाहरणार्थ हिंदी कविता के भारतेन्दुयुग में जन जागरण और राष्ट्रीय चेतना के उदय के फलस्वरूप रीतिकालीन परंपरा की श्रृंगारिक कविता का लोक रुचि के साथ कोई ताल-मेल नहीं रह गया था, फिर भी नवीन विषयों की ओर उन्मुख होकर भी इस युग के कवियों ने पूर्ववर्ती काव्य

रूढ़ियों से मुक्ति का कोई उत्साह नहीं प्रकट किया । पहले की ही भाँति राधा-कृष्ण के नाम पर अतिशय श्रृंगारिक कविताएं लिखी जाती रही तथा भाषा, छंद, अलंकार आदि भी परंपरागत ही रहे । द्विवेदीयुग में सुधार-संस्कार की प्रवृत्ति का प्राधान्य लक्षित होता है ; परन्तु पूर्ववर्ती काव्य परंपराओं को नवजाग्रत चेतना के फलस्वरूप यथारूप स्वीकार न करके भी ये कवि उनसे बंधे रहे हैं । रूढ़ियों का सर्वथा त्याग न करके इस युग के कवियों ने उनमें काट-छांट और परिवर्तन करके अपने नवीनता के प्रति अनुराग का परिचय दिया । छायावादी कवियों में तीसरी प्रकार की प्रतिक्रिया अपने तीव्रतम रूप में प्रकट हुई । उन्होंने कविता के विभिन्न क्षेत्रों में प्रचलित समस्त काव्य-रूढ़ियों का पूर्णतया विरोध किया, क्योंकि तद्युगीन परिवेश ने जिन नए विचारों एवं नवीन काव्यादर्शों को जन्म दिया था वे उनका साथ निभाने में अक्षम सिद्ध हो रही थी । निष्कर्षत: जीवन की गतिशीलता साहित्य को भी गतिमान बनाए रखती है । बाह्य जीवन में परिवर्तन के साथ-साथ समाज की रुचियां बदलती रहती हैं और उन्हीं के अनुरूप काव्य परंपराओं का स्वरूप भी ढलता रहता है । किसी युग में कोई प्रवृत्ति अत्यंत महत्वपूर्ण रहती है, कभी उसका महत्व कम हो जाता है, कभी उसके रूप में किंचित परिवर्तन दिखाई देता है और कभी वह सर्वथा विलुप्त हो जाती है और उसके स्थान पर नई प्रवृत्तियां , नए विचार जन्म लेकर, नवीन काव्य परंपराओं का सूत्रपात करते हैं ।

प्रयोग : अर्थ और स्वरूप

प्रयोग का अर्थ है - नई विधियों, नूतन पद्धतियों, नवीन रचना शैलियों के उद्घाटन हेतु किये जानेवाले प्रयास । काव्यवस्तु और रचना शैली में पिष्टपेषण के फलस्वरूप जब एकरसता बढ़ जाती है और नवोन्मेष का अभाव होने लगता है, तो नई प्रतिभायें मौलिक प्रयोग करके नवीन मार्गों का सृजन करती हैं और कविता के विकास पथ का गतिरोध दूर करती हैं । इस प्रकार काव्य विकास की दृष्टि से प्रयोगों की अनिवार्यता असंदिग्ध है ।

प्रयोगों के साथ एक ठोस मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमि भी है ।

मनुष्य स्वभावत: नवीनतानुगामी और नवीनता प्रेमी होता है । सदैव एक से नियमों का पालन करना अथवा एक ही पथ पर चलते जाना उसकी प्रकृति के प्रतिकूल है। प्रतिभावान कलाकारों अथवा कवियों के लिये मात्र दूसरों के द्वारा निर्दिष्ट मार्ग पर चलना और भी कठिन होता है, इस कारण वे अपने लिए नए-नए मार्गों का अनुसंधान करते हैं । जिस प्रकार दार्शनिक और चिन्तक जीवन-सत्य की खोज में संलग्न रहकर अनेकानेक विचार परंपराओं को जन्म देते आ रहे हैं वैसे ही प्रबुद्ध कवियों की सृजन चेतना भी सत्य की प्राप्ति के लिए नए-नए प्रयोग करती रही है । प्रत्येक व्यक्ति की अनुभूति का स्तर दूसरे से भिन्न होता है, इसी कारण सभी कवियों की चेतना पर पड़नेवाले जीवन और जगत के प्रभाव एक से नहीं होते । बोध वृत्ति की भिन्नता एक ही विषय को लेकर काव्य-रचना करनेवाले दो कवियों की रचनाओं में अंतर उपस्थित कर देती है । इसी को कवि की मौलिकता की संज्ञा दी जा सकती है । इस संदर्भ में भक्तियुगीन कवयित्री-मीरा और छायावादी कवयित्री महादेवी की कविताओं पर दृष्टिपात किया जा सकता है । मीरा और महादेवी दोनों ने ही आध्यात्मिक प्रेम के सागर में डुबकियां लगाई है, दोनों ने ही उस सर्वशक्तिमान परमब्रह्म को "प्रियतम" मानकर उसके प्रति प्रणय निवेदन किया है और उसके वियोग की व्यथा ही उनके काव्य का मूल कथ्य रही है, किन्तु दोनों की प्रेमानुभूति में स्पष्ट अंतर है । मीरा का जैसा दैन्य भाव महादेवी में नहीं दिखाई देता । प्रिय-मिलन की तीव्र आकांक्षा दोनों ने ही व्यक्त की है, किन्तु मीरा इष्टदेव के चरणों में पूर्णत: समर्पित हो जाना चाहती है, इसके विपरीत महादेवी में निजत्व का बोध शेष रहता है । वे अपना "बनने मिटने का अधिकार नहीं त्यागना चाहती ।" "प्रिय" से वे अपने को किसी प्रकार छोटा नहीं मानती और अपने आत्म गौरव की तुलना में प्रिय की करुणा भी उन्हें स्वीकार नहीं होती ।

अनुभूति के स्तर की असमानतावश दो भिन्न युगों की ही नहीं एक ही युग की समान विषय पर लिखी गई कविताओं में भी अंतर दिखाई देता है । उदाहरणार्थ छायावादी कवि पंत और निराला दोनों ने ही प्रकृति का आलंबन रूप में चित्रण किया है, किन्तु पंत प्रकृति के सुकुमार-रूप पर रीझे हैं

और निराला को प्रकृति का विराट-रूप अधिक मोहक लगा है । इस प्रकार प्रत्येक कवि द्वारा किए गए प्रयोग उसकी वैयक्तिक चेतना अथवा बाह्य स्थितियों के प्रभाव को ग्रहण करने की उसकी मौलिक क्षमता के परिणाम होते हैं ।

प्रयोग का जन्म प्रतिक्रिया से होता है किन्तु उसकी प्रवृत्ति रचनात्मक होती है सच्चा प्रयोग उसे ही समझना चाहिये, जिसके मूल में रूढ़ि का खण्डन मात्र न होकर संभावित नवीन उपलब्धियों का विश्वास भी निहित हो, जो कुछ तोड़ने के साथ-साथ टूटे हुए को अधिक सशक्त ढंग से जोड़ने में समर्थ हो । इसी सामर्थ्य के बल पर प्रयोगशील कवि परंपराओं से विद्रोह करके नए पथ पर चलने का साहस दिखलाता है और अपने क्षेत्र में सफलता पाता है । इसी प्रकार का साहस द्विवेदीयुग के इतिवृत्तात्मक और नीरस काव्य-प्रणाली के विरोध में छायावाद के कवियों ने दिखाया था जिसके परिणामस्वरूप हिन्दी काव्य में एक अभूतपूर्व रचना शैली पल्लवित हुई जैसे ब्रजभाषा में काव्य-रचना की सुदीर्घ परंपरा को छायावादी कवियों ने खंडित किया तो दूसरी ओर खड़ीबोली का खड़खड़ाहट को दूर करके उसे इतनी कोमल, मधुर और व्यंजक बना दिया कि वह सहज ही ब्रजभाषा का स्थान ग्रहण कर सकी । छंद शास्त्र के बंधनों का उन्होंने त्याग किया, तो अनेक प्रकार की नूतन छान्दस योजनाओं एवं मुक्त छंद के रूप में अपनी सृजनशीलता का परिचय दिया ।

<u>परंपरा और प्रयोग का सम्बन्ध :</u>

परंपरा और प्रयोग प्रकटतः दो अलग-अलग प्रवृत्तियां जान पड़ती हैं किन्तु वास्तव में दोनों अन्योन्याश्रित है । कोई भी प्रतिभावान कवि अतीत के अनुभवों का सम्बल लेकर ही नए प्रयोगों की ओर उन्मुख होता है । अतीत की आधार भूमि पर ही नवीन प्रयोगों के बीज अंकुरित होकर पुष्पित-पल्लवित होते हैं और कालान्तर में नवीन परंपराओं का सूत्रपात करते हैं । इस प्रकार इन दोनों के मध्य कार्य कारण संबंध रहता है। परंपरा से संबंध विच्छेद करके किया जानेवाला कोई भी सृजन अथवा काव्य प्रयोग या तो वाङ्मय क्षेत्र में अराजकता की उत्पत्ति का कारण बनता है, अथवा निरा वाग्जाल बनकर अपना महत्व खो देता है ।

इसी प्रकार प्रयोग के बिना ' परंपरा ' शब्द ही सारहीन हो जाता है, क्योंकि प्रत्येक ' परंपरा ' का मूल रूप प्रयोगात्मक ही होता है । बीते हुए कल के प्रयोग वर्तमान में हमें परंपरा रूप में प्राप्त होते हैं और वर्तमान के प्रयोगों में आनेवाले कल की परंपरायें निहित रहती हैं । श्रेष्ठ प्रयोग परंपरा में रूपान्तरित हो जाते हैं और पूर्ववर्ती परंपरायें नूतन प्रयोगों का पथ प्रशस्त करती हैं । उदाहरणार्थ निराला ने अपनी भावाभिव्यक्ति को अधिक सशक्त और प्रभावशाली रूप देने के लिये किसी पूर्व प्रचलित छंद के साँचे में न ढालकर उसके प्रवाह को उन्मुक्त ही रहने दिया । कविता की छंदोबद्धता से संबंधित पिंगल शास्त्रीय नियमों की निराला ने इस प्रकार स्पष्टत: उपेक्षा की और छंद क्षेत्र में एक नया प्रयोग किया, जिसे मुक्त छंद की संज्ञा दी गई । यह मुक्त छंद इतना लोकप्रिय हुआ कि उसकी धीरे धीरे एक परंपरा बन गई और निराला ने समकालीन तथा परवर्ती अनेक कवियों ने भी उसे अपनाया । किन्तु सूक्ष्म पर्यवेक्षण से स्पष्ट है कि निराला का यह मुक्त छंद परंपरागत कवित्त छंद की लय को तोड़कर ही बना है । इस प्रकार मुक्तछंद परंपरा-विद्रोह का परिणाम होता हुआ भी परंपरा से सर्वथा विच्छिन्न नहीं कहा जा सकता ।

परंपरा को स्वायत्त करके किया जानेवाला प्रयोग ही सार्थक एवं प्रयोग कहा जा सकता है । कवि की मौलिकता इसमें नहीं है कि वह विचित्र प्रयोगों की ऐसी श्रृंखला प्रस्तुत कर दे जो सर्वथा अपरिचित हो । परिचित वस्तु को ही नए रूप और नए रंग देकर इस प्रकार प्रस्तुत करना कि उसमें सहृदय को वैचित्र्य के दर्शन एवं आनंद की अनुभूति हो, कवि द्वारा किये गए प्रयोग की सार्थकता है । ऐसा तभी संभव है जब कवि की दृष्टि समन्वयात्मक हो । विगत के अनुभवों के आधार पर भविष्य हेतु नवीन संभावनाएं प्रस्तुत करनेवाला कवि ही सच्चा प्रयोगशील कवि कहा जा सकता है ।

इस प्रकार ' परंपरा ' और ' प्रयोग ' प्रकट रूप में परस्पर विरोधी प्रवृत्तियोंवाले दिखाई देने पर भी वस्तुत: एक दूसरे के पूरक हैं। साहित्य क्षेत्र में ये क्रिया-प्रतिक्रिया रूप में सदैव विद्यमान रहकर साहित्य धारा के प्रवाह को अक्षुण्ण बनाए रखते हैं । काव्य में रूढ़ियों के कारण उत्पन्न होनेवाले गतिरोध को दूर करने के लिये प्रतिभावान कवि क्रान्ति का उद्घोष सुनाते हैं तथा नए- नए प्रयोग

करके नवीन ऊर्जस्वित परंपरायें स्थापित करते हैं और इस रूप में साहित्य की धारा की गति को अनवरुद्ध रखकर उसके विकास में सहयोग देते हैं । साहित्य के विकास क्रम को समझने के लिये परंपराओं और प्रयोगों का अध्ययन मूल्यवान हो सकता है । वर्तमान युगीन नए प्रयोगों का मूल पर्ववर्ती परंपराओं में खोजा जा सकता है और उनके वर्तमान स्वरूप के आधार पर काव्य के भावी विकास का अनुमान किया जा सकता है । किसी कवि की रचना अथवा किसी विशिष्ट काव्य प्रवृत्ति के भावगत सौन्दर्य और शिल्पगत समृद्धि, दोनों का ही मूल्यांकन भी पूर्ववर्ती काव्य परंपराओं के साथ उसका तुलनात्मक अध्ययन परीक्षण किये बिना संभव नहीं है ।

परंपरावादी काव्य और स्वच्छंदतावादी काव्य -

साहित्य के अंतर्गत " परंपरा और " प्रयोग " की प्रवृत्तियों पर आधारित काव्य के प्रचलित नाम " परंपरावादी काव्य " और स्वच्छंदतावादी काव्य है । परंपरावादी काव्य वस्तुपरक दृष्टिकोण पर और स्वच्छंदतावादी काव्य आत्म परक दृष्टिकोण पर आधारित होता है, इसी कारण परंपरावादी काव्य में संयम सरलता, शालीनता, नियमपालन, विचारों की विशदता, विषयगत औदात्य, कल्पना और विवेक का समन्वय आदि गुणों का आधिक्य दिखाई देता है और स्वच्छंदतावादी काव्य में भावावेग, बंधनों के प्रति आक्रोश, विचारों की जटिलता, वैचित्र्य प्रेम, कल्पना की उड़ान आदि की प्रवृत्तियाँ प्रबल रहती हैं । किसी युग में इनमें से कौन सी प्रवृत्तियाँ प्रमुखता प्राप्त करेंगी यह उस युग की परिस्थितियों एवं वातावरण पर निर्भर रहता है । प्राय: यह देखा जाता है कि जिस युग में सामंतीय विचारधारा प्रबल रहती है, उसमें परंपरावादी काव्य पनपता है क्योंकि सामंती युग के शासन संबंधी कठोर नियमों और परंपरावादी संयत काव्य-विधानों में प्रकृतिगत साम्य रहता है । परंपरावादी लेखक अथवा कवि की शैली मर्यादित, सुसंगठित और सुबोध होती है । उसमें शास्त्रीय नियमों का पूरी निष्ठा और कठोरता से पालन किया जाता है । इसी प्रकार व्यक्ति चेतना प्रधान पूंजीवादी युग स्वच्छंदतावादी काव्य प्रवृत्ति के विकास के लिये विशेष उपयोगी होता है । क्योंकि स्वच्छंदतावादी कवि की पहचान ही यह है कि वह शास्त्रीय रूढ़ियों के मोहवश नहीं, आत्मप्रेरणा के वशीभूत होकर काव्य सृजन करता है । बीसवीं शताब्दी का प्रारंभ भारतवर्ष में पूंजीवाद के विकास का युग था, जब कि धार्मिक परतंत्रता के बंधन शिथिल हो रहे थे और व्यक्ति चेतना का

विकास और प्रसार तीव्रगामी था । वही व्यक्ति चेतना साहित्य में भी प्रतिफलित होकर छायावाद कहलाई । छायावाद हिंदी कविता के क्षेत्र में रूढ़ियों के प्रति विद्रोह और नए प्रयोगों की बाढ़ लेकर आविर्भूत हुआ । किन्तु इस कथन का यह आशय नहीं है कि छायावाद के पूर्व हिंदी काव्य के किसी अन्य युग में प्रयोग नहीं हुए । हिन्दी काव्य का संपूर्ण इतिहास परंपरा और प्रयोग की विकासशील क्रिया-प्रतिक्रिया को व्यक्त करता है ।

हिन्दी काव्य विकास में परंपरानुराग और प्रयोगशीलता

हिन्दी काव्य के आदियुग , वीरगाथाकाल में सामंतीय शासन की प्रवृत्तियां प्रबल थीं, इसीलिए तद्युगीन काव्य का स्थूल शास्त्रीय परंपराओं के प्रति अधिक झुकाव लक्षित होता है । उस युग में महाकाव्यों की रचना अधिक होने का भी यही कारण कहा जा सकता है । वीरगाथा युग की बंधी-बंधाई परिपाटी और काव्य विषय के प्रति उत्तरवर्ती युग के संत कवियों में विद्रोह भावना का उदय हुआ । कबीर ने धर्म नैतिकता और समाज की अन्यान्य रूढ़ियों से संबंधित अपने क्रान्तिकारी विचारों को काव्यात्मक अभिव्यक्ति दी । पूर्व युग के कवियों की तुलना में कबीर का विषय पक्ष सर्वथा नया था । महाकाव्य के बदले पद और साखियां लिखना कबीर को अधिक रुचिकर हुआ । साहित्यिक भाषा के स्थान पर सर्वजन सुलभ लोकभाषा का चयन भी कबीर की स्वच्छंदतावादी प्रवृत्ति का द्योतक है । किंतु कबीर जैसे संत कवियों का काव्य, (जो प्रारंभ में विद्रोह की तीव्र चेतना से अनुप्राणित दिखाई दिया था) भी कालान्तर में रूढ़ि ग्रस्त हो गया । हजारी प्रसाद द्विवेदी के शब्दों में -" कम संतों की वाणियों में बंधी संधी बोलियों के बाहर की बात मिलेगी , सब में एक ही वक्तव्य विषय, एक ही शब्दावली एक ही शैली में बार-बार दुहराया गया है ।"[१]

निर्गुण भक्ति काव्य की प्रतिक्रिया स्वरूप सगुण भक्ति काव्य का उदय हुआ । सगुणोपासक कवियों ने एकान्तिक धर्म साधना के स्थान पर लोक-संग्रह और लोक-कल्याण की भावनाओं को अधिक महत्व दिया । इस शाखा के

१- हजारी प्रसाद द्विवेदी - हिन्दी साहित्य , पृष्ठ २७ ।

सूर और तुलसी जैसे महा कवियों ने भाव और कला दोनों ही दृष्टियों से काव्य को उसके चरमोत्कर्ष तक पहुँचा दिया । परवर्ती कवियों के लिये उससे आगे जाने की कोई राह शेष नहीं रह गई थी, अतएव काव्यधारा को नया मोड़ देने के लिए तद्युगीन कवियों ने पुन: नए प्रयोग किये । धर्म और अध्यात्म के स्थान पर ' रीतिकाल ' लौकिक प्रेम के मिलन विरह-मय चित्रों के प्रति गहरी रुझान लेकर आविर्भूत हुआ । रीतिकालीन कवि शास्त्रीय काव्य परंपराओं के प्रति पूर्ण आस्थावान थे इसीलिए वे कला के क्षेत्र में नूतन उद्भावनायें नहीं कर सके । बँधी हुई लीक पर नायिका-भेद रस-व्यंजना और अलंकार निरुपण तक ही इस युग का काव्य शिल्प सीमित रहा ।

बीसवीं शताब्दी के प्रारंभ के साथ हिंदी कविता ने पुन: एक नए युग में प्रवेश किया, जिसे आधुनिक काल का प्रारंभिक युग ' भारतेन्दुयुग ' कहा जाता है । यह समय हिन्दी कविता के पुनरुत्थान का समय था । लेकिन इस पुनरुत्थान की भावना को आगे चलकर आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी और उनके सहयोगी कवियों के द्वारा विशेष बल मिला । यद्यपि यह कवि भी रीतिकालीन काव्य प्रवृत्तियों और परंपराओं के प्रति सुधारवादी दृष्टिकोण ही रखते थे । इसीलिये इस समय की रचनाओं में परंपरा और स्वच्छंदता का द्वन्द्व लक्षित होता है । कविता के क्षेत्र में पूर्ण क्रान्ति छायावादी कवियों के द्वारा हुई । द्विवेदीयुग की नीति, उपदेश , वस्तुतत्व की एक रुपता आदि से युक्त नीरस कविताओं से ऊबकर प्रसाद पंत, निराला आदि ने काव्य-वस्तु, भाषा तथा शैली शिल्प संबंधी अनेकानेक अभिनव प्रयोग किये ।

इस प्रकार हिन्दी काव्य का विकास परंपरा और स्वच्छंदता की क्रिया-प्रतिक्रिया का इतिहास है । जब जब कवियों में परंपरा-मोह प्रबल हुआ तब तब कविता में अनुकृति और पुनरावृत्ति की प्रवृत्तियाँ लक्षित हुईं , और जब जब स्वच्छंदता का प्रवाह उमड़ा तब तब नए नए प्रयोगों द्वारा कविता में नए रूप, नए रंग उभारे गए । परंपरा और प्रयोग - ये दो ऐसी महत्वपूर्ण प्रवृत्तियाँ

हैं जिनके माध्यम से ही किसी युग विशेष का काव्य अथवा किसी विशिष्ट काव्य प्रवृत्ति के विकास क्रम को समझा जा सकता है । एक निश्चित अवधि तक, एक निश्चित स्वरूप को प्राप्त करनेवाली काव्यधारा, अतीत की कौन-कौन सी परंपराओं का जल अपने में समाहित करती हुई तथा किन रास्तों किनारों को काटती-छोड़ती, किन चौराहों पर रुकती मुड़ती हुई अपनी वर्तमान स्थिति तक पहुंची है, इन सब तथ्यों का ज्ञान प्राप्त किये बिना किसी भी साहित्यिक धारा अथवा साहित्यिक कृति का सही मूल्यांकन कर पाना कठिन है ।

प्रथम अध्याय

छायावाद युग और काव्य विकास

छायावाद का उद्भव

परिवर्तन जीवन का शाश्वत नियम है और साहित्य जीवन का अनुगामी है । मानव जीवन के उत्थान-पतन, आशा-निराशा, शान्ति और संघर्ष की परिस्थितियों के अनुरूप साहित्य की सरिता भी अपने प्रवाह की दिशायें बदलती रहती हैं । साहित्य में परिवर्तन की पुकार जब इतनी प्रबल हो उठती है कि "व्यक्ति" का स्वर सामूहिक घोष बनकर मुखरित होने लगता है, तभी एक नए काव्य-युग का जन्म होता है ।

द्विवेदी युग के अन्तिम वर्षों में परिवर्तन की इसी प्रक्रिया के फल-स्वरूप हिन्दी कविता के वस्तु और शिल्प पक्षों में कुछ नवीनतायें प्रकट होने लगी थीं, जिन्होंने भावी युग की नवीन काव्य चेतना, "छायावादी काव्य" की भूमिका प्रस्तुत की ।

स्थूल रूप से छायावादी काव्य को दो महायुद्धों के बीच का काव्य माना जा सकता है, किन्तु ऐसा नहीं है कि प्रथम महायुद्ध के प्रारंभ (सन् १९१४) के साथ ही छायावाद का जन्म अकस्मात् हो गया हो । साहित्य में क्लासिकल और स्वच्छंदतावादी काव्य प्रवृत्तियों का द्वन्द्व प्राय: प्रत्येक युग में चलता रहता है । सामाजिक एवं राजनैतिक परिस्थितियों के प्रभाववश कभी एक प्रवृत्ति प्रधान हो जाती है, तो कभी दूसरी । आधुनिक हिन्दी काव्य में द्विवेदीयुग सुधारवादी आंदोलनों का युग था, जिसमें नैतिकता के उच्चादर्शों और मर्यादावाद का विशेष मान था । अतएव इस युग का काव्य मुख्यत: क्लासिकल या परंपरावादी ही था । किन्तु पंडित महावीर प्रसाद द्विवेदी की मर्यादावादी नीतियों से बंधी हुई कवि-पीढ़ी से भिन्न कुछ कवि ऐसे भी थे जो अपनी रचनाओं में स्वच्छंदतावादी प्रवृत्ति को प्रश्रय दे रहे थे ।

इनमें श्रीधर पाठक, मुकुटधर पाण्डेय, राय कृष्णदास, मैथिली शरण गुप्त और जयशंकर प्रसाद के नाम मुख्य हैं। इनकी कविताओं में जो स्वच्छंदतावादी प्रवृत्ति बीज रूप में थी, वही अंकुरित और पल्लवित होकर "छायावाद" के रूप में प्रकट हुई। "छायावाद" वस्तुतः स्वच्छंदतावाद का ही विकास था।

बीसवीं शताब्दी के प्रारंभ में ही छायावादी काव्य-प्रवृत्ति के स्फुरण को लक्षित किया जा सकता है, किन्तु उसे एक विशिष्ट काव्यधारा मानते हुए एक विशिष्ट नाम तभी प्राप्त हुआ जब वह कालान्तर में परंपरावादी काव्य से सर्वथा मुक्त होकर अपने पूर्ण विकसित रूप में दिखाई पड़ी। सन् १६०६ में "इन्दु" पत्रिका के माध्यम से जयशंकर प्रसाद की कुछ कवितायें - "प्रभात कुसुम", "विस्तृत प्रेम", "संध्यातारा आदि प्रकाश में आईं, जिनमें परंपरित काव्य से भिन्न कुछ नवीन उद्भावनायें दृष्टिगत हुईं। उसके कुछ वर्षों बाद सन् १६१४ में द्विवेदी युग के प्रतिनिधि कवि मैथिली शरण गुप्त की "नक्षत्र-निपात" शीर्षक रचना प्रकाशित हुई, और लगभग इसी समय मुकुटधर पाण्डेय की "उद्गार", "आंसू", "कुररी-क्रन्दन" सदृश रचनाओं से हिन्दी काव्य-प्रेमियों का परिचय हुआ। इन रचनाओं में अभिव्यंजना वैशिष्ट्य, प्रकृति-निरीक्षण और आत्मानुभूतिमयी-व्यंजना के माध्यम से नव्य काव्य चेतना का स्वरूप मुखर हो चला। सन् १६१७ में सूर्यकान्त त्रिपाठी "निराला" की "जूही की कली" तथा "सुमित्रानन्दन पन्त का "पल्लव" शीर्ष काव्य-संग्रह प्रकाशित हुआ। इन रचनाओं में छायावादी काव्य प्रवृत्ति का स्वरूप अपने प्रखर रूप में लक्षित हुआ। इस भाँति द्विवेदी युग के अंतराल में अंकुरित होनेवाली छायावादी काव्य प्रवृत्ति का संस्कार धीरे-धीरे व्यापक होता गया और प्रथम महायुद्ध की समाप्ति तक छायावादी काव्यधारा की दिशा स्पष्ट रूप से परिलक्षित होने लगी। छायावादी काव्यधारा में प्राण-प्रतिष्ठा कर उसे उजागर करनेवाले कवियों में प्रसाद का नाम अग्रणी है। इसी कारण उन्हें छायावाद का जन्मदाता कहा जाता है। आगे चलकर "निराला" और "पंत" के इस क्षेत्र में पदार्पण करने के पश्चात् छायावाद की श्रृंखला स्थापित हुई और हिन्दी में "छायावाद" विशेष चर्चा का विषय बना।

छायावादी काव्य के आविर्भाव तक हिन्दी कविता के क्षेत्र में आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी की काव्य-धारणाओं और काव्यादर्शों का संस्कार

प्रबल था । कविता के भाव एवं शिल्प-क्षेत्रों में प्रचलित काव्य परिपाटी के प्रति विद्रोही होने के कारण प्रारंभ में नए कवि आलोचकों तथा साहित्याचार्यों के उपहास एवं आक्रोश के ही पात्र बने । छायावाद की सशक्त रचना " जुही की कली " प्रारंभ में सरस्वती-संपादक से तिरस्कृत होकर अप्रकाशित रूप में ही अपने स्रष्टा के पास लौट आई थी । परन्तु विरोधों से बेपरवाह और प्रहारों से अप्रभावित रहकर यह कवि अपनी साहित्य साधना में लगे रहे । परिणामत: पंत की उच्छ्वास और प्रसाद की " आंसू " सदृश रचनायें प्रकाश में आईं । नए और पुराने दोनों खेमे के कवियों, समीक्षकों ने मुक्त कंठ से " आंसू " की सराहना की । इस समय तक छायावादी भाव-धारा सुस्पष्ट हो चुकी थी और उसकी नूतन व्यंजना शैली का पूर्ण विकास हो चुका था । " आंसू " में छायावादी काव्य की समस्त विशेषतायें पुष्ट रूप में प्रकट हुईं । दूसरे शब्दों में " आंसू " ने " छायावाद " को हिन्दी काव्य की एक महत्वपूर्ण काव्य-धारा होने का प्रमाणपत्र प्रस्तुत किया ।

" आंसू " का प्रकाशन सन् १९२५ में हुआ था । इस समय तक छायावाद को प्रतिष्ठा प्राप्त हो गई थी और उसके प्रति अवहेलना तथा विरोध का बवंडर भी शान्त हो चुका था, अतएव सन् १९२५ को ही दो युगों का विभाजन बिन्दु मानते हुए हम " छायावाद-युग " का प्रारंभ इसी समय से मान सकते हैं । इसके पूर्व का समय छायावाद का अंकुरणकाल कहा जा सकता है । द्वितीय महायुद्ध के प्रारंभ के साथ जीवनगत स्थितियों में पुन: बदलाव आया, जिसके परिणामस्वरूप साहित्य में भी नई प्रवृत्तियों एवं नवीन मान्यताओं का आविर्भाव होने लगा और छायावाद का आकर्षण उनके सम्मुख धूमिल हो चला । अतएव छायावादयुग से हमारा तात्पर्य सन् १९२५ से सन् १९३८-३९ तक के काव्य से है, क्योंकि इस बीच छायावादी काव्यधारा ही हिन्दी काव्य की प्रमुख महत्वपूर्ण तथा सर्वाधिक लोकप्रिय काव्यधारा रही, पार्श्ववर्तिनी अथवा प्रच्छन्नधारा नहीं । जहां तक छायावादी काव्य की प्रतिष्ठा का संबंध है उसकी व्याप्ति मोटे तौर पर दो महायुद्धों के बीच स्वीकृत हो चुकी है ।

युग प्रवाह

युद्धकालीन स्थितियों ने देश के संपूर्ण ढांचे में अनेक महत्वपूर्ण

परिवर्तन किये, जिनमें भारतीय अर्थ व्यवस्था में परिवर्तन का पक्ष सब से महत्त्वपूर्ण था क्योंकि नवीन आर्थिक परिवर्तनों ने तद्युगीन चेतना को सर्वाधिक और बहुविधि प्रभावित किया । राजनीतिक, सामाजिक परिवेश पर भी नवीन विचारधाराओं ने गहन प्रभाव डाला, परिणामत: एक प्रतिक्रियात्मक लोकमानस विकसित हुआ, जिसकी अभिव्यक्ति समसामयिक काव्य में व्यापक रूप में लक्षित की जा सकती है ।

आर्थिक परिवेश

प्रथम महायुद्ध के समय तक भारतवर्ष में सामंती प्रथा का अंत और पूंजीवाद का अभ्युदय हो चुका था । प्रारंभ में पूंजीवाद के विकास में ब्रिटिश शासन ने भी सहयोग दिया, क्योंकि उसमें उनका अपना स्वार्थ निहित था । भारतीय उद्योग धंधों को संरक्षण देकर वे भारत के पूंजीपति वर्ग को अपने वश में रखना चाहते थे । युद्धजन्य परिस्थितियाँ भी उन्हें इसके लिये विवश कर रही थीं।[१] युद्धकाल में अंग्रेज़ों द्वारा दिये गए प्रलोभनों के वशीभूत होकर पूंजीपति वर्ग ने उत्साहपूर्वक ब्रिटिश सरकार को सहयोग दिया था , किन्तु युद्धोपरान्त उन्हें इसका कोई फल नहीं प्राप्त हुआ । शासक वर्ग का शोषण चक्र तीव्र वेग से चलने लगा । छोटे उद्योग धंधे जैसे सूती कपड़ा, सीमेण्ट, दियासलाई आदि का तो विकास हुआ किन्तु बड़े उद्योग धंधों को, जिनमें आर्थिक लाभ की आशा थी, जानबूझकर टाला जाने लगा । वास्तव में अंग्रेज़ लोग हिन्दुस्तानी बाज़ार को संसार के अन्य पूंजीवादी देशों के प्रभावों से मुक्त रखकर उस पर अपना स्वाधिपत्य चाहते थे । वे केवल उन्हीं उद्योग धंधों को पनपते देखना चाहते थे, जिनमें ब्रिटिश पूंजी लगी हुई थी ।

१- माटैग्यू चेम्सफोर्ड रिपोर्ट सन् १९१८, पृष्ठ २६७ -- " आर्थिक और सैनिक दोनों ही दृष्टियों से साम्राज्यवादी हितों की यही माँग है कि अब आगे से हिन्दुस्तान के प्राकृतिक साधन और अच्छी तरह काम में लाए जाएं । हिन्दुस्तान का औद्योगीकरण होने पर साम्राज्य की ताकत और कितनी बढ़ जाएगी, हम अभी इसका हिसाब नहीं लगा सकते "।

सन् १९१८ में भारतीय औद्योगिक कमीशन ने जो सिफारिशें की थी उन्हें शासक वर्ग द्वारा अस्वीकृत कर दिया गया तथा लोहा इस्पात के कारखानों को मिलनेवाली आर्थिक सहायता बंद कर दी गई और ब्रिटिश माल के आयात पर लगनेवाली चुंगी में विशेष रियायत की नीति अपनाई गई। युद्ध काल में विदेशी पूंजीपतियों ने भारतीय उद्योगों में अपनी पूंजी लगा दी थी और विशेष लाभ की आशा में वहां की संस्थाओं ने यहां पर अपनी बड़ी-बड़ी शाखायें खोल दी थी। युद्धोपरान्त इन विदेशी संस्थाओं के कारण भारतीय उद्योग क्षेत्र को घोर क्षति पहुंची। विदेशी पूंजी में निरंतर वृद्धि होती गई, उसी के अनुपात में भारतीय अर्थ-व्यवस्था की जड़ें खोखली पड़ती गईं। अनेक भारतीय कंपनियों ने विदेश से ऋण लिये थे। ऋण राशि की अदायगी और मुद्रा- परिवर्तन नीति ने देशी कंपनियों को और अधिक क्षति पहुंचाई। बैंक-पूंजी के माध्यम से शासक वर्ग को भारतवर्ष के शोषण का बढ़िया अस्त्र मिल गया।

औद्योगिक विकास के फलस्वरूप खेती से संलग्न गृह उद्योग धंधे पहले ही समाप्त हो चुके थे और उनके अनुपात में यांत्रिक उद्योग धंधों का विकास न होने से मज़दूरों की संख्या कम हो गई तथा देश की अधिकांश जनता केवल खेती पर निर्भर रहने को विवश हो गई। परिणामत: गरीबी बढ़ गई।[१]

बैंक पूंजी के माध्यम से संपूर्ण देश की अर्थ व्यवस्था ब्रिटिश सरकार के चंगुल में फंस गई थी। फलत: केवल खेती पर गुजर करनेवालों को और अधिक धक्का पहुंचा। खेती की पैदावार और कच्चेमाल की क़ीमत आधी रह गई। ब्रिटिश माल पर लगनेवाली चुंगी में कमी हो जाने के कारण ब्रिटिश माल का आयात बढ़ गया

१- डी० एच० बकनन, 'हिन्दुस्तान में पूंजीवादी कारबार की उन्नति, १९३४, पृ०४५१।

'थोड़े से बड़े-बड़े औद्योगिक केन्द्र ज़रूर हैं, किन्तु दस्तकारी से जितने लोगों की रोजी चलती थी, कारखानों से इतने अधिक लोगों की रोज़ी नहीं चलती। देश के प्रतिवर्ष के आयात से निर्यात कम है। अनुपात में ज़रूर फ़र्क पड़ रहा है, फिर भी हिन्दुस्तान के आर्थिक जीवन की विशेषता अभी यही है कि वह कच्चा माल बाहर भेजता और तैयार माल विदेशों से मंगाता है। हिन्दुस्तान के लोगों का रहन-सहन बहुत नीचा है, फिर भी उसके कारखानों में अपने देश की खपत के लायक तो पूरा भी माल तैयार नहीं होता, जितना सौ साल पहले होता था।'

(शंभुनाथ सिंह - छायावाद युग, पृष्ठ २९ से)

और भारतीय माल का निर्यात उसकी तुलना में बहुत कम होता गया । भारतीय उद्योग धंधों के माल की खपत के लिये खेतिहर जनता की गरीबी बहुत बड़ी बाधा थी । इस प्रकार विश्व व्यापी अर्थ संकट (सन् १६२८) से बहुत पहले ही भारतवर्ष में अर्थ संकट अपनी पूरी भयंकरता से व्याप्त हो गया । सरकार ने पूंजीवाद को प्रारंभ में प्रेरणा अवश्य दी किन्तु अपने स्वार्थ में बाधा पड़ती देखकर उसके विकास में जी भर कर रोड़े भी अटकाए और उसे पूरी तरह फलने-फूलने नहीं दिया । गरीबी बढ़ती जा रही थी किन्तु ब्रिटिश सरकार की शोषण नीति में कोई परिवर्तन न हुआ । सन् १६२६ के बाद भारतीय उद्योगों में ब्रिटिश पूंजी कम होती गई, किन्तु बैंक-पूंजी के द्वारा शोषण की गति दुगनी बढ़ गई । भारतीय जनता भूखों मर रही थी लेकिन शासक वर्ग द्वारा लगाए गए करों की वसूली पूर्ववत होती रही और भारतीय खजाने में जमा किया हुआ सोना विदेश पहुंचता रहा ।[१]

अर्थ-क्षेत्र की इस कठिन और निराशामयी स्थिति की प्रतिक्रिया जन-मानस में कई रूपों में प्रकट हुई । देश भर में साम्राज्यवाद के विरुद्ध गहरा क्षोभ और विद्रोह विकसित हो चला । मध्य वर्ग और निम्न मध्य वर्ग तो इस विद्रोह में आगे था ही, पूंजीपति वर्ग को भी अंतत: शासक वर्ग का साथ छोड़कर जनता की ओर झुकना पड़ा, क्योंकि वस्तु-स्थिति ने उनके सामने इस सत्य को उजागर कर दिया था कि साम्राज्यवादी पंजे से देश का उद्धार किये बिना पूर्ण औद्योगिक उन्नति और आर्थिक ढांचे में सुधार असंभव है ।

युद्धोत्तर धन और जन की हानि, गरीबी, बेरोजगारी और विदेशी शासकों के अन्याय अत्याचार आदि ने मिलकर गहन अवसाद और निराशा का वातावरण उत्पन्न कर दिया था । किन्तु इसके साथ ही शासक वर्ग के प्रति घृणा और आक्रोश की भावनायें भी अत्यन्त प्रबल हो उठी थी, जिनके फलस्वरूप

१- रजनीपाम दत्त - आज का भारत , पृष्ठ १५३

* बैंक आफ इण्टरनेशनल सेटिलमेंटस की रिपोर्ट के अनुसार १६३२ में इंग्लैंड के पास ३ अरब, २ करोड़, १० लाख फ्रैंक (स्विटजरलैण्ड का सोने का सिक्का) का सोना था । सन् १६३६ के अंत में वह ७ अरब, ६१ करोड़, १० लाख का हो गया ।

राष्ट्रीयतावादी चेतना का उत्तरोत्तर विकास हो रहा था । साम्राज्यवादी की जड़े उखाड़ फेंकने के लिए समाज के समस्त वर्गों के लोग एक जुट होकर उठ खड़े होने को तैयार थे । राष्ट्रीयता की भावना के विकास के साथ ही अतीत के गौरवपूर्ण युगों का स्मरण तथा लुप्त अतीत-वैभव और विशिष्ट राष्ट्र गरिमा की पुन: प्राप्ति के लिए आत्मोन्नति एवं आत्मिक विकास की स्वाभाविक आकांक्षायें जाग्रत हुई ।

इस नव जाग्रत चेतना का प्रतिफलन तद्युगीन साहित्य में सशक्त रूप में हुआ । शासन के प्रति आक्रोश और जीवन के प्रति असंतोष ने साहित्य के क्षेत्र में यदि एक ओर निराशा, कुंठा और ह्रास की प्रवृत्तियों को जन्म दिया, तो दूसरी ओर साहित्यकार के अन्तर्मन में नए क्षितिजों को खोजने का उत्साह और रूढ़ियों को तोड़कर स्वच्छंदतापूर्वक नए मार्ग पर चलने का साहस भी जगाया । मानव होने के नाते साहित्यकार के जीवन की भी कुछ आवश्यकतायें, कुछ स्वप्न तथा कुछ आकांक्षायें होती हैं, जिनकी पूर्ति न होने पर उसका क्षुब्ध होना स्वाभाविक है । जीवन की कटुताओं से उत्पन्न होनेवाले इसी क्षोभ ने उस युग के कवि को एक ओर विद्रोही-बनाकर रूढ़ियों को तोड़ने की प्रेरणा दी और दूसरी ओर उसकी प्रवृत्ति अंतर्मुखी बनाई । यथार्थ जीवन में अनुपलब्ध सुखों की खोज वह अंतर्जगत में करने लगा । उसकी प्रवृत्तियां अपने ही भीतर एक ऐसे स्वप्नलोक अथवा कल्पना लोक की रचना में तल्लीन हुई, जो उसकी अतृप्त आकांक्षाओं और अपूर्ण स्वप्नों को पूर्ण परितृप्ति दे सके ।[१]

राजनीतिक परिवेश

साम्राज्यवादी शक्तियों द्वारा देश के आर्थिक शोषण के परिणाम स्वरूप जो विद्रोहाग्नि जन-मानस में प्रज्ज्वलित हुई थी, उसका सीधा प्रभाव तद्युगीन राजनीति पर पड़ा । मध्यवर्गीय समाज का यह विद्रोह देखते-देखते राष्ट्रीय जन-जागरण के रूप में परिणत हो गया और उसके नेतृत्व की बागडोर महात्मा गांधी ने सम्हाली । राजनीति के रंगमंच पर गांधी जी के आगमन के साथ देश की अपढ़ सामान्य जनता तक स्वदेश को विदेशी दासता से मुक्त कराने का स्वप्न देखने लगी । गांधी जी की नीति सत्य, अहिंसा और असहयोग की थी, किन्तु

१- सुमित्रानन्दन पन्त " युगान्त " पृष्ठ ३५
" मैं सृष्टि एक रच रहा नवल,भावी जीवन के हित भीतर ।
सौन्दर्य, स्नेह उल्लास मुझे मिल सका नहीं जग में बाहर ।। "

कालान्तर में उनकी नीति में गोखले की समझौतावादी नीति, तिलक के उग्र विद्रोही विचार तथा संपूर्ण देश की धार्मिक-सांस्कृतिक चेतना का भी समन्वय हो गया । गांधी जी ने अपने व्यक्तित्व और कार्यों द्वारा अपने समसामयिक समाज को इतनी गहराई तक प्रभावित किया कि इतिहास में वह युग "गांधीयुग" के नाम से विख्यात हो गया ।

भारत में गांधी जी की कार्य शीलता का आरंभ सन् १६१८ से हुआ था । सन् १६१८ से सन् १६२० की अवधि में भारतीय राजनीति में अनेक महत्वपूर्ण घटनायें घटी, - महायुद्ध की समाप्ति, वारसेलीज़ की संधि, माटेग्यू चेम्सफोर्ड सुधार, रौलट ऐक्ट और सत्याग्रह, जलयानवाला बाग़ का हत्याकाण्ड, बाल गंगाधर तिलक का देहावसान और कांग्रेस पर गांधी जी का पूर्ण प्रभुत्व आदि ।

युद्धकाल में भारतवर्ष ने धन और जन दोनों के द्वारा ब्रिटिश सरकार का साथ दिया था किन्तु युद्ध समाप्ति के बाद अंगरेजों के सभी वादे झूठे सिद्ध हुए । रौलट ऐक्ट (सन् १६१६) का पास होना इसका प्रत्यक्ष प्रमाण था । सन् १६१६ के शासन सुधार माटेग्यू चेम्सफोर्ड सुधार" से भारतीय संतुष्ट नहीं हो सकते थे क्योंकि भारतीयों को धारा-सभा में अपने चुने हुए प्रतिनिधि भेजने का अधिकार मिला, किन्तु उन प्रतिनिधियों को वस्तुत: शासन में किसी प्रकार के अधिकार नहीं दिये गये । "रौलट ऐक्ट" ने सरकार की छलपूर्ण-नीति को सर्वथा स्पष्ट कर दिया, अर्थात् सरकार नए-नए सुधारों के द्वारा अधिकार देने का दिखावा कर रही थी, लेकिन वास्तव में उनकी ओर में जनता की स्वतंत्रता अपहृत हो रही थी । इस घृणित नीति के प्रति देश भर में तीव्र आक्रोश जाग उठा । गांधी जी ने शान्तिमय ढंग से रौलट ऐक्ट के विरोध की सलाह जनता को दी, किन्तु जनता का क्षोभ चरम सीमा पर पहुंच चुका था, परिणामत: अनेक दंगे हुए और बहुत से अंगरेजों की भारतीयों द्वारा हत्या कर दी गई । इन हत्याओं का बदला शासन ने पंजाब के भीषण हत्याकाण्ड के रूप में लिया जहां हजारों निहत्थे प्राणियों पर जनरल डायर के आदेश से गोलियों की वर्षा की गई । इतिहास में यह घटना जलयानवाला बाग के हत्याकाण्ड के रूप में प्रसिद्ध है । पंजाब में होनेवाली इस रोमांचकारी घटना का प्रभाव पूरे देश पर बहुत गहरे रूप में पड़ा । इस घटना की भयंकरता और ब्रिटिश

कार की घोर दमन नीति तथा गांधी जी के उपदेशों के द्वारा मध्यवर्गीय जनता के य में यह विश्वास जड़ जमाने लगा कि शासक वर्ग की भौतिक शक्तियों से टकराने के िये भारतीयों के पास एक मात्र अस्त्र उनका आध्यात्मिक बल ही रहता है । इस ति राजनीति में आध्यात्मिकता भी घुल मिल गई और इस नई गांधीवादी नीति- लका आधार अहिंसात्मक असहयोग था, के द्वारा जनता पूर्ण निर्भय होकर साम्राज्यवादी क्तियों से जमकर लोहा लेने लगी ।

इस राष्ट्रीय विद्रोह का प्रारंभ मध्यवर्ग और निम्न मध्यवर्ग के क्तियों द्वारा हुआ था किन्तु बाद में धनपति और व्यापारी वर्ग भी उसमें सम्मिलित गया और यह विद्रोह किसी वर्ग विशेष का न रहकर संपूर्ण भारतीय जनता का द्रोह बन गया, जिसके नेतृत्व की बागडोर गांधी जी के हाथ में रही । गांधी जी का ध देश के राजनीतिक नेताओं और बुद्धिजीवियों से तो था ही, ~~इसके अतिरिक्त और बुद्धिजीवियों से तो था ही~~, इसके अतिरिक्त समाज के अन्य छोटे- वर्गों से भी उनका संपर्क । उनकी "बनिया" जाति के कारण व्यापारी वर्ग और दुकानदार लोगों पर उनके त्व की गहरी छाप थी ।[१]

गांधी जी द्वारा संचालित अनेक आंदोलन समय-समय पर देश भर हुए जिनका विशेष उल्लेख यहां पर अनावश्यक होगा । इन आन्दोलनों की गति कभी भी पड़ जाती थी, कभी तीव्रतम हो उठती थी । कभी सरकार का दमन चक्र विजयी ता था, कभी जनता का आत्मबल । गांधी जी, देश के अन्य वरिष्ठ नेताओं तथा म्राज्य विरोधी जन प्रतिनिधियों को सरकार बार-बार जेल में ठूंसकर यातनायें देती थी र सत्याग्रहियों के द्वारा जेलें अधिक भर जाने पर उन्हें पुनः मुक्त कर देती थी । इस

Thompson and Garrat - British Rule in India, page 606.
" He had other qualifications for leadership which were not immidiately apparent, but were to make him the greatest force in Indian polities for over a decade.His lewly Bania caste saved him from the Brahmins inhibitions, and brought him many supporters amongst the businessmen and shop keeper. These who were drawn from the professions and from higher caste. He cooperated easily with the wealthy commercial elements, the joining the nationalists movement and gained humbler supporters in every market town. "

प्रकार तत्कालीन राजनीति क्षेत्र में जय-पराजय और आशा-निराशा का क्रीडा-चक्र चल रहा था । उथल-पुथल के उस युग में देश का भविष्य अनिश्चित सा था । गांधी जी के अहिंसात्मक आन्दोलन में भाग लेने वालों की संख्या विशाल थी किन्तु जनता का एक बड़ा वर्ग हिंसात्मक क्रान्ति में विश्वास रखता था । हिंसात्मक क्रान्ति के मुख्य केन्द्र बंगाल और पंजाब प्रान्त थे । ये लोग बम फेंककर, सरकारी खजाने लूटकर, रेल की पटरियां उखाड़कर और अंगरेजों की हत्या करके सरकार को खुली चुनौती दे रहे थे ।

हिंसात्मक और अहिंसात्मक, दोनों प्रकार की क्रान्तियों के फलस्वरूप देशभर में हलचल मची हुई थी और सरकार त्रस्त हो उठी थी । सन् १९२९ में कांग्रेस ने एक ओर पूर्ण स्वराज्य की घोषणा की और दूसरी ओर सन् १९३० में सरदार भगतसिंह ने असेम्बली भवन में बम फेंककर जनता के विरोध की आवाज़ सरकार के कानों तक पहुंचाई। विश्व-व्यापी अर्थ संकट की स्थिति में सरकार भारतीय उपनिवेश को हाथ से खोना नहीं चाहती थी, अतएव उसने समझौते की नीति अपनाई, जिसका परिणाम " साइमन कमीशन" था । किन्तु इस कमीशन में एक भी भारतीय न था । अतएव भारत में साइमन कमीशन के आने पर उसका घोर विरोध किया गया । अनेक सरकार विरोधी प्रदर्शन और हड़तालें हुईं । लाहौर में प्रदर्शनकारियों पर लाठी चार्ज हुआ जिसमें लाला लाजपतराय की मृत्यु हो गई । लाला लाजपतराय की मृत्यु ने आन्दोलनों तथा क्रान्तिकारी षड्यंत्रों को और भी तीव्रता प्रदान की ।

सन् १९३१ में लार्ड विलिंगडन वायसराय के पद पर नियुक्त हुए, इन्होंने पहले की अपेक्षा और अधिक तीव्रता से आन्दोलनकर्ताओं का दमन किया । सरदार भगतसिंह को फांसी दी गई जिसके फलस्वरूप अनेक प्रदर्शन हुए । इस समय तक स्वातंत्र्य आन्दोलन में सामान्य जनता के लोग, अपढ़ ग्रामीण स्त्री पुरुष भी सम्मिलित हो गए थे । अतएव उसका रूप और अधिक व्यापक हो गया था । बड़े-बड़े नेताओं के कैद कर लिये जाने के कारण एक वर्ष के लिए आन्दोलनों की गति मंद पड़ गई । सन् १९३२ में " तृतीय गोलमेज़ कान्फ्रेन्स" हुई जिसमें किसी भी कांग्रेसी ने भाग नहीं लिया, तथापि सन् १९३५ में उस कान्फ्रेन्स में हुए निर्णयों के आधार पर भारतीय शासन में कुछ सुधार हुए । इन सुधार कानूनों के अनुसार १९३७ में होनेवाले आम चुनावों में कांग्रेसी सदस्यों ने भाग लिया और अधिकांश प्रान्तों में उन्हें बहुमत प्राप्त हुआ । विभिन्न प्रान्तों में प्रथम बार

कांग्रेसी मंत्रि मण्डल निर्मित हुए किन्तु अधिक काल तक यह मंत्रि मण्डल कायम न रह सके । क्योंकि विदेशी सरकार पग-पग पर उनके कार्यों में बाधायें उत्पन्न कर रही थी । विवश होकर इन मंत्रि मण्डलीय सदस्यों ने अपने अपने पद से इस्तीफ़ा दे दिया । इसी समय यूरोप में द्वितीय महायुद्ध का दौर शुरू हो गया ।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि दो महायुद्धों के बीच का यह समय (सन् १९१८ से १९३९ तक) राजनीतिक उथल-पुथल का युग था । यह एक ऐसा संक्रान्तिकाल था जिसमें एक ओर दमन, शोषण, पीड़ा और मृत्यु की विभीषिका थी, और दूसरी ओर स्वतंत्रता की बलवती भूख, विजय के स्वप्न और आत्मोत्सर्ग की भावनायें पनप रही थी । जनता आशा-निराशा के हिंडोले में झूल रही थी ।

स्वप्न और यथार्थ का यह अन्तर तत्कालीन साहित्य में भी प्रतिफलित हुआ । मन की आकांक्षायें और स्वप्न साकार न हो पा रहे थे । पथ में अनेक बाधायें थी, अतएव उनका स्वाभाविक परिणाम कुण्ठा क्षोभ और निराशा के रूप में प्रकट हुआ । सामान्य जन की अपेक्षा कवि कुछ अधिक ही संवेदनशील तथा स्वभाव से कोमल होता है । अपने चारों ओर की स्थितियों से वह ऊब उठा और उसकी प्रवृत्ति कुछ कुछ पलायनवादी हो गई । छायावादी काव्य की पलायन वृत्ति[1] उसमें कुण्ठा , क्षोभ[2] और निराशा की व्याप्ति[3] तथा निराला[4] और प्रसाद के[5] अनेक राष्ट्रीयतावादी गीत[6] अपने समय के राजनैतिक जीवन के ही सहज परिणाम कहे जा सकते हैं । समाज की ही जीवित इकाई होने के नाते कवि और साहित्यकारों

१- जयशंकर प्रसाद - लहर , पृष्ठ १४

"ले चल मुझे भुलावा देकर मेरे नाविक धीरे धीरे,
जिस निर्जन में सागर लहरी अम्बर के कानों में गहरी
निश्छल प्रेम कथा कहती हो तज कोलाहल की अवनी रे ।"

२- हरिवंशराय 'बच्चन' - एकान्त संगीत, पृ० ११२ ।

"संघर्ष से टूटा हुआ दुर्भाग्य से लूटा हुआ,
परिवार से छूटा हुआ, कितना अकेला आज मैं ?"

३- महादेवी वर्मा - नीहार , पृष्ठ १६

"आंखों की नीरवभिक्षा में, आंसू के मिटते दागों में
ओठों की हंसती पीड़ा में, आहों के बिखरे त्यागों में
कन-कन में बिखरा है निर्मम मेरे मानस का सूनापन ।"

में भी अपने देश को विदेशी शासन के चंगुल से मुक्त देखने की आकांक्षा स्वाभाविक रूप में थी किन्तु स्वतन्त्रता की बलवती भूख वास्तविक जीवन में तृप्ति नहीं पा सकने के कारण कुंठित हो गई और काव्य जगत में परंपरागत रूढ़ काव्य विषय, भाषा, शैली आदि के विरुद्ध उद्दाम विद्रोह के रूप में फूट पड़ी ।[१]

छायावादी काव्य में एक और दुःख, निराशा, वेदना और करुणा के स्वरों की गूंज सुनाई पड़ी, दूसरी ओर प्रकृति के रम्य दृश्यों में लीन होने की प्रवृत्ति। नए युग के निर्माण का स्वप्न और आकांक्षा तथा राष्ट्रप्रेम की व्यंजना भी उसमें हुई । उसका यह अंतर्विरोध भी पूर्णतया अपनी युगीन परिस्थितियों का ही प्रतिफल कहा जा सकता है ।

सामाजिक परिवेश

अंगरेज़ अनजान में ही अपने आप भारत में नवजागरण के अग्रदूत बने२। भारतवर्ष में शिक्षा का प्रचार अंगरेज़ों ने अपने स्वार्थवश[२] किया था, किन्तु उसके द्वारा भारतीय जनता का बहुत कल्याण हुआ । ज्ञान के आलोक ने एक ओर तो भारतवासियों को अपनी प्राचीन सभ्यता, संस्कृति, कला आदि के पुनर्मूल्यांकन का अवसर देकर अतीत के प्रति उनकी आस्था जगाई, दूसरी ओर विश्व की अन्य संस्कृतियों से और वहां के विचार, दर्शन आदि से उनका परिचय कराया । इस परिचय ने भारतीय समाज में विचारों की नूतन क्रान्ति उत्पन्न की ।

पाश्चात्य देशों की समाज-व्यवस्था, अर्थ व्यवस्था, रीति नीति से परिचित हो जाने के उपरान्त भारतीयों को पाश्चात्य समाज तथा अपने

१- प्रो० शिवनन्दन प्रसाद - कवि सुमित्रानन्दन और उनका प्रतिनिधि काव्य, पृष्ठ २७।

२- Jawahar Lal Nehru - The Discovery of India, page 268-269.

" The British became the dominant in India a nd the foremost power in the world, because they were the Heralds of the new big machine industrial civilization. They represented a new historic force, which was g oing to change world and were thus unknown to themselves, the fore runners and representatives of change and revolution ."

ही विगत जीवन की तुलना में अपनी वर्तमान हीनावस्था का बोध हुआ । इस बोध ने राजनीति क्षेत्र में गुलामी की कारा तोड़कर आज़ाद देश का आज़ाद नागरिक बनने की चाह जगाई और राष्ट्रीय आन्दोलनों को पनपने की प्रेरणा दी; तथा सामाजिक क्षेत्र में - जीवन को अधिकाधिक उन्नत और विकासशील बनाने हेतु अनेक सांस्कृतिक आन्दोलनों को जन्म दिया । "आर्य समाज", "ब्रह्मसमाज", थियोसॉफिकल सोसायटी आदि ने सांस्कृतिक सामाजिक पुनरुत्थान के कार्य में महत्वपूर्ण सहयोग दिया ।

शिक्षा प्रसार द्वारा भारतीयों का संपर्क पश्चिम के जनतांत्रिक विचारों से हुआ, जिनकी प्रेरणावश सामाजिक नवविकास के बीज अंकुरित हुए और विदेशी शासन और शोषण से मुक्ति की कामना जगी[१] किन्तु पाश्चात्य संपर्क और शिक्षा का कुप्रभाव भी भारतीय समाज पर कुछ कम नहीं पड़ा । प्रारंभ में भारतीय व्यक्ति पश्चिम की विचारवादिता और स्वतंत्रतानुरागिता को सर्वथा गलत रूप में समझे । अंग्रेज़ी शिक्षा की वैज्ञानिक भावना ने रूढ़िवादिता से तो मुक्ति दिलाई, किन्तु उसके कारण समाज में स्वेच्छाचारिता और मर्यादाहीनता भी बहुत बढ़ गई । हिन्दू जन ही शिक्षित होकर हिन्दुत्व से घृणा करने लगे और भारतीय परंपराओं, विश्वासों, रहन-सहन एवं वेशभूषा की खिल्ली उड़ाने लगे । शिक्षित वर्ग का अंध:पतन पराकाष्ठा को पहुँच रहा था । समाज के सामने एक गंभीर समस्या उपस्थित थी । देश का भविष्य जिस नवयुवक पीढ़ी के हाथ में था, वह मिशनरियों के प्रचार और अंग्रेज़ी शिक्षा-दीक्षा के प्रभाववश अपने ही समाज की विरोधी बनती जा रही थी । मंदिरों, तीर्थ स्थलों और धार्मिक अनुष्ठानों के प्रति आस्था मिट चली थी । इन परिस्थितियों में समाज की स्थिति रक्षा और दृढ़ता के लिये "किसी

१- **R.Palme Dutta - India today and tomorrow, page 100.**

" The fact that the system of education imposed in the interest of imperealist administration opened the evenues at the same time to the great stream of english democratic and popular inspiration and struggle of the Miltons, the Shelleys and the Byrons fighting against the self same figures of the ruling class oligarchy, ...".

नए कबीर, किसी नए नानक और किसी नए दादू की आवश्यकता पड़ी । अत: योरोप और भारतवर्ष की टकराहट से एक बार फिर वह भाव सोते से जाग उठा, जो बुद्ध के समय प्रकट था, जो कबीर के समय प्रत्यक्ष हुआ था और लोग गंभीरता से धर्म और समाज के ढांचे पर एक बार फिर उसके मूल से ही सोचने लगे"।[१] प्राचीन शास्त्रों की व्याख्या शिक्षित समुदाय द्वारा आलोचनात्मक ढंग से की जाने लगी । युग के बदले हुए परिवेश में जीवन से संबंधित विभिन्न पक्षों में उन्नति और नवनिर्माण की प्रवृत्ति बलवती हो उठी । वर्ण, जाति, संप्रदाय, अस्पृश्यता आदि से पीड़ित भारतीय समाज मध्ययुगीन जड़ता से छूटकर सामाजिक एकता, धार्मिक समन्वय और राष्ट्रीय चेतना से प्रबुद्ध हो उठा ।

इस नव पल्लवित चेतना - (जिसका जन्म समाज के उच्च शिक्षित वर्ग में हुआ था) के विकास और प्रचार-प्रसार हेतु कुछ धार्मिक-सांस्कृतिक संस्थायें सामने आईं, जिन्होंने इस चेतना का प्रकाश जन-सामान्य तक पहुंचाने का अथक प्रयास किया । बंगाल में राजा राममोहन राय के " ब्रह्म समाज " ने सर्व धर्म समन्वय और विश्व बंधुत्व का लक्ष्य सामने रखते हुए जाति-पांति के भेद को मिटाने का महत्वपूर्ण कार्य किया । उत्तर भारत में स्वामी दयानन्द वैदिक धर्म के प्रचार द्वारा भारत की लुप्तप्राय प्राचीन संस्कृति के पुनरुद्धार में संलग्न थे । उन्होंने इस्लाम और ईसाई धर्म के बढ़ते हुए प्रभावों को रोकने के लिए हिन्दू उत्थान के ध्येय को अपनाया और " आर्य समाज " की स्थापना की । स्वामी दयानन्द वेदों को अपौरुषेय और विश्व के समस्त ज्ञान -विज्ञान का मूल स्रोत मानते थे । वेद-ज्ञान को सर्व सुलभ बनाने हेतु उन्होंने वेदों की हिन्दी में मौलिक और सारगर्भित व्याख्यायें की । " संस्कृत की विशाल ज्ञान-राशि की कुंजी जो अब तक परिमित द्विजों के हाथ में थी, वह वेदों के हिन्दी में अनूदित हो जाने से सर्व साधारण को सुलभ हो गई । इससे हिन्दुओं को वैदिक समाज और संस्कृति का ज्ञान हुआ और आर्य समाज की उच्च एवं उदार भावनाओं का परिचय मिला । लोगों में यह विश्वास अटल हो गया कि वैदिक संस्कृति विश्व संस्कृति का सर्वोच्च शिखर है, जिससे उनके भीतर अतीत के प्रति श्रद्धा और ममता के भाव जाग्रत हो उठे ।[२]

१- रामधारी सिंह " दिनकर " - संस्कृति के चार अध्याय, पृष्ठ ४३३ ।
२- डा० केसरीनारायण शुक्ल - आधुनिक काव्यधारा के सांस्कृतिक स्रोत, पृ०५० ।

अतीत के प्रति निष्ठा जगाने तथा राष्ट्र के पुनर्जागरण हेतु जन समाज को मानसिक रूप से सक्षम बनाने के महत्वपूर्ण कार्य में थियोसाफिकल सोसायटी का भी बड़ा योग रहा है । इसकी जन्मदात्री श्रीमती एनीबेसेन्ट एक विदेशी महिला थी तथापि उन्होंने अपना संपूर्ण जीवन हिन्दू समाज के उत्थान से संबंधित महत् उद्देश्य के लिए अर्पित कर दिया ।

बंगाल के रामकृष्ण परमहंस इसी समय अपने अपूर्व व्यक्तित्व और अनन्य भक्ति द्वारा शिक्षित जन-समुदाय को प्रभावित कर रहे थे । वे धार्मिक संकीर्णता से परे, एकेश्वरवाद के समर्थक और संसार के सभी धर्मों के समन्वय के आकांक्षी थे । परमहंस के शिष्य स्वामी विवेकानन्द आगे चलकर उनके विचारों के प्रबल समर्थक हुए । उनके शक्तिशाली व्यक्तित्व,तप:पूत चरित्र और ओजस्विनी वाणी ने असंख्य व्यक्तियों को उनका शिष्य बना दिया जो देश में ही नहीं विदेशों में भी उनके विचारों का प्रचार-प्रसार करने लगे । स्वामी विवेकानन्द ने समाज में व्याप्त विविध अंध विश्वासों को समाप्त करके धार्मिक सिद्धान्तों को तर्क की कसौटी पर कसने का आग्रह किया और शताब्दियों से पराधीनता के पंक में निश्चेष्ट पड़ी हिन्दू जनता को कर्म योग, ज्ञान योग और भक्ति योग का अमर संदेश देकर उनमें नवीन आत्मबल का संचार किया । "निरुत्साहित तथा अशक्त हिन्दू मस्तिष्क के लिए उन्होंने टानिक का काम किया और उसमें आत्म विश्वास तथा अतीत के प्रति आस्था उत्पन्न की ।"[१] अपने गुरु के नाम पर उन्होंने "रामकृष्ण मिशन" की स्थापना की । स्वामी जी दृढ़ वेदान्ती थे किन्तु उनके द्वारा प्रचार पानेवाले धर्म का व्यवहारिक पक्ष भी प्रबल था । वह पूर्व और पश्चिम के धार्मिक मतों और श्रेष्ठ दार्शनिक सिद्धान्तों का समन्वय कराने के इच्छुक थे ।[२] भौतिकवाद में आकंठ मग्न यौरोप और अमेरिका जैसे देशों को उन्होंने अध्यात्म का संदेश दिया और भौतिकता के प्रति उपेक्षा भाव रखनेवाले भारतीय व्यक्तियों का ध्यान सामाजिक .

१- Jawaharlal Nehru - The Discovery of India, page 291.

२- Jawaharlal Nehru - The Discovery of India, page 292.

" He wanted to combine western progress with India's background . Make a European Society with Indian religion ".

पतन और दुरावस्था की ओर आकृष्ट किया तथा उन्हें कर्मठ बनने की प्रेरणा देते हुए धर्म को उनके सामने इस रूप में प्रस्तुत किया कि वह मनुष्य की आधिभौतिक प्रगति में बाधा न डाल सके ।

इन धर्म प्रचारकों के अतिरिक्त इस युग में कुछ अन्य महान व्यक्ति भी हुए जिनकी विचारधारायें समाज में वैचारिक क्रान्ति के विकास में सहयोगी हुई । इनमें तिलक, गांधी, टैगोर और अरविन्द के नाम विशेष उल्लेखनीय है । 'तिलक' एक महान समाज शास्त्री और राजनीति के पंडित थे । उन्होंने गीता की मौलिक व्याख्या प्रस्तुत करनेवाली अपनी पुस्तक 'गीता रहस्य' के द्वारा निर्जीव हिन्दू जाति में नवीन प्रेरणा और स्फूर्ति का संचार किया और 'कर्मवाद' के महत्व को स्पष्ट करते हुए उसे 'प्रवृत्ति-मार्ग' की ओर उन्मुख किया । इस प्रवृत्ति मार्ग के प्रचार का ही हिन्दू जनता की जीवन के प्रति उदासीनता दूर हुई और उसके हृदय में स्वतन्त्रता की भावना का उदय हुआ । गांधी राजनीतिक व्यक्ति थे किन्तु उनकी राजनीति का महल अध्यात्म की भूमि पर प्रतिष्ठित था । सत्यमेव जयते ' और ' अहिंसा परमोधर्म:' को उन्होंने अपनी जीवन साधना और राजनीति का मूल मंत्र बनाया तथा सर्वोदय ,त्याग,सर्वजन सेवा को अपना आदर्श बनाया । मानव मात्र की समानता में उनका गहरा विश्वास था जो किसी भी संस्कृति का उत्कृष्टतम पहलू कहा जा सकता है । राजनीति के क्षेत्र में जितनी ख्याति गांधी जी को मिली, कला के क्षेत्र में टैगोर उतने ही मान-सम्मान और प्रतिष्ठा के अधिकारी बने । टैगोर वस्तुत: सामन्तवादी कलाकार थे किन्तु दलितवर्ग के प्रति उनकी दृष्टि सहानुभूतिपूर्ण थी अतएव वे जनवादी भी थे । वे सात्विक जीवन के पुजारी और विश्व मानवतावाद के समर्थक थे ।

अरविन्द इन सभी से भिन्न पूर्णत: अध्यात्मवादी थे । 'गांधी' और 'टैगोर' मानव को ईश्वर तक पहुंचाना चाहते थे, किन्तु अरविन्द ईश्वर को धरती पर उतारकर मानव मात्र में निहित करने के अभिलाषी थे ।

इस प्रकार वह युग सांस्कृतिक पुनर्जागरण और वैचारिक क्रान्ति का युग था । सामाजिक बुराइयों की ओर शिक्षित वर्ग का ध्यान पूरी तरह आकर्षि

हो चुका था, किन्तु सामाजिक रूढ़ियों और अंधविश्वासों की जड़ें इतनी गहरी थीं कि उन्हें उखाड़ पाना सरल न था । नैतिक आदर्शों में उलटफेर की बात अशिक्षित वर्ग के लिए तो असह्य थी ही प्रायः पढ़े लिखे व्यक्ति भी उसे फेल पाने में असमर्थ हो रहे थे । नई पीढ़ी के सामने गंभीर समस्यायें थीं । पाश्चात्य विचारों के प्रभाव वश उनका मस्तिष्क नए साँचे में ढल रहा था, लेकिन अपनी नवीन मान्यताओं को जीवन में उतार न पाने की विवशता उनके भीतर निराशा, क्षोभ, अवसाद और आक्रोश की मिली जुली प्रतिक्रियाएं उत्पन्न कर रही थी । गरीबी और बेकारी गार्हस्थ्य जीवन के विकास में बाधक थी और स्वच्छन्द प्रेम, विवाह आदि से संबंधित बाधायें मन के आनन्द स्रोत का मार्ग अवरुद्ध कर रही थीं । समाज पुरातन और नूतन, यथार्थ और आदर्श, निराशा और उत्साह के गहरे द्वन्द्व में उलझा हुआ था, जो किसी भी प्रत्यक्ष राजनैतिक संघर्ष से कम महत्वपूर्ण न था ।

यह गहन असंतोष, द्वन्द्वमयी स्थिति कवियों में दो रूपों में प्रस्फुटित हुई । निराशा, असंतोष आदि ने उन्हें भाग्यवादी अथवा दार्शनिक बनाया । जीवन की क्षण भंगुरता और संसार की असारता का बोध उनके काव्य में कभी दुःखवाद बनकर प्रतिफलित हुआ और कभी भोगवाद बनकर । जीवन की उलझनों और समस्याओं ने उन्हें पलायनवादी भी बनाया । शान्ति की अभिलाषा में यथार्थ से दूर भागकर उन्होंने प्रकृति की क्रोड़ में शरण ली । दूसरी ओर, आक्रोश और विद्रोह की भावनाओं ने उन्हें सामाजिक रूढ़ियों और बंधनों तथा साहित्य क्षेत्र की प्रचलित मान्यताओं और विश्वासों को अमान्य करने का साहस और नए जीवनादर्शों एवं काव्यादर्शों को अपनाने की दृढ़ता दी । इसके परिणाम स्वरूप राजनैतिक क्षेत्र में महात्मा गांधी के रूप में जिस तरह देश की आत्मा स्वतन्त्रता प्राप्ति के नए प्रयोगों में लीन हुई, जैसे देश नवजीवन प्राप्ति के नए मार्ग ढूंढने में प्रवृत्त हुआ उसी तरह साहित्य क्षेत्र में भी अनेक नए प्रयोगों और विविध स्वतन्त्र मार्गों की खोज की गई ।"[१]

समाज में पूँजीवाद के विकास के साथ व्यक्तिवादी विचारधारा भी विकसित हो रही थी । छायावादी कवियों ने भी इस व्यक्तिवादी चेतना को

१- शम्भूनाथ सिंह - छायावाद युग, पृष्ठ ५२-५३ ।

ग्रहण करके साहित्य में "मैं" शैली अपनाई तथा अपने वैयक्तिक सुख-दुख को अपनी रचनाओं में वाणी दी । यद्यपि सामाजिक मर्यादाओं का पूर्णतः उल्लंघन इस समय तक भी संभव नहीं था, इसी लिये इस युग के काव्य में स्वानुभूतिमयी अभिव्यक्तियाँ प्रतीकों के माध्यम से प्रच्छन्न रूप में ही की गई ।

गाँधी अरविन्द और टैगोर के प्रभाव ने छायावादी काव्य में अध्यात्म का रंग भरा । भारतीय वेदान्त दर्शन ने भी इन कवियों को गहराई तक प्रभावित किया । गाँधी और टैगोर ने पूर्व और पश्चिम के विचारों का सारतत्व लेकर जिस नव मानवतावाद अथवा विश्व मानवतावाद को जन्म दिया था उसकी भी अभिव्यक्ति तद्युगीन साहित्य में सबल रूप में हुई । "प्रसाद" की कामायनी इसका श्रेष्ठ प्रमाण है ।

साहित्यिक परिवेश

भारतेन्दु युग में हिन्दी कविता में विषयों की नवीनता अवश्य लक्षित हुई किन्तु तब तक नायक-नायिकाओं के रूप सौन्दर्य, हास-विलास, केलि-क्रीड़ा आदि के अलंकारिक वर्णनों के प्रति मोह पूरी तरह भंग नहीं हुआ था । भारतेन्दु युग के कवियों ने एक सीमित दायरे से बाहर निकलकर अपने परिवेश को देखा और समझा तथा देश की दुर्दशा पर आँसू भी बहाए ; किन्तु इसके आगे का महत् कार्य द्विवेदी युगीन कवियों के द्वारा ही संपन्न हुआ, जिन्होंने रोने और आँसू बहाने में ही अपने कर्तव्य का अंत न मानकर, अपनी रचनाओं द्वारा समाज को कर्मठता और पौरुषता का संदेश सुनाया और उसकी दीर्घकालीन जड़ता को दूर भगाकर नई चेतना के प्रसार का प्रयत्न किया ।[१] विश्व की विभिन्न संस्कृतियों कला कौशल विज्ञान, धर्म, दर्शन आदि के केन्द्र-स्थल भारतवर्ष की साम्प्रतिक दुरावस्था के कारणों की खोज इन कवियों द्वारा की गई । इस खोज के अन्तर्गत उनकी दृष्टि स्वाभाविक रूप से सामाजिक रूढ़ियों अंध-विश्वासों, कुरीतियों आदि की ओर भी गई । समाज को ही राष्ट्र भवन की भित्ति मानने के कारण द्विवेदीयुगीन कवियों ने समाज की

१- मैथिली शरण गुप्त - भारत भारती, पृष्ठ १६१
"बैठे हुए हो व्यर्थ क्यों आगे बढ़ो, ऊँचे चढ़ो ।
है भाग्य की क्या भावना अब पाठ पौरुष का पढ़ो ।।"

समस्त दुर्बलताओं पर एक चिकित्सक की भाँति निर्मम दृष्टि डाली है । अशिक्षा, बाल विवाह, अस्पृश्यता, साम्प्रदायिक विद्वेष, स्वाभिमान भ्रंश, जातीय पतुता, पश्चिमी सभ्यता का अंधानुकरण , धार्मिक अंध विश्वास, नैतिक अनीति आदि समाज की जितनी भी कुरीतियाँ थीं, उन सब की खुलकर निन्दा की गई तथा आचरणमूलक शुद्धता , आत्मिक उन्नति, चरित्र की उज्ज्वलता एवं उच्चता के प्रति आग्रह प्रकट करते हुए काव्य में ऐसे आदर्श मानवों की प्रतिष्ठा होने लगी जिनसे समाज कुछ शिक्षा ले सके ।

शिक्षा प्रसार तथा विज्ञान के उदय के फलस्वरूप बुद्धिवाद का जन्म उस काल तक हो चुका था, अतएव प्राचीन रूढ़ियों के प्रति अनास्था और अवतारवाद के खण्डन की भावना को बल मिला, तथा नवयुग के अनुरूप नवीन दर्शन का आविर्भाव हुआ, जिसकी आधार शिला नव प्रस्फुटित मानवतावादी विचारधारा थी । इसके फलस्वरूप काव्य में एक ओर तो मानवीय गौरव की प्रतिष्ठा हुई, दूसरी ओर ,मानव-सेवा को ही ईश्वर सेवा मानकर मानवोत्थान की भावनाओं को प्रश्रय दिया गया । पौराणिक युग के चरित्रों को भी इसी भावना के वशीभूत होकर लोक-सेवा का आदर्श लेकर चलनेवाले आदर्श मानवों के रूप में चित्रित किया गया ।" साकेत " के " राम " और " प्रिय प्रवास " के " कृष्ण " इसके उदाहरण हैं ।

राजनीतिक- सामाजिक विषयों के अतिरिक्त भी काव्य के अन्तर्गत कुछ अन्य विषय अपनाए गए परन्तु उन सभी में कोई न कोई प्रच्छन्न संदेश अथवा उपदेशवृत्ति निहित रहने लगी । इस प्रकार " उपयोगितावाद " द्विवेदीयुग के काव्य की मुख्य कसौटी थी । वृन्दावन की कुंज गलियों में वर्षों से भटकती हुई हिन्दी कविता को जन-जीवन के निकट खींच लाने का सत्साहस द्विवेदीयुगीन कवियों ने अवश्य दिखाया, किन्तु धीरे - धीरे उसमें नैतिकता के बंधन अत्यधिक प्रबल हो गए और उपयोगितावाद की लक्ष्मण-रेखा में घिर कर कवियों की नवनवोन्मेषशालिनी प्रतिभा की दीप्ति धूमिल पड़ने लगी । बंधी हुई लीक पर एक जैसी कविताएँ होने लगीं जिनमें सरसता और आकर्षण का अभाव खटकने लगा ।

नैतिकता और मर्यादावाद के प्रति अधिक रुझान के फलस्वरूप शृंगारिकता का विरोध स्वाभाविक था किन्तु यह विरोध उस सीमा तक पहुँच गया कि

काव्य-क्षेत्र से जीवन के भावनामय पक्ष तथा मनुष्य की रागात्मक कोमल अनुभूतियों को निष्कासन दे दिया गया । हृदय तत्व की शून्यता और बुद्धितत्व के भार से बोझिल होने के फलस्वरूप इन कविताओं की मर्मस्पर्शिता समाप्त हो चली ।

महादेवी के शब्दों में इस युग में "सृष्टि के बाह्याकार पर इतना अधिक लिखा जा चुका था कि मनुष्य का हृदय अपनी अभिव्यक्ति के लिए रो उठा ।"[१] तथा कविता की इतिवृत्तात्मकता इतनी स्पष्ट हो चली थी कि मनुष्य की सारी कोमल और सूक्ष्म भावनायें विद्रोह कर उठीं । + + + + स्थूल सौन्दर्य की आवृत्तियों से थके हुए और कविता की परंपरागत नियम शृंखला से ऊबे हुए व्यक्तियों को फिर उन्हीं रेखाओं में बंधे हुए स्थूल का न तो यथार्थ चित्रण रुचिकर हुआ और न उसका रूढ़िगत आदर्श भाया । उन्हें नवीन रूप रेखाओं में सूक्ष्म सौन्दर्यानुभूति की आवश्यकता थी, जो छायावाद में पूर्ण हुई ।"[२]

काव्य क्षेत्र से उपेक्षित सौन्दर्य-शृंगार और प्रेम की पुनर्प्रतिष्ठा के लिए नई कवि पीढ़ी का सृजन प्रारंभ हुआ । इसके अतिरिक्त, दूसरों की ही बात कहने और आदर्शवादिता का राग अलापने की प्रवृत्ति त्यागकर, व्यक्तिवादी चेतना से अनुप्राणित युवा कवि- समुदाय अपने अनुभूत सत्यों और वैयक्तिक भावनाओं को अपनी रचनाओं में मुखरित करने लगा ।

पाश्चात्य विचारों के प्रवाह और प्राचीन भारतीय संस्कृति के पुनरावलोकन के परिणामस्वरूप एक नए युग-बोध का जन्म हुआ, जिसमें सांसारिक स्वच्छन्द प्रेम से लेकर राष्ट्र प्रेम, प्रकृति-प्रेम, जर्जर रूढ़ियों के प्रति अनास्था, नए युग की प्रतिष्ठा का स्वप्न और दार्शनिक चिन्तन से उद्भूत नव मानवतावाद और विश्व-मैत्री की भावना आदि सभी कुछ समाविष्ट हो गया । नए युग-बोध को पहचानकर उसे काव्यात्मक अभिव्यक्ति देनेवाले प्रारंभिक कवियों में श्रीधर पाठक, मुकुटधर पाण्डेय, रामनरेश त्रिपाठी, जयशंकर प्रसाद आदि थे । कविता के भाव-पक्ष में युगान्तर उत्पन्न करने में अंगरेजी रोमांटिक कवियों के काव्य का नए कवियों द्वारा अध्ययन गांधी,

---

१- महादेवी वर्मा - यामा, भूमिका, पृष्ठ ११ ।

२- महादेवी वर्मा - आधुनिक कवि - भूमिका, पृष्ठ ६ ।

अरविन्द, विवेकानन्द आदि विभूतियों के दार्शनिक विचार देश की सामाजिक-राजनैतिक स्थिति, सभी का साथ था[1]। उस समय बंगाल में रवीन्द्रनाथ टैगोर की नूतन भाव-भंगिमा से युक्त कविताओं की विशेष ख्याति थी । हिन्दी कवियों की दृष्टि भी उस ओर आकर्षित होने लगी थी[2] परंपरागत भाषा और अलंकारों की एक रसता से ऊबे हुए[3] हिन्दी कवियों को रवीन्द्र की कविताओं की नूतन भंगिमायें अत्यन्त प्रिय लगी और वे उन्हें अपनी कविताओं में भी उतारने के लिए प्रयत्नशील हुए । उसी के परिणामस्वरूप छायावादी काव्य में भाषा, अलंकार, छन्द आदि से संबंधित विभिन्न नए प्रयोग हुए, जिनके आधार पर छायावादी काव्य परंपरित काव्य से सर्वथा भिन्न स्वरूप लेकर प्रकट हुआ ।

छायावादी काव्य का स्वरूप

छायावादी काव्य को खड़ीबोली काव्य की एक प्रवृत्ति मानते हुए उसे `छायावाद` नाम से अभिहित करके उसके स्वरूप निर्धारण का प्रथम प्रयास पंडित मुकुटधर पाण्डेय ने किया था । सन् १९२० में जबलपुर से निकलनेवाली `श्रीशारदा` पत्रिका में (जुलाई, सितंबर, नवंबर और दिसंबर अंक) उनके चार लेख `छायावाद क्या है ?` शीर्षक से प्रकाशित हुए थे । उसके बाद से अब तक हिन्दी के अनेक सुधी

१-2सुमित्रानन्दन पन्त - आधुनिक कवि (भूमिका) पृष्ठ १३

"मैं उन्नीसवीं सदी के अंगरेजी कवियों - मुख्यतः शैली, कीट्स, वर्ड्सवर्थ और टैनीसन से विशेष रूप से प्रभावित रहा हूं क्योंकि इन कवियों ने मुझे मशीन युग का सौन्दर्य-बोध और मध्यमवर्गीय संस्कृति का जीवन-स्वप्न दिया है । रवि बाबू ने भी भारत की आत्मा को पश्चिम की मशीन युग की सौन्दर्य-कल्पना में ही परिधानित किया है । पूर्व और पश्चिम का मेल उनके युग का स्लोगन भी रहा है। इस प्रकार मैं कवीन्द्र की प्रतिभा के गहरे प्रभाव को भी कृतज्ञतापूर्वक स्वीकार करता हूं और यदि लिखना एक Unconcious - Concious process है तो मैंने उपचेतन ने यत्र-तत्र इन कवियों की निधियों का उपयोग भी किया है और उसे अपने विकास का अंग बनाने की चेष्टा की है ।"

३- सुमित्रानन्दन पन्त - पल्लव, भूमिका, पृष्ठ १०

भाव और भाषा का ऐसा शुष्क प्रयोग, राग और छंदों की ऐसी एक स्वर रिमझिम, उपमा, तथा उत्प्रेक्षाओं की ऐसी दादुरावृत्ति अनुप्रास एवं तुकों की ऐसी अश्रान्त उपलवृष्टि क्या संसार के और किसी साहित्य में मिल सकती है ?"

आलोचकों एवं विद्वानों ने विविध संदर्भों में छायावाद का स्वरूप विश्लेषण किया है। इन व्याख्याकारों को दो वर्गों में रखा जा सकता है (क) स्वयं छायावादी कवि (ख) अन्य समीक्षक।

छायावादी कवियों में - जयशंकर प्रसाद ने बाह्य वर्णन के बदले वेदना के आधार पर स्वानुभूतियों की व्यंजना करनेवाली रचनाओं को "छायावादी" कहा है।[१] सुमित्रानन्दन पन्त के अनुसार वैयक्तिक अनुभवों की प्रधानता छायावादी कविताओं की मूल विशेषता है तथा ऐहिक जीवन की आकांक्षायें, स्वप्न, निराशायें, संवेदनाएं आदि छायावाद के मुख्य विषय हैं।[२] महादेवी वर्मा ने छायावादी काव्य के दार्शनिक पक्ष पर विशेष बल दिया है और उसमें अध्यात्मवाद, रहस्यानुभूति, प्रकृति-प्रेम तथा स्वानुभूत सुख-दुख की व्यंजना आदि सभी कुछ समाविष्ट माना है।[३]

१- जयशंकर प्रसाद - काव्य कला तथा अन्य निबन्ध- "यथार्थवाद तथा छायावाद" शीर्षक लेख -

"कविता के क्षेत्र में पौराणिक युग की किसी घटना अथवा देश-विदेश की सुंदरी के बाह्य वर्णन से भिन्न जब वेदना के आधार पर स्वानुभूतिमयी अभिव्यक्ति होने लगी, तब हिन्दी में उसे छायावाद के नाम से अभिहित किया गया।"

२- सुमित्रानन्दन पन्त - आधुनिक कवि (पर्यालोचन) पृष्ठ १२

"ह्रास युग के वैयक्तिक अनुभवों, ऊर्ध्वमुखी विकास की प्रवृत्तियों, ऐहिक जीवन की आकांक्षाओं संबंधी स्वप्नों, निराशाओं और संवेदनाओं को अभिव्यक्त करनेवाला काव्य था, जिसमें सापेक्षता की पराजय निरपेक्षता की जय के रूप में गौरवान्वित होने लगी थी।"

३- महादेवी वर्मा - विवेचनात्मक गद्य, पृष्ठ ६०-६१

"बुद्धि के सूक्ष्म धरातल पर कवि ने जीवन की अखण्डता का भावन किया। हृदय की भाव-भूमि पर उसने प्रकृति में बिखरी सौन्दर्य सत्ता की रहस्यमयी अनुभूति की और दोनों के साथ स्वानुभूत सुख-दु:खों को मिलाकर एक ऐसी काव्य सृष्टि उपस्थित कर दी जो प्रकृतिवाद, हृदयवाद, अध्यात्मवाद, रहस्यवाद, छायावाद आदि अनेक नामों का भार सम्हाल सकी।"

डा० रामकुमार वर्मा छायावाद को अंग्रेजी के मिस्टिसिज़्म का पर्याय है जिसकी छाया में शान्त का मिलाप अनंत से होता है ।[१] इसको और स्पष्ट करते हुए वे अन्यत्र लिखते हैं - " अनंत पुरुष का आभास शान्त प्रकृति में होने लगता है । अपरिमित ईश्वर परिमित संसार में अपनी छाया फैंकता हुआ नज़र आता है । पुरुष या ईश्वर की यही छाया जब कवि संसार के अंगों में वर्णन करता है तो उस वर्णन को छायावाद का नाम दिया जाता है ।[२]

आलोचकों में - सर्वप्रथम छायावाद के प्रामाणिक समीक्षक आचार्य रामचंद्र शुक्ल के छायावाद संबंधी विचार उल्लेखनीय है । शुक्ल जी ने छायावाद को मुख्यत: दो रूपों में ग्रहण किया है - रहस्यवाद के रूप में तथा अभिव्यंजना की एक विशिष्ट प्रणाली के रूप में । उनका अभिमत है कि छायावाद का आध्यात्मिक पक्ष बंगला काव्य के अनुकरण पर विकसित हुआ था । बंगला काव्य पर इस क्षेत्र में पश्चिम का गहरा प्रभाव पड़ा था ।[३] शुक्ल जी का यह भी विचार है कि हिन्दी-कविता पूर्ववर्ती युग में ही नए नए विषयों की ओर प्रवृत्त हो चुकी थी, केवल उसके अनुरूप आकर्षक व्यंजना शैली का विकास शेष था जिसकी पूर्ति छायावादी कवियों के द्वारा हुई ।[४]

१- डा० रामकुमार वर्मा - साहित्य समालोचना , कविता , पृष्ठ २३ ।

२- वही, पृष्ठ २० ।

३- रामचन्द्र शुक्ल - हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ ५६६

" श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर की उन कविताओं की धूम हुई जो अधिकतर पाश्चात्य ढांचे का आध्यात्मिक रहस्यवाद लेकर चली थी । पुराने ईसाई संतों के छायाभास (Phantasmata) तथा योरोपीय काव्य क्षेत्र में प्रवर्तित आध्यात्मिक प्रतीकवाद (Symbolism) के अनुकरण पर रची जाने के कारण बंगाल में ऐसी कवितायें छायावाद कही जाने लगी थी । यह वाद क्या प्रकट हुआ एक बने बनाए रास्ते का दरवाज़ा सा खुल गया और हिन्दी के कुछ नए कवि एकबारगी उधर झुक पड़े । यह अपना बनाया हुआ मार्ग नहीं था ।"

४- रामचन्द्र शुक्ल - हिन्दी साहित्य का इतिहास,पृ० ५६६

" कसर थी तो आवश्यक व्यंजक शैली की,कल्पना और संवेदना के अधिक योग की । तात्पर्य यह कि छायावाद जिस आकांक्षा का परिणाम था,उसका लक्ष्य केवल अभिव्यंजना की रोचक प्रणाली का विकास था ।"

डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी ने मानवतावादी दृष्टि, वैयक्तिक चिंतन, नूतन आदर्शों की प्रतिष्ठा, रूढ़ियों के प्रति अनास्था आदि विशेषताओं से युक्त रचनाओं को छायावादी कहा है ।[१]

डा० नगेन्द्र स्थूल के प्रति सूक्ष्म के विद्रोह को छायावाद की मूल प्रेरणा मानते हैं, जिसके अंतर्गत "उपयोगितावाद के प्रति भावुकता का विद्रोह, नैतिक रूढ़ियों के प्रति मानसिक स्वातंत्र्य का विद्रोह और काव्य के बंधनों के प्रति स्वच्छंद कल्पना और टैकनीक का विद्रोह" प्रकट हुआ ।[२] छायावाद का स्वरूप विश्लेषण करते हुए अन्यत्र उन्होंने अतृप्त वासनाओं एवं कुंठाओं को छायावाद का मूलाधार बताया है । अंतर्मुखी प्रवृत्ति, प्रतीक शैली और जीवन के प्रति भावात्मक दृष्टिकोण उनके अनुसार छायावाद की अन्य महत्वपूर्ण विशेषतायें हैं ।[३]

१- डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी - "हिन्दी साहित्य(उसका उद्भव और विकास)पृ०२६१
"छायावाद" नाम उन आधुनिक कविताओं के लिए बिना विचारे ही दे दिया गया था- (क) जिनमें मानवतावादी दृष्टि की प्रधानता थी (ख) जो वक्तव्य विषय को कवि की व्यक्तिगत चिन्ता और अनुभूति के रंग में रंगकर अभिव्यक्त करती थी (ग) जिनमें मानवीय आचारों, क्रियाओं चेष्टाओं और विश्वासों के बदलते हुए मूल्यों को अंगीकार करने की प्रवृत्ति थी (घ) जिनमें शब्द-अलंकार, रस, ताल, तुक आदि सभी विषयों में गतानुगतिकता से बचने का प्रयत्न था और (ङ०) जिनमें शास्त्रीय रूढ़ियों के प्रति कोई आस्था नहीं दिखाई गई थी ।"

२- डा० नगेन्द्र - सुमित्रानन्दन पन्त - छायावाद, पृष्ठ २ ।

३- डा० नगेन्द्र - हिन्दी कविता की मुख्य प्रवृत्तियां, पृष्ठ १५
"छायावाद एक विशेष प्रकार की भाव-पद्धति है, जीवन के प्रति एक विशेष भावात्मक दृष्टिकोण है + + + इस दृष्टिकोण का आधेय नवजीवन के स्वप्नों और कुंठाओं से बना है, प्रवृत्ति अंतर्मुखी तथा वायवी है और अभिव्यक्ति हुई है प्रायः प्रकृति के प्रतीकों द्वारा ।"

नन्ददुलारे वाजपेई ने रामचंद्र शुक्ल के विचारों से साम्य रखते हुए प्रकृति के व्यक्त सौन्दर्य में किसी अव्यक्त सत्ता के छायात्मक रूप के दर्शन को छायावाद की मूल चेतना माना है[1] किन्तु शुक्ल जी की भाँति छायावाद को अभिव्यंजना की एक रोचक प्रणाली मात्र न मानकर वे उसमें एक स्वतन्त्र जीवन दृष्टि का होना भी स्वीकार करते हैं।[2]

डा० देवराज की दृष्टि में छायावाद के मूल में अध्यात्मवाद नहीं, लौकिक प्रेम और सौन्दर्य की वासना ही मुख्यत: उदित हुई[3] धूमिलता या अस्पष्टता, बारीकी या गुंफन की सूक्ष्मता और आत्मनिष्ठता कल्पना-वैभव उनके अनुसार छायावादी काव्य की महत्त्वपूर्ण विशेषतायें हैं।[4]

इसी प्रकार अन्य बहुत से विद्वानों ने भी छायावाद को व्याख्यायित करने की चेष्टा की है, किन्तु उनमें कोई नवीन तथ्य प्राप्त न होने के कारण उन सब का उल्लेख यहाँ पर अनावश्यक है। प्रसादादि छायावादी कवियों तथा उपर्युक्त छायावाद के मुख्य समीक्षकों के विचारों द्वारा छायावाद के स्वरूप को समझने में पर्याप्त सहायता मिलती है किन्तु उनके द्वारा की गई परिभाषाओं में से एक भी ऐसी नहीं है, जो छायावाद की आन्तरिक और बाह्य समस्त विशेषताओं प्रवृत्तियों को अपने आपमें समाहित करती हुई उसे उसके समग्र रूप में प्रस्तुत कर सके। कहीं कुछ महत्त्वपूर्ण कोण छूट गए हैं, और कहीं अनेक भ्रान्तियाँ उदित होती हैं।

१- नन्ददुलारे वाजपेयी - जयशंकर प्रसाद, पृष्ठ १७

"मानव अथवा प्रकृति के सूक्ष्म किन्तु व्यक्त सौन्दर्य में आध्यात्मिक छाया का भान मेरे विचार से छायावाद की सर्वमान्य व्याख्या हो सकती है।"

२- नन्ददुलारे वाजपेयी - जयशंकर प्रसाद, पृष्ठ १२

"छायावाद को हम पंडित रामचंद्र शुक्ल के कथनानुसार केवल अभिव्यक्ति की एक लाक्षणिक प्रणाली विशेष नहीं मान सकेंगे। इसमें एक नूतन सांस्कृतिक मनोभावना का उद्गम है और एक स्वतन्त्र दर्शन की नियोजना भी। पूर्ववर्ती काव्य से इसका स्पष्टत: पृथक अस्तित्व और गहराई है।

३- डा० देवराज - छायावाद का पतन, पृष्ठ ६

"+ + + + + प्रेम और सौन्दर्य की वासना है, न कि आध्यात्मिकपूर्णता की भूख।"

४- डा० देवराज - छायावाद का पतन, पृष्ठ ११।

वस्तुत: छायावादी काव्य एक प्रयोगशील समन्वयात्मक चेतना से अनुप्राणित था, जिसमें परंपरित काव्य से भिन्न नई जीवन दृष्टि, नवीन काव्य विषय तथा नई अभिव्यंजना पद्धति ग्रहण की गई। उसे अभिव्यंजना की एक शैली मात्र कहना असंगत है क्योंकि उसका एक स्वतन्त्र जीवन दर्शन भी है, जिसमें भारतीय वेदान्त दर्शन की विभिन्न भावधाराओं के साथ आधुनिकयुगीन गांधी और टैगोर द्वारा प्रतिपादित मानवतावादी विचारधारा भी समाविष्ट हो गई है। उसमें स्थूल के प्रति सूक्ष्म की प्रतिक्रिया असंदिग्ध रूप से प्रकट हुई है, किन्तु अमूर्त उपकरणों और सूक्ष्म के सूक्ष्म भावों को मूर्त रूप देने की प्रवृत्ति भी लक्षित होती है। रहस्यात्मक चिंतन छायावाद की महत्वपूर्ण विशेषता है, इस रूप में उसमें "सान्त का अनंत से मिलाप" भी हुआ है, लेकिन उसके साथ ही प्रकृति के प्रति गहन अनुराग और मानवीय सुख-दुख प्रेम-विरह, आशा-निराशा आदि की व्यंजना उसमें कहीं अधिक मात्रा में हुई है। यह भी कहा जा सकता है कि छायावादी काव्य में लौकिकता के माध्यम से अलौकिकता की प्राप्ति का प्रयत्न किया गया है। परन्तु जहां कहीं उसमें लौकिकता का रंग अधिक प्रखर है, वहां भी "सौन्दर्य और प्रेम की वासना" का परिणाम समझकर उसे हेय दृष्टि से देखना उचित नहीं है, क्योंकि सौन्दर्य और प्रेम की भावनायें मनुष्य की सज्जात वृत्तियों से संबद्ध है और मानवीय जीवन की उन्नति और विकास में इनका महत्वपूर्ण स्थान है। इसी नाते काव्य से भी इनका घनिष्ठ संबंध है।

हिन्दी आलोचकों में संभवत: सर्वप्रथम डा० नगेन्द्र ने "छायावाद" का मूल्यांकन नव-विकसित पाश्चात्य मनोविज्ञान के आधार पर करने का प्रयत्न किया है परन्तु पाश्चात्य काव्य सिद्धांतों और काव्यादर्शों के प्रति वे कुछ अधिक आग्रहशील हो उठे हैं। छायावादी काव्य में व्यक्त होनेवाली मानवीय भावनाओं को दमित वासनाओं और कुंठाओं का उन्नयन समझना वैसा ही है, जैसे कोई सुन्दर फूल के सौन्दर्य से विमोहित होने के बदले उसमें खाद देखने का यत्न करे। व्यक्तिगत जीवन के स्वप्नों, आदर्शों, कुंठाओं, हास-रुदन आदि की व्यंजना करनेवाली छायावादी कवितायें पारलौकिकता से उतनी ही दूर है जितना स्वर्गलोक से मनुष्य। अतएव उन्हें उनके सहज, प्रकृत रूप में न देखकर उनकी आध्यात्मिक व्याख्या का प्रयत्न छल-धर्मिता ही कहलाएगी।

" छायावाद में ठोस सामाजिक घटनाओं की अभिधामूलक व्यंजना नहीं हुई , इस दृष्टि से वह अवश्य यथार्थवादी नहीं है किन्तु उसमें शाश्वत जीवन-सत्यों की सुन्दर व्याख्या मिलती है । इसलिए जीवन के प्रति भावात्मक दृष्टिकोण रखते हुए भी वह नहीं कहा जा सकता कि छायावादी काव्य असामाजिक अथवा युगबोध से शून्य था ।

शिल्प-क्षेत्र में छायावादी काव्य में प्रकृति के प्रतीकों का बाहुल्य मिलता है, लेकिन उसमें बिम्ब एवं अप्रस्तुत योजना के प्रति भी प्राय: उतना ही आग्रह व्यक्त हुआ है ।

निष्कर्षत: कह सकते हैं कि द्विवेदीयुगीन परंपरागत एवं रूढ़ काव्य-चेतना से भिन्न ,नवीन भावानुभूति और अभिनव अभिव्यंजना शिल्प से युक्त काव्य, जिसमें स्वच्छन्द कल्पना, नवीन सौन्दर्य बोध, प्रकृति प्रेम, रहस्य-चिन्तन, दार्शनिकता की पृष्ठभूमि पर मानव मात्र की समानता का आदर्श और मानव प्रेम, वैयक्तिक अनुभूतियों की प्रधानता ,प्रतीक और बिम्बमयी शैली, कलात्मक भाषा और नूतन छान्दस योजनायें आदि अनेक विशेषतायें एक साथ प्रकट हुईं," छायावाद" कहलाया ।

<u>प्रेरणास्रोत</u>

आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने " छायावाद" को बंगला के रवीन्द्रनाथ ठाकुर की रचनाओं का हिन्दी संस्करण माना है[1] ,डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार छायावादी काव्य का मूल प्रेरणा स्रोत अंग्रेज़ी की रोमांटिक भावधारा का काव्य था।[2] इन्हीं दो विद्वानों के विचारों का समर्थन परवर्ती अनेक समीक्षकों ने भी किया है जैसे डा० शंभूनाथ सिंह लिखते हैं - " + + + + + १९१३ में रवीन्द्रनाथ की गीतांजलि को विश्व सम्मान मिला । बंगला में इस नई कविता का नाम छायावाद पड़ा था,अत: हिन्दी में यही नाम ग्रहण किया गया, साथ ही वे सभी प्रवृत्तियां भी हिन्दी कविता में आ गईं जो बंगला के छायावाद की थीं ।[3] किन्तु समीक्षकों का एक अन्य वर्ग

१- रामचंद्र शुक्ल - हिंदी साहित्य का इतिहास, पृ० ५८२-८३ ।
२- हजारी प्रसाद द्विवेदी - अवंतिका- काव्यालोचनांक - जनवरी,१९५४,पृष्ठ २११ ।
३- शम्भूनाथ सिंह - छायावाद युग, पृष्ठ ५१ ।

उपर्युक्त विचारों का विरोधी है । उनके अनुसार - छायावाद न बंगला से आया न ईसाई संतों के छायाभास से । छायावाद तो हमारे संत कवियों द्वारा हिन्दी भाषा-भाषियों के जीवन में सदियों से कम से कम एक हजार वर्षों से होता रहा है । यह हमारा उधार लिया हुआ धन नहीं है ।[1] + + + + " बंगाल में कभी किसी भी युग में किसी भी कोटि की कविताओं के लिये छायावाद शब्द का प्रयोग नहीं हुआ, बंगाल के किसी भी कवि या साहित्यकार या आलोचक ने कभी कहीं भी छायावाद शब्द का उल्लेख नहीं किया । " छायावाद " शब्द विशुद्ध रूप में हिन्दी का ही है ।"[2]

सचमुच अधिकारपूर्वक यह कह सकना कठिन है कि " छायावाद शब्द का जन्म कब और कहां हुआ तथा उसका प्रथम प्रयोगकर्ता कौन था । अनुमानत: छायावाद के विरोधियों द्वारा यह नाम उस नव विकसित काव्यधारा की हंसी उड़ाने के उद्देश्य से दिया गया था जिसमें मूल भावना को पकड़ पाना पाठक वर्ग के लिये कठिन होता था, मुख्य विषय के बदले मात्र उसकी छाया ही उसके हाथ लगती थी । कालान्तर में किसी अन्य उपयुक्त नाम के अभाव में यही नाम सर्वप्रचलित हो गया और सन् १९२० के आसपास साहित्यिक स्तर पर भी इसी नाम को स्वीकार करते हुए पंडित मुकुटधर पाण्डेय ने छायावाद के स्वरूप विश्लेषण से संबंधित प्रथम आलोचनात्मक लेख लिखा ।

छायावाद की परंपरा को सैकड़ों वर्ष पीछे सुदूर अतीत में खींच ले जाना मात्र भावुकता या हठवादिता ही है । उस पर पड़नेवाले विदेशी प्रभाव को झुठलाया नहीं जा सकता, जबकि छायावाद के प्रतिष्ठित कवि पंत ने स्वयं इस बात की स्वीकृति दी है कि वे अंगरेजी के रोमांटिक कवियों- शेली, वर्ड्सवर्थ, टेनीसन आदि तथा बंगला के रवीन्द्रनाथ के कला-सिद्धान्तों से प्रभावित रहे हैं ।[3] किन्तु छायावादी काव्यान्दोलन को जितनी अधिक व्यापकता और लोकप्रियता प्राप्त हुई, उसके आधार पर उसे किसी विशिष्ट व्यक्ति अथवा काव्य प्रणाली का अनुकरण मात्र समझना भी भ्रान्तिमूलक है । इतना व्यापक आन्दोलन बिना किसी ठोस

१- रामनरेश त्रिपाठी - अवन्तिका-काव्यालोचनांक, जनवरी, १९५३, पृ० १८८ ।
२- इलाचन्द्र जोशी - अवंतिका- काव्यालोचनांक , जनवरी, १९५३, पृ० १९१ ।
३- सुमित्रानन्दन पन्त - आधुनिक कवि(२)- पर्यालोचन , पृष्ठ १३ ।

आधार के नहीं पनप सकता था । अतएव छायावाद को किसी भी अन्य साहित्यिक धारा के विकास की ही भाँति हिन्दी कविता के स्वाभाविक विकास क्रम की एक कड़ी मानना ही युक्ति-युक्त है । समाज और साहित्य की प्रचलित मान्यताओं के प्रति स्वभाव से विद्रोही इस काव्यधारा के कवियों के लिए लीक से बंधकर चलना कठिन था । उनकी प्रवृत्ति अनुकरण की नहीं किन्तु स्वीकरण की अवश्य थी । काव्य के अन्तर्गत पूर्व युगों से पैतृक संपत्ति रूप में प्राप्त अनेक विशेषताओं के स्वीकरण के साथ-साथ रवीन्द्रनाथ की गीतांजलि की रहस्यपूर्ण मुद्राएं तथा अंग्रेजी के रोमांटिक काव्य का कमनीय भावोच्छ्वास भी उन्होंने देखा था और अपनी प्रयोगशील मनोवृत्ति, समन्वयात्मक बुद्धि, मौलिक चिन्तन एवं प्रखर प्रतिभा के आधार पर उन सब को संगुंफित कर उन्होंने अपने काव्य में प्रस्तुत किया । इस प्रकार इन कवियों द्वारा एक ओर तो हिन्दी कविता का परिष्कार हुआ, दूसरी ओर उसमें बहुत कुछ नया भी जुड़ा ।

छायावाद को उसके समग्र रूप में समझने के लिये उसकी मूल प्रवृत्तियों का अध्ययन अनिवार्य है ।

छायावादी कविता की मुख्य प्रवृत्तियाँ

काव्य के मुख्यत: दो पक्ष होते हैं - 'वस्तु' और 'शिल्प' । इन्हीं दोनों के आधार पर छायावादी काव्यप्रवृत्तियों को विभाजित करके उनका विवेचन-विश्लेषण सुविधाजनक होगा ।

वस्तुगत प्रवृत्तियाँ

(१) स्वच्छंदतावाद - छायावाद का विकास परिपाटीबद्ध (क्लासिकल) कविता के विरुद्ध प्रतिक्रिया स्वरूप हुआ था । परिपाटी से विरोध प्रकट करने का साहस स्वच्छंदता प्रिय व्यक्ति ही कर सकता है । छायावादी कहलाने वाली नई कवि पीढ़ी की मूल प्रवृत्ति स्वच्छंदतावादी थी, इसी के फलस्वरूप कविता के क्षेत्र में उन्होंने परंपरित काव्य से भिन्न अनेक मौलिक उद्भावनायें की । रूढ़ियों

के प्रति उनका विद्रोह अनेक मुखी होकर प्रकट हुआ और कविता के भाव, विषय, भाषा, छंद, अलंकार आदि सभी काव्यांगों के अन्तर्गत क्रान्ति का वाहक बना ।

(२) वैयक्तिक चेतना - वैयक्तिक चेतना की आधार भूमि से ही स्वच्छंदतावादी प्रवृत्ति अंकुरित और पल्लवित होती है अथवा वैयक्तिक चेतना को स्वच्छंदता की मूलभूत चेतना कहा जा सकता है । तत्कालीन युग का सामाजिक राजनैतिक परिवेश पूंजीवाद के प्रौढ में व्यक्तिवादी चेतना के विकास का वातावरण प्रस्तुत कर चुका था । यह "व्यक्तिवाद" तद्युगीन साहित्य में भी प्रतिफलित हुआ, जिसके परिणाम स्वरूप स्वानुभूति मयी व्यंजना छायावादी कविताओं की मुख्य विशेषता बनी । युगों से दूसरों की ही बात कहते चले आनेवाले कवियों की परिपाटी त्याग कर, छायावादी कवियों ने काव्य के अन्तर्गत अपने व्यक्तित्व की प्रतिष्ठा की और उनकी रचनाओं में आत्मतत्त्व अपने संपूर्ण वेग से मुखरित होने लगा । अपने निजी आवेगों- संवेगों को वाणी देना ही इन कवियों का लक्ष्य बन गया । अपने से परे जीवन और जगत के अन्यान्य विषयों के संबंध में यदि कहीं कुछ उन्होंने कहना भी चाहा है तो उसे भी अपनी भावनाओं के रंग में रंगकर ही प्रस्तुत किया है ।

(३) अंतर्मुखी प्रवृत्ति - बहिर्जगत के समस्याग्रस्त जीवन ने छाया-वादी कवियों की प्रवृत्ति को अंतर्मुखी बना दिया । बाह्य जगत की जटिलताओं से ऊबे हुए उनके हृदय ने प्रकृति की गोद में शरण लेने का यत्न किया है और जीवन की समस्त कटुताओं को उसके मनोहारी दृश्यों की सौन्दर्य-सरिता में डुबोकर यथार्थ से पलायन करने की चेष्टा की है । किन्तु यथार्थ से दूर भागकर प्रकृति के सौन्दर्य में ही डूबे रहने की यह प्रवृत्ति प्रारंभिक छायावादी कविताओं में ही अधिक है, बाद की रचनाओं में मानवीय जीवन और समाज की समस्याओं पर भी प्रकाश डाला गया है, सामाजिक रूढ़ियों को तोड़ने तथा सामाजिक जड़ताओं से ऊपर उठने की प्रेरणायें भी दी गई हैं । किन्तु अंतर्मुखी प्रवृत्ति के फलस्वरूप छायावादी कवि बाह्य सामाजिक घटनाओं के प्रति खुलकर अपना विद्रोह भाव नहीं व्यक्त कर सके हैं । अंतर्जगत में परिवर्तन के द्वारा ही उन्होंने सामाजिक ढांचे में परिवर्तन की आशा की है ।

(४) वेदनाधिक्य - छायावादी काव्य में वेदना या करुणा का बहुत अधिक गान हुआ है । जीवन के दुःखमय पक्ष के प्रति छायावादी कवियों ने विशेष आसक्ति प्रकट की है किन्तु छायावादी कविताओं में दुःख का जो स्वरूप व्यक्त हुआ है, वह सामान्य सांसारिक दुःखों से भिन्न तथा दार्शनिक चिन्तन की पृष्ठभूमि पर आधारित है । प्रसाद, पंत, निराला, महादेवी आदि सभी प्रमुख छायावादी कवियों ने दुःख को जीवन-दर्शन के रूप में ग्रहण किया है तथा जीवन में उसकी अनिवार्य स्थिति स्वीकारते हुए दार्शनिक स्तर पर उसकी व्याख्या की है । इसीलिए छायावादी कविताओं में कहीं भी दुःख का अन्तिम रूप निराशामय न होकर आस्था और स्फूर्ति देनेवाला है । वह अपनी ज्वाला से विदग्ध नहीं करता वरन् अपनी आँच से शीतल, मंद आलोक बिखेरता हुआ संपूर्ण विश्व के लिये मंगलकारी होता है ।

(५) जिज्ञासा-भावना, रहस्य चिन्तन - प्रकृति के व्यक्त सौंदर्य में छिपी अदृश्य चेतन सत्ता का आभास पाकर उसके क्रियाकलापों के प्रति जिज्ञासा की भावना उस परम सत्ता के प्रति प्रणय निवेदन और तीव्र मिलनाकांक्षा तथा विरह की अनुभूति आदि छायावादी काव्य के महत्वपूर्ण लक्षण है । इन्हीं के आधार पर प्रायः छायावाद को "रहस्यवाद" (कबीर आदि संतों का आध्यात्मिक रहस्यवा का पर्याय मान लिया जाता है । किन्तु यह एक भ्रान्त धारणा है ।छायावादी रहस्यवाद साधनात्मक न होकर भावात्मक है तथा उसमें व्यक्त होनेवाली रहस्यमयता जिज्ञासा एवं विस्मय की भावनायें अधिकांशतः अंग्रेज़ी रोमांटिक काव्य के प्रभाववश है । इसके अतिरिक्त रहस्य, जिज्ञासा और कौतूहल मिश्रित भावों को व्यक्त करने वाली कवितायें छायावादी काव्य का महत्वपूर्ण अंश अवश्य है, उसका संपूर्ण स्वरूप नहीं । इसी कारण छायावाद और रहस्यवाद को एक ही मान लेना युक्ति-युक्त नहीं है ।

(६) सौन्दर्यानुराग - छायावादी कवियों ने सौन्दर्य के प्रति अपनी गहरी रुझान दिखाई है । जीवन और जगत में जो कुछ भी सुन्दर है वह सब उनके लिये स्तुत्य और वंदनीय है । इसी कारण सौन्दर्य की खोज, सौन्दर्य की

प्यार और सौन्दर्य का गान, छायावादी काव्य का मूल कथ्य बन गया है। दूसरे शब्दों में यह भी कहा जा सकता है कि छायावादी काव्य की मूल चेतना सौन्दर्यवादी है। इस क्षेत्र में छायावादी कवि सौन्दर्य को शाश्वत आनन्द का स्रोत माननेवाले अंगरेज़ी की रोमांटिक धारा के कवि कीट्स के बहुत निकट हैं। अंगरेज़ी कवियों के समान ही इन कवियों की सौन्दर्य चेतना भी व्यक्ति निष्ठ है, अर्थात् सौन्दर्य की स्थिति ' वस्तु ' में नहीं, वरन् द्रष्टा के मन में होती है। इस नवीन सौन्दर्य बोध ने ही छायावादी कवियों को संसार की सामान्य और तुच्छ वस्तुओं के प्रति भी प्रायः आकर्षित किया है। सुमित्रानन्दन पन्त को ' असुंदर ' भी सुंदर ' प्रतीत हुए हैं और धूलि की ढेरी में ' मधुमय गान ' छिपे होने का आभास हुआ है।

(७) अतिशय कल्पना प्रवणता - छायावादी काव्य में कल्पना की अतिशयता पाई जाती है। भावना और संवेदना के संमूर्तन अथवा प्रत्यक्षीकरण के लिये प्रत्येक कवि न्यूनाधिक मात्रा में कल्पना का आश्रय लेता है। काव्य में ' कल्पना ' का प्रयोग किस सीमा तक होना चाहिये - यह एक विवादास्पद प्रश्न है और यह बहुत कुछ कवि के निजी दृष्टिकोण पर निर्भर है। किन्तु कल्पना का लक्ष्य कवि द्वारा वर्णित ' भाव ' या ' वस्तु ' को मूर्त रुप देना तथा उसे प्रभावशाली और सविध बनाकर प्रस्तुत करना होता है। यह प्रभाव- क्षमता उसमें तभी उत्पन्न होती है जब कवि की कल्पना उसकी भावना तथा बुद्धि से समान रुप से नियंत्रित होती रहे। कल्पना का अतिरेक असामाजिकता को जन्म देता है। अतिशय कल्पनाप्रवण व्यक्ति प्रायः समाज और जीवन के यथार्थ से दूर भागने का प्रयत्न करता है। ऐसा ही कुछ प्रारंभ में छायावादी कवियों के साथ भी हुआ है। उनकी कल्पना प्रवणता उन्हें समाज की वास्तविकताओं से बहुधा बहुत दूर खींच ले गई है और प्रकृति की सुरम्य स्थली में बैठकर अपनी उर्वर कल्पनाशक्ति के द्वारा उन्होंने आकाश-पाताल की कुलाचें भरी हैं।

छायावादी कवियों में पंत सब से अधिक कल्पनाशील हैं। उन्होंने स्वयं इसे स्वीकारते हुए एक स्थल पर लिखा है - ' प्रकृति के साहचर्य ने जहाँ

एक ओर मुझे सौन्दर्य स्वप्न और कल्पना जीवी बनाया, वहाँ दूसरी ओर जन भीरु भी बना दिया यही कारण है कि जन समूह से अब भी मैं दूर भागता हूँ और मेरे आलोचकों का यह कहना कुछ अंशों तक ठीक ही है कि मेरी कल्पना लोगों के सामने आने से लजाती है ।[1]

कल्पनाधिक्य के कारण भी छायावादी कविता अपने पूर्ववर्ती युगों से बहुत भिन्न दिखाई दी । कल्पनाशक्ति की सहायता से एक ओर तो छायावादी कवियों ने ऐसी सुन्दर और सशक्त रचनायें की है जो अपनी सरसता, प्रभाव क्षमता, अप्रस्तुतों की नवीनता आदि की दृष्टि से संपूर्ण हिन्दी साहित्य में अनुपम हैं ; तथा दूसरी ओर उन्होंने ऐसी असंतुलित काव्य सृष्टि भी प्राय: की है जिनमें 'भावना' और 'कल्पना' एक दूसरे में इस प्रकार एकाकार हो गई है कि उन्हें अलग अलग खोज पाना कठिन हो गया है । ऐसे ही स्थलों पर, जहाँ 'भावना' कल्पना के वाग्जाल में अत्यधिक उलझ गई है और पाठक वर्ग के मानस- चक्षुओं के सामने उसका स्पष्ट और मूर्त रुप प्रकट नहीं हो पाता, छायावादी काव्य में अस्पष्टता-दोष आ गया है । संभवत: ऐसे ही काव्यांशों को देखकर, जिनमें मूल भावना के बदले उसकी छाया मात्र ही पकड़ में आती है, किसी ने अनजाने ही इस काव्यधारा का 'छायावाद' नामकरण किया होगा ।

छायावाद के प्रारंभिक कवियों की अपेक्षा उत्तरार्द्ध के कवियों में कल्पना प्रवणता बहुत कम हो गई है ।

(८) आदर्शवादिता - छायावादी कवि आदर्श प्रेमी थे । आदर्श का यथार्थ से सदैव विरोध चलता है । छायावादी कवियों ने भी यथार्थ जगत को अपने मन के अनुरुप न पाकर स्वनिर्मित आदर्शों पर आधारित 'स्वप्नलोक' के निर्माण की चर्चा अनेक स्थलों पर की है । इस प्रकार के स्वप्नलोक अथवा आदर्शलोक की रचना में उनकी उदार कल्पना सहायिका रही है । आदर्शवादिता ही इन कवियों को प्रकृति के अधिकाधिक निकट पहुंचने और उसके साथ अपना रागात्मक संबंध स्थापित करने के

१- सुमित्रानन्दन पन्त - आधुनिक कवि - पर्यालोचन , पृष्ठ २ ।

लिये भी प्रेरित करती रही है। क्योंकि यांत्रिकता और भौतिकता के अतिरेक का जीवन में बढ़ती हुई विषमताओं को देखकर उन्होंने इस सिद्धान्त को अपनाया कि शान्ति और सुख की प्राप्ति के लिए मनुष्य को प्राकृतिक जीवन और आध्यात्मिकता की ओर लौटना अनिवार्य है। प्रकृति उन्हें सब भाँति पवित्र, निष्कलुष और प्रेममयी दिखाई दी अतएव उसको उन्होंने अपनी सहचरी, शिक्षिका, उपदेशिका आदि रूपों में ग्रहण किया, तथा आध्यात्मिकता की ओर उनका झुकाव उन्हें चिन्तन की उस भावभूमि की ओर ले गया जो दार्शनिक क्षेत्र में सर्वात्मवाद के नाम से विख्यात है तथा जिसके अंतर्गत जड़ चेतन सभी में एक ही चेतना की व्याप्ति की बात कही गई है। आध्यात्मिक जगत के इस तत्व को आदर्श रूप में ग्रहण करके ही छायावादी कवियों ने राष्ट्रीयता की सीमाओं से ऊँचे उठकर मानव मात्र से प्रेम करना सीखा तथा मानवोत्थान और मानव कल्याण की भावनाओं को अपनी रचनाओं में मुखरित किया। छायावाद में प्राप्य मानवतावाद अथवा विश्व-मानवतावाद उसके आध्यात्मिक आदर्शवाद का ही प्रकट रूप है। वर्तमान जीवन से असंतोषवश उन्होंने एक नए लोक की रचना का स्वप्न देखा जहाँ मानवमात्र समानता और प्रेम का आदर्श लेकर सुखपूर्वक जी सकें। इसके लिये मानसिक जगत में परिवर्तन की आवश्यकता प्रतीत हुई। इसीलिये दार्शनिक भूमि पर मानवीय समानता, स्वार्थरहित मानव संबंधों, सुख-दुख में समन्वय आदि बातों पर छायावादी कवियों ने बल दिया। अंतर्जगत में इस प्रकार का परिवर्तन स्वमेव बाह्य सामाजिक ढाँचे को भी बदल देगा, ऐसी ही उनकी धारणा तथा कामना भी थी।[1] इस प्रकार जीवन में जो कुछ अप्राप्य था उसकी पूर्ति इन कवियों ने काव्य में आदर्शों की प्रतिष्ठा द्वारा की। प्रत्यक्ष लोकतांत्रिक विचारों से मेल न खाने तथा अयथार्थवादी होने पर भी इस प्रकार के विचार प्रतिक्रियावादी न होकर तत्कालीन परिवेश के प्रति कवियों के गहन विद्रोही-भाव को ही अभिव्यक्त करते हैं।

(६) राष्ट्रीयता और संस्कृति प्रेम - तत्कालीन राजनैतिक जीवन में घटनाक्रम की तीव्रता के अनुपात से छायावादी काव्य में राष्ट्रीयता

१- सुमित्रानन्दन पन्त - आधुनिक कवि (२), पृष्ठ ३३

"स्वप्न वस्तु बन जाए सत्य नव, स्वर्ग मानसी ही भौतिक भव।,,
अंतर जग ही बहिर्जगत बन जाए, वीणा पाणि ——— ।।

की प्रवृत्ति कम है क्योंकि मूलतः वह व्यक्तिवादी चेतना पर आधारित काव्य है । तथापि व्यक्ति भी समाज का एक अंग है और सामाजिक गतिविधियों से उसका सर्वथा अप्रभावित रह सकना असंभव है । इसी के फलस्वरूप छायावादी कवियों ने भी अनेक राष्ट्रीयतावादी गीतों की रचना की है तथा जीवन के सांस्कृतिक पक्ष से संबंधित विभिन्न विचारों एवं समस्याओं को वाणी दी है । अधिकांशतः इन कवियों ने स्वदेश प्रेम की अभिव्यक्ति के लिए अतीत के गौरवमय पृष्ठों को पलटा है और विगत भारतीय संस्कृति के उज्ज्वल और भव्य चित्र प्रस्तुत किये हैं । प्रसाद और निराला के नाम इस क्षेत्र में अग्रगण्य हैं । सांस्कृतिक चेतना से युक्त राष्ट्रीय गीतों एवं प्रगीतों की संख्या छायावाद में कम अवश्य है, लेकिन ओज, तेज, गाम्भीर्य और उत्साह की सफल व्यंजना के कारण वे अपनी मार्मिकता और प्रभावोत्पादकता में पिछले युगों से कहीं आगे हैं ।

<u>शिल्पगत प्रवृत्तियां</u> - नवीन अभिव्यंजना पद्धति

छायावादी काव्य का कथ्य पिछले युगों से भिन्न था । नवीन कथ्य की अभिव्यक्ति पुराने रूप-शिल्प के माध्यम से संभव नहीं थी, अतएव इन कवियों को काव्य के अभिव्यक्ति पक्ष से संबंधित नए नए प्रयोग करने पड़े । यह प्रयोग भाषा, छंद, अलंकार आदि सभी क्षेत्रों में हुए । पुरानी अभिधामूलक भाषा को त्यागकर इन लोगों ने लक्षणा और व्यंजना शब्द शक्तियों का अत्यधिक प्रयोग किया । लक्षणा-प्रेम के कारण कर्म के स्थान पर "करण" का बहुत अधिक प्रयोग हुआ जिससे शैलीगत नवीन भंगिमायें प्रकट हुई तथा व्यंजना की कान्ति से मंडित होकर भाषा अधिक गरिमामयी और अर्थवती बनी ।

छंदों के क्षेत्र में अनेक प्रकार के परिवर्तन हुए,पुराने छंदों में मात्रा-गण संबंधी हेर फेर हुए, दो या तीन छंदों को मिलाकर नए छंदों का निर्माण हुआ तथा मुक्त-छंद की परंपरा का सूत्रपात हुआ ।

अलंकारों के प्रति छायावाद में विशेष मोह प्रकट हुआ । छायावाद का प्रत्येक कवि एक कुशल शिल्पी है, अपनी कलात्मक अभिरुचि के कारण

भाषा की बनावट पर इन लोगों ने विशेष ध्यान दिया । अलंकरण वृत्ति के फलस्वरूप अप्रस्तुत विधान के क्षेत्र में छायावादी कवियों ने अनुपमेय कौशल का परिचय दिया है । छायावादी अप्रस्तुत नव्य और मौलिक होने के साथ साथ कल्पना वैभव से पूर्ण तथा भावों के प्रत्यक्षीकरण में समर्थ है ।

छायावादी कवियों ने द्विवेदी युगीन कवियों की भांति "वस्तु" के स्थूल बाह्य वर्णन तक सीमित न रहकर हृदय पर पड़नेवाले उसके सूक्ष्म प्रभावों को वाणी देने में अधिक रुचि दिखाई , इसी कारण छायावाद को "स्थूल के प्रति सूक्ष्म का विद्रोह" कहा गया । यह विद्रोह कई रूपों में उदित हुआ । अतीन्द्रिय अमांसल रूप का चित्रण-हृदय की सूक्ष्मातिसूक्ष्म भावनाओं का मूर्तीकरण, मानवीकरण शैली संकेत और प्रतीक-पद्धति आदि इसी प्रवृत्ति के परिणाम हैं, जिनको छायावादी अभिव्यंजना शिल्प की महत्वपूर्ण विशेषतायें कहा जा सकता है । मांसलता के प्रति वैराग्य और वायवीयता के प्रति झुकाव के कारण ही छायावाद का रूप कहीं कहीं अवास्तविक और अयथार्थवादी प्रतीत होता है । संकेतों और प्रतीकों की बहुलता के साथ साथ उनके नए पन ने उसमें प्रायः क्लिष्टता- दोष भी उत्पन्न किया है । किन्तु छायावादी काव्य का शिल्प मूलतः बिम्बमूलक है । संकेत, प्रतीक अप्रस्तुत आदि साधन मात्र हैं और उन्होंने बिम्बों को अपनी पूर्णता तक पहुंचने में सहायता की है । छायावादी कवियों ने जो कुछ भी कहना चाहा है, वह सीधे शब्दों तथा वर्णनात्मक शैली में न कहकर, अप्रस्तुतों ,प्रतीकों आदि की सहायता से उसका सजीव चित्र प्रस्तुत करके कहा है, जिसके फलस्वरूप उनका कथ्य अधिक सजीव और प्रभावशाली बन गया है । छायावादी कवियों ने सूक्ष्म और विराट दोनों प्रकार के बिम्बों का कुशल विधान किया है । यह बिम्ब अपनी कलात्मकता में बेजोड़ है तथा उन्होंने छायावादी शैली को अभूतपूर्व सौष्ठव और चित्रमयता प्रदान की है । चित्रांकन की इस प्रवृत्ति ने ही पूर्ववर्ती युगों के अभिव्यंजना शिल्प और छायावादी अभिव्यंजना शिल्प के मध्य स्पष्ट विभाजन रेखा खींच दी है ।

गीतात्मकता के प्रति अत्यधिक रुझान भी छायावादी कवियों की महत्वपूर्ण एवं सामान्य विशेषता कही जा सकती है, जिसके फलस्वरूप प्रबंध रचनायें इस युग में कम हुईं तथा गीति शैली विशेष समादृत हुई । अपने अंतरंग भावों

और वैयक्तिक सुख-दुःखों को छोटे-छोटे गीतों प्रगीतों में बड़ी तन्मयता और कलात्मकता से इन कवियों ने सजाया है । छायावादी गीत अपनी भावमयता और कलात्मक सौष्ठव दोनों ही दृष्टियों से अनुपमेय हैं, तथा असंदिग्ध रूप से उन्होंने हिन्दी-गीतिकाव्य-परंपरा का चरम विकास प्रस्तुत किया है । 'महाकाव्य' और 'खण्डकाव्य' जैसे बृहद् काव्य रूपों के बदले 'गीत' और 'प्रगीत' सदृश लघु आकार वाले काव्य-रूपों को अपना कर भी छायावादी कवि अपनी कोमल से कोमल और गंभीर से गंभीर भावनाओं की प्रभावशाली व्यंजना कर सके हैं ।

'गीत' और 'प्रगीत' में संगीत तत्त्व का विशेष महत्त्व होता है, इसीलिए छायावादी कविताओं में नादात्मक सौन्दर्य की विशेष छटा दिखाई देती है । नादात्मक सौन्दर्य की सृष्टि 'ध्वन्यर्थ व्यंजना' अलंकार के अत्यधिक प्रयोग और वर्ण योजना संबंधी विभिन्न प्रयोगों के माध्यम से हुई है ।

<u>प्रमुख कवि -</u>

छायावादी काव्य विकास को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है - सन् १९२५ के पूर्व का काल - छायावाद का 'प्रयोग युग' तथा सन् १९२५ के बाद सन् १९३८-३९ तक छायावाद का उत्कर्ष युग' अथवा 'वास्तविक छायावाद युग' जिसमें उपर्युक्त काव्य प्रवृत्तियों से युक्त रचनाओं को साहित्य क्षेत्र में विशेष लोकप्रियता तथा सम्मान प्राप्त हुआ ।

छायावाद के प्रथम उत्थान में प्रधान रूप से तीन कवि सामने आए - जयशंकर प्रसाद, सुमित्रानन्दन पन्त तथा सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला । इन तीनों से मिलकर छायावाद की 'बृहत्त्रयी' स्थापित हुई जिसने छायावादी काव्यान्दोलन को आरंभ करके उसे विकास के चरम शिखर तक पहुंचाया ।

<u>जयशंकर प्रसाद -</u>

'प्रसाद' छायावाद के प्रवर्तक होने के साथ साथ हिन्दी के अनुपम कवियों की श्रेणी में अपना स्थान रखते हैं । उनकी विलक्षण प्रतिभा का श्रेष्ठतम निदर्शन 'कामायनी' है जो मानव-विकास का भावमय इतिहास प्रस्तुत करती है । मात्र कामायनी के आधार पर ही प्रसाद को विश्व के महा कवियों

के समकक्ष रखा जा सकता है । प्रेम के उदात्त स्वरूप का चित्रण, कल्पना सौष्ठव, नारीत्व की गरिमा की प्रतिष्ठा, भाषा का लालित्य, सरस सुकुमार पद योजना और उन सब के साथ व्यापक मानवतावादी दृष्टि प्रसाद की मुख्य काव्यगत विशेषतायें कही जा सकती हैं । परन्तु प्रसाद काव्य की सर्वाधिक महत्वपूर्ण विशेषता है उसकी नई जीवनी शक्ति, जो नई होते हुए भी परंपरा से प्रेरित, प्रभावित है तथा परंपराश्रित होती हुई भी स्फूर्ति और उत्साहवर्धक है । उसके द्वारा कवि के गहन अध्ययन और सूक्ष्म विचार शक्ति का परिचय मिलता है । प्रसाद का प्राय: संपूर्ण काव्य साहित्य अतीत की उदात्त सांस्कृतिक, दार्शनिक, ऐतिहासिक अथवा पौराणिक पृष्ठभूमि पर आधारित है ।

प्रसाद की प्रारंभिक रचनाओं का प्रथम संग्रह चित्राधार है । इसमें मुख्यत: कवि की प्रकृतिपरक रचनायें हैं जैसे 'शारदीय शोभा,' 'शरदपूर्णिमा', 'चंद्रोदय', 'इंद्रधनुष', 'वर्षा में नदी', 'फूल', 'नीरद', 'उद्यान-लता', 'प्रभात-कुसुम', 'संध्यातारा' आदि । इन कविताओं में रहस्योन्मुख जिज्ञासावृत्ति की झलक मिलती है, जो आगे चलकर छायावादी काव्य की मुख्य विशेषता कहलाई अलंकार और छंद इनमें परंपरागत ही है । अलंकारों में उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा तथा छंदों में कवित्त, सवैया तथा पद शैली का अधिक प्रयोग हुआ है ।

कानन कुसुम - प्रसाद का दूसरा काव्य संग्रह है जिसका पहला संस्करण सन् १९१३ में, दूसरा सन् १९१८ में तथा तीसरा सन् १९२९ में प्रकाशित हुआ । तीसरे संस्करण में सन् १९०९ से सन् १९१७ तक की खड़ीबोली की कवितायें संग्रहीत कर दी गई । सन् १९१३ के संस्करण में खड़ीबोली और ब्रजभाषा दोनों की ही रचनायें मिलती हैं जिन पर रीतिकाल, भारतेन्दु युग और द्विवेदी युग का स्पष्ट प्रभाव लक्षित होता है । खड़ीबोली में प्रसाद की प्रथम रचना 'चित्र' भी इसी संग्रह में है जो 'इन्दु' कला २, किरण २ सन् १९०९ में प्रकाशित हुई थी । इसमें सर्वात्मवादी दर्शन को अपनाया गया है अर्थात् 'प्रियतम' की छवि की व्याप्ति कवि को विश्व के कण कण में दिखाई देती है ।

प्रसाद की तीसरी काव्य कृति 'करुणालय' है । इसका प्रकाशन काल भी सन् १९१३ है । यह एक गीति नाट्य है । इसके बाद 'महाराणा का महत्व'

नानक प्रसाद का खण्ड काव्य सन् १९१४ में प्रकाशित हुआ जो उनकी प्रबन्ध-क्षमता का प्रथम परिचायक है । इसी के आस पास 'प्रेम-पथिक' खण्ड-काव्य प्रकाश में आया । इसे प्रसाद के काव्य-विकास का महत्वपूर्ण सोपान कहा जा सकता है । छायावादी काव्य की मानवीय, स्वच्छंदतामूलक और सर्वात्मवादी पृष्ठभूमि का रूप से पहले इसी कृति में दर्शन मिलता है । अमूर्त का मूर्त और मूर्त का अमूर्त रूप में चित्रण भी यहाँ हुआ है तथा मानवीकरण की प्रवृत्ति भी लक्षित होती है । भाषा की दृष्टि से 'प्रेम-पथिक' का रचनाकाल प्रसाद की भाषा का निर्माण-काल कहा जा सकता है ।

इसके पश्चात् 'झरना' प्रसाद की महत्वपूर्ण काव्य-सृष्टि है । यह सन् १९१८ में प्रकाशित हुआ । इसमें ५५ कविताएँ संग्रहीत हैं जिनके द्वारा कवि की प्रयोगशील मनोवृत्ति का परिचय मिलता है । भाषा-शैली से संबंधित विविध प्रयोग इसमें किये गए हैं । यद्यपि इन प्रयोगों में वैसी सिद्धि तो नहीं मिल पाई है, जिसके दर्शन परवर्ती काव्य में होते हैं तथापि छायावादी काव्य की प्रायः समस्त महत्वपूर्ण विशेषतायें इस संग्रह की कविताओं में स्पष्ट परिलक्षित होती हैं । उदाहरणार्थ 'विषाद' शीर्षक कविता की यह पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं -

'कौन प्रकृति के करुण काव्य सा
वृक्ष पत्र की मधु छाया में ।
लिखा हुआ सा अचल पड़ा है
अमृत सदृश नश्वर काया में ?[1]

इनमें छायावादी जिज्ञासावृत्ति, प्रकृति प्रेम, मधुमयी भाषा अप्रस्तुतों का नयापन, कल्पना-सौकुमार्य आदि सभी कुछ प्राप्य है । 'झरना' का द्वितीय संस्करण सन् १९२७ में प्रकाशित हुआ । द्वितीय संस्करण की कविताओं में इसी कारण एकरूपता मिलती है । प्रारंभिक रचनाओं में अधिकांशतः परंपरागत छंदों का ही प्रयोग हुआ है, बाद की रचनायें प्रगीतात्मक हैं, जिनमें छंद-निर्वाह की अपेक्षा आन्तरिक लय की रक्षा का प्रयत्न मिलता है ।

१- जयशंकर प्रसाद - झरना, पृष्ठ २० ।

'झरना' के बाद 'आँसू' प्रसाद की महत्वपूर्ण कृति है ; न केवल प्रसाद के काव्य-विकास की दृष्टि से वरन् छायावाद के विकास इतिहास की दृष्टि से भी इसका विशेष महत्व है । 'आँसू' सन् १९२५ में प्रकाशित हुई इसी के साथ हिन्दी - कविता में छायावाद को पूर्ण प्रतिष्ठा मिली तथा एक नए काव्य-युग का प्रारंभ हुआ। भावमयता और कला वैभव दोनों ही दृष्टियों से 'आँसू' एक श्रेष्ठ काव्य कृति है । कवि की घनीभूत पीड़ा का दुर्दिन में आँसू बनकर बरस पड़ना ही इसका कथ्य है ; किन्तु आँसू आँखों से नीचे की ओर बहते हैं और कवि का व्यक्तित्व ऊपर की ओर उठता जाता है। व्यक्तिगत वेदना का विश्व-वेदना में परिहार अथवा व्यष्टि को समष्टि में लीन करके अंत में कवि की यह कामना -

'सब का निचोड़ लेकर तुम
सुख से सूखे जीवन में ।
बरसो प्रभात हिमकन सा,
आँसू इस विश्व-सदन में ।।'

अभिनंदनीय भी है और अनुकरणीय भी । अधिकांश लोग 'आँसू' को खण्डकाव्य परंपरा की एक कड़ी मानते है, किन्तु खण्डकाव्य में आद्यन्त एक ही भावस्थिति रहने की जो अनिवार्यता होती है, वह आँसू में नहीं मिलती । भाव-प्रवाह में कथा सूत्र भी स्थिर नहीं रह सके हैं । वस्तुत: इसमें प्रबंधात्मकता, मुक्तात्मकता और प्रगीतात्मकता - तीनों का सम्मिश्रण हुआ है, अतएव इसे किसी परंपरित काव्य-रूप के अंतर्गत न रखकर प्रसाद की मौलिक काव्य सृष्टि मानना ही समीचीन है । प्रसाद की भाषागत समस्त विशेषतायें आँसू में अपने पूर्ण विकसित रूप में मिलती हैं, अर्थात् प्रयोगों की अवधि पार करके कवि का उदात्त कलाकार रूप इसमें प्रकट होता है ।

'आँसू' के बाद 'अशोक की चिन्ता', 'शेरसिंह का शस्त्र समर्पण', 'पेशोला की प्रतिध्वनि', 'प्रलय की छाया' आदि प्रसाद के कुछ आख्यानक प्रगीत तथा अन्य कुछ कवितायें 'लहर' में संग्रहीत होकर प्रकाश में आईं । यह रचनायें प्रसाद की पुष्ट छायावादी शैली का प्रमाण प्रस्तुत करती है ।

प्रसाद की अंतिम और सर्वाधिक महत्वपूर्ण काव्य रचना 'कामायनी'

है, जो हिन्दी साहित्य की भी अत्यन्त महत्वपूर्ण उपलब्धि है । सचमुच: `रामचरितमानस` को छोड़कर जन जीवन और युगीन प्रवृत्तियों को उनके समग्र रुप में प्रस्तुत करनेवाली ऐसी अन्य रचना दुर्लभ है । इस महाकाव्य के अन्तर्गत श्लिष्ट रुपक योजना द्वारा मानव-विकास की कथा कही गई है । इसके मुख्य पात्र `मनु` मन के `श्रद्धा`, `हृदय` की और `इड़ा` बुद्धि की प्रतीक हैं । कवि ने इन तीनों की कथा के बहाने बड़ी कलात्मकता से यह सिद्धान्त प्रतिष्ठित किया है कि जीवन में सच्चे आनन्द की प्राप्ति इच्छा, कर्म, ज्ञान तथा हृदयवाद और बुद्धिवाद के समन्वय द्वारा ही संभव है । इसमें वर्णित सामन्जस्य या समरसता सिद्धान्त अथवा आनन्दवादी दर्शन प्रसाद के गहन दार्शनिक चिन्तन, विशेषत: शैवागम दर्शन की देन कहा जा सकता है ; किन्तु इस समरसता के माध्यम से प्रसाद ने विश्व व्यापी समस्याओं का समाधान प्रस्तुत किया है जो स्तुत्य है तथा `कामायनी` को विश्व-काव्य की कोटि में स्थान दिलाता है । आधुनिक जीवन की यान्त्रिकता, बुद्धिवाद, भौतिकतावादी विचारधारायें - (जिससे व्यक्तित्व खण्डों में विभाजित हो रहा है), वर्ग भेद मन-वचन-कर्म में एक रुपता का अभाव आदि समस्याओं का सच्चा प्रतिनिधित्व `कामायनी` में मिलता है । प्रजापति प्रजा के साथ अनाचार करे और समय पर उसका समाधान न हो, तो वह स्थिति विस्फोटक हो सकती है । यह समस्या भी सर्वदेशीय और सर्वकालिक है, जिसकी ओर कवि ने मनु-इड़ा प्रसंग में संकेत किया है, तथा एक पौराणिक ऐतिहासिक कथानक को बड़े कौशल के साथ वर्तमान जन-जीवन से जोड़ दिया है । विशाल वैचारिक संपदा से युक्त होने के साथ-साथ विश्व व्यापी समस्याओं का व्यवहारिक समाधान भी प्रस्तुत करने के फलस्वरूप कामायनी का महत्व चिर-स्थायी है । हिन्दी-साहित्य कोष को कामायनी जैसी अनुपम निधि सौंपने के साथ ही प्रसाद की जीवन लीला भी समाप्त हो गई । इस प्रकार `कामायनी` प्रसाद की काव्य-यात्रा तथा जीवन-यात्रा दोनों की चरम लक्ष्य भी सिद्ध हुई, और चरम उपलब्धि भी ।

सुमित्रानन्दन पन्त

पन्त ने लगभग सन् १९१२ में काव्य क्षेत्र में पदार्पण किया तथा कुछ ही वर्षों के भीतर वे `छायावाद` के सुदृढ़ स्तम्भ बन गए तथा हिन्दी साहि

में छायावादी काव्यान्दोलन का नेतृत्व करनेवाले तीन प्रमुख क्रान्तिकारी कवियों में उनके नाम की भी गणना होने लगी ।

खड़ीबोली के परिष्कार और परिमार्जन में पंत का महत्वपूर्ण हाथ रहा है । खड़ीबोली को पंत ने इतनी सुकोमल और मधुर बना दिया कि वह ब्रजभाषा से होड़ लेने लगी, और शीघ्र ही सैकड़ों वर्षों की परंपरा का अंत करके उसने काव्य-भाषा का गौरवपूर्ण पद प्राप्त कर लिया । पंत ने एक सचेत कलाकार जैसी सूझ-बूझ के साथ अपनी कविताओं में एक एक शब्द को नगीने की भाँति जड़कर उनमें अनूठी दीप्ति और अपूर्व अर्थवत्ता उत्पन्न की है । उनके जैसा शब्द-शिल्पी संभवत: किसी अन्य युग में नहीं हुआ । प्रकृति के प्रति पंत को गहरा अनुराग रहा है तथा प्रकृति के अनेकानेक जीवन्त और भव्य चित्र उन्होंने प्रस्तुत किये हैं । अपने प्रकृति प्रेम के कारण वे 'प्रकृति के सुकुमार कवि' कहे जाते हैं तथा हिन्दी कवियों के मध्य वे वही स्थान रखते हैं जो अंग्रेजी के स्वच्छंदतावादी कवियों में वर्ड्सवर्थ का था ।

पंत छायावाद के सर्वाधिक कल्पनाशील कवि हैं ; कल्पनाओं की सुकुमारता उनकी कविताओं की महत्वपूर्ण विशेषता है जो कहीं कहीं उनकी दुर्बलता भी सिद्ध हुई है । इसके साथ ही, छायावाद के अन्य कवियों की तुलना में पंत में भावों एवं विचारों की विविधता भी सब से अधिक लक्षित होती है । लघु गीतों प्रगीतों से प्रारंभ होकर उनका काव्य विकास महाकाव्यत्व के सोपान तक पहुँचा है ।

पंत की छायावाद कालीन मुख्य कृतियाँ वीणा, पल्लव, उच्छ्वास, ग्रन्थि, गुंजन , ज्योत्स्ना आदि है ।

'उच्छ्वास' पंत की प्रथम प्रकाशित रचना है, जिसका प्रकाशन सन् १९२१ में अजमेर से हुआ था । आदर्शवादिता के युग में पंत ने इस रचना के द्वारा व्यक्तिनिष्ठ प्रेम-चर्चा का अभूतपूर्व साहस दिखाया है ।

'उच्छ्वास के कुछ दिनों बाद' आँसू' शीर्षक से पंत की एक लम्बी कविता प्रकाशित हुई । इसमें कवि की निजी आकांक्षाओं, स्वप्नों, पीड़ाओं और रुदन का प्रसार हुआ है । कल्पनाओं की स्वच्छंदता का वैसा रूप तो इसमें नहीं

दिखाई देता जो आगे चलकर पंत काव्य की मुख्य विशेषता बना, तथापि सौन्दर्य के प्रति कवि की अपूर्व तल्लीनता, तृष्णा और मानसिक व्यापारों की क्षणिक व्यंजना इस रचना में पर्याप्त मात्रा में है ।

पंत का प्रथम काव्य संग्रह 'वीणा' है, इसमें सन् १६१८-१६ की कवितायें संग्रहीत हैं, किन्तु इस संग्रह का प्रकाशन काफी पीछे अर्थात् सन् १६२७ में हुआ । प्रथम काव्य-संग्रह होने के नाते पंत ने इसे 'बाल कल्पना' और 'दुध-मुंहा प्रयास' कहा है, किन्तु यह दुध मुंहा प्रयास भी द्विवेदीयुगीन साहित्यकारों को चौंकानेवाला और उनके मध्य गहरी हलचल उत्पन्न करनेवाला सिद्ध हुआ था । प्रकृति के प्रति मुग्ध भाव, प्रकृति के कण-कण में बीक्षित आत्मा के दर्शन और प्रकृति के वैभवपूर्ण आत्मीय चित्र 'वीणा' की विशेषतायें हैं । छायावाद के जन्म की प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति करनेवाली उनकी प्रसिद्ध कविता इसी संग्रह में है । कल्पना के आधार पर भावों की ऊँची उड़ान भी इस संग्रह की कविताओं में दर्शनीय है । अनेक प्रार्थना परक गीत भी इसमें हैं, जिनमें रवीन्द्र की गीतांजलि का प्रभाव लक्षित होता है । आत्मोत्सर्ग और आत्म निवेदन के कुछ चित्र अत्यंत मनोरम और भावपूर्ण हैं ।

'वीणा' के बाद रचना क्रम से 'ग्रन्थि' का नाम आता है । यह एक वैयक्तिक प्रणय कथा है, जिसमें विरहानुभूति की प्रधानता है । 'वीणा' की कोमल बाल भावना तथा उच्छ्वास में ईषत् वैयक्तिक प्रेम-चर्चा और किशोर वय की सहज स्वाभाविक भांकी देखने के बाद हमें 'ग्रन्थि' में विरह की गहन' मर्मस्पर्शी अनुभूति के दर्शन होते हैं तथा कवि के काव्य-विकास में यौवनागम के संकेत मिलते हैं ।

पंत की सन् १६१८ से सन् १६२५ तक की विभिन्न कविताओं का संग्रह 'पल्लव' नाम से प्रकाशित हुआ । भाव, विचार, काव्य कला, सभी दृष्टियों से यह पंत का सर्वश्रेष्ठ काव्य-संग्रह कहा जा सकता है । इसकी अधिकांश कविताओं की मूल धारा रोमांटिक है, जिनमें कवि हृदय का आह्लाद , विषाद, प्रेम-विरह रुपायित हुआ है । शैली ,कीट्स, टैनिसन आदि से प्रभावित होने की बात कवि ने स्वयं स्वीकार की है । इस संग्रह की कुछ कवितायें शुद्ध कल्पना प्रधान है जैसे 'वीचिविलास', 'विश्ववेणु', 'नक्षत्र, स्याही की बूंद आदि , और कुछ

शुद्ध भाव प्रधान जैसे - मोह, विनय, याचना, विसर्जन, मधुकरी आदि । इन दोनों के मध्य की जो कवितायें हैं जैसे - मौन निमंत्रण, बालापन, छाया, बादल अनंग स्वप्न आदि वस्तुत: इन्हें ही कवि के काव्य-कौशल का श्रेष्ठ निदर्शन माना जा सकता है । इनमें कल्पना और भावना का सुंदर सामंजस्य हुआ है, साथ ही भाषा ने भाव को सजीव रुप में प्रस्तुत किया है । इसी संग्रह में परिवर्तन शीर्षक लम्बी कविता भी है, जिसमें पंत के दार्शनिक विचारों की सशक्त अभिव्यक्ति हुई है ।

काव्य-विकास की दृष्टि से पल्लव की ही भाँति गुंजन भी पंत की महत्वपूर्ण कृति है । पल्लव जैसा सहज काव्योन्मेष इसमें नहीं है, न कल्पना की गगन चुम्बी उड़ान न प्रकृति का उन्मुक्त विहार और न विस्मय और जिज्ञासा की कुहेलिका । इन सब के स्थान पर आयास साध्य अलंकृति, चिन्तन की प्रधानता, जीवन के सत्यों को पहचानने की चेष्टा, सुख-दु:ख की वेदान्तिक अभिव्यक्ति आत्म कल्याण के साथ विश्व कल्याण की आकांक्षा आदि इस कृति में मुख्य रुप से प्राप्य है । कवि ने स्वयं एक स्थल पर लिखा है मैं पल्लव से गुंजन में अपने को सुंदरम से शिवम् की भूमि पर पदार्पण करते पाता हूँ ।[१] इसी के परिणामस्वरुप इस संग्रह की प्रकृति संबंधी कविताओं में भी प्रकृति सुषमा के स्वतन्त्र अंकन के बदले दर्शन का पुट मिलता है जैसे - संध्यातारा, चांदनीरात, नौका-विहार आदि कवितायें ।

ज्योत्सना - सन् १९३४ में प्रकाशित हुई यह एक प्रतीक नाटिका है, जिसकी विशेषता यह है कि यह कवि के भूत और भविष्य के विचारों की कड़ियाँ जोड़ती है । इसमें कवि का मानवतावादी दृष्टिकोण व्यक्त हुआ है । पश्चिम की भौतिकता और पूर्व की आध्यात्मिकता के समन्वय द्वारा विश्व के लिये एक नवीन संस्कृति के निर्माण का भव्य-स्वप्न इसमें दृष्टिगोचर होता है ।

`युगान्त` ज्योत्सना के बाद की कृति है । इसके द्वारा पंत की चिन्तनधारा के एक नई दिशा में मुड़ने के संकेत मिलते हैं तथा उनके काव्य-इतिहास का एक नवीन पृष्ठ मानवतावाद को लेकर खुलता है । युगान्त की कविताओं में चिन्तन की प्रधानता और लोक मंगल की भावना के आपन्न दर्शन होते हैं । कल्पना लोक को

१- सुमित्रानन्दन पन्त - शिल्प और दर्शन - पर्यालोचन, पृष्ठ ३६ ।

सर्वथा त्यागकर कवि यथार्थ के ठोस धरातल पर खड़ा होता है । इस अवधि तक उसकी यह धारणा सुदृढ़ रुप ले लेती है कि " सुंदर है विहग, सुमन सुंदर, मानव तुम सब से सुंदरतम निर्मित सब की तिल सुषमा से, तुम निखिल सृष्टि में चिर निरुपम " - और मानवता के विकास, मानवता के उत्थान की शुभेच्छा से उसका हृदय व्याकुल हो उठता है। मानव जीवन में पूर्णता लाने की आकांक्षा और मानवता को नया जीवन देने की आन्तरिक अभिलाषा-वश पंत की दृष्टि " मार्क्स " के द्वन्द्वात्मक भौतिकवादी दर्शन की ओर गई है और उससे उन्होंने पर्याप्त प्रेरणायें ग्रहण की है । इस भांति नाम के अनुरुप ही " युगान्त " के द्वारा पंत छायावाद की धूप-छाँही गलियाँ छोड़कर एक वृहत्तर और नए क्षेत्र में प्रवेश करते हैं ।

युगान्त के बाद युगवाणी, ग्राम्या आदि में पंत पूर्णतया छायावाद की सीमायें छोड़कर प्रगतिवादी बन गए हैं । सन् १९४२ के बाद पुनः उनकी कविता धारा नया मोड़ लेती है और वे अपनी विविध मानसिक समस्याओं का समाधान " अरविन्द दर्शन " में खोजते हुए दिखाई देते हैं । स्वर्ण किरण, स्वर्ण-धूलि, उत्तरा, अतिमा आदि इस काल की रचनायें हैं । सन् १९५९ में प्रकाशित " कला और बूढ़ा चाँद " पंत के काव्य-विकास की महत्त्वपूर्ण कड़ी है । इसकी कवितायें सहजानुभूति से प्राप्त सत्यों पर आधारित है । सन् १९६४ में पंत का " लोकायतन " महाकाव्य प्रकाशित हुआ है ।

काव्य तथा जीवन की एक सुदीर्घ किन्तु गौरवमयी यात्रा पूर्ण करने के बाद, कुछ ही दिनों पूर्व पंत ने चिर विश्राम ले लिया है । किशोर काल से वृद्धावस्था तक निरंतर साहित्य सर्जना करनेवाले पंत जैसे मेधावी कवि के अंत से हिन्दी साहित्य की घोर क्षति हुई है ।

निराला -

" निराला " जिनका पूरा नाम पंडित सूर्यकान्त त्रिपाठी " निराला " है । सन् १९१५ में " मतवाला " द्वारा प्रकाश में आए । अपने नाम के अनुरुप " निराला " छायावाद के कवियों में ही नहीं समस्त हिन्दी कवियों में निराले ही दिखाई देते हैं । उनका निराला व्यक्तित्व उनकी रचनाओं में पूर्णतः मुखर हुआ है,

जिसमें सरलता, सादगी, दार्शनिकता और पांडित्य का अद्भुत सामंजस्य मिलता है ।

छायावाद की विद्रोहात्मक प्रवृत्ति का पूर्ण प्रतिनिधित्व निराला के काव्य में मिलता है । यह विद्रोह " छंद " के क्षेत्र में विशेष रूप से अभिव्यक्त हुआ है । " परम्परागत छन्दों की छोटी राह " पर ही निरंतर चलते जाना स्वीकार न करके निराला ने " मुक्त छन्द " के रूप में नए मार्ग का अन्वेषण तथा दिग्दर्शन किया, और परंपरा से हटकर, 'जूही की कली', 'शेफालिका' जैसी रचनायें प्रस्तुत कर के अपने स्वतन्त्र व्यक्तित्व , स्वच्छन्द प्रकृति और मौलिक प्रतिभा का परिचय दिया। आज छंद-बद्ध रचनाओं की अपेक्षा मुक्त छंद का हिन्दी साहित्य में कहीं अधिक प्रचलन है । इस प्रकार हिन्दी साहित्य को निराला का यह योगदान अत्यन्त महत्वपूर्ण है ।

छायावादी कवियों में निराला सर्वाधिक संघर्षशील और समाजोन्मुख रहे हैं । उनकी कविताओं में उनके समाज प्रेम की गहरी छाप मिलती है । दर्शन के क्षेत्र में निराला वेदान्तवादी है और व्यक्ति रूप में उन पर रवीन्द्र और विवेकानंद का प्रभाव स्पष्ट है।प्राचीन वैष्णव कवियों से भी उन्हें पर्याप्त प्रेरणा मिली है । उनकी " नयनों के डोरे लाल गुलाल भरे खेली होली " अथवा " देख दिव्य छवि लोचन हारे " आदि कविताओं में भक्त कवियों की वाणी की गूंज स्पष्टत: सुनी जा सकती है।हिन्दी के पद साहित्य की भूमिका पर निराला ने बहुसंख्यक गीत रचे हैं । इन गीतों में गेयतत्व की प्रधानता है । प्रत्येक गीत शास्त्र सम्मत राग-रागिनियों में बंधा है अथवा बांधा जा सकता है । मुख्यत: इनमें श्रृंगार, करुण अथवा शान्तरस की योजना हुई है । लघुता के साथ स्वच्छानता और चित्रात्मकता इन गीतों का विशेष आकर्षण है । अभिव्यक्ति अत्यन्त सधी हुई है और शब्दावली सीमित, अतएव रसास्वाद में सफलता रहती है ।

गीतों के अतिरिक्त प्रगीत सृष्टि में भी निराला की विशेष रुचि रही है। उनके प्रगीतों के तीन वर्ग किये जा सकते हैं (क) लघुप्रगीत - जैसे जुही की कली ", संध्या सुंदरी, भिक्षुक आदि (ख) दीर्घप्रगीत जैसे " यमुना के प्रति ", " सरोज स्मृति "," प्रेयसी " आदि और (ग) हास्य-व्यंग्य विनोद- प्रधान प्रगीत -

जैसे कुकुरमुत्ता, नये पत्ते आदि । तृतीय वर्ग के प्रगीतों पर उर्दू काव्य शैली का प्रभाव दृष्टिगत होता है ।

निराला ने कुछ आख्यानक काव्य भी रचे हैं जैसे 'राम की शक्ति पूजा', 'तुलसीदास' आदि । इनमें लोकगाथाओं की सरलता कम, महाकाव्योचित औदात्य और गरिमा अधिक है । प्रवाह और प्रभाव की दृष्टि से यह आख्यानक काव्य निराला की सशक्त लेखनी के गौरवपूर्ण प्रमाण है ।

छायावाद युग में रची गई निराला की चार मुख्य कृतियाँ हैं – अनामिका (सन् १९२३), परिमल (सन् १९३०) गीतिका (सन् १९३६) और तुलसीदास (सन् १९३८) ।

अनामिका, परिमल और गीतिका इन तीन कविता संग्रहों में विकास क्रम और भाव-माधुर्य दोनों ही दृष्टियों से गीतिका प्रौढ़तम कृति है । इन संग्रहों में निराला का गीतकार रूप प्रधान है । कुछ गीत विनय और भक्ति परक हैं,कुछ में दार्शनिक तत्वों की विवेचना है और कुछ शुद्ध लौकिक श्रृंगार पर आधारित हैं । परंतु इन लौकिक श्रृंगार संबंधी गीतों में मिलन विरह के चित्रों की प्रधानता होते हुए भी भावनागत दुर्बलता कहीं भी नहीं मिलती । श्रृंगार अथवा प्रेम का स्वस्थ और सशक्त रूप इनमें दिखाई देता है । पृष्ठभूमि सर्वत्र प्रकृति से ली गई है । गीतिका के कुछ गीत राष्ट्रीय गीत परंपरा के सुंदर निदर्शन हैं इनमें राष्ट्रीय गौरव तथा सौन्दर्य और ऐश्वर्य का आलेखन हुआ है । राष्ट्र की अधोगति, दरिद्रता और विषमता के भी कहीं कहीं मार्मिक चित्र मिलते हैं । `भारति जय विजय करे`, निराला का सुप्रसिद्ध राष्ट्रीय गीत है जो अपनी भाव प्रवणता में अद्वितीय है।निराला के सभी राष्ट्रीय गीत समारोहों में गाने योग्य और विजय उल्लास तथा सौन्दर्य की झांकी से युक्त है ।

`तुलसीदास` जैसा कि पहले संकेत किया जा चुका है, निराला की प्रौढ़ और सशक्त रचनाओं में एक है, किन्तु अतिशय पाण्डित्यकता और दुरूहता के परिणामस्वरूप अनेक आलोचक इस पर कृत्रिमता का दोष लगाते हैं ।

लोक काव्य का माधुर्य कम होते हुए भी उसकी भाषा में तीव्र जल प्रपात के सदृश प्रवेग और संघात है यो मन को फककोरता अवश्य है ।' तुलसीदास' की भाषा निराला की दुहरी काव्य क्षमता की परिचायक है, अर्थात् एक ओर तो वे अत्यंत सरल, सीधी, बोधगम्य भाषा का प्रयोग करते हैं, दूसरी ओर उन्हें ही सहज भाव से वे संस्कृत तत्सम शब्दों से पूर्ण क्लिष्ट भाषा का प्रयोग करते हैं जिसे पाठकों का एक विशिष्ट वर्ग ही समझ सकता है ।' भाषा' पर ऐसा प्रभुत्व निराला की विशिष्ट प्रतिभा का प्रमाण है, अतएव भाषा के आधार पर ही' तुलसीदास' को कृत्रिम न मानकर कवि के महत्वपूर्ण' प्रयोग' के रूप में देखना चाहिये ।

' तुलसीदास' के बाद की रचनायें - कुकुरमुत्ता (सन् १९४२), अणिमा (सन् १९४३) नए पत्ते (सन् १९४६) बेला (सन् १९४६) अपरा (संकलन सन् १९४६), अर्चना (सन् १९५०) आराधना (सन् १९५३) गीतगुंज(सन्१९५४) कवि श्री संकलन (सन् १९५५) और सान्ध्यकाकली (सन् १९६९) है ।

' कुकुरमुत्ता' में निराला का व्यंग्यकार रूप प्रधान है, अणिमा, बेला और नए पत्ते में निराला प्रगतिवादी कवि के रूप में सामने आते हैं और परवर्ती रचनाओं में वे भक्ति और ज्ञान की गंगा का अवगाहन करते हुए दिखाई देते हैं । इस भांति इस क्रान्तिकारी कवि की तेजस्विनी काव्यधारा विद्रोह, प्रेम, श्रृंगार, राष्ट्रीयता, हास्य-व्यंग्य, समाज, राजनीति आदि की विविध भावभूमियाँ पार करती हुई, अन्ततः शान्त समतल में पहुंचकर चिर विश्राम की स्थिति में निःशेष हो जाती है ।

महादेवी वर्मा -

उपर्युक्त तीन महाकवियों- प्रसाद, पंत और निराला के बाद छायावादी काव्य की श्रृंखला को सुदृढ़ बनाने में महादेवी वर्मा का पर्याप्त सहयोग रहा है । अंतर्मुखी अनुभूति, अशरीरी प्रेम, अमांसल सौन्दर्य का चित्रण, मानव और प्रकृति के चेतन संस्पर्श , रहस्य चिन्तन , गीतात्मक प्रवृत्ति आदि छायावाद की प्रायः सभी मुख्य विशेषतायें महादेवी के काव्य में साकार हुई हैं । इसके अतिरिक्त महादेवी की कुछ मौलिक विशेषतायें भी हैं । उनकी रचनाओं में आद्यन्त एक

स्वप्निलवातावरण छाया रहता है, अर्थात् कवयित्री की दृष्टि ठोस जीवन सत्यों पर न टिककर स्वप्नों के ताने बाने बुनने में ही अधिक रमी है। जीवन और प्रकृति की कोमल वस्तुएं, उषा की आलोक भरी आभा, संध्या की अवसादमयी घनता, निशा का नीरव एकान्त आदि उन्हें विशेष प्रिय है, इन्हीं सब के मध्य वे अपने इंद्रधनुषी स्वप्नों के मनोरम जाल बुनती रहती है। रहस्यमय प्रियतम की खोज, स्मरण, प्रतीक्षा और मिलनाकांक्षा ही उनके काव्य का चरम लक्ष्य है। कभी प्रकृति के सामान्य व्यापारों द्वारा उन्हें गुप्त संदेश मिलते हैं और प्रिय आगमन की आशा से उनके प्राण पुलकित हो उठते हैं, कभी प्रिय की स्मृति उन्हें रुलाती है, कभी एक व्यापक-विराट शून्य की अनुभूति से वे भर उठती हैं और कभी प्रिय-सामीप्य से वंचित जीवन की व्यर्थता का बोध उन्हें पीड़ित कर जाता है। बस इसी सीमित दायरे में महादेवी की काव्य साधना चलती है। किन्तु दायरा सीमित होते हुए भी उसमें गहराई पर्याप्त है।

महादेवी भावप्रवण कवयित्री हैं अतएव उनकी रचनाओं में भावों की ऐसी तीव्रता मिलती है जो मन को बहुत गहराई तक छू जाती है। वेदना और करुणा से उन्हें विशेष लगाव है, इस लगाव की सीमा यहाँ तक है कि वे मिलन का नाम भी न लेकर चिर विरह में लीन रहने की आकांक्षा व्यक्त करती हैं। वेदना और करुणा की विराट पृष्ठभूमि पर रचे गए उनके आध्यात्मिक प्रेम गीतों पर भक्तियुगीन कवयित्री मीरा का कुछ प्रभाव लक्षित होता है इसीलिये साहित्य-जगत में प्राय: उन्हें आधुनिक युग की मीरा कहकर संबोधित किया जाता है। किन्तु महादेवी की रचनाओं में सर्वत्र उनकी मौलिकता अक्षुण्ण रहती है। उनकी विरहानुभूति में मीरा जैसा अंतर्दाह न होकर दीपक का शान्त शीतल आलोक रहता है जो रुलाता कम है, सम्मोहित अधिक करता है। प्रिय के प्रति असीम प्रेम रखती हुई और उसके वियोग में विकलता का अनुभव करती हुई भी महादेवी मीरा की भांति दैन्य का प्रदर्शन नहीं करती। आराध्य की महानता को स्वीकारती हुई भी वे अपने निजत्व को सुरक्षित रखती है (" क्या अमरों का लोक मिलेगा तेरी करुणा का उपहार ? रहने दो हे हे देव अरे यह मेरा मिटने का अधिकार।")

महादेवी के गीतों में प्राचीन गीत-परंपरा का चरम विकास प्रस्तुत हुआ है । माधुर्य और गेयता उनके गीतों के प्रमुख तत्व हैं । गीतों के भाव-माधुर्य को मनोरम शब्द विन्यास और भी अधिक विकसित करता है । शैली के क्षेत्र में महादेवी की रुझान अलंकरण की ओर बहुत अधिक है । सुकोमल प्रतीक, नव्य अप्रस्तुत योजना, सुकुमार कल्पना, दीप्तिमय बिम्ब, ध्वन्यात्मक शब्दावली और भावों की सघनता ने मिलकर महादेवी की शैली को विशेष गौरव प्रदान किया है । महादेवी के गीतों की भाषा किसी साधारण कवि की भाषा नहीं है । ऐसा प्रतीत होता है जैसे किसी कुशल कलाकार ने अपने स्वर्णाभूषण में चुन-चुनकर नगीने जड़े हों । पृष्ठभूमि के रूप में प्रकृति महादेवी की परम सहायिका रही है ।

महादेवी की काव्य कृतियां हैं - नीहार (सन् १९३०) रश्मि (सन् १९३२) नीरजा (सन् १९३५) सांध्यगीत (सन् १९३६) और दीपशिखा (सन् १९४२) ।

' नीहार ' महादेवी की प्रथम काव्य कृति है , इस नाते इसमें कवयित्री के भावी काव्य विकास की रूपरेखा मात्र बन पाई है, उसमें रंग नहीं भरे हैं । एक अव्यक्त पीड़ा और छटपटाहट का बोध इसमें होता है किन्तु उसका कोई ठोस आधार पकड़ में नहीं आता ।

' नीहार ' के बाद ' रश्मि ' में वय: संधि की स्थिति है । कुहासा कम होता है और काव्य चित्रों में स्पष्टता आती है ।

' नीरजा ' तक पहुंचकर महादेवी की काव्य कला पूरी तरह मंज जाती है । ' नीरजा ' भाव व्यंजना और कला-सौष्ठव, दोनों ही दृष्टियों से प्रौढ़ और श्रेष्ठ काव्य कृति है । व्यक्तिगत पीड़ा को इसमें लोक व्यापी रूप प्रदान किया गया है और सुख-दु:ख में सामंजस्य स्थापन की चेष्टा की गई है, लेकिन व्यक्ति की पुकार इसमें बनी रहती है ।

' सान्ध्यगीत ' में अनुभूति की तीव्रता में कमी, किन्तु स्थिरता में वृद्धि मिलती है । ' नीरजा ' में सुख और दु:ख के मध्य समता-स्थापन का जो प्रयास हुआ था, सान्ध्यगीत में वह प्रयास पूर्णता पाता है ।

"दीपशिखा" इसी दिशा में कवयित्री का अगला कदम है अर्थात् दीपशिखा तक की काव्य-यात्रा में विरहानुभूति की तीव्रता का लोप हो जाता है, दुःख अपना दंशन खो देता है और पीड़ा की ज्वाला "दीप शिखा" बनकर अपना मंद-मधुर प्रकाश फैलाने लगती है ।

दीपशिखा के बाद अब तक के वर्षों में महादेवी की अन्य कोई काव्य-कृति प्रकाश में नहीं आई है । ऐसा लगता है जैसे उनका काव्य-यात्री अपने लक्ष्य पर पहुंच कर विश्राम की स्थिति में शिथिल बैठ गया है । तथापि उनकी समृद्ध लेखनी साहित्य को अभी बहुत कुछ दे सकने में समर्थ है, अतएव हम उनके प्रति आशावान बने रह सकते हैं ।

महादेवी का विषय क्षेत्र अत्यन्त सीमित है, "प्रिय की प्रतीक्षा" मात्र का उनके काव्य में अतिरेक खटकता है । आत्म निष्ठता के आधिक्य के कारण सामान्य जन-जीवन से उनके काव्य का संपर्क स्थापित नहीं हो पाया, अतएव वह एकांगी बन गया है, अन्यथा अपनी कलात्मकता और सफल भावाभिव्यंजना में महादेवी बेजोड़ हैं ।

अन्य कवि

डा० रामकुमार वर्मा - छायावादी काव्य को समृद्ध करनेवाले कवियों में डा० रामकुमार वर्मा उल्लेखनीय हैं । महादेवी की ही भांति उन्होंने भी आध्यात्मिकता की पृष्ठभूमि पर रहस्यमय प्रियतम के प्रति प्रणय-निवेदन के गीत गाए हैं और मिलन की तीव्र आकांक्षा, स्मृति, व्याकुलता, प्रतीक्षा , वेदनानुभूति आदि की मार्मिक अभि-व्यंजना की है । "पारलौकिक सत्ता" को अपना मूल काव्य-विषय बनाने के फल-स्वरूप रामकुमार जी की कविताओं में रहस्यवादी स्वर अधिक मुखर हुआ है । रहस्यवादी प्रवृत्ति "छायावाद" का महत्वपूर्ण तत्व रहा है किन्तु यह छायावादी रहस्यवाद अपने स्वरूप में प्राचीन संत कवियों की भांति साधनात्मक न होकर बहुत कुछ शैली पक्ष से संबंधित है । इस शैली को आन्तरिक अनुभूतियों से रंग कर विशिष्ट रूप देनेवाले कवियों में महादेवी के बाद रामकुमार का ही नाम आता है ।

भावावेग की तीव्रता, कल्पना का समुचित योग , सरल किन्तु प्रवाहमयी भाषा और अभिव्यंजना की "अनूठी पद्धति ने रामकुमार वर्मा के गीतों को विशिष्ट

परिसीमय रूप प्रदान किया है ।" रहस्यवाद" की पीठिका पर रचे जाने के फलस्वरूप उनमें विषयगत औदात्य के साथ ही दार्शनिक चिन्तन का गाम्भीर्य भी पर्याप्त परिमाण में है किन्तु चिन्तन की नीरसता अनुभूति की प्रखरता से सदैव पराजित ही रही है, इसीलिए रामकुमार के गीत प्रसाद जैसी कोमलता और स्निग्धता, पंत जैसी सुकुमार कल्पना, निराला जैसा पांडित्य और महादेवी जैसी सूक्ष्म कला और अलंकृति न होते हुए भी अपनी प्रभाव क्षमता और मर्मस्पर्शिता में किसी प्रकार कम नहीं है ।

रामकुमार ने काव्य रचना का प्रारंभ अपनी बाल्यावस्था से ही किया था किन्तु छायावादी कवि के रूप में इनके दर्शन सन् १९२९ में अंजलि" के प्रकाशन के साथ होते हैं । इसके पूर्व की उनकी रचनाओं में ब्रजभाषा की श्रृंगारोन्मुख प्रवृत्तियां ही प्रधान रही हैं और समस्यापूर्ति तथा प्रभात फेरी में गाये जाने योग्य स्वदेश प्रेम के गीत ही उन्होंने मुख्यत: लिखे ।

छायावाद युग के अन्तर्गत रची गई छायावादी प्रवृत्तियों से युक्त उनकी प्रमुख काव्य कृतियां - अंजलि, अभिशाप, रूपराशि, चित्ररेखा और चंद्रकिरण है ।

" अंजलि " (सन् १९२९) रामकुमार का प्रथम छायावादी गीत-संग्रह है । कवि के भावी गीतों की रहस्योन्मुखता और छायावादी कला इसमें अंकुर रूप में प्राप्य है । इस संग्रह की " ओस के प्रति" , ये गजरे" , तारोंवाले ", एकान्त गान , अंजलि आदि कविताएँ कल्पना के मादक सौन्दर्य से युक्त होने के साथ-साथ भावों के समतुल्य निर्वाह और एकतानता की दृष्टि से भी विशेष आकर्षक और उच्चकोटि की है ।

अभिशाप का प्रकाशन सन् १९३० में हुआ । इस संग्रह के गीत चिंतन के आलोक से प्रोद्भासित है । कवि अपने आस-पास के वातावरण पर दृष्टि डालता है, उसे यह भान हो चुका है कि संसार दु:खमय और परिवर्तनशील है, इसलिये उसे " राग" में द्वेष , पुण्य में पाप, जय में पराजय, "प्यार में" घृणा" और बनावटीपन दिखाई देता है । जीवन की क्षणभंगुरता की अनुभूति उसके प्राणों को झकझोर देती है और गहन निराशा एवं अवसाद में आकंठ डूबा हुआ वह वैराग्य की चर्चा करता है[१]। इस प्रकार

१- " प्यार प्यार क्यों प्यार कर रहे नश्वरता से प्यार,
यहां ओस में छिपी हुई है इस जीवन की हार ।
+ + + +
मुझे न झूठा बतलाओ मत अपना झूठा प्यार ।
धूल समझकर छोड़ चुका हूं यह कलुषित संसार ।"
रामकुमार वर्मा " आधुनिक कवि(३) अभिशाप,पृ०८८,९० ।

अभिशाप का कवि निराशा के कुहासे में डूबा हुआ दिग्भ्रान्त पथिक है जिसे सुख आशा और उमंग का प्रकाश कहीं दिखाई नहीं देता ।

किन्तु इस लक्ष्य की प्राप्ति उसे किसी सीमा तक रूपराशि के माध्यम से होती है । स्वयं कवि के शब्दों में -" इस रूपराशि में मुझे अपनी आत्मा की सब से अधिक अभिव्यक्ति जान पड़ी । मेरे हृदय में उत्साह सुख और आशा की जो बेचैन भावनायें अपना लक्ष्य खोज रही थी, उन्हें अपना स्थान मिल गया।[1]" रूपराशि" का मूल स्वर निराशा से ओत-प्रोत नहीं है किन्तु उसमें करुणा और कसक का भाव अवशिष्ट है । वस्तु जगत में रहते हुए भी कवि अन्यमनस्क सा और अपने भावमय जगत में लौट जाने को आकुल प्रतीत होता है ।

जिज्ञासा की भावना इस संग्रह की कविताओं में विशेष रूप से लक्षित होती है । प्रकृति के विभिन्न उपकरणों को देखकर कवि का जिज्ञासु हृदय उनके नियामक के विषय में जानने की आकांक्षा व्यक्त करता है ।

इन गीतों का कल्पना-विधान आकर्षक और अभिव्यंजना पद्धति उच्चकोटि की है । शब्द चित्रों का इनमें बाहुल्य है और शब्द-योजना भावानुगामिनी है।

'शुजा' शीर्षक कविता एक शोक गीत है और 'नूरजहां' के प्रति' एक संबोध गीत । इन दोनों रचनाओं के माध्यम से कवि की भावी प्रबन्ध-पटुता के संकेत मिलते हैं ।

चित्ररेखा (१९३५) रामकुमार वर्मा की महत्वपूर्ण कृति है इसमें उनकी छायावादी प्रवृत्तियां पूर्णतः मुखर हो उठी है । इसमें भी पृष्ठभूमि अध्यात्मवाद की है और कवि का चिन्तक रूप प्रधान है । आध्यात्मिक भावनाओं और रहस्यानुभूतियों के चित्रण हेतु" प्रकृति" का कैनवस रूप में प्रयोग हुआ है । प्रकृति के अनेक वर्णों और उल्लासमय चित्र इस संग्रह में प्राप्य है । किन्तु वातावरण की संपन्नता के बावजूद संसार की नश्वरता का दुःख कवि को निरंतर दंश देता रहता है ।" प्रकृति" कवि के से दुःखी होकर संवेदना प्रकट करती है किन्तु कभी कभी उसकी संवेदना पर कवि को

१- रामकुमार वर्मा - रूपराशि - परिचय, पृष्ठ १ ।

विश्वास नहीं होता और प्रकृति में व्याप्त उल्लास कवि को अपना उपहास करता प्रतीत होता है । ऐसे क्षणों में वह खीझ से भर उठता है । कवि की दृष्टि सहसा उस सर्वशक्तिमान की ओर जाती है जो सृष्टि का निर्माणकर्ता है तथा उससे विलग अपनी पथभ्रष्ट आत्मा का बोध भी होता है । किन्तु यह भटकाव अकेले कवि का नहीं, संपूर्ण सृष्टि का है, इसलिए कवि का संवेदनशील हृदय संपूर्ण सृष्टि के दुःखी प्राणियों से अपनत्व का अनुभव करता है और उनके दुःखों के शमन हेतु 'जलद-जाल' बनकर बरसना चाहता है । इस प्रकार स्पष्ट हो जाता है कि कवि निजत्व की सीमाओं से ऊपर उठ चुका है और उसका दुःखवाद' अथवा निराशावाद सामान्य कोटि का लौकिक निराशावाद नहीं है ।

अनुभूति की सुंदरता के साथ साथ चित्ररेखा के गीतों का शिल्प पक्ष भी अत्यंत समृद्ध है । ध्वनि और गति को रूपायित करनेवाले अनेक सुंदर चित्र इसमें प्राप्य हैं । प्रतीक योजना भी नवीन और प्रभावपूर्ण है ।

'चंद्रकिरण' (१९३७) में 'चित्ररेखा' की रहस्यानुभूति और भी अधिक विकसित रूप में दिखाई देती है । "दिव्य और अलौकिक शक्ति से अपना शान्त और निश्छल संबंध जोड़ने की चेष्टा"[१] ही इसका मूल कथ्य है । "मैं तुम्हारे नूपुरों का हास हूँ," "एक दीपक किरण कण हूँ" आदि गीत उसी संबंध की अभिव्यक्ति करते हैं । निराशा की भावना और नश्वरता का बोध इसमें पूर्ववत् है किन्तु कवि भविष्य के प्रति आस्थावान है । उसे आशा है कि एक न एक दिन आत्मा और परमात्मा का मिलन अवश्य होगा ।

इस संग्रह की रचनाओं का अप्रस्तुत विधान सुंदर और प्रतीक योजना स्पष्ट है । लघु गीत के कलेवर में छोटे छोटे भाव चित्रों की योजना का अपूर्व कौशल रामकुमार जी ने दिखाया है ।

१- रामकुमार वर्मा - साहित्य समालोचना - कविता, पृष्ठ १९ ।
"छायावाद जीवात्मा की उस अंतर्हित प्रवृत्ति का प्रकाशन है, जिसमें वह दिव्य और अलौकिक शक्ति से अपना शान्त और निश्छल संबंध जोड़ना चाहती है ।"

इसके पश्चात् सन् १९३९ में रामकुमार जी का "संकेत" काव्य संग्रह प्रकाशित हुआ। दुःख की निविड़ता में डूबा कवि जैसे सहसा जाग उठता है। परिवर्तन उसे प्रकृति के लिये पुण्य सदृश प्रतीत होने लगता है। दुःख की अनिवार्यता को वह स्वीकार लेता है और नश्वरता को सहन करने की क्षमता उसे प्राप्त हो जाती है। इसीलिये जीवन के प्रति उसकी आस्था बनी रहती है।

छायावादोत्तर युग में "आकाश गंगा" नाम से रामकुमार जी का एक और काव्य संग्रह प्रकाशित हुआ। इसमें उनकी प्रबंधात्मक और गीतात्मक दोनों प्रकार की रचनायें हैं। रचनाओं का शिल्प पक्ष प्रौढ़ और अभिव्यंजना पद्धति अत्यंत आकर्षक है। भावधारा पूर्ववत् समतल गति से चली है।

वर्मा जी सफल गीतकार ही नहीं, श्रेष्ठ प्रबंधकार भी हैं, इसके प्रमाण रूप उनके "एकलव्य" (सन् १९५९) और "उत्तरायण" (सन् १९७२) महाकाव्य हैं। इनके कथानक महाभारत और रामायण से लिये गये हैं लेकिन रचनाकार के मौलिक चिन्तन ने उनमें नवीन आभा भर कर नया ही रूप दे दिया है। वर्मा जी की लेखनी अभी गतिशील है और उससे अनेक आशायें की जा सकती हैं।

छायावाद के उत्तरार्द्ध के कवियों में भगवती चरण वर्मा का नाम भी महत्वपूर्ण है यद्यपि छायावाद के प्रारंभिक कवियों से इनकी भावधारा सर्वथा भिन्न है। आध्यात्मिकता के प्रति कोई लगाव न दिखाकर इन्होंने लौकिक प्रेम की आधार भूमि पर ही अपने गीतों की रचना की है। उद्दाम वासना, मांसल श्रृंगार और विद्रोह के स्वर इनमें प्रमुख हैं। प्रसाद, पंत आदि की भांति कल्पना विहार न करके भगवती चरण जी ने यथार्थ की ठोस भूमि पर अपने कदम रखे हैं। छायावाद की रहस्य प्रियता का सीमान्त उनकी कविताओं में स्पष्टतः दिखाई देता है। "छायावाद" को वायवीयता और अतिशय कल्पनाशीलता के दोषों से मुक्त करके बोधगम्य बनाने वाले कवियों में भगवती चरण वर्मा प्रमुख हैं। "मधुकण", "प्रेम संगीत" और "मानव" इनके मुख्य काव्य संग्रह हैं। इनमें पूर्ववर्ती कवियों जैसी दूरारूढ़ कल्पनाओं, गूढ़ संवेदनाओं, लाक्षणिकता और सूक्ष्म प्रतीकात्मकता के बदले सीधी अभिव्यक्ति का मार्ग अपनाया गया है, अतएव यह रचनायें मन पर सीधी चोट करती हैं।

भगवती चरण वर्मा के साथ ही बच्चन का नाम उल्लेखनीय है । इनमें भी छायावाद की वैयक्तिकता 'अहंवाद' बनकर विकसित हुई है, अथवा 'छायावाद' का व्यष्टि रूप इनकी रचनाओं में अधिक मुखर हुआ है । मांसल अनुभूतियों का चित्रण इनकी कविताओं की मूल विशेषता है । जीवन की क्षण भंगुरता की अनुभूति बच्चन में बहुत गहरी है । अपनी निराशा दु:ख और पराजय पर उन्होंने मौज और मस्ती का आवरण डालना चाहा है। फारसी कवि उमर ख़ैयाम के 'दर्शन' का प्रभाव ग्रहण करके उन्होंने हिन्दी में 'हालावाद' को जन्म दिया । 'मधुशाला' ; मधुबाला' आदि उनकी बहुचर्चित और ख़ैयाम दर्शन से प्रभावित कृतियां हैं । निशा-निमंत्रण, एकान्त संगीत, आकुल अंतर , आदि उनकी अन्य महत्वपूर्ण कृतियां हैं, जिनमें निराशा वेदना और पराजय के स्वर प्रधान हैं किन्तु अभिव्यक्ति का सीधापन और अनुभूति का तीखा-पन इन्हें जन-मानस के अधिक निकट ले आता है, इसीलिये लोकप्रियता के क्षेत्र में 'बच्चन' अपने समकालीन कवियों में सब से आगे रहे हैं ।

नरेन्द्र शर्मा (कर्णफूल', 'शूल-फूल', 'प्रभात फेरी, प्रवासी के गीत'), रामेश्वर शुक्ल अंचल (अपराजिता, मधुलिका) गोपाल सिंह नेपाली (पंछी, पंचमी, नवीन) रामधारी सिंह 'दिनकर' (रेणुका, हुंकार, रसवंती) माखनलाल चतुर्वेदी (हिमकिरीटिनी), शिवमंगल सिंह सुमन आदि के नाम भी छायावाद से प्राय: सम्बद्ध किये जाते हैं किन्तु यह कवि पूर्णत: छायावादी प्रवृत्ति के कवि न होकर छायावाद और प्रगतिवाद के सीमावर्ती कवि है । छायावादी शिल्प की अनेक महत्व-पूर्ण विशेषतायें अपनाकर भी उनकी काव्य चेतना का छायावाद के मुख्य कवियों से पार्थक्य स्पष्ट है । किन्तु छायावादी प्रभाव और छायावादी प्रवृत्तियों की यदा कदा झलक इनकी कविताओं में देखकर प्रसंगवश छायावाद के साथ इनका भी नामोल्लेख किया जाता है ।

इन कवियों के अतिरिक्त भी छायावादी पद्धति को अपनाकर काव्य-रचना करनेवाले अन्य अनेक कवि मिल सकते हैं ।

द्वितीय अध्याय

छायावादी काव्य में वस्तु-व्यंजना

युग परिवेश और काव्य-विषय - युग की विशिष्ट परिस्थितियों के अनुरूप उस युग की विचारधाराओं का निर्माण होता है, और बदली हुई विचारधाराओं के अनुरूप तद्युगीन साहित्य का विषय-पक्ष निर्धारित होता है। कभी साहित्य में नए-नए विषयों को अपनाने की प्रवृत्ति उदित होती है, कभी विषय परंपरागत ही रहते हैं, किन्तु साहित्यकार की बोध-वृत्ति अथवा युगानुरूप विकसित नव दृष्टि उन विषयों में नयापन ला देती है। नए नए विषयों को अपनाने की प्रवृत्ति के फलस्वरूप कभी विषयों का विस्तार दृष्टिगत होता है और कभी सीमित दायरे में ही काव्य रचना के परिणामवश विषय-संकोच हो जाता है।

बाह्य परिस्थितियों की जटिलता ने छायावादयुग के कवियों की प्रवृत्ति अंतर्मुखी बना दी थी। उस युग का कवि संपूर्ण सृष्टि को अपने हृदय के रंग में रंग कर ही देखने लगा, अतएव उसके काव्य-विषय विविध होते हुए भी सीमित हो गए। छायावादी कवि को लहलहाती हुई तृण-लतिकाओं, सरोवर की लहरों, आकाश के नक्षत्रों, शिशु-मुख की सरल मुस्कान- सभी में एक ही चेतन सत्ता का आभास हुआ। कवि की अनुभूतियां एक सीमित दायरे में ही चक्कर काटने लगीं। यद्यपि उस सीमित क्षेत्र में जिन विषयों का वर्णन इन कवियों द्वारा हुआ, उनमें गहराई तथा सूक्ष्मता पर्याप्त मात्रा में है।

छायावादी-काव्य के वर्ण्य-विषय - (क) प्रेम नारी पुरुष संबंधी प्रेम तथा अव्यक्त के प्रति जिज्ञासा और प्रणय निवेदन), (ख) प्रकृति-चित्रण, तथा (ग) दार्शनिक चिंतन, ये ही वे मुख्य विषय हैं जिन पर संपूर्ण छायावादी काव्य आधारित है। पूर्वार्द्ध की अपेक्षा छायावाद युग के उत्तरार्द्ध में काव्य-विषय का क्षेत्र और भी अधिक संकुचित हो गया था। उस काल के व्यक्तिवादी कवियों ने केवल 'प्रेम' को अपना मुख्य काव्य-

विषय बनाया और प्रेम के अन्तर्गत भी विरह जन्य पीड़ा, कसक, अतृप्त काम-वासना, निराशा और मृत्यु की ही विशेष चर्चा की । प्रारंभिक युग की आदर्शवादिता त्यागकर उत्तरार्द्ध कालीन कविता यथार्थ की भूमि ग्रहण करने के लिए सचेष्ट दिखाई देती है, तथापि कुल मिलाकर देखा जाय तो छायावादी काव्य का प्रमुख वर्ण्य विषय - आदर्शोन्मुख उदात्त प्रेम का चित्रण ही है ।

(क) प्रेम - छायावादी कवियों की समस्त अनुभूतियाँ मुख्यत: इस एक ही धुरी के चारों ओर चक्कर काटती दिखाई देती है । उनकी दृष्टि में प्रेम दैहिक सीमाओं से मुक्त और जीवन के लिये परम आवश्यक तत्व है -

" अनिल सा लोक लोक में
हर्ष में और शोक में
कहाँ नहीं है प्रेम, साँस सा सब के उर में ?"[1]

मध्ययुग में गोस्वामी तुलसीदास ने " भक्ति " को जीवन का सर्वस्व बताया था -

" सोइ सर्वज्ञ गुणी, सोइ ज्ञाता, सोइ महि मंडल पंडित दाता ।
धर्म परायण सोइ कुल त्राता, रामचरन जाकर मन राता ।।
नीति निपुण सोइ परम सुजाना, श्रुति सिद्धांत नीक तेहि जाना ।
सोइ कवि कोविद, सोइ रनधीरा, जो छल छाँड़ि भजे रघुबीरा " ।।[2]

इसी प्रकार छायावादी कवियों ने प्रेम को जीवन दर्शन के रूप में स्वीकार किया । " प्रसाद " का कथन है -

" किसी मनुज का देख आत्मबल चाहे कोई कितना ही
करे प्रशंसा, किन्तु हिमालय सा ही जिसका हृदय रहे
और प्रेम करुणा गंगा यमुना की धारा बही नहीं,
कौन कहेगा उसे महान, न मरु में उसमें अन्तर है ।"[3]

१- सुमित्रानन्दन पन्त, आधुनिक कवि " स्नेह ", पृष्ठ ७ ।
२- रामचरितमानस - उत्तर काण्ड, ।।१२७।।
३- जयशंकर प्रसाद - प्रेम पथिक " - पृष्ठ २२ ।

प्रेम मानव-मन की शाश्वत अनुभूति है और उसकी सज्जात वृत्तियों में सर्वाधिक महत्वपूर्ण है । इसी कारण साहित्य में प्रेम के विविध रूपों का चित्रण आदि-युग से प्राप्य है । छायावादी काव्य में भी प्रेम के भौतिक तथा आध्यात्मिक दोनों रूपों का वर्णन विशदता से किया गया है ।

लौकिक प्रेम - छायावादी काव्य में वर्णित लौकिक अथवा मानवीय प्रेम की सर्वाधिक महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि उसमें वैयक्तिक अभिव्यक्तियाँ की गई है, अर्थात् छायावादी कवियों ने स्वयं को अपने काव्य का नायक मानकर अपने भोगे हुए सुख-दु:ख, हर्ष-शोक, प्रणय-वैराग्य को काव्यात्मक स्वरों में व्यक्त किया है । यह सत्य स्वीकार्य है कि रचनाकार का, चाहे वह चित्रकार, मूर्तिकार उपन्यास लेखक कहानी लेखक अथवा कवि कुछ भी हो, अपना व्यक्तित्व उसकी कृति में प्रतिबिम्बित होता है, लेकिन छायावादी कवियों का व्यक्तित्व उनकी रचनाओं में मात्र प्रतिबिम्बित न होकर पूर्णत: मुखर हुआ है । इन कवियों ने अपने अंत:करण के आलोड़न-विलोड़न को निस्संकोच रूप में शाब्दिक अभिव्यक्ति दी है । इसके पूर्व, वीरगाथा काल और रीतिकाल की कविता केवल बाह्य वर्णनों में उलझी रही थी । मध्ययुगीन भक्ति-काव्य के अन्तर्गत सूर-तुलसी सदृश कवियों की रचनाओं में अनुभूति की तीव्रता अवश्य है किन्तु उन्होंने अपना लक्ष्य उपास्य के प्रति आत्म निवेदन ही रक्खा है, इसी कारण अपने निजी जीवन की घटनाओं के संबंध में वे प्राय: मौन ही रहे हैं । यह और बात है कि प्रसंगवश और अनायास उनके द्वारा कुछ ऐसी उक्तियाँ भी हो गई हों, जिनके द्वारा उनके व्यक्तिगत जीवन की कुछ झलक मिल सके । भक्ति युग में मीराबाई अवश्य एक मात्र ऐसी कवयित्री हुई हैं जिनके काव्य में उनका निजी सांसारिक जीवन बहुधा मुखर होता हुआ दिखाई देता है ।

भारतेन्दु युग का काव्य भी मुख्यत: समष्टिगत अभिव्यक्तियों पर आधारित है । द्विवेदीयुग की कवितायें विशेष रूप से इतिहास, पुराण, काव्य-शास्त्र तथा शुष्क यथार्थवाद के बंधन में इतनी जकड़ी हुई थी कि कवि को अपने मन की बात कहने का अवसर ही नहीं मिला । छायावादी काव्य में इसी की प्रतिक्रिया उद्दाम वैयक्तिकता के रूप में फूट पड़ी । महादेवी वर्मा के शब्दों में - "छायावाद जन्म से

प्रेम कविता के बंधन सीमा तक पहुँच चुके थे और सृष्टि के बाह्याकार पर इतना अधिक लिखा जा चुका था कि मनुष्य का हृदय अपनी अभिव्यक्ति के लिये रो उठा ।"[१]

छायावाद पूँजीवादी युग का साहित्य है, पूँजीवाद का व्यक्ति स्वातंत्र्य का सिद्धान्त ही छायावादी काव्य में वैयक्तिक अभिव्यक्तियों के रूप में प्रतिफलित हुआ । पूर्ववर्ती कवियों की भाँति अपने व्यक्तित्व को परोक्ष न रखकर छायावादी कवियों ने 'आप बीती' के आख्यानों द्वारा भाव संवेदन की चेष्टा की । किसी उच्च कुलोद्भव प्रख्यात नायक की खोज न करके उन्होंने अपनी आन्तरिक भावनाओं प्रणय, व्यापारों, विरह-मिलन की स्थितियों का खुलकर वर्णन किया । उदाहरणार्थ 'प्रेयसी' में प्रथम मिलन की घटना का उल्लेख करते हुए पंत लिखते हैं -

" मंजरित आम्र वन छाया में हम प्रिये मिले थे प्रथमबार
ऊपर हरीतिमा नभ गुंजित नीचे चंद्रातप छना स्फार ।।

+ + + +

छनती थी ज्योत्स्ना शशि मुख पर मैं करता था मुख-सुधा-पान
कूकी थी कोकिल हिले मुकुल, भर गए गंध से लुब्ध प्राण ।।"[२]

इसी प्रकार नरेन्द्र शर्मा अपने व्यक्तिगत जीवन की नितान्त गोपनीय घटना को भी स्वच्छन्दतापूर्वक कह डालते हैं -

" तुम्हें याद है क्या उस दिन की, नए कोट के बटन होल में हँसकर
प्रिये लगा दी थी जब वह गुलाब की लाल कली ।
फिर कुछ शरमाकर साहस कर बोली थी तुम ,
इसको यों ही खेल समझकर फेंक न देना , है यह प्रेम-भेंट पहली ।
कुसुम कली वह कब की सूखी, फटा ट्वीड का नया कोट भी
किन्तु बसी है सुरभि हृदय में जो उस कलिका से निकली ।।"[३]

१- महादेवी वर्मा - यामा, भूमिका, पृष्ठ ११ ।

२- सुमित्रानन्दन पन्त - युगान्त, पृष्ठ ४० ।

३- नरेन्द्र शर्मा - प्रवासी के गीत , संख्या ४८, पृष्ठ ७२ ।

वैयक्तिकता के स्वरों के मिश्रण से ही छायावाद की लौकिक प्रेम-विषयक रचनायें अपने स्वरुप में पूर्ववर्ती युगों से सर्वथा भिन्न दिखाई देती हैं। वीरगाथाकाल में वीर भावना के प्राधान्य के कारण प्रेम और श्रृंगार की भावनायें एक तो अधिक विकास नहीं पा सकी, दूसरे उनका रुप सर्वथा दैहिक और नखशिख वर्णन तक ही सीमित रहा। भक्तियुग में सूर ने विशेष रुप से 'प्रेम' को अपना काव्य-विषय बनाया है और राधा कृष्ण एवं गोपिकाओं की प्रेम क्रीड़ाओं का विशदता से वर्णन किया है, किन्तु सूर के काव्य में प्रेम की जो मंदाकिनी प्रवाहित हुई है, उसकी पृष्ठभूमि आध्यात्मिक है। रीतिकाल 'प्रेम' और श्रृंगार संबंधी काव्य-रचना का काल होते हुए भी सामान्य मानवीय प्रेम की झांकी प्रस्तुत करने में असमर्थ रहा है। काव्य शास्त्रीय सरणि पर रस-परिपाक का लक्ष्य लेकर चलनेवाले उस युग के कवियों ने नायक नायिकाओं के हाव-भाव और मान-कलह एवं रति क्रीडाओं तथा विरह दशाओं का वर्णन पूर्ण तत्परता से किया है, किन्तु उनमें सामान्य मनुष्य के प्राणों का स्पंदन कहीं नहीं सुनाई पड़ता। भारतेन्दु युग के प्रेम वर्णनों में भी किसी प्रकार के औदात्य अथवा नवीनता के दर्शन नहीं होते। रीतिकालीन परंपरा ही उस समय तक मान्य रही है जिसमें मार्मिकता कम और चमत्कार प्रदर्शन की प्रवृत्ति अधिक है। द्विवेदीयुग का काव्य नैतिक रुढ़ियों में इतना अधिक जकड़ा हुआ था कि उस युग के कवियों के लिये व्यक्तिगत प्रेम-विरह का गान अशोभनीय ही नहीं, अकल्पनीय था। छायावाद युग में द्विवेदी युग की नीरसता के विरुद्ध प्रतिक्रिया हुई और काव्य के अन्तर्गत पहली बार स्वस्थ मानवीय प्रेम की रागिनी सुनाई पड़ी। छायावाद में वर्णित प्रेम का स्वरूप अत्यन्त उज्ज्वल, उदात्त और स्फूर्तिदायक है। उसमें शारीरिक पुकार कम तथा आत्मा की अंधेरी गलियों को उजागर करनेवाला प्रकाश और सूक्ष्मातिसूक्ष्म भावनाओं का स्पंदन अधिक है। इसी विशिष्टता के कारण छायावादी लौकिक प्रेम-चित्रों में भी कहीं कहीं अतीन्द्रियता का आभास होता है और पूर्ववर्ती युगों से उनका रुप सर्वथा भिन्न दिखाई देता है। पूर्ववर्ती कवियों के प्रति इस प्रसंग को लेकर छायावादी कवियों के हृदय में कितना क्षोभ और आक्रोश था, इसका सहज अनुमान पंत के इस वक्तव्य द्वारा किया जा सकता है - " श्रृंगार प्रिय कवियों के लिये शेष रह ही क्या गया था ?

उनकी अपरिमेय कल्पना अधिक कामना के धागों में द्रौपदी के दुकूल की तरह फैलकर नायिका के अंग-प्रत्यंग में लिपट गई। बाल्यकाल से वृद्धावस्था पर्यन्त जब तक कोई चंद्रवदनी मृगलोचनी तरुण आकर उनसे बाबा न कह दें - उनकी रस-लोलुप लुब्धतम दृष्टि केवल नख से शिख तक, दक्षिणी ध्रुव से उत्तरी ध्रुव तक यात्रा कर सकी। ऐसी विश्वव्यापी अनुभूति। ---- इसी विराट रूप का दर्शन कर वह पुष्प-धनुर्धर कवि रति के महाभारत में विजयी हुए। समस्त देश की वासना के बीभत्स समुद्र को मथ कर इन्होंने कामदेव को नव जन्म दे दिया, वह अब सहज ही भस्म हो सकता है ?'[१]

परंपरा से चली आती हुई किसी विचारधारा का प्रवाह मोड़ देना तथा किसी प्रचलित परिपाटी को छिन्न-भिन्न करके किसी नए विचार, नूतन परंपरा की प्रतिष्ठा करना वास्तव में सरल नहीं है तथापि छायावादी कवियों ने इसे भी संभव कर दिखाया। साहित्य क्षेत्र में 'पुरातन मदन दहन' का नारा तीव्रतम रूप में गूंज उठा और रीतिकालीन वासनाजन्य प्रेम-चित्रण से भिन्न 'प्रेम' के ऐसे पावन रूप के दर्शन होने लगे, जिसमें 'पाने' से अधिक 'देने' का महत्व था -

'पागल रे वह मिलता कब ?
उसको तो देते ही है सब
आँसू के कन कन से गिनकर
यह विश्व लिये है ऋण उधार
तू क्यों फिर उठता है पुकार ?
मुझको न मिला रे कभी प्यार।'[२]

<u>प्रेम का संयोग पक्ष</u> - छायावादी कवियों ने प्रेम के 'संयोग' और 'वियोग' दोनों पक्षों का समान महत्व स्वीकार किया है -

'मानव जीवन वेदी पर परिणय हो विरह मिलन का
दुख सुख दोनों नाचेंगे, है खेल आंख का, मन का।'[३]

१- सुमित्रानन्दन पन्त - पल्लव, भूमिका, पृष्ठ ८।
२- जयशंकर प्रसाद - लहर, पृष्ठ ३६।

परन्तु विरह व्यंजना में ही छायावादी कवियों की प्रवृत्ति अधिक रमी है । संयोग पक्ष की शुद्ध श्रेणी में आनेवाला अंश छायावादी काव्य में अपेक्षाकृत बहुत कम है । रुप-सौन्दर्य-चित्रण संबंधी जो उक्तियाँ मिलती हैं, उनमें से अधिकांश या तो पूर्वानुराग के रुप में है या विरह काल में मिलन के क्षणों की स्मृति रुप में ।

पूर्वानुराग का श्रेष्ठ उदाहरण पंत की " भावी पत्नी के प्रति " कविता में मिलता है । रीतिकालीन प्रथम समागम के वासनात्मक चित्रों की तुलना में सात्त्विकता और संयम की दीप्ति से पूर्ण यह चित्र अवलोकनीय है -

" अरे वह प्रथम मिलन अज्ञात ।
विकंपित मृदु उर पुलकित गात ।
सशंकित ज्योत्स्ना सी चुपचाप,
जड़ित पद नमित पलक दृग पात ।
पास जब आ न सकोगी प्राण
मधुरता में सी मरी अजान
लाज की छुई मुई सी म्लान ।
प्रिये । प्राणों की प्राण ।।[१]

शुद्ध संयोग पक्ष का सुन्दरतम रुप प्रसाद की कामायनी के मनु-श्रद्धा परिचय में प्राप्त होता है । " आदि पुरुष " और " आदि नारी " के प्रथम मिलन का इतना भव्य, चित्रमय तथा आकर्षक वर्णन संभवतः संपूर्ण हिन्दी काव्य में अनूठा है । सहसा जीवन की अज्ञात डगर पर अप्रत्याशित रुप से मिलनेवाले अपने आकर्षण केन्द्र मनु को देखकर श्रद्धा का यह प्रश्न कितना भावपूर्ण है -

" कौन तुम संसृति जलनिधि तीर
तरंगों से फेंकी मणि एक ।
कर रहे निर्जन का चुपचाप
प्रभा की धारा से अभिषेक "?[२]

१- सुमित्रानन्दन पन्त - गुंजन ,पृष्ठ ४२ ।
२- जयशंकर प्रसाद - कामायनी- श्रद्धा सर्ग , पृष्ठ ५३ ।

श्रद्धा के प्रश्न पर मनु का उत्तर और श्रद्धा से उसका परिचय पूछने का ढंग भी अत्यन्त मनोहारी और नयापन लिये हुए है :-

" कौन हो तुम वसंत के दूत ?
विरस पतझड़ में अति सुकुमार
घन तिमिर में चपला की रेख
तपन में शीतल मंद बयार ।।
नखत की आशा किरण समान
हृदय के कोमल कवि की कान्त
कल्पना की लघु लहरी दिव्य
कर रही मानस हलचल शान्त ।।"[१]

इस प्रकार के गंभीर वासना-रहित, नायक-नायिका के मिलन चित्रों को पूर्व युगों में खोज पाना कठिन है । इन्हें पढ़ते समय पाठक अपने को मांसलता से ऊपर उठकर भावों की पांखों पर उड़ता हुआ सा अनुभव करता है, क्योंकि इनमें शारीरिक आकर्षण की अपेक्षा हृदयगत सूक्ष्म भावों की अभिव्यक्ति को अधिक महत्व दिया गया है।

ऐन्द्रिय वर्णनों तथा आलिंगन -चुम्बन आदि के दृश्यों में भी छायावादी कवियों ने अपूर्व संयम, शालीनता और औदात्यपूर्ण शैली का सहारा लिया है । प्रेम के उज्ज्वल रूप की झांकी ही इन्हें प्रिय रही है । उदाहरणार्थ प्रसाद की निम्न पंक्तियां द्रष्टव्य है :-

" फिर कह दोगे पहचानो तो मैं हूं कौन बताओ तो ।
किन्तु उन्हीं अधरों से पहले उनकी हंसी दबाओ तो ।।
सिहर भरे निज शिथिल मृदुल अंचल को अधरों से पकड़ो ।
बेला बीत चली है चंचल बाहुलता से आ जकड़ो ।।"[२]

१- जयशंकर प्रसाद - कामायनी - श्रद्धासर्ग, पृष्ठ ५८ ।
२- ,, - लहर, पृष्ठ १०।

आलिंगन का इतना सुन्दर- संयमित चित्र छायावाद के पूर्व अन्य युगों में दुर्लभ है ।

इसी भाँति पंत द्वारा चित्रित प्रिय सामीप्य का यह दृश्य भी मनोरम है :-

" उषा की स्वर्णोदय पर भोर ,
दिखा मुख कनक किशोर ।
प्रेम की प्रथम मदिरतम कोर,
दृगों में दुरा कठोर ।
छा दिया यौवन-शिखर कठोर
रूप-किरणों में बोर ,
सजा तुमने मुख स्वर्ण सुहाग,
लाज लोहित अनुराग ।। "[१]

परन्तु छायावादी काव्य में " कामावृत्तियों के प्रच्छन्न पोषण " होने की रामचन्द्र शुक्ल द्वारा कही गई बात भी मिथ्या नहीं है । छायावादी काव्य में प्रेम के कहीं-कहीं बड़े ही मांसल और स्थूल चित्र भी दिखाई देते हैं जो उसे रीति-कालीन शृंगारिक काव्य परंपरा के अत्यन्त निकट पहुंचा देते हैं जैसे :-

" सोती थी ।
जाने कैसे प्रिय आगमन वह ।
नायक ने चूमे कपोल
डोल उठी वल्लरी की लड़ी जैसे हिंडोल ।
इस पर भी जागी नहीं, चूक क्षमा मांगी नहीं ।
निद्रालस बंकिम , विशाल नेत्र मूंदे रही
अथवा मतवाली थी ।
यौवन की मदिरा पिये कौन कहे ?
निर्दय उस नायक ने निपट निठुराई की,

१- सुमित्रानन्दन पन्त - गुंजन, पृष्ठ ६३ ।

कि झोंकों की झड़ियों से
सुन्दर सुकुमार देह सारी झकझोर डाली ।
मसल दिये गोरे कपोल ।
चौंक पड़ी युवती ।
चकित चितवन निज चारों ओर फेर
हेर प्यारे को सेज पास
नम्र मुख हँसी खिली
खेल रंग प्यारे संग "।[१]

अथवा -

"बंद कंचुकी के सब खोल दिये प्यार से
यौवन उभार ने
पल्लव पर्यंक पर सोती शेफालिके
मूक आह्वान भरे लालसी कपोलों के
व्याकुल विकास पर
झरते हैं शिशिर से चुम्बन गगन के ।[२]

इनमें विशेषता इतनी ही है कि मानव के बदले "प्रकृति" का आधार ग्रहण किया गया है ।

छायावाद के द्वितीय उत्थान के कवियों नरेन्द्र शर्मा, अंचल, भगवती चरण वर्मा आदि में यह मांसलता और अधिक उभरी है । इनकी रचनाओं में संयम और सात्विकता के बदले आवेश, उन्माद और वासना के रंगों की प्रखरता लक्षित होती है, उदाहरणार्थ -

"यह तन्मयता की बेला है, यह है संयोग की रात प्रिये
अधरों से कह ले आज अधुर जी भर कर अपनी बात प्रिये ।
मुख से सुरभित इन श्वासों में कितना मधुमय उच्छ्वास भरा
इन अलस अधखुली आँखों में कितना मादक उल्लास भरा ॥

१- सूर्यकान्त त्रिपाठी "निराला" - परिमल - जूही की कली, पृष्ठ १६२-१६३ ।
२- सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' - परिमल - शेफालिका, पृष्ठ १७६ ।

प्राणों का होगा आज मिलन कंपित है पुलकित गात प्रिये ,
तुम हो मोहिनि मैं विह्वल स्वप्न, यह है संयोग की रात प्रिय ।।[1]

तथा -

" तुम्हें न जाने दूंगी अब तो मेरे सरस बटोही ।
देखूं कैसे भाग सकोगे है मेरे निर्मोही ।
कल । कल की कल है हे पर मैं आज न जाने दूंगी ।
व्याप रही कैसी मादकता, आज तुम्हें हर लूंगी ।।"[2]

<u>रूप वर्णन</u> : संयोगावस्था में " प्रिय " के रूप चित्रण की साहित्यिक परंपरा रही है । इसी परंपरा के अन्तर्गत रीतिकालीन कवियों का नख-शिख-वर्णन भी आता है । इसी परंपरा को यथारूप नहीं, किन्तु प्रकारान्तर से छायावादी काव्य में भी देखा जा सकता है । " बिहारी " का सुप्रसिद्ध दोहा है -

" पत्रा ही तिथि पाइये वा घर के चहुं पास ।
नित प्रति पून्यौई रहत, आनन ओप उजास ।।"[3]

उक्त दोहे में " नायिका " का मुख चंद्रमा के समान सुंदर बताया गया है । इसी बात को छायावादी कवि प्रसाद अपने ढंग से कहते हैं :-

" बांधा था विधु को किसने
इन काली जंजीरों से
मणिवाले फणियों का मुख
क्यों भरा हुआ हीरों से ?"[4]

दोनों कवियों की उक्तियों का अंतर स्पष्ट है । बिहारी ने ऊहात्मक पद्धति का आश्रय लिया है, इस कारण उनका वर्णन गाम्भीर्य रहित और

१- भगवती चरण वर्मा - प्रेम संगीत , पृष्ठ ४५ ।
२- रामेश्वर शुक्ल अंचल - किरणबेला, पृष्ठ ६४ ।
३- लाला भगवान दीन - बिहारी बोधिनी, दो०नं० १०२, पृ० ३६ ।
४- जयशंकर प्रसाद - आंसू ,पृष्ठ २१ ।

बनावटी सा प्रतीत होता है, किन्तु प्रसाद के कथन के ढंग में स्वच्छता और कुछ रहस्य की सी छाया है, अतएव वे जब नायिका के मुख को चन्द्रमा के समान सुन्दर बताते हैं तो न अतिशयोक्ति जान पड़ती है, और न बनावटीपन का आभास होता है ।

छायावादी कवियों को चक्षु-सौन्दर्य ने सर्वाधिक विमोहित किया है । परंपरागत रूपों में उन्होंने नेत्रों को खंजन, मीन, चातक , भृंग, चकोर मृग और कमल की उपमायें दी हैं, किन्तु कथन का ढंग उनका मौलिक और आकर्षण मय है । पंत की प्रेयसी के नील कमलवत् सुन्दर नेत्रों की छटा दर्शनीय है । मन रूपी भ्रमर जो उस छवि पर मुग्ध होकर पुतली के रूप में बंदी बना गया है -

" नील नलिन सी हैं वे आंख
जिनमें बस उर का मधुबाल
कृष्णकली बन गया विशाल
नील सरोरुह सी वे आंख "।।[1]

नेत्रों के वर्णन-क्रम में पुतली, पलक, अपांग, बरौनी और भ्रू को भी रूपायित किया गया है -

" तिर रही अतृप्ति जलधि में नीलम की नाव निराली ।
काला पानी वेला सी है अंजन रेखा काली "।।[2]
(पुतली)

" अंकित कर क्षितिज पटी को तूलिका बरौनी तेरी ।
कितने घायल हृदयों की बन जाती चतुर चितेरी "।।[3]
(बरौनी)

" कोमल कपोल पाली में सीधी सादी स्मित रेखा ।
जानेगा वही कुटिलता जिसने भौं में बल देखा "।।[4]
(भौंह)

१- सुमित्रानन्दन पन्त - गुंजन, पृष्ठ ५७ ।
२- जयशंकर प्रसाद - आंसू , पृष्ठ २२ ।
३- वही ।
४- वही ।

मुख मण्डल में अधर दशन का सौन्दर्य महत्वपूर्ण स्थान रखता है, जिसे छायावादी कवि भूले नहीं हैं। कालिदास ने जिस 'अधर : किसलय राग :'[1] की परिकल्पना की थी उसे परंपरानुसार इन्होंने भी दुहराया -

-" ऊषा सस्मित किसलय दल -----"[2]

-" किसलयों के अधर यौवन मद रक्ताभ -----"[3]

-" कांपते हुए किसलय ------"[4]

सुंदर दांतों की तुलना मोतियों से और भी अनेक कवियों ने की है, किन्तु प्रसाद के कथन का मौलिक ढंग उस सौन्दर्य को और भी वैशिष्ट्यमय बना देता है :-

-" विद्रुम सीपी संपुट में, मोती के दाने कैसे ?
है हंस न शुक यह फिर क्यों चुगने को मुक्ता ऐसे ?"[5]

मोती से सुन्दर दांतोंवाली नायिका का हास भी कुछ अनोखा ही होता है :-

" विकसित सर सिज वन वैभव
मधु ऊषा के अंचल में।
उपहास करावे अपना
जो हंसी देख ले पल में।।"[6]

पूर्व युगों की समस्त सुन्दर काव्य-नायिकाओं का मंजुल हास्य इस छवि के सम्मुख फीका पड़ जाता है।

१- कालिदास - अभिज्ञान शाकुन्तलम् , पृष्ठ ११० , १, २० ।

२- सुमित्रानन्दन पन्त - पल्लव, पृष्ठ ३७ ।

३- सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला - अनामिका,पृष्ठ २२।

४- वही, पृष्ठ १५।

५- जयशंकर प्रसाद , आंसू, पृष्ठ २२ ।

६- वही, पृष्ठ २३ ।

' नासिका ' का सौन्दर्यांकन भी परंपरानुसार किन्तु कथन-वैशिष्ट्य के कारण परंपरा मुक्त दिखाई देता है। प्रसाद को लम्बी, पतली और नुकीली नासिका विशेष प्रिय है, नुकीलेपन के कारण ही छायावादी कवियों ने ' शुकनासा ' का समर्थन किया है - ' है संघ न, शुक यह,[1] निराला ने ' मीन मदन फाँसने की बंसी सी विचित्र नासा '[2] की उद्भावना की है।

मुख सौन्दर्य का निरूपण करते हुए छायावादी कवियों ने कपोलों की सुन्दरता का वर्णन अत्यन्त भाव विभोर होकर किया है। वर्ण, गठन और स्निग्धता, इन तीन दृष्टियों से कपोलों की सराहना की गई है। ' गोरे कपोल ' इन कवियों को विशेष आकर्षक प्रतीत हुए हैं, उदाहरणार्थ -

' चिर चुंबित सस्मित गोरे गाल[3]

गोरे कपोल--- गोल कपोल ---, गोरे कपोल गोल ----[4]

कपोलों की अरुण-आभा इन्हें और भी रुचिकर हुई है।

पंत ने ' उज्ज्वलारुण ', ' मधूक ' से मदिर और गुलाबी पाटल सदृश आरक्त कपोलों की बहुशः आवृत्ति की है।[5] प्रसाद ' अरुण कपोलों की मतवाली सुन्दर छाया '[6] पर मुग्ध दिखाई देते हैं।

मुखावलोकन करते हुए छायावादी कवि चिबुक रचना से भी परांगमुख नहीं हुए हैं। ' चारु चिबुक की मृदुता '[7] इन्हें प्रिय लगी है।

मुख के अतिरिक्त कंठ (कपोत कंठ)[8], बाहु भुजदण्ड (अलबेली

१- जयशंकर प्रसाद ' आँसू , पृष्ठ २३ ।

२- सूर्यकान्त त्रिपाठी ' निराला ' परिमल, पृष्ठ २३३ ।

३- सुमित्रानन्दन पन्त ' पल्लव ' , पृष्ठ ११३ ।

४- सूर्यकान्त त्रिपाठी ' निराला ', परिमल, पृष्ठ १२३,१२०,१७२ ।

५- सुमित्रानन्दन पन्त, गुंजन, पृष्ठ ५६ ।

६- जयशंकर प्रसाद ' लहर ' , पृ० ११ ।

७- सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला , परिमल, पृष्ठ १८१ ।

८- वही, पृष्ठ २३४ ।

बाहुलता)[१] वक्ष (नमित दृष्टि से देख उरोजों के युग-घट --)[२] (प्रियकर कठिन उरोज परस कस-कसक मसक गई चोली)[३] कटि (क्षीणकटि)[४] उदर त्रिवली - (त्रिवली थी तरल तरंगमयी ---[५] चरण (विलोल हिल्लोल विलोड़ित चरण)[६] करतल (बंधुक की मृदु हथेली)[७] (पल्लव सदृश हथेली)[८] आदि अंगों का सौन्दर्यांकन छायावादी कवियों ने परंपरानुसार किया है क्योंकि मानवीय नारी पुरुष संबंधी प्रेम का आलंबन शारीरिक सौन्दर्य ही है । किन्तु यह सौन्दर्य वर्णन नख-शिख वर्णन की परंपरा के परिपालन का लक्ष्य लेकर नहीं किया गया है, अतः वह क्रमबद्ध रूप में नहीं है । छायावादी कवियों की कथन की शैली भी पूर्व युगों से भिन्न थी दूसरे अंतर्मुखी प्रवृत्ति के फलस्वरूप इन कवियों ने सूक्ष्म सौन्दर्य को उद्‌घाटित करने में ही रुचि दिखाई है, इस कारण इस क्षेत्र में छायावादी रचनायें पूर्ववर्ती काव्य श्रृंखला से पृथक स्वतंत्र मुक्ता लड़ियाँ जैसी दीप्तिमय हैं ।

<u>प्रेम का वियोग पक्ष</u> : छायावादी कवियों की धारणा के अनुसार "विरह प्रेम की जाग्रत गति है, और सुषुप्ति मिलन है ।" इसी कारण प्रेम के संयोग पक्ष की व्यंजना में इनका मन अधिक प्रवृत्त हुआ है । विरह जन्य वेदना का रूप इनके लिये इतना अधिक व्यापक और विशद है कि संपूर्ण सृष्टि उससे प्रभावित दिखाई देती है :

" वेदना ही है अखिल ब्रह्माण्ड यह ।
तुहिन में तृण में उपल में लहर में
तारकों में । व्योम में है वेदना ।।

१- जयशंकर प्रसाद , आँसू, पृष्ठ २४ ।
२- सुमित्रानन्दन पन्त , ग्राम्या, पृष्ठ १८ ।
३- सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला', गीतिका ,पृष्ठ ४१ ।
४- सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला, परिमल, पृष्ठ २३४ ।
५- जयशंकर प्रसाद , कामायनी, पृष्ठ १६८ ।
६- सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' , परिमल, पृष्ठ ५४ ।
७- सुमित्रानन्दन पन्त , ग्रन्थि, पृष्ठ ११ ।
८- जयशंकर प्रसाद , कामायनी, पृष्ठ १२६ ।

वेदना कितना विशद यह रूप है,
यह अँधेरे हृदय की दीपक शिखा [1]

सामान्यतः समस्त छायावादी कवियों ने प्रिय- वियोग की पीड़ा और विरह-व्यथा का चित्रण विशदता से किया है । विरह काव्य के क्षेत्र में जयशंकर प्रसाद के "आँसू" का नाम सर्वप्रथम उल्लेखनीय है । "आँसू" में कवि प्रसाद के हृदय की निगूढ़ विरहानुभूति अत्यन्त मार्मिक और सजीव रूप में प्रकट हुई है । कवि ने अपनी व्यक्तिगत वेदना को विश्व-वेदना में समाहित करते हुए अपने आँसुओं को अत्यन्त भव्य और लोकमंगलकारी रूप प्रदान किया है । अनुभूति की तीव्रता , वेदना के उदात्तीकरण तथा अभिव्यक्ति के सशक्त और मौलिक रूप आदि अनेक दृष्टियों से "आँसू" हिन्दी विरह काव्यों की परंपरा में सर्वथा अनूठा काव्य है ।

सुमित्रानन्दन पंत की "ग्रंथि" में भी विरह की उत्कृष्ट व्यंजना हुई है । "ग्रन्थि" का संपूर्ण कथानक निम्न उद्धृत चार पंक्तियों में स्पष्ट हो जाता है -

" हाय मेरे सामने ही प्रणय का ग्रंथि बंधन हो गया, वह नव कमल
मधुप सा मेरा हृदय लेकर, किसी अन्य मानस का विभूषण हो गया ।
पाणि । कोमल पाणि !! निज बंधूक की मृदु हथेली में सरल मेरा हृदय
भूल से यदि ले लिया था तो मुझे, क्यों न वह लौटा दिया तुमने पुनः ?"

निराला भी प्रिय वियोग और स्नेहाभाव की तीव्र व्यथा से मर्माहत हुए हैं :-

" मुझे स्नेह क्या मिल न सकेगा ?
स्तब्ध दग्ध मेरे मरु का तरु
क्या करुणाकर खिल न सकेगा " ? [2]

उपर्युक्त प्रश्न कवि की व्याकुलता का साकार चित्र प्रस्तुत करता है तथापि इस प्रकार की विह्वलता निराला में यदा-कदा ही दिखाई देती है ।

१- सुमित्रानन्दन पन्त, ग्रन्थि, पृष्ठ ४१ ।
२- सूर्यकान्त त्रिपाठी "निराला", गीतिका, पृष्ठ ४५ ।

निराला प्रारंभ से ही समाजोन्मुख रहे हैं, उनका ओज-तेज से दीप्त पौरुषमय व्यक्तित्व अन्य छायावादी कवियों की भांति विरह समुद्र में डूबने के बदले पार करने को ही प्रयत्नशील रहा है। परन्तु महादेवी को विरह व्यथा से इतना लगाव है कि वे मिलन का नाम भी नहीं लेना चाहती।[1] उनका संपूर्ण जीवन ही विरहमय है, किन्तु वे विरह को अभिशाप न समझ कर जीवन के लिए वरदान स्वरूप मानती है।

"विरह का जलजात जीवन, विरह का जलजात।
वेदना में जन्म करुणा में मिला आवास।।
अश्रु चुनता दिवस इसका, अश्रु गिनती रात
जीवन विरह का जलजात।।"[2]

मिलन की अपेक्षा विरह की श्रेष्ठता का प्रतिपादन और विरह को इतना अधिक महत्व देने की यह प्रवृत्ति नई नहीं है। संत कवि कबीर ने बहुत पहले कहा था -

"बिरहा बुरहा मत कहौ, बिरहा है सुलतान।
जिस घट बिरह न संचरे, सो घट सदा मसान।।"[3]

सूर ने भी गोपिकाओं के माध्यम से अपने विचार व्यक्त करते हुए लिखा है कि वियोग की पीड़ा सहन किये बिना प्रेम अपनी पूर्णता को नहीं पहुँचता।

"ऊधौ बिरहौ प्रेम करै।
ज्यौं बिन पुट पट गहत न रंगहिं रंग न रसै परै।।"[4]

१- महादेवी वर्मा, यामा (साम्ध्यगीत) पृ० २०३।
२- महादेवी वर्मा, नीरजा, पृष्ठ ९८।
३- कबीर ग्रंथावली, पृष्ठ ६।
४- सूरसागर, पद।३९८६। ४६०४।

प्रेम और श्रृंगार प्रधान काव्यों में विरह-वर्णन संबंधी अनेकानेक मार्मिक उक्तियां पूर्ववर्ती युगों में भी प्राप्य हैं, किन्तु छायावादी काव्य की विरह-व्यंजना मौलिक विशेषताओं से युक्त है। कबीर सदृश संत कवियों ने जो विरहानुभूतियां प्रकट की हैं उनका आधार दार्शनिक है। उनके काव्य में जिस "विरहिणी" का उल्लेख बारंबार हुआ है, वह जीवात्मा रूपी विरहिणी है, जो अपने प्रियतम परम ब्रह्म से मिलनातुर होकर उसके वियोग में निरंतर रुदन करती है। सूफी कवियों ने अन्योक्ति काव्यों की रचना की है। लौकिक प्रेमकथाओं के माध्यम से अलौकिक और रहस्यपूर्ण संकेत देना ही उनका लक्ष्य रहा है। इस प्रकार उनके द्वारा वर्णित विरह-प्रसंग शुद्ध मानवीय अनुभूतियों को प्रतिबिम्बित नहीं करते। भक्ति युग में सूरदास ने विरहिणी गोपिकाओं की वियोग-व्यथा को अत्यन्त विशद और भव्य रूप में प्रस्तुत किया है। किन्तु सूर की गोपिकाएं भी साधारण मानवी न होकर मुक्त आत्मायें हैं जो समस्त लौकिक बंधनों और सामाजिक मर्यादाओं को त्याग कर साक्षात परब्रह्म कृष्ण की "नित्य लीला" में भाग लेने की आकांक्षा रखती हैं, और उसमें क्षणिक बाधा आ पड़ने पर भी विरह-व्यथा से व्याकुल हो उठती हैं। रीतिकालीन काव्य में अवश्य राधाकृष्ण की लीलाओं के चित्रण के बहाने लौकिक नारी-पुरुष के प्रेम-विरह की व्यंजना हुई। लेकिन रीतिकालीन कवियों ने ऊहात्मक शैली ही मुख्यत: अपनाई है, दूसरे उनकी दृष्टि नायक-नायिकाओं के बाह्य शरीर में ही इतनी उलझी रही है, कि उनके हृदयगत सूक्ष्म स्पंदन को वे नहीं सुन सके। इसीलिये रीतिकालीन विरह व्यंजना के चित्र आन्तरस्पर्शी अनुभूति से शून्य, चमत्कारोत्पादक एवं बौद्धिक हैं।

छायावादी कवियों ने विरह वर्णन की कोई बंधी-बंधाई परिपाटी नहीं अपनाई। न उन्होंने "बारहमासे" रचे हैं और न शास्त्र परिगणित विरह-दशाओं का ही वर्णन किया है। परंपरागत अनुभावों और संचारियों की सीमा में बंधकर भी वे नहीं चले हैं। उनकी विरह-व्यंजना सर्वथा मौलिक है। कवि हृदय में समय विशेष पर जो भाव जाग्रत हुए उन्हीं को अत्यन्त सहज और स्वाभाविक रूप में अभिव्यक्ति दे दी गई।

"संयोग" की स्थिति में प्रेम की जो क्रीड़ायें मादक और मोहमयी

होती है, वियोगावस्था में उनकी स्मृति से हृदय पीड़ा से भर उठता है, इस तथ्य को कितने सरल रूप में प्रसाद ने व्यक्त किया है -

" मादक थी, मोहमयी थी, वह मन बहलाने की क्रीड़ा ।
अब हृदय हिला देती है, वह मधुर प्रेम की पीड़ा ।।"[१]

और विरह-काल की यह मनो दशा भी कितनी यथार्थ है -

" सुख आहत, शान्त उमंगें, बेगार साँस ढोने में ।
यह हृदय समाधि बना है, रोती करुणा कोने में ।।"[२]

इसी प्रकार, प्रिय की स्मृति से विकल, विरही कवि के इन उद्गारों की सत्यता में किसे संदेह हो सकता है ?

" मूँद पलकों में प्रिया के ध्यान को
थाम ले अब हृदय इस आह्वान को ।
त्रिभुवन की भी तो श्री भर सकती नहीं
प्रेयसी के शून्य पावन स्थान को ।।"[३]

छायावादी कवि अपने काव्य का " आश्रय " स्वयं है, इसी कारण अपने मन का सच्चा चित्र उतार सकने में वह समर्थ रहा है । सत्यानुभूति पर आधारित ऐसे चित्र पाठक हृदय की संवेदना जाग्रत करते तथा उसे करुणाभिभूत करने में भी सफल रहे हैं । उदाहरणार्थ पंत की ये निम्न उद्धृत पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं :-

" शैवलिनि जाओ मिलो तुम सिन्धु से,
अनिल आलिंगन करो तुम गगन का ।
चंद्रिके चूमो तरंगों के अधर,
उडुगणों गाओ पवन वीणा बजा ।

१- जयशंकर प्रसाद - आँसू, पृष्ठ १२ ।
२- वही ।
३- सुमित्रानन्दन पन्त, पल्लव, आँसू, पृष्ठ २२ ।

पर हृदय सब भाँति तू कंगाल है
उठ किसी निर्जन विपिन में बैठकर
अश्रुओं की बाढ़ में अपनी बिकी
भग्न भावी को डुबा दे आंख सी ।।"[1]

अन्तिम चार पंक्तियों में सुई की नोक जैसी चुभन है जो सीधी हृदय को बेधती है। दूसरी ओर रीतिकालीन विरह-वर्णन के यह चित्र -

"आड़े दै आले वसन जाड़े हूं की रात ।
साहस कै कै नेह बस सखी सबै ढिंग जात ।।"[2]

अथवा -

"सुनत पथिक मुंह माह निसि लुवैं चलत वहि गाम ।
बिन बूझे बिन ही कहे जियति बिचारी बाम ।।"[3]

— उपर्युक्त छायावादी अभिव्यक्तियों की तुलना में कितने हल्के हैं। इनमें कवि की "दूर की सूझ" और सूक्ष्म कलात्मकता अवश्य है किन्तु इनके द्वारा हृदय में संवेदना या करुणा का वह भाव संचरित नहीं होता जो ऐसे वर्णनों में अभीष्ट रहता है।

रीतिकालीन कवि नायक-नायिका के विरह, ताप अथवा शारीरिक कृशता की नाप जोख करने के लिये ही अधिक चिन्तित रहे हैं, इसके विपरीत छायावादी कवि की दृष्टि "वियोगी" के हृदय में उतरकर उसके अंतस्तल की गहन पीड़ा, परवशता, उदासी, हाहाकार और मिलन की आकुलता को पढ़ने का प्रयत्न करती है। परवशता और आकुलता का एक अत्यन्त सजीव और मर्म-स्पर्शी चित्र नरेन्द्र शर्मा की निम्न उद्धृत पंक्तियों में दर्शनीय है -

"आयेगा मधुमास फिर भी, आयेगी श्यामल घटा घिर,
आंख भर कर देख लो पर मैं न आऊंगा कभी फिर।

१- सुमित्रानन्दन पन्त, ग्रन्थि, पृष्ठ ३५ ।
२- लाला भगवानदीन, बिहारी बोधिनी, दो० ४६७ पृष्ठ १७८ ।
३- वही, दो० ४६८ पृष्ठ १७९ ।

प्राण तन से बिछुड़ कर कैसे मिलेंगे ?
आज के बिछुड़े न जाने कब मिलेंगे ।

+ + + +

कब मिलेंगे पूछता जब विश्व से मैं विरह कातर,
कब मिलेंगे ? गूंजता प्रतिध्वनि निनादित व्योम सागर ।
कब मिलेंगे प्रश्न, उत्तर - कब मिलेंगे ?
आज के बिछुड़े न जाने कब मिलेंगे ।"[1]

तिमिराच्छन्न विरह समुद्र को पार करने में अपनी नैन-तरी को अक्षम पाकर कवि बच्चन की यह व्याकुल मनुहार भी सीधी हृदय पर चोट करती है-

" तिमिर समुद्र कर सकी न पार नेत्र की तरी
विनष्ट स्वप्न से लदी, विषाद याद से भरी ।
न कूल भूमि का मिला, न कोर भोर की मिली ।
न कट सकी न घट सकी, विरह घिरी विभावरी ।
कहाँ मनुष्य है जिसे कमी खली न प्यार की ।
इसीलिये खड़ा रहा कि तुम मुझे दुलार लो "।[2]

' बिहारी ' के एक सुप्रसिद्ध दोहे[3] की नायिका प्रिय से विरह के कारण इतनी दुर्बल हो गई है कि श्वास प्रश्वास के साथ छ: सात हाथ इधर उधर हिलती डोलती रहती है। लेकिन छायावादी कवि ' निराला ' प्रिय के सामीप्य और स्नेह से शून्य जीवन का चित्र कुछ और ही ढंग से प्रस्तुत करते हैं -

' स्नेह निर्झर बह गया है
रेत ज्यों तन रह गया है ।
आम की यह डाल सूखी जो दिखी
कह रही है - अब यहाँ पिक या शिखी

१- नरेन्द्र शर्मा - प्रवासी के गीत, पृष्ठ १५-१६ ।
२- हरिवंशराय बच्चन - सतरंगिनी - मुझे पुकार लो , पृष्ठ १२६ ।
३- लाला भगवान दीन , बिहारी बोधिनी, दोहा ४६६ , पृष्ठ २७६ -
" इत आवत चलि जात उत चली छ सातक हाथ ।
चढ़ी हिंडोरैं सी रहै, लगी उसासनि साथ ।।"

नहीं जाते, पंक्ति में वह हूँ लिखी
नहीं जिसका अर्थ, जीवन ढह गया है"।।[1]

प्राकृतिक उपकरणों के माध्यम से इसमें विरहीमन की उदासी और सूनेपन की अनुभूति को इतना साकार कर दिया गया है कि पाठक स्वयं को भी उन्हीं अनुभूतियों और विषादमय वातावरण से घिरा हुआ सा अनुभव करता है।

विरह व्यंजना के क्षेत्र में छायावादी काव्य में एक अन्य महत्वपूर्ण विशेषता लक्षित होती है, वह है उनकी विरह-संबंधी उक्तियों में बहुधा व्याप्त रहने वाली "स्मृति से पुलकित एक आनन्द भरी मस्ती" जो अन्य युगों की रचनाओं में अप्राप्य है।[2] प्रसाद, पंत, निराला, महादेवी आदि सभी प्रमुख छायावादी कवियों की रचनाओं में यह मस्ती का भाव समान रूप से लक्षित होता है। प्रेम इनके लिये पूजा और विरह वरदान स्वरूप है -

" विरह है अथवा यह वरदान।
कल्पना में है कसकती वेदना,
अश्रु में जीता सिसकता गान है।
शून्य आहों में सुरीले छंद हैं,
मधुर लय का क्या कहीं अवसान है ?"[3]

मानवीय प्रेम के अन्तर्गत विरह का इतना उज्ज्वल पावन रूप, जो निराशा की चरमावस्था में भी निष्क्रिय नहीं है, पूर्ववर्ती युगों के काव्य में दुर्लभ है।

छायावादी काव्य में प्रेम का जो स्वरूप उपलब्ध होता है, वह वासना के उद्वेलन से रहित, सहज और स्वाभाविक है। उनके संयोग पक्ष के चित्रों में संयम और पवित्रता की आभा व्याप्त दिखाई देती है और वियोग-पक्ष के चित्रों में विरह की गंभीरता और गरिमा पूर्णतः सुरक्षित रही है। इसके अतिरिक्त इनकी अभिव्यक्ति की शैली भी मौलिक एवं उच्च कोटि की है।

१- सूर्यकान्त त्रिपाठी - निराला, अणिमा, पृष्ठ ५५।
२- श्री क्षेत्र - छायावाद की काव्य साधना, पृष्ठ १५७।
३- सुमित्रानन्दन पन्त, आधुनिक कवि, पृष्ठ १५।

लौकिक प्रेम भावना के अन्तर्गत नारी पुरुष संबंधों की ही चर्चा की जाती है। छायावादी कवि स्वयं ही अपने काव्य का " नायक है और उसकी " नायिका " अथवा " प्रेयसी " के रूप में नारी का जो रूप चित्रित हुआ है, वह सर्वथा अपूर्व है।

" नारी " का नया रूप : वीर काव्य में " नारी " का व्यक्तित्व तलवार की छाया में पल रहा था, अतएव वह पूरी तरह निखर ही नहीं सका। उस युग में " नारी " पुरुष की संपत्ति मात्र थी जिसे कोई भी बलशाली राजा-महाराजा अपनी वीरता के बल पर प्राप्त कर सकता था। स्पष्ट है कि शारीरिक सौन्दर्य ही उस युग की नारी की श्रेष्ठता की कसौटी थी, जिस पर मुग्ध होकर राजा-महाराजाओं में परस्पर युद्ध हुआ करते थे और कविगण उन राजाओं की प्रशस्ति में काव्य-रचना किया करते थे। " नारी " को पुरुष के समान जीवित प्राणी मानकर उसकी अन्यान्य विशेषताओं पर दृष्टिपात करने का तत्कालीन कवियों को अवसर ही नहीं मिला।

भक्ति काव्य में " नारी ", " माया " की प्रतीक बन गई। संत कवि कबीर को कामिनी स्त्री काली नागिन सदृश प्रतीत हुई, जिसके विष से तीनों लोकों में उबरना कठिन था।

तुलसीदास ने एक ओर सीता, अनुसूया, कौशल्या जैसी आदर्श नारियों के चित्र प्रस्तुत किये हैं जो मानवी की अपेक्षा " देवी " ही अधिक प्रतीत होती हैं, दूसरी ओर कैकेई और मंथरा सदृश नारी चरित्र हैं जो साधारण मनुष्यत्व से भी शून्य हैं, तथा जिनके प्रति आक्रोश व्यक्त करते हुए तुलसीदास ने उन्हें " ढोल गंवार शूद्र और पशु " की समकक्षिणी बना दिया है। कृष्ण भक्ति काव्य में " नारी " राधा और गोपिकाओं के रूप में पूज्य अवश्य बनी, परन्तु उसका अबला रूप ही प्रधान रहा। " प्रिय " के विरह " में नैनों से यमुना प्रवाहित करते रहने के अतिरिक्त उसमें अन्य किसी प्रकार की योग्यता लक्षित नहीं होती। रीति-कालीन काव्य में " नारी " हाव-भाव प्रदर्शन और कटाक्ष -कला में कुशल, पुरुषों को लुभाने में प्रवीण, काम क्रियाओं में चतुर वाग्वैदग्ध्यमयी एवं वासना की

सजीव प्रतिमा है । पुरुषों के मानस में वासना का ज्वार उत्पन्न करने वाले 'नायिका रूप' के अतिरिक्त रीतिकालीन कवि नारी जीवन के किसी अन्य पक्ष की ओर आकर्षित नहीं हो सके ।

आधुनिक काल में 'भारतेन्दु' के समय तक रीतिकालीन परंपरा ही चलती रही । 'द्विवेदी युग' में पहली बार नारी की शक्ति, मातृत्व एवं पत्नी रूप पर दृष्टिपात किया गया । 'हरिऔध' ने अपने 'प्रियप्रवास' की नायिका 'राधा' को लोक सेविका का नया रूप देकर प्रस्तुत किया और मैथिली शरण गुप्त ने 'नारी' को पत्नीत्व और मातृत्व से समन्वित गौरव गरिमामयी मूर्ति के रूप में चित्रित किया । किन्तु द्विवेदी युगीन काव्य की नारी भी तथा कथित उच्चादर्शों और जड़ नैतिकता की लक्ष्मण रेखा से बाहर नहीं निकल सकी । आंचल में दूध' और' आंखों' में पानी लेकर चलनेवाली उस साक्षात करुणामूर्ति के समक्ष हम श्रद्धावनत अवश्य होते हैं किन्तु नारी के साधारण मानवी रूप का विकास उसमें नहीं हो पाया है ।

छायावादी काव्य में प्रथम बार' नारी' अपने वास्तविक स्वरूप को लेकर प्रकट हुई । वह घर की चहार दीवारी में कैद रहनेवाली' अबला' देवी अथवा' दासी' न होकर आधुनिक शिक्षा और स्वतंत्रता के वातावरण में पली हुई पुरुष की सहयोगिनी एवं जीवन संगिनी है । छायावादी कवियों ने 'नारी' के प्रति नूतन दृष्टिकोण अपनाते हुए सर्वप्रथम उसकी स्वतंत्रता का उद्घोष किया :-

> "मुक्त करो नारी को मानव, चिर वंदिनि नारी को ।
> युग युग की निर्मम कारा से जननि सखी प्यारी को ।"[१]

एक लम्बी अवधि से' नारी' को वासना की प्रतिमूर्ति माननेवाली धारणा का अंत हुआ और साहित्य में नवीन मान्यतायें स्थापित हुईं-

> "योनि नहीं है रे नारी, वह भी मानवी प्रतिष्ठित"।[२]

पंत ने' नारी' को समाज के जड़ बंधनों को तोड़कर ऊपर उठने की प्रेरणा दी -

---

१- सुमित्रानन्दन पन्त, युगवाणी, पृष्ठ ५८ ।
२- ,, ,, , ग्राम्या - नारी, पृष्ठ ८५ ।

" तुम में सब गुण है, तोड़ो अपने भय कल्पित बंधन ,
जड़ समाज के कर्दम से उठकर सरोज सी ऊपर ।
अपने अन्तर के विकास से जीवन के पल दो भर ।।"[१]

जो "नारी" किसी समय सिद्धि मार्ग की बाधा थी और पुरुष को काम वासना के पंक में फंसाकर पथभ्रष्ट करनेवाली "माया" स्वरूपा थी, वही नव जन्म लेकर छायावाद-युग में पुरुष को उन्नति के मार्ग पर ले जानेवाली, कर्तव्य की प्रेरणा देनेवाली अपने मधुर और त्यागोज्ज्वल प्रेम के द्वारा उसे जीवन के प्रति आशावान बनाए रखनेवाली, उसके संघर्ष शिथिल मन को शान्ति की शीतल छाया प्रदान करनेवाली, तप तेज से पूर्ण पावनता की मूर्ति और परम कल्याणमयी शक्ति के रूप में प्रकट हुई। उदाहरणार्थ पंत ने अपनी "प्रेयसी" को पावनता की प्रतिमा रूप में चित्रित किया है-

" तुम्हारे छूने में था प्राण
संग में पावन गंगा स्नान ।
तुम्हारी वाणी में कल्याणि
त्रिवेणी की लहरों का गान ।।"[२]

प्रसाद के महाकाव्य "कामायनी" की श्रद्धा के रूप में नारीत्व का चरम विकास दिखाई देता है। प्रसाद लिखते हैं :-

" नारी तुम केवल श्रद्धा हो, विश्वास रजत-नग- पगतल में
पीयूष स्रोत सी बहा करो जीवन के सुंदर समतल में ।।"[३]

छायावादी काव्य के अन्तर्गत "नारी" केवल कामिनी ही नहीं है, वह "देवि, माँ, सहचरि प्राण" सब कुछ है। छायावादी कवियों ने नारी जीवन के विविध पक्ष उभारे हैं यथा :-

भोली बालिका - "सरलपन ही था उसका मन
निरालापन ही आभूषण ।

१- सुमित्रानन्दन पन्त, ग्राम्या - "नारी के प्रति", पृष्ठ ८१ ।
२- ,, ,, , पल्लव , आँसू , पृष्ठ २७ ।
३- जयशंकर प्रसाद - कामायनी, लज्जा सर्ग, पृष्ठ ८१ ।

गान से मिले अजान नयन ।
सहज था सजा सजीला तन ।।"[१]

सलज्ज सुकुमारी -

" एक पल मेरे प्रिया के दृग पलक
थे उठे ऊपर , सहज नीचे गिरे।
चपलता ने इस विकंपित पुलक से
दृग किया मानो प्रणय संबंध था।।"[२]

प्रेयसी -

"बिन्दु में थी तुम सिन्धु अनंत
एक स्वर में समस्त संगीत ।
एक कलिका में अखिल वसंत
धरा में थी तुम स्वर्ग पुनीत ।"[३]

प्रेमिका -

"स्वासें कहती आता प्रिय, विश्वास बताते वह जाता ।"[४]

पत्नी -

" देख दिव्य छवि लोचन हारे ।
रूप अतन्द्र , चन्द्र मुख , श्रम रुचि
पलक तरलतम, मृग-दृग-तारे ।
+ + +
जग के रंगमंच की सँगिनि,
अयि परिहास-हास-रस-रँगिनि
उर मरु पथ की तरल तरँगिनि
दी अपने प्रिय स्नेह सकारे ।"[५]

१- सुमित्रानन्दन पन्त ,पल्लव, उच्छ्वास, पृष्ठ ३ ।
२- ,, ,, , ग्रन्थि, पृष्ठ १० ।
३- ,, ,, , पल्लव, पृष्ठ १६ ।
४- महादेवी वर्मा, नीरजा, पृष्ठ २२ ।
५- सूर्यकान्त त्रिपाठी" निराला" गीतिका, पृष्ठ ४३ ।

आसन्न प्रसवा जननी -

"केतकी गर्भ सा पीला मुंह
आंखों में आलस भरा स्नेह ;
कुछ कृशता नई लजीली थी
कंपित लतिका सी लिये देह ।
मातृत्व बोझ से झुके हुए
बंध रहे पयोधर पीन आज,
कोमल काले ऊनों की नव
पट्टिका बनाती रुचिर साज ।।

\+ + + +

श्रम बिन्दु बना सा झलक रहा
भावी जननी का सरस गर्व,
बन कुसुम बिखरते थे भू पर
आया समीप था महापर्व ।।"[1]

इसके अतिरिक्त छायावादी काव्य में नारी के यह रूप भी दर्शनीय है :-

"वह इष्ट देव के मंदिर की पूजा सी ---
दलित भारत की विधवा है ।"[2]

तथा -

"वह तोड़ती पत्थर ।
देखा उसे मैंने इलाहाबाद के पथ पर ।।"[3]

पंत ने 'ग्राम्या' में 'ग्राम वधू' के अतिरिक्त "सुभग रूज लिपिस्टिक, ग्लोस्टिक पौडर,"[4] से मुख को रंजित करनेवाली, पुरुषों की समकक्षिणी अपटूडेट नारी' का स्वरूप भी चित्रित किया है । नारी के इतने विविध रूप साहित्य में पहले कभी दिखाई नहीं दिये थे ।

१- जयशंकर प्रसाद , कामायनी, ईर्ष्या सर्ग, पृष्ठ १५०-५१।
२- सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' , परिमल, 'विधवा', पृष्ठ १२६ ।
३- सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला', अपरा 'वह तोड़ती पत्थर' पृष्ठ २६ ।
४- सुमित्रानन्दन पन्त , ~~गुंजन, पृष्ठ ७८~~ । ग्राम्या- आधुनिका , पृष्ठ ८३ ।

नारी के प्रति असीम श्रद्धावश छायावादी कवियों ने वरदायिनी शक्ति के रूप में उसका आह्वान किया -

" छू छू जग के मृत रजकण, कर दो तृण तरु में चेतन ।
मृन्मरण बाँध दो जग का, दे प्राणों का आलिंगन ।।"[१]

किन्तु धीरे धीरे नारी के प्रति यह श्रद्धा और आदर की भावनायें इतनी गहरी होती गईं कि उसका वास्तविक रूप ओझल होने लगा और वह " मानवी " से अधिक " मानसी " प्रतीत होने लगी । पंत की " अप्सरा " में " नारी " का यह रूप द्रष्टव्य है -

" निखिल कल्पनामयि अयि अप्सरि अखिल विस्मयाकार ।
अकथ अलौकिक अमर अगोचर भावों की आधार ।।"[२]

रहस्य के अवगुंठन में लिपटी अस्पृश्य तथा अस्पष्ट छाया सी इस " कल्पना के कानन की रानी " को पुन: जीवन की ठोस भूमि पर उतारने का कार्य छायावाद के द्वितीय उत्थान के कवियों द्वारा संपन्न हुआ । नारी के प्रति नरेन्द्र शर्मा का कथन है -

" श्रीचरदासी, स्वामिनी, आराध्य हो, आराधिका भी ।
प्राण, मोहन कृष्ण हो तुम, शरण अनुगत राधिका भी ।।"[३]

इस प्रकार छायावादी कवियों की लौकिक प्रेम भावना का मुख्य आलंबन " नारी " ही रही है, किन्तु उसका स्वरूप पूर्ववर्ती युगों से सर्वथा भिन्न है । " प्रेयसी " रूप में वह मात्र वासना की पुतली न रहकर आशा उत्साह और स्फूर्ति प्रदान करनेवाली पुरुष की जीवनी शक्ति है, तथा माँ, पत्नी, गृहस्वामिनी से लेकर सड़क पर पत्थर तोड़नेवाली श्रमजीवनी स्त्री तक अपने अन्य समस्त रूपों में भी वह आदर, स्नेह और सम्मान की पात्री बनी है । नारी जाति के प्रति इतनी उदात्त भावनायें तथा ऐसी उदार वाणी छायावाद से पूर्व किसी अन्य युग के काव्य में नहीं सुनाई पड़ी ।

१- सुमित्रानन्दन पन्त, ~~ग्राम्या~~ गुंजन, ~~आधुनिका~~, पृष्ठ ~~८८~~ ६८ ।

२- ,, ,, , गुंजन , पृष्ठ ६२ ।

३- नरेन्द्र शर्मा , प्रवासी के गीत, पृष्ठ २४ ।

अलौकिक प्रेम -

छायावादी काव्य में जहां एक ओर नारी-पुरुष संबंधों पर आधारित लौकिक प्रेम और श्रृंगार के अनगिन भाव-भीने गीत गाए गए हैं, वहीं दूसरी ओर उसमें आध्यात्मिक प्रेम गीतों की माला भी पिरोई गई है।

आध्यात्मिक अथवा अलौकिक प्रेम के दो रूप हो सकते हैं, एक में "आलंबन" साकार रहता है, दूसरे में निराकार। प्रथम में साधक की आराध्य के प्रति श्रद्धा मिश्रित भक्ति रहती है, द्वितीय में शुद्ध प्रेम-भाव। छायावादी कवियों ने द्वितीय रूप को ही अपनाया और अदृश्य चेतन सत्ता के साथ अपना आत्मिक संबंध जोड़ते हुए सुख दुःख तथा विरह-मिलन की अनुभूतियों का गान किया। अमूर्त आलंबन के प्रति प्रेम निवेदन करनेवाले इस प्रकार के गीतों में अस्पष्टता, सांकेतिकता के साथ ही रहस्य की भी छाया व्याप्त रहती है। "परोक्ष" के प्रति जिज्ञासा की भावना इनमें बड़े परिमाण में मिलती है। सरोवर में लहरों का हास देखकर पंत का कौतूहल सजग हो उठता है -

" शान्त सरोवर का उर
किस इच्छा से लहरा कर
हो उठता चंचल चंचल ?"[१]

प्रसाद का जिज्ञासु हृदय भी प्रश्न करता है -
" सिर नीचा कर किसकी सत्ता सब करते स्वीकार यहां ?
सदा मौन हो प्रवचन करते, जिसका वह अस्तित्व कहां ? "[२]

पंत को रात्रि की निस्तब्धता में "न जाने कौन" नक्षत्रों के द्वारा मौन - निमंत्रण" देता है। प्रसाद को वे जगमगाते नक्षत्र किसी के श्रम-शिथिल शरीर से झरनेवाले स्वेद बिन्दु प्रतीत होते हैं, किन्तु वह रहस्यमय कौन है ? कैसा है ? यह अज्ञात ही रहता है।

१- सुमित्रानन्दन पन्त, गुंजन, पृष्ठ १२।
२- जयशंकर प्रसाद, कामायनी, आशासर्ग, पृष्ठ २४।

"अंचल अनंत नील लहरों पर बैठे आसन मारे ।
देव कौन तुम ? झरते तन से श्रम कण से यह तारे ।"[1]

उस रहस्यमय की निकटता का आभास वायु से उड़ते पत्तों, सरोवर की हिलती डोलती लहरों, आकाश में चमकते तारों तथा प्रकृति के अन्य अनेकानेक क्रिया व्यापारों के द्वारा होता रहता है । इन क्रिया व्यापारों तथा संकेतों को देख सुनकर छायावादी कवि स्वीकार करता है कि -

"हे विराट हे विश्व देव तुम कुछ हो ------ ।"
किन्तु -" कैसे हो ? क्या हो ? इसका तो भार विचार न सह सकता ।"[2]
अतएव उस चेष्टा को त्याग कर वह केवल इतना कहता है :-

"तुम हो कौन, और मैं क्या हूँ
इसमें क्या है धरा, सुनो ।
मानस जलधि रहे चिर चुंबित
मेरे क्षितिज उदार बनो ।।"[3]

वह परमप्रिय प्रत्यक्ष दिखाई भले ही न दे किन्तु उसकी छवि सृष्टि के कण कण में छाई हुई प्रतीत होती है -

"प्रिये कलि कुसुम कुसुम में आज
मधुरिमा मधु सुषमा सुविकास ।
तुम्हारी रोम रोम छवि व्याज
छा गया मधुवन में मधुमास ।।"[4]

पास रहकर भी दूर, उस 'प्रिय' को अपने निकट खींच लाने को ही कवि अपने जीवन का ध्येय मान लेता है -

---

१- जयशंकर प्रसाद , कामायनी, कर्म सर्ग , पृष्ठ १३१ ।
२- ,, , ,, , आशा सर्ग , पृष्ठ ३४ ।
३- ,, , लहर, पृष्ठ १० ।
४- सुमित्रानन्दन पन्त, गुंजन, पृष्ठ ५० ।

रामकुमार वर्मा कहते हैं -

"मैं असीम ससीम सुख से
सींचकर संसार सारा
प्राण की विरुदावली से
गा रहा हूं यश तुम्हारा ।
किन्तु मेरा कौन स्वर
स्वर आकर तुमको पास लाए ।
भूलकर भी तुम न आए ।।"[१]

महादेवी के अनेक गीतों में भी उसी अनंत, अखण्ड, चेतन रहस्यमय प्रिय को प्रत्यक्ष न सही स्वप्न में ही बांध पाने की आकुल स्पृहा प्रकट हुई है :-

"तुम्हें बांध पाती सपने में,
तो चिर जीवन प्यास बुझा -
लेती उस छोटे क्षण अपने में ।।"[२]

निराला को भी निरंतर उसी प्रिय का ध्यान बना रहता है और उनकी प्रेमी आत्मा प्रतीक्षा विकल होकर उलाहना देने लगती है -

"कब से मैं पथ देख रही, प्रिय,
उर न तुम्हारे रेख रही प्रिय ।"[३]

प्रेम की एक ऐसी उच्च दशा आती है जब न कोई प्रेमी रह जाता है न 'प्रियतम'। मोह का निर्मम दर्पण टूट जाता है तथा 'साधक' और 'साध्य' परस्पर एकाकार हो जाते हैं -

"आज कहां मेरा अपनापन,
तेरे छिपने का अवगुंठन ।

१- रामकुमार वर्मा - आधुनिक कवि, पृष्ठ ४६ ।
२- महादेवी वर्मा, नीरजा, पृष्ठ ८ ।
३- सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला', गीतिका, पृष्ठ ४१ ।

तुम मुझमें अपना सुख देखो
मैं तुम में अपना दुख प्रियतम ।।
टूट गया वह दर्पण निर्मम ।"[१]

ऐसी स्थिति में पहुंच जाने के बाद न प्रिय को अपना परिचय देने की आवश्यकता रह जाती है, और न उसे संदेश भेजने की । महादेवी ने इस स्थिति का अत्यन्त सुन्दर चित्र निम्न पंक्तियों में उतारा है -

" अलि कहां संदेश भेजूं मैं किसे संदेश भेजूं ?
नयन-पथ से स्वप्न में मिल
प्यास में घुल , साध में खिल ।
प्रिय मुझी में खो गया अब दूत को किस देश भेजूं ?"[२]

आध्यात्मिक प्रेम के यही सोपान परंपरागत रहस्यवादी कवियों कबीर, मीरा, जायसी आदि की रचनाओं में भी दिखाई देते हैं । स्पष्टत: छायावादी कवि इस क्षेत्र में अपने पूर्ववर्ती कवियों से प्रभावित हुए हैं ।" अलि-कहां संदेश भेजूं" गीत में" प्रेमी" और" प्रियतम" के एकाकार हो जाने का जो भाव व्यंजित हुआ है, उसकी अभिव्यक्ति कबीर और मीरा ने भी लगभग इसी प्रकार यह कहकर की थी :-

"प्रीतम को पाती लिखूं, जो कोय होय विदेश ।
तन में मन में, नैन में, ताको कहां संदेश ?"[३] (कबीर)

तथा

" मेरा पिया मेरे हिय बसत है, ना कहुं आती जाती ।
जिनका पिया परदेश बसत है, लिख लिख भेजे पाती ।।"[४] (मीरा)

इसी प्रकार ," हो गई आराध्य मय,मैं विरह की आराधना है"[५] कहकर महादेवी आत्म विस्मृति की जिस दशा की ओर संकेत करती है, उसी

१- महादेवी वर्मा, नीरजा, पृष्ठ ६६ ।
२- ,, , यामा, पृष्ठ १०४ ।
३- महेन्द्र कुमार जैन, कबीर दोहावली, पृष्ठ ६० ।
४- गंगा प्रसाद पाण्डेय, मीरा-गीतावली, पृष्ठ ५० ।
५- महादेवी वर्मा , ~~xxxxxx~~,यामा, पृष्ठ २०६ ।

भाव की व्यंजना करनेवाला कबीर का निम्नलिखित दोहा प्रसिद्ध है -

" लाली मेरे लाल की जित देखौं तित लाल ।
लाली देखन मैं गई मैं भी हो गई लाल ।।"[१]

निराला ने -

" पास ही रे हीरे की खान खोजता उसे कहाँ नादान ?"[२]

कहकर अपनी ही आत्मा में छिपे हुए प्रियतम- परब्रह्म की ओर संकेत किया है । कबीर इस विषय में पहले ही लिख चुके थे :-

" कस्तूरी कुंडलि बसै मृग ढूँढै बन माहि ।
तैसे घट घट राम है दुनिया देखै नाँहि ।।"[३]

आत्मा के विवाह का प्रतीक रहस्यवादियों में विशेष प्रचलित रहा है, जिसके आधार पर कबीर ने राम को अपना पति और स्वयं अर्थात् जीवात्मा को राम की बहुरिया कहा है । यही भाव महादेवी की निम्न उद्धृत पंक्तियों में भी झलकता है -

" नयन में जिसके जलद वह तृषित चातक हूँ ।
शलभ जिसके प्राण में वह निठुर दीपक हूँ ।।
फूल को उर में छिपाए विकल बुलबुल हूँ ।
एक होकर दूर तन से छाँह वह चल हूँ ।।
दूर तुमसे हूँ, अखण्ड सुहागिनी भी हूँ ।।"[४]

इसी प्रकार ऐसे अनेक स्थल मिलेंगे, जिनमें पूर्ववर्ती रहस्यवादी कवियों के साथ छायावादी कवियों का भाव-साम्य प्रकट होता है। महादेवी की यह स्वीकारोक्ति है - " वह युग पाश्चात्य साहित्य से प्रभावित और बंगला की नवीन काव्यधारा से परिचित तो था ही , साथ ही उसके सामने रहस्यवाद की

१- महेन्द्र कुमार जैन , कबीर दोहावली, पृष्ठ २२ ।

२- सूर्यकान्त त्रिपाठी " निराला " गीतिका,पृष्ठ २६ ।

३- पारसनाथ तिवारी, कबीर ग्रंथावली, पिउ पहिचानिबे कौ अंग,साखी-१ ।

४- महादेवी वर्मा , नीरजा, पृष्ठ २६ ।

भारतीय परंपरा भी रही ।"[१] किन्तु कबीर आदि प्राचीन भारतीय रहस्यवादियों से प्रभावित होते हुए भी छायावादी कवि उन रहस्यवादियों की परंपरा में नहीं आते । छायावादी कवि कबीर, जायसी आदि की भाँति किसी संप्रदाय से संबद्ध नहीं थे और न वे धर्मोपदेशक ही थे । भारतीय वेदान्त दर्शन और पाश्चात्य स्वच्छंदतावादी कवियों की एवं चेतनावादी विचारधारा के प्रभावक्श उनका अध्यात्म की ओर गहरा झुकाव था । आध्यात्मिक प्रेम की अभिव्यक्ति सीधे ढंग से नहीं हो सकती क्योंकि उसमें आलंबन अमूर्त और अस्पष्ट रहता है । अतएव कवि को प्रतीकों और संकेतों का आश्रय लेना पड़ता है। प्रतीकों और संकेतों से युक्त अभिव्यक्तियों में रहस्यमयता स्वभाव आ जाती है । रवीन्द्र की शैली का उदाहरण छायावादी कवियों के सामने था । डा० केसरी नारायण शुक्ल के अनुसार आधुनिक रहस्यवादी प्रवृत्ति अथवा छायावाद (शुक्ल जी के अनुसार दोनों समानार्थी हैं) का जन्म भी बंगला के उस रहस्यवादी साहित्य से हुआ जिसमें "प्रियतम" के रूप का आभास प्रतीकों के माध्यम से कराया जाता था । यह प्रतीक वहाँ पर" छाया दृश्य" कहे जाते थे ।छायावाद का नाम भी छायावाद इसीलिये पड़ा क्योंकि उसमें रहस्यात्मक प्रतीकों - छाया दृश्यों की बहुलता थी ।[२] शुक्ल जी के विचारों को यथावत् स्वीकार करने में कुछ शंकायें बाधक होती हैं जिनकी चर्चा से यहाँ पर विषयान्तर होने का भय है अतएव इतना मानकर चलना ही पर्याप्त है कि छायावादी काव्य में रहस्यवाद का जो रूप विकसित हुआ वह मूलस्रोत की एकता के कारण कबीर आदि रहस्यवादियों की परंपरा का प्रतीत होते हुए भी उससे भिन्न , साधनात्मक न होकर बंगला कवियों, मुख्यतः रवीन्द्रनाथ से साम्य रखता हुआ काव्यात्मक अथवा भावनात्मक रहस्यवाद है । वह परंपरागत अर्थ में रहस्यवाद" न होकर आध्यात्मिक प्रेम की रहस्यात्मक अभिव्यक्ति तक ही सीमित है, जिसके अन्तर्गत औत्सुक्य, जिज्ञासा, प्रिय की पहचान, आभास, मिलन, विरह आदि की विविध दशाओं का चित्रण भावनात्मक पृष्ठभूमि पर हुआ है । इसी कारण पूर्ववर्ती रहस्यवादी साधकों से छायावादी कवियों की विचार-

---

१- महादेवी वर्मा, आधुनिक कवि, भूमिका भाग,पृष्ठ १० ।

२- केसरी नारायण शुक्ल, आधुनिक काव्यधारा, पृष्ठ २३४-२३५ ।

धारा में अन्तर दिखाई देता है। मध्ययुगीन रहस्यवादी साधकों ने उस " प्रियतम " के प्रति जैसा दैन्य-भाव प्रकट किया है, वह छायावादी कवियों में नहीं मिलता। छायावादी कवि " असीम " के साथ ही " ससीम " का भी महत्त्व स्वीकार करता है। असीम, अनंत, महान और सर्वशक्तिमान परमब्रह्म की महिमा का गान ही उसके लिये सब कुछ नहीं है, वह " जीवात्मा " की महत्ता का भी पक्षपाती है। महादेवी की निम्न उद्धृत पंक्तियाँ अवलोकनीय हैं :-

" उनसे कैसे छोटा है मेरा यह भिक्षुक जीवन।
उनमें अनंत करुणा है, मुझमें असीम सूनापन "।।[1]

कवयित्री " प्रिय " से अपने को छोटा या तुच्छ मानने को तैयार नहीं है, इसी कारण " प्रिय " से करुणा की भीख माँगना उसे अपमानजनक लगता है। वेदना के समुद्र में डूबकर भी उसके स्वर का दर्प स्थायी रहता है -

" मेरी लघुता पर आती जिस दिव्य लोक को व्रीड़ा
उसके प्राणों से पूछो, वे पाल सकेंगे पीड़ा ?
क्या अमरों का लोक मिलेगा तेरी करुणा का उपहार ?
रहने दो हे देव! अरे यह मेरा मिटने का अधिकार "।।[2]

मध्ययुगीन रहस्यवादियों की विरह वेदना स्पष्ट है। सांसारिक मोह और माया के प्रभाववश प्रियतम परब्रह्म से वियुक्त होकर उनकी आत्मा निरंतर रुदन करती रहती है -

" रात्यूं रूंनी विरहिणी ज्यूं बंचौ कूं कुंज।
कबीर अंतर प्रजल्या प्रगटा विरहा पुंज "।।[3]

लेकिन छायावादी कवियों की गूढ़-गहन वेदना की थाह पाना कठिन है। उनकी आँखों से विरहाश्रु कम छलकते हैं किन्तु अस्पष्ट अंतर्दाह और पीड़ा असीमित मात्रा में रहती है -

---

१- महादेवी वर्मा, यामा (नीहार) पृष्ठ १८।

२- महादेवी वर्मा, यामा (नीहार) पृष्ठ ३२।

३- कबीर ग्रंथावली, विरह कौ अंग, पृष्ठ ७।

"मेरे बिखरे प्राणों में सारी करुणा ढुलका दो ,
मेरी छोटी सीमा में अपना अस्तित्व मिटा दो ।
पर शेष नहीं होगी यह मेरे प्राणों की क्रीड़ा,
तुमको पीड़ा में ढूंढा तुम में ढूंढूंगी पीड़ा ।।"[१]

छायावादी काव्य के आध्यात्मिक पक्ष पर सूफ़ियों के रहस्यवादी विचारों का भी किंचित प्रभाव लक्षित होता है । भारतीय परंपरा में ज्ञान की प्राप्ति जाग्रत अवस्था में होती है । ज्ञान की सार्थकता ही इसमें मानी गई है कि माया मोह के अंधकार से मुक्त होकर जीव सत्, चित, आनन्दमय प्रियतम परब्रह्म का साक्षात्कार कर सके । इसके विपरीत सूफ़ी रहस्यवादियों की मान्यता है कि 'प्रियतम' 'हाल' अर्थात् मूर्च्छा की अवस्था में आता है, और होश आने पर चला जाता है । महादेवी की निम्न पंक्तियों में इसी विचार की अभिव्यक्ति हुई है -

"वह सपना बन आता, जागृति में जाता लौट ।
मेरे श्रवण आज बैठे हैं, इन पलकों की ओट ।।"[२]

इसी प्रकार प्रसाद भी लिखते हैं :-

"मादकता से आए तुम
संज्ञा से चले गए थे ।
हम व्याकुल पड़े बिलखते
थे उतरे हुए नशे से ।।"[३]

सूफ़ियों का विश्वास है कि 'प्रियतम' की ज्योति (नूर) के आगे दृष्टि ठहर नहीं पाती । साधक को दर्शन देने हेतु दिव्य ज्योति को आवरण में आना पड़ता है । प्रसाद के रहस्यमय प्रियतम का आगमन भी कुछ इसी प्रकार होता है :-

---

१- महादेवी वर्मा, नीरजा, पृष्ठ ५७ ।
२- वही, पृष्ठ ३३ ।
३- जयशंकर प्रसाद , आंसू, पृष्ठ २६ ।

"शशि मुख पर घूंघट डाले
अंतर में दीप छिपाए ।
जीवन की गोधूली में
कौतूहल से तुम आए ।।"[१]

छायावादी काव्य के रहस्यवादी पक्ष का स्वरूप स्पष्ट करते हुए महादेवी का कथन है -

" उसने परा विद्या की अपार्थिवताली, वेदान्त के अद्वैत की छाया मात्र ग्रहण की, लौकिक प्रेम से तीव्रता उधार ली, और इन सब को कबीर के सांकेतिक भाव सूत्र में बांधकर एक निराले स्नेह संबंध की सृष्टि कर डाली, जो मनुष्य के हृदय को आलंबन दे सका तथा मस्तिष्क को हृदयमय तथा हृदय को मस्तिष्कमय बना सका ।"[२]

रवीन्द्रनाथ और सूफियों के प्रभाव का उल्लेख इन पंक्तियों में नहीं हुआ है अन्यथा इनके द्वारा छायावादी रहस्यवाद का वास्तविक परिचय मिलता है । किसी रहस्यमय प्रिय के साथ निराले स्नेह संबंध की सृष्टि और पार्थिव लौकिक प्रेम से ऊपर उठाकर मानव मस्तिष्क को हृदयमय तथा हृदय को मस्तिष्कमत बना देने का यह प्रयास सचमुच नूतन और महत्वपूर्ण था ।

" प्रेम के क्षेत्र में, चाहे वह लौकिक हो अथवा अलौकिक, छायावाद के प्रथम उत्थान के कवि प्रसाद, पंत, निराला, महादेवी और रामकुमार वर्मा आदर्शवादी ही रहे हैं । प्रेम का इतना उदात्त स्वरूप उन्होंने चित्रित किया है कि बहुधा लौकिक प्रेम भी अलौकिक सा प्रतीत होता है, अथवा लौकिक और अलौकिक रूपों की अलग अलग पहचान कर सकना कठिन हो जाता है । प्रसाद के " आंसू " में इस प्रकार के अनेक उदाहरण उपलब्ध हैं ।

छायावादी काव्य में जिन स्थलों पर अज्ञात के प्रति भावाभिव्यक्ति हुई है, कुछ विद्वान उन्हें काव्यात्मक अभिव्यक्ति के रूप में स्वीकार नहीं करते ।

१- जयशंकर प्रसाद , आंसू, पृष्ठ १५ ।
२- महादेवी वर्मा , यामा (भूमिका) पृष्ठ ६ ।

उदाहरणार्थ रामचन्द्र शुक्ल ने अपने "छायावाद और रहस्यवाद" शीर्षक लेख में एक स्थल पर लिखा है - " रहस्य और अज्ञात कभी भी हमारे भावों का विषय नहीं बन सकता । " स्पष्ट और ज्ञात ही हमारे भावों के विभाव और उद्दीपन हो सकते हैं । अज्ञात की जिज्ञासा बोध वृत्ति का विषय है, भाव अथवा राग का नहीं । बोधवृत्ति द्वारा ज्ञान ही हमारे भावों का विषय है । जो बोध का ही स्वायत्त नहीं, वह भाव का स्वायत्त कैसे होगा ?"

शुक्ल जी के विचारों को यथा वत् मान लेने पर रहस्यवाद की मूल भावना को तो आघात पहुंचता ही है, भक्ति का चिर परिचित और सर्वमान्य सिद्धान्त भी खंडित होता प्रतीत होता है । ईश्वर के सगुण रूप की भी हम कल्पना मात्र करते हैं, कोई ठोस आकार या स्थूल शरीर हमारे सामने नहीं रहता । हृदयस्थ कल्पित रूप के प्रति एक दृढ़ विश्वास का भाव मन में जाग उठता है अतएव उस कल्पित रूप को ही हम सत्य समझ लेते हैं । इसी प्रकार निराकार, अखण्ड चेतन, सत्ता के साथ अपने अटूट संबंध की आस्था जब व्यक्ति के हृदय में किसी प्रकार प्रतिष्ठित हो जाती है तो उसका मूल्य भी सत्य से कम नहीं रहता। वह सहज ही हमारे भावों का आलंबनत्व प्राप्त कर सकती है ।

इसके अतिरिक्त महत्वपूर्ण बात यह है कि अव्यक्त और अज्ञेय संबंधी रचनाओं द्वारा हमारे हृदय में आनन्द का उद्रेक होता है अथवा नहीं ? यदि होता है, तो उन रचनाओं को अव्यक्त पर आधारित होने के कारण से ही उपेक्षित नहीं किया जा सकता है । छायावादी काव्य में अज्ञात के प्रति प्रेम-भावना पर आधारित रचनायें बड़े परिमाण में मिलती हैं । उनमें शास्त्रीय कोटि का रसोद्रेक भले ही न हो, वे हमारे मन को प्रभावित और आनंदित अवश्य करती हैं । वस्तुतः इस प्रकार की रचनायें छायावादी कवियों के मानसिक क्षितिज की विस्तृत सीमाओं का दिग्दर्शन कराती हैं । परंपरागत बौद्धिक विषय को अनुभूति की तीव्रता प्रदान करके उन्होंने मर्मस्पर्शी रूप में प्रस्तुत किया है । बुद्धि और भावना के गठबंधन का यह मौलिक प्रयास निश्चय ही श्लाघ्य है ।

(ख) प्रकृति -

छायावादी कवियों की प्रेम भावना का प्रसार मानव

जगत और ईश्वर तक ही सीमित नहीं है, प्रकृति भी उसका आलंबन बनी है। प्रकृति के प्रति गहन आसक्ति का भाव इन कवियों में लक्षित होता है। प्रकृति के विविध रूपों के असंख्य सुन्दर और भावपूर्ण चित्र छायावादी काव्य में उपलब्ध होते हैं और छायावादी काव्य के वर्ण्य विषयों में प्रकृति अत्यंत महत्वपूर्ण रही है।

काव्य के साथ प्रकृति का घनिष्ठ और चिर संबंध रहा है। साहित्य-रचना के प्रत्येक युग में प्रकृति ने किसी न किसी रूप में कवि हृदय को प्रभावित करके काव्य-सृष्टि में सहयोग प्रदान किया है, परन्तु छायावादी कवियों जैसा गहन प्रकृति प्रेम पूर्ववर्ती कवियों में दिखाई नहीं देता।

वीरगाथा काव्य के प्रतिनिधि ग्रंथ पृथ्वीराज रासो में षट्-ऋतुओं का मनोरम वर्णन मिलता है, किन्तु उसका लक्ष्य काव्य-नायक के विलास के लिये उपयुक्त वातावरण प्रस्तुत करना है। उसे स्वतंत्र प्रकृति प्रेम का उदाहरण नहीं माना जा सकता। मध्ययुग में इसी प्रकार 'जायसी' ने 'पद्मावत' में पद्मावती के संयोग सुख के चित्रण हेतु षट्ऋतु वर्णन और नागमती की वियोग व्यथा को तीव्रतर बनाने के लिये 'बारहमासा' की रचना की। भक्त कवि सूरदास को कालिन्दी तट वंशीवट, वृन्दावन- निकुंज, कदंब के वृक्ष आदि अत्यन्त प्रिय प्रतीत हुए हैं और इनकी शोभा का बारंबार उल्लेख उनके पदों में हुआ है। किन्तु कृष्ण के साथ संबंध भावना ही इन प्राकृतिक चित्रणों का आधार है। कृष्ण की क्रीड़ा भूमि होने के कारण ही ब्रज की प्राकृतिक सुषमा पर सूर की दृष्टि ठहरी है। गोपिकाओं की विरह व्यंजना के प्रसंग में पावस ऋतु से संबंधित अनेक मार्मिक उक्तियां सूरसागर में उपलब्ध हैं किन्तु वे भी स्वतंत्र प्रकृति वर्णन की श्रेणी में नहीं आतीं।

तुलसीदास ने मुख्यतः प्रकृति को 'उपदेशिका' रूप में देखा है। उदाहरणार्थ पृथ्वी पर फैले हुए वर्षा जल को सिमट कर तालाबों की ओर जाते देखकर तुलसी की उक्ति है -

" समिटि समिटि जल भरहिं तलावा।
जिमि सद्गुन सज्जन पहिं आवा ।।"[१]

१- तुलसीदास, रामचरितमानस - किष्किन्धा काण्ड ।।४।।१४।

रीतिकालीन काव्य में आचार्य केशवदास की दृष्टि वस्तु परिगणन तक ही सीमित रही है । प्रकृति चित्रण की परंपरा के निर्वाह हेतु कुछ प्राकृतिक उपकरणों के नाम भर गिना देना उन्हें पर्याप्त प्रतीत हुआ है । जैसे :-

" फल फूलन पूरे तरुवर रूरे, कोकिल कुल कलरव बोलैं,
अति मत्त मयूरी पिय रस पूरी, बन बन प्रति नाचति डोलैं ।।"[१]

अन्यत्र उन्होंने उपमा, " श्लेष ", " यमक ", " उत्प्रेक्षा " आदि का चमत्कार दिखाने के लिए प्रकृति का उपयोग किया है । उदाहरणार्थ दण्डक वन-वर्णन में श्लेष अलंकार का चमत्कार दर्शनीय है -

" शोभत दण्डक की रुचि बनी भाँतिन भाँतिन सुंदर घनी
सेव बड़े नृप की नव लसै श्री फल भूरि भयो जहं बसै
बेर भयानक सी अति लगै, अर्क समूह जहां जगमगै ।।"[२]

रीतिकाल के अन्य कवियों ने मुख्यतः प्रकृति के उद्दीपन रूप का ही चित्रण किया है । संयोग की स्थिति में प्रकृति नायक-नायिका हेतु सुखमय वातावरण प्रस्तुत करती है और " वियोग " की स्थिति में उनकी विरह व्यथा को और अधिक बढ़ाती है । कहीं कहीं नायिकाओं के सौन्दर्य वर्णन वर्णन के अन्तर्गत प्रकृति का अलंकार-रूप में भी प्रयोग हुआ । इस काल के कवियों में केवल घनानंद और सेनापति लीक से कुछ हटकर चले हैं । इन्होंने कहीं कहीं प्रकृति के अत्यन्त सुन्दर और संश्लिष्ट चित्र प्रस्तुत किये हैं ।

आधुनिक युग में भारतेन्दु कालीन प्रकृति-चित्रणों में कोई नवीनता नहीं दिखाई देती ।" सत्य हरिश्चन्द्र " में " गंगावर्णन " और " चंद्रावली " में " यमुना-वर्णन " सुन्दर होते हुए भी परंपरागत अलंकारों के बाहुल्य से पूर्ण है ।

द्विवेदी युग में श्रीधर पाठक का ध्यान सर्वप्रथम प्रकृति के स्वतंत्र वर्णन की ओर आकृष्ट हुआ । अपने समसामयिक कवियों में प्रकृति के प्रति सर्वाधिक अनुराग पाठक जी ने ही दिखाया है । शब्द शोधन और वर्णन कौशल में सिद्ध होने के नाते उनके प्रकृति संबंधी चित्र अत्यंत भावपूर्ण और सुन्दर बन पड़े हैं । किन्तु पाठक जी का प्रकृति प्रेम उसके भव्य रूप तक ही सीमित रहा है ।

१- केशवदास - रामचन्द्रिका- ग्यारहवां प्रकाश, पृष्ठ २०४ ।
२- केशवदास - रामचन्द्रिका -ग्यारहवां प्रकाश, पृष्ठ २०६ ।

सारांशत: पूर्व छायावादी काव्य में प्रकृति अलंकार ,उद्दीपन, उपदेशिका, प्रतिबिम्ब प्रतीक आदि विविध रुपों में काव्य की सहयोगिनी बनकर प्रस्तुत होती रही, परन्तु उसका आलंबन रुप में चित्रण दुर्लभ नहीं तो गौण अवश्य रहा है । छायावादी काव्य में प्रकृति के समस्त पूर्व प्रचलित रुप उपलब्ध है किन्तु प्रकृति का आलंबन रुप में चित्रण छायावादी काव्य की महत्वपूर्ण विशेषता है ।

प्रकृति : आलम्बन रुप -

आलंबन रुप में प्रकृति चित्रण की दो प्रणालियां संभव है ; एक तो कवि वस्तु या दृश्य का यथातथ्य वर्णन कर दें, दूसरे वर्ण्य वस्तु का सजीव और संश्लिष्ट चित्र प्रस्तुत किया जाए (जिसमें कवि का सूक्ष्म निरीक्षण और प्रकृति से रागात्मक संबंध सहयोगी होता है ।) छायावादी कवियों ने यथातथ्य चित्रण की प्रणाली यदा-कदा ही अपनाई है, अधिकांशत: उन्होंने प्रकृति के संश्लिष्ट चित्र ही प्रस्तुत किये हैं । उदाहरणार्थ, द्विवेदीयुगीन कवि हरिऔध ने सान्ध्य सुषमा पर मुग्ध होते हुए लिखा है -

" दिवस का अवसान समीप था, गगन था कुछ लोहित हो चला ।
तरु शिखा पर थी अब राजती, कमलिनी, कुल वल्लभ की प्रभा"[1]।

किन्तु निराला " संध्या सुंदरी " का छायांकन कुछ और ही ढंग से करते हैं -

" दिवसावसान का समय
मेघमय आसमान से उतर रही है
वह संध्या सुन्दरी परी सी
धीरे---धीरे----धीरे----- ।
तिमिरांचल में चंचलता का
नहीं कहीं आभास
मधुर मधुर है दोनों उसके अधर
किन्तु गंभीर, नहीं है उनमें हास-विलास ।"[2]

१- अयोध्या सिंह उपाध्याय" हरिऔध " - प्रियप्रवास,पृष्ठ १ ।
२- सूर्यकान्त त्रिपाठी " निराला " - परिमल, " संध्या सुन्दरी " ,पृष्ठ १३६ ।

उपर्युक्त पंक्तियों में अपनी समस्त उदासी या गाम्भीर्य के साथ धीरे-धीरे आकाश से पृथ्वी पर उतरनेवाली सन्ध्या का प्रत्येक सूक्ष्म स्पंदन मूर्त हो गया है। "सन्ध्या" यहाँ जड़ न रहकर चेतनामयी बन गई है।

प्रकृति में चेतना का आरोप करके उसके सँश्लिष्ट चित्र प्रस्तुत करना छायावादी कवियों को विशेष प्रिय रहा है। ऐसे स्थलों पर इन लोगों ने प्रकृति को नारी रूप में देखा है। पंत लिखते हैं -

"उस फैली हरियाली में
कौन अकेली खेल रही माँ,
वह अपनी वय वाली में ?"[१]

प्रसाद की उषा पनिहारिन का रूप भी दर्शनीय है -
"बीती विभावरी जाग री
अम्बर पनघट में डुबा रही
ताराघट ऊषा नागरी ।"[२]

गंगा की छवि पर अनेक कवि मुग्ध हुए होंगे, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का "गंगा वर्णन" प्रसिद्ध है किन्तु छायावादी कवि पंत के शब्दों में गंगा की छवि कुछ और भी मोहक रूप ग्रहण कर लेती है -

"शान्त स्निग्ध ज्योत्स्ना उज्ज्वल,
अपलक अनंत नीरव भूतल ।
सैकत शैय्या पर दुग्ध धवल,
तन्वंगी गंगा ग्रीष्म विरल ।
लेटी है श्रान्त क्लान्त निश्चल ।।
तापस बाला गंगा निर्मल,
शशि मुख से दीपित मृदु करतल,
लहरे उर पर कोमल कुन्तल ।
गोरे अंगों पर सिहर सिहर,
लहराता तार तरल सुंदर ।।

१- सुमित्रानन्दन पन्त - आधुनिक कवि, पर्यालोचन, पृष्ठ ६ ।
२- जयशंकर प्रसाद - लहर, पृष्ठ १६ ।

चंचल अंचल सा नीलाम्बर,
साड़ी की सिकुड़न सी जिस पर
शशि की रेशमी विभा से भर ।
सिमटी है वर्तुल मृदुल लहर ।।"[१]

सैकत शैय्या पर तापस बाला सी लेटी हुई तन्वंगी गंगा का ऐसा मनोरम चित्र संपूर्ण हिन्दी काव्य में अनुपम है । छायावादी कवियों, विशेषकर पंत जैसा सूक्ष्म प्रकृति निरीक्षण पहले के कवियों में नहीं दिखाई देता । गंगा को चेतना संपन्न मानवी-रूप में देखते हुए कवि ने उसकी प्रत्येक सूक्ष्म मुद्रा और गति को रूपायित कर दिया है ।

आलंबन रूप में किसी प्राकृतिक दृश्य अथवा वस्तु का यथातथ्य और संश्लिष्ट चित्र उतारते समय भी प्रायः छायावादी कवि अपनी ही अंतर्भावनाओं का आरोप उस पर कर बैठते हैं । परिणामतः ऐसे स्थलों पर कल्पना चित्रों की भरमार हो जाती है । उदाहरणार्थ पंत की "बादल" शीर्षक रचना द्रष्टव्य है -

"हम सागर के धवल हास हैं
जल के धूम, गगन की धूल ।
अनिल फेन, ऊषा के पल्लव
वारि वसन, वसुधा के मूल ।।"[२]

प्रकृति चित्रण के क्षेत्र में छायावादी कवि सर्ववादी दर्शन से पर्याप्त प्रभावित दिखाई देते हैं । इस दार्शनिक पीठिका के आधार पर ही वे प्रकृति से इतना प्रगाढ़ रागात्मक संबंध जोड़ सके हैं कि उनके हृदय और प्रकृति में परस्पर किसी प्रकार का भेदभाव नहीं रह जाता । प्रकृति का वसंत और कवि का यौवन , फूलों का हास और कवि का उल्लास, आकाश का अंधकार और कवि की निराशा, ओसकण और कवि के आँसू मिलकर एक रूप हो गए हैं । प्रकृति इन कवियों की सच्ची संगिनी बन गई है । वह इनके सुख में सुखी और दुख में दुखी होती है ।

प्रकृति के प्रति छायावादी कवियों का प्रेम किसी सीमित दायरे में बंधकर नहीं रहा है । प्रकृति का सर्जक और विध्वंसक, सूक्ष्म और विराट, शान्त और

१- सुमित्रानन्दन पन्त" आधुनिक कवि ,पृष्ठ ५६ ।
२- सुमित्रानन्दन पन्त" आधुनिक कवि, बादल , पृष्ठ २७ ।

क्षुब्ध, उल्लासमय और रौद्र, पर्वतीय और मैदानी प्रत्येक रूप उन्हें आकर्षक लगा है और उसमें निहित सौन्दर्य को उन्होंने देखा, सराहा तथा शब्दों में उतारा है ।

प्रकृति का सुंदर वेश और मोहक दृश्य सभी के लिये मनो मुग्धकारी होता है, किन्तु उसके असुंदर "परिवर्तन" ने छायावादी कवि पंत का ध्यानाकर्षित किया है और उनका हृदय सहानुभूतिवश हाहाकार कर उठा है -

"आज तो सौरभ का मधुमास,
शिशिर में भरता सूनी साँस ।
वही मधुऋतु की गुंजित डाल,
झुकी थी जो यौवन के भार ;
अकिंचनता में निज तत्काल,
सिहर उठती जीवन है भार ।।"[1]

फूलों को मुस्काते और कलियों को झरते देखकर "प्रसाद" की मनोव्यथा शब्दों में उमड़ पड़ी है -

"मत कहो कि यही सफलता, कलियों के लघु जीवन की ।
मकरंद भरी खिल जायें, तोड़ी जाये बेमन की ।।"[2]

प्रसाद ने "कामायनी" में प्रलय-चित्रण के अन्तर्गत प्रकृति के क्षुब्ध रूप का अत्यन्त सजीव और संश्लिष्ट चित्र अंकित किया है -

"उधर गरजती सिन्धु लहरियाँ कुटिल काल के जालों सी ।
चली आ रही फेन उगलती फन फैलाए व्यालों सी ।।
धँसती धरा, धधकती ज्वाला, ज्वाला मुखियों के निश्वास ।
और संकुचित क्रमश: उसके अवयव का होता था ह्रास ।।
सबल तरंगाघातों से उस क्रुद्ध सिन्धु के, विचलित सी ।
व्यस्त महाकच्छप सी धरणी, ऊभ चूभ थी विकलित सी ।।"[3]

१- सुमित्रानन्दन पन्त , आधुनिक कवि , परिवर्तन, पृष्ठ ३३ ।
२- जयशंकर प्रसाद , आँसू, पृष्ठ ४५ ।
३- जयशंकर प्रसाद, कामायनी, चिन्तासर्ग, पृष्ठ २२-२३ ।

इस प्रकार प्रकृति के प्रति ऐसा अगाध प्रेम और गाढ़ तादात्म्य, उसके सुंदर और असुंदर दोनों प्रकार के रूपों का चित्रण और उसमें मानवीय चेतना के आरोप की प्रवृत्ति सर्वप्रथम नहीं तो सर्वाधिक मात्रा में छायावादी काव्य में ही लक्षित हुई ।

नया सौन्दर्य बोध :

मानवीय प्रेम का क्षेत्र हो अथवा प्रकृति प्रेम का, दोनों के ही अन्तर्गत छायावादी चित्रों में जो नवीनता दृष्टिगत होती है उसका मूलाधार है इन कवियों का नवीन सौन्दर्य बोध, जिस पर पश्चिम के सौन्दर्य दर्शन का गहरा प्रभाव पड़ा है । अतएव छायावादी काव्य में प्रकृति के अन्यान्य रूपों का विवेचन करने से पूर्व छायावादी सौन्दर्य बोध का संक्षिप्त उल्लेख उपयुक्त होगा ।

मानव चिरकाल से सौन्दर्य प्रेमी रहा है । जिस प्रकार जल का स्वभाव है ढालू भूमि की ओर बहना, उसी प्रकार मनुष्य का स्वभाव है सौन्दर्य के प्रति आकर्षित होना । कवि हृदय विशेष संवेदनशील होता है, अतएव उसका सौन्दर्य के प्रति प्रेमभाव साधारणमनुष्य की अपेक्षा कुछ अधिक होना अत्यन्त स्वाभाविक है । इस प्रकार सौन्दर्य और साहित्य अथवा काव्य का घनिष्ठ संबंध रहा है । किन्तु सौन्दर्य क्या है ? अथवा कौन वस्तु 'सुन्दर' है और कौन 'असुन्दर' इसका निर्णय कर पाना सरल नहीं है । इस संदर्भ में सौन्दर्यशास्त्र के ज्ञाताओं ने अनेक परिभाषायें प्रस्तुत की है , जिनसे सौन्दर्य के अस्तित्व ,काव्य में उसकी स्थिति और महत्व पर प्रकाश पड़ता है । यहां विस्तार में न जाकर इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि पाश्चात्य विद्वानों ने सौन्दर्य का मुख्यत: मनसपरक और वस्तुपरक' दो रूपों में देखा है । योरोपीय देशों में पूंजीवाद के विकास के साथ सौन्दर्य का मनसपरक अथवा आत्मपरक दृष्टिकोण विशेष रूप से प्रचलित हुआ, क्योंकि इसमें सामाजिक बंधनों से व्यक्ति की विजय की कामना निहित थी । इसीलिए व्यक्ति का मन ही सर्वोपरि और सौन्दर्य का मुख्य आधार माना गया, वस्तु या दृश्य गौण रहे । इस विचार-धारा के प्रचारक रूसो,वाल्टेयर, कान्ट, हीगेल, श्लीगल, शेलिंग, कालरिज, गैटे आदि यूरोपीय विद्वान थे । इनके अनुसार कौन वस्तु सुन्दर है और कौन असुन्दर, इसका निर्णय व्यक्ति की अपनी दृष्टि ही कर सकती है । सुन्दरता का एक निश्चित

और सर्वमान्य मापदण्ड नहीं बनाया जा सकता । सुन्दरता का वास्तविक आधार व्यक्ति का अपना हृदय होता है, सुन्दरता स्वयं में वस्तु निरपेक्ष होती है । तात्पर्य यह कि कवि अपनी रचना में यदि किसी " वस्तु " को आधार मानकर सौन्दर्य वर्णन कर रहा है तो यह आवश्यक नहीं कि कवि द्वारा वर्णित सौन्दर्य उसमें हो ही अथवा वह " वस्तु " सभी लोगों को उतनी ही सुन्दर और आकर्षक लगे, जितनी वह कवि की दृष्टि में है । सौन्दर्य किसी वस्तु में निहित नहीं रहता और न उसका कोई निश्चित रुप या परिमाण होता है । मनुष्य, द्रष्टा अथवा कवि की दृष्टि ही विविध वस्तुओं में अपने मनोनुकूल सौन्दर्य की सृष्टि कर लेती हैं ।

व्यक्तिवादी विचारधारा से प्रभावित होने के फलस्वरूप सौन्दर्य का यह आत्मपरक दृष्टिकोण छायावादी कवियों की रुचि के अनुकूल सिद्ध हुआ, अतएव उन्होंने अपने काव्य के अन्तर्गत इसे समग्रत: स्वीकार किया । इस नवीन सौंदर्य दृष्टि के फलस्वरूप ही जीवन की अत्यन्त सामान्य वस्तुओं में भी छायावादी कवियों को सौन्दर्य का दर्शन हुआ । पंत को धूलि के तुच्छ कण भी इसी मनोवृत्ति के कारण सुन्दर लगे हैं :-

" धूलि की ढेरी में अनजान ।
छिपे हैं मेरे मधुमय गान ।"।[१]

अंतर्जगत से लेकर विश्व, प्रकृति और जीवन के सभी क्षेत्रों में सौन्दर्योपासना, सौन्दर्य का दर्शन एवं सौन्दर्य का उद्घाटन छायावादी कवियों का ध्येय रहा है । अतिशय संवेदनशील होने के कारण संवेगों के प्रवाह में बहते हुए जिस किसी वस्तु पर उनकी दृष्टि पड़ी उसमें अपने भावानुकूल सौन्दर्य का आरोप कर उन्होंने उसे अत्यन्त भव्य रूप में प्रस्तुत किया है । छायावादी काव्य में प्राप्य प्रेम के उदात्त रुप, " नारी " के प्रति आदरभाव जीव और ब्रह्म का रागात्मक संबंध दृश्य जगत में अदृश्य चेतन सत्ता की छवि के दर्शन और प्रकृति के अनेकानेक मनोरम चित्रों के मूल में इन कवियों की व्यापक और नवीन सौन्दर्य चेतना ही सक्रिय रही है ।

छायावादी सौन्दर्य भावना के संबंध में दूसरी और अत्यन्त महत्वपूर्ण बात यह है कि इन कवियों ने स्थूल नहीं, सूक्ष्म सौन्दर्य की उपासना की है । किसी

१- सुमित्रानन्दन पंत, पल्लव " उच्छ्वास ", पृष्ठ ४ ।

" वस्तु " को यथारूप चित्रित न करके वे उस वस्तु को देखकर मन में उठनेवाली भावनाओं या विचारों को ही महत्व देते हैं । इसके अंतर्गत दो तथ्य प्रकट होते हैं - (१) छायावादी कवि पूर्ववर्ती कवियों की भाँति वस्तु अथवा दृश्य का स्पष्ट चित्र न प्रस्तुत करके मात्र छायांकन करते हैं, जैसे पिछले कवि नायिका के सौन्दर्य का वर्णन करने हेतु उसके आँख-कान, नाक,मुख आदि के लिये उपमानों की झड़ी लगा देते थे । लेकिन छायावादी कवि सुन्दरी नायिका के संबंध में केवल इतना ही कहकर अपने लक्ष्य में सफलता पा लेता है -

" चंचला स्नान कर आवे, चंद्रिका पर्व में जैसी ।
उस पावन तन की शोभा आलोक मधुर थी ऐसी "।।[१]

यहाँ नायिका के रूप, वर्ण आकृति आदि का स्पष्ट विवरण न होते हुए भी उसकी अत्यधिक सुन्दरता का आभास मिल जाता है ।

(२) सौन्दर्य चित्रण करते समय छायावादी कवि वस्तु को किस कोण से देखेगा , यह उसकी विशिष्ट मन:स्थिति पर निर्भर करता है । एक उदाहरण पर्याप्त होगा " यमुना " को देखकर " बिहारी " ने इतना ही कहना यथेष्ट समझा -

" सघन कुंज छाया सुखद,शीतल सुरभि समीर ।
मन ह्वै जात अजौं वहै वा यमुना के तीर "।।[२]

किन्तु उसी यमुना को देखकर छायावादी कवि निराला के मन में यमुना से संबंधित अतीत के अनगिन स्मृति चित्र उभर आते हैं, और वे यमुना की छवि का नए ही ढंग से दिग्दर्शन कराते हैं -

" यमुने तेरी इन लहरों में किन अधरों की आकुल तान ,
पथिक प्रिया सी जगा रही है उस अतीत के नीरव गान ।
बता कहाँ अब वह वंशीवट, कहाँ गए नट नागर श्याम,
चल चरणों का व्यापुल पनघट, कहाँ आज वह वृन्दा-धाम ?"[३]

१- जयशंकर प्रसाद - आँसू, पृष्ठ २४ ।
२- लाला भगवानदीन , बिहारी बोधिनी, दो०सं० ५, पृष्ठ २ ।
३- सूर्यकान्त त्रिपाठी " निराला " - परिमल- यमुना के प्रति, पृष्ठ ४५-४६ ।

उद्दीपन रुप -

परंपरा से सर्वाधिक प्रचलित प्रकृति के उद्दीपन रुप के चित्र भी छायावादी काव्य में बहुलता से उपलब्ध होते हैं । पूर्ववर्ती काव्य में प्रकृति नायक नायिका के भावों को उद्दीप्त करती रही है किन्तु छायावादी काव्य में वह कवि के मनोविकारों को उद्दीप्त करती है, क्योंकि छायावादी काव्य में कवि स्वयं नायक रुप में रहता है ।

पूर्ववर्ती कवियों ने प्रकृति में संवेदना तथा सहानुभूति खोजने का प्रयास भर ही किया है, किन्तु छायावादी कवियों के साथ प्रकृति एक सजीव चेतन सत्ता होने के नाते प्रत्यक्ष रुप में सहानुभूति प्रदर्शित करती हुई तथा उनके सुख दुख में सहयोगिनी बनकर उनके साथ वार्तालाप करती हुई भी दिखाई देती है -

"सृष्टि हँसने लगी आँखों में खिला अनुराग ।
राग रंजित चंद्रिका थी उड़ा सुमन पराग ।।
और हँसता था अतिथि मनु का पकड़कर हाथ ।
चले दोनों स्वप्न पथ में स्नेह संबल साथ ।।"[१]

पंत इस क्षेत्र में कुछ और आगे बढ़े हुए हैं । वृक्ष के नीचे परछुत वसना छाया से अपनी सहानुभूति प्रकट करते हुए वे पूछते हैं -

"कहो कौन हो दमयंती सी
तुम तरु के नीचे सोई ?
हाय तुम्हें भी त्याग गया क्या
अलि नल सा निष्ठुर कोई ?"[२]

इस प्रकार उद्दीपन-रुप में भी प्रकृति छायावादी काव्य में अपनी स्वतंत्र सत्ता स्थिर रखती है और कवि-हृदय के साथ उसका पूर्ण तादात्म्य रहता है । वह कवि के उल्लास में हंसती, विषाद में रोती है तथा उसके हृदय में

१- जयशंकर प्रसाद , कामायनी, वासना सर्ग, पृष्ठ २५ ।

२- सुमित्रानन्दन पन्त , पल्लव , छाया , पृष्ठ ४५ ।

अनेकानेक आशा आकांक्षायें और संवेदनायें उत्पन्न करती हैं ।

प्रत्येक वस्तु को अपनी भावनाओं के रंग में रंगकर देखना छाया वादी कवियों की विशेष प्रवृत्ति है । प्रकृति चित्रण के क्षेत्र में भी वह प्राय: अपनी भावनाओं का आरोपण प्रकृति पर कर देता है, जिससे फलस्वरूप प्रकृति और कवि का व्यक्तित्व एक दूसरे में समाहित होकर दोनों का परस्पर प्रगाढ़ रागात्मक संबंध प्रकट करता है । उदाहरणार्थ -

" मैं नीर भरी दुख की बदली ।
स्पंदन में चिर निस्पंद बसा,
क्रन्दन में आहत विश्व हंसा ।
नयनों में दीपक से जलते,
पलकों में निर्झरिणी मचली ।।"[१]

अथवा -

" निश्वास मलय में मिलकर
छायापथ छू आऊंगा ।।
अंतिम किरणें बिखराकर
छिपकर भी छिप जाऊंगा ।।
चमकूंगा धूलि कणों में
सौरभ हो उड़ जाऊंगा ।।"[२]

छायावादी काव्य में प्रकृति का " उद्दीपन रूप " में चित्रण बड़े परिणाम में हुआ है किन्तु उसका लक्ष्य परंपरा का निर्वाह नहीं है उसमें नयापन है ।

प्रकृति छायावादी कवियों को व्यक्तिगत प्रणय के संयोग-वियोग की स्थितियों से ऊपर उठाकर अखिल विश्व और मानवता से प्रेम करने का भी संदेश देती है । फूल मुस्कराने को ही खिलता है, उसका जीवन क्षणिक है, फिर भी वह हर समय हंसता है और मुक्त हस्त अपने सौरभ का दान करता है । महादेवी वर्मा को भी फूल के द्वारा संपूर्ण विश्व पर अपना ममत्व लुटाने की प्रेरणा मिलती है, अत: वे अपने जीवन पाटल के प्रति कहती हैं :-

---

१- महादेवी वर्मा - यामा, सांध्यगीत, पृष्ठ २२७ ।
२- जयशंकर प्रसाद - आंसू, पृष्ठ ४२-४३ ।

"भिक्षुक सा यह विश्व खड़ा है
पाने करुणा, प्यार ।
हँस उठ रे नादान, खोल दे
पंखुरियों के द्वार ।।"[1]

प्रकृति के अत्यधिक प्रेमी कवि पंत प्रकृति के मध्य सुमनों का मानव-जीवन से तुलना करते हैं तो उनका हृदय करुणार्द्र हो उठता है -

"कुसुमों के जीवन का पल हँसता ही जग में देखा ।
इन म्लान मलिन अधरों पर थिर रही न स्मित की रेखा"।[2]

अथवा -

"प्रकृति धाम यह । तृण तृण कण कण यहाँ प्रफुल्लित जीवित ।
यहाँ अकेला मानव ही रे चिर विषण्ण जीवन्मृत ।।"[3]

प्रकृति छायावादी कवियों को सुख दुःख दोनों को सम भाव से ग्रहण करने की शिक्षा देती है तथा पीड़ाओं और कष्टों पर विजय पाकर उत्साह और विश्वास के साथ जीवन में आगे बढ़ने के लिए प्रेरित करती है । प्रसाद का कथन है -

"देखा बौने जलनिधि का शशि छूने को ललचाना,
वह हाहाकार मचाना फिर उठ उठकर गिर जाना ।
मुँह सिये झेलती अपना अभिशाप ताप ज्वालायें,
देखी अतीत के युग से चिर मौन शैल मालायें ।।"[4]

इन प्राकृतिक उपादानों से प्रेरणा ग्रहण कर वे अपने व्यक्तिगत जीवन में कामना करते हैं :-

"हैं पड़ी हुई मुँह ढँककर मन की जितनी पीड़ायें ।
वे हँसने लगें सुमन सी, करती कोमल क्रीड़ायें ।।"[5]

१- महादेवी वर्मा - नीरजा, पृष्ठ ७० ।
२- सुमित्रानन्दन पन्त - गुंजन, पृष्ठ २१ ।
३- सुमित्रानन्दन पन्त - ग्राम्या, पृष्ठ १६ ।
४- जयशंकर प्रसाद - आँसू, पृष्ठ ७७ ।
५- जयशंकर प्रसाद - आँसू, पृष्ठ ७३ ।

अलंकार रुप -

अलंकार रुप में प्राकृतिक उपादानों का उपयोग छायावादी काव्य में बहुलता से हुआ है। छायावादी कवियों ने मानवीय सौन्दर्य का चित्रण करते समय तुलनात्मक दृष्टि से बारंबार प्रकृति पर दृष्टि डाली है और प्रकृति से अनेकानेक उपमानों और अप्रस्तुतों का चयन किया है, जिनमें से अधिकांश चिर परिचित हैं। किन्तु कथन का ढंग पूर्ववर्ती कवियों से भिन्न होने के फलस्वरूप उनमें नए पन का आभास होता है। यहां एक ही उदाहरण पर्याप्त होगा। प्रसाद कामायनी की मुखच्छवि का वर्णन करते हुए लिखते हैं :-

" घिर रहे थे घुंघराले बाल
अंस अवलंबित मुख के पास।
नील घन शावक से सुकुमार
सुधा भरने को विधु के पास"।।[१]

अन्य रुप -

छायावादी काव्य में प्रकृति के परंपरागत अन्य रूप प्रतिबिम्ब प्रतीक, संकेत, परमसत्ता की अभिव्यक्ति का माध्यम आदि भी उपलब्ध है और इन समस्त रूपों में प्रकृति छायावादी कवियों के लिए महत्वपूर्ण रही है।

" सर्ववाद" के समर्थक सूफी और यूनानी दार्शनिकों के अनुसार प्रकृति अथवा यह दृश्य जगत हमारे आध्यात्मिक जगत की छाया है। प्रकृति के गोचर रुप द्वारा अगोचर परमशक्ति का आभास मिलता है। प्रकृति अपने सामान्य क्रिया व्यापारों के माध्यम से परोक्ष के जिज्ञासुओं को विभिन्न संकेत करती है, जिन्हें चर्म चक्षुओं से नहीं, मानस चक्षुओं से ही देखा और समझा जा सकता है। ज्ञानी और रहस्यवादी साधक ब्रह्म संबंधी ज्ञान को चिन्तन और साधना द्वारा प्राप्त करते हैं, किन्तु प्रकृति प्रेमी कवि उसे प्रकृति के साथ अपने हृदय का तादात्म्य स्थापित करके भाव योग द्वारा पा लेता है।

छायावादी कवियों ने भी उक्त दार्शनिक विचारधारा को अपनाया है।

१- जयशंकर प्रसाद - कामायनी, पृष्ठ ४३।

सूफी कवि जायसी ने प्रकृति में " परोक्ष " की छाया देखते हुए लिखा था -

" बहुत जोति जोति ओहि भई ।
रवि ससि नखत दिपहिं ओहि जोती रतन पदारथ मानिक मोती
जहं जहं विहंसि सुभावहिं हंसी, तहं तहं छिटकि ज्योति परगसी ।। "[1]

छायावादी काव्य में भी इस प्रतिबिम्बवाद के प्रभूत उदाहरण मिलते हैं । प्रसाद लिखते हैं -

" छायानट छवि परदे में सम्मोहन वेणु बजाता ।
संध्या कुहुकिनि अंचल में कौतुक अपना भर जाता ।।[2]
+ + + +
प्राची के अरुण मुकुर में देखूं प्रतिबिम्ब तुम्हारा ।
उस अलस उषा में देखूं अपनी आंखों का तारा ।। "[3]

प्रकृति में व्याप्त परमसत्ता के अस्तित्व को छायावादी कवियों ने प्रतीकों और संकेतों के द्वारा अभिव्यक्त किया है । " प्रतीक " रूप में प्रकृति चित्रण का एक श्रेष्ठ उदाहरण पंत की इन पंक्तियों में मिलता है -

" अपने ही सुख से चिर चंचल,
हम खिल खिल पड़ती हैं प्रतिपल ।
जीवन के फेनिल मोती को
ले ले चल करतल में टलमल ।।
+ + + +
चिर जन्म मरण को हंस हंसकर
हम आलिंगन करती प्रतिपल ।
फिर फिर असीम से उठ उठकर
फिर फिर उसमें हो हो ओझल ।। "[4]

१- मलिक मोहम्मद जायसी - पद्मावत- नखशिख खण्ड, पृष्ठ ४४ ।
२- जयशंकर प्रसाद - आंसू, पृष्ठ ३३ ।
३- जयशंकर प्रसाद - आंसू , पृष्ठ ६७ ।
४- सुमित्रानन्दन पन्त - आधुनिक कवि, पृष्ठ ४७ ।

यहाँ पर प्रतीक योजना रूप गत ही नहीं वस्तुगत भी है, अतएव इन पंक्तियों का दोहरा अर्थ निकलता है । समुद्र की लहरें और अनंत असीम से उत्पन्न होनेवाला सान्त ससीम मानव प्राणी दोनों की ही बात कहना कवि का लक्ष्य है । इसी प्रकार " प्रथम रश्मि " कविता में भी पंत ने प्रतीक रूप में प्रकृति का संश्लिष्ट चित्र खींचा है । वस्तुतः इस प्रकार के संश्लिष्ट चित्र ही विषय-वस्तु के अन्तर्गत ग्राह्य है, शेष स्फुट प्रतीक, जिनकी छायावादी काव्य में भरमार है शैली पक्ष से सम्बद्ध हैं । प्राकृतिक उपादानों को प्रतीक रूप में चुनकर उनका संश्लिष्ट चित्र प्रस्तुत करने में सर्वाधिक सफलता पंत को मिली है ।

संपूर्ण सचराचर विश्व को परमसत्ता की छाया मानने की दार्शनिक विचारधारा के प्रभाववश छायावादी कवियों की यह धारणा है कि यह दृश्य जगत उस विश्व नियंता की ओर सतत संकेत किया करता है । प्रकृति के विभिन्न सामान्य क्रिया व्यापारों में उन्हें किसी न किसी प्रकार के सांकेतिक अर्थ का बोध होता है । अतएव छायावादी काव्य में प्रकृति को संकेत रूप में चित्रित करनेवाली रचनायें बड़े परिमाण में प्राप्य है । पंत की मौन-निमंत्रण तथा मुस्कान ", महादेवी की " मुस्काता संकेत भरा नभ ", " लाए कौन संदेश नए घन " आदि रचनायें इसकी श्रेष्ठ उदाहरण हैं ।

सारांशतः प्रकृति छायावादी काव्य में महत्वपूर्ण वर्ण्य विषय रही है । प्रकृति को उसके विविध रूपों में चित्रित कर छायावादी कवियों ने प्रकृति के प्रति अपना असीम अनुराग सिद्ध किया है । इस क्षेत्र में उन्होंने परंपरा का भी सम्बल लिया है, परन्तु परंपरानुगमन को उन्होंने अपना लक्ष्य नहीं बनने दिया है । उनकी नवोन्मेषशालिनि प्रतिभा प्रकृति का नव-श्रृंगार करने में विशेष प्रवृत्त हुई है ।

<u>(ग) तत्व चिन्तन -</u>

छायावादी काव्य में भावुकता का प्राधान्य और कल्पनातिशय्य होते हुए भी दार्शनिक चिन्तन की एक अंतर्धारा निरंतर प्रवहमान रही है । प्रसाद पंत, निराला तथा महादेवी - छायावाद के सभी प्रमुख कवियों में यह चिन्तन की

प्रवृत्ति स्पष्ट दिखाई देती है । इसके मूल में बाह्य जीवन की जटिल स्थितियां कारण रूप रही हों अथवा स्वत: उद्भूत अंत:प्रेरणायें, किन्तु दार्शनिक क्षेत्र की ओर इन कवियों का गहरा झुकाव लक्षित होता है यह और बात है कि वह युग व्यक्ति-चेतना प्रधान था, अतएव प्रत्येक कवि ने दार्शनिक तत्वों की अभिव्यक्ति भी वैयक्तिक स्तर पर की है और उनमें सर्वत्र एकसूत्रता भी नहीं मिलती । उनके चिन्तनके स्रोत भी अलग-अलग थे । इसका कारण यह कहा जा सकता है कि छायावाद का जन्म राजनैतिक, सामाजिक-आर्थिक उथल-पुथल के युग में हुआ था उस समय की चिन्तन-धारायें भी भिन्न भिन्न थीं, उनमें उस एकरूपता का अभाव था जो अपना व्यापक समष्टिगत प्रभाव डालने में समर्थ होती । परिणामत: प्रत्येक कवि ने अपनी रुचि, प्रतिभा और सांस्कृतिक परिवेश के अनुसार भिन्न-भिन्न चिन्तन स्रोतों से प्रभाव ग्रहण किया और उसे काव्यात्मक अभिव्यक्ति दी । छायावादी काव्य का एक बड़ा अंश परंपरागत दार्शनिक तत्वों की काव्यमयी व्याख्या प्रस्तुत करता है । कहीं-कहीं पूर्व और पश्चिम की दर्शन संबंधी विचारधाराओं का समन्वय भी हुआ है । समन्वय की प्रवृत्ति सुमित्रानन्दन पन्त में सब से अधिक लक्षित होती है ।

छायावादी काव्य में मुख्य रूप से निम्नलिखित विचार-दर्शन प्रतिबिम्बित हुए हैं -

सर्ववाद
अद्वैतवाद
दु:खवाद
आनंदवाद
विश्वमानवतावाद ।

सर्ववाद (Pantheism) :

प्रकटत: यह एक पाश्चात्य दार्शनिक धारा है किन्तु भारतीय सर्वात्मवाद से इसमें कोई तात्विक भिन्नता नहीं दिखाई देती । यह सर्ववाद और सर्वात्मवाद की चिन्तन धारायें यौरप तथा भारतवर्ष में अत्यन्त प्राचीन है । 'सर्ववाद' ईश्वर और विश्व की एकता पर बल देता है । पैन=सब, थी यौज़ = ईश्वर अर्थात् सब कुछ ईश्वर है । सर्वात्मवाद दार्शनिक भी विश्व के जड़ चेतन सभी तत्वों में एक ही परम सत्ता की व्याप्ति मानता है ।

अँगरेजी रोमांटिक कविता में सर्ववाद की अत्यंत विशद व्याख्या हुई है । छायावादी कवियों को शैली ,कीट्स,बायरन,वर्डसवर्थ,ब्राउनिंग आदि अँगरेजी कवियों की विचारधारा से जो सर्ववाद से गहरे प्रभावित थे, पर्याप्त उत्तेजन मिला, कुछ सीधे संपर्क द्वारा, कुछ कवीन्द्र रवीन्द्र के माध्यम से । इसके अतिरिक्त भारतीय सर्वात्मवाद की प्राचीन परंपरा संस्कार रूप में उनमें निहित थी ही । इस प्रकार सर्ववाद' और' सर्वात्मवाद' का समन्वित रूप छायावादी काव्य में प्रकृति के साथ रागात्मक संबंध,मानवतावाद, विश्व बंधुत्व आदि रूपों में प्रतिफलित हुआ ।

प्रकृति चित्रण विषयक प्रसंग में इसकी चर्चा की जा चुकी है कि छायावादी कवि इस दृश्य जगत को उस अदृश्य सत्ता की अनुकृति मानते हैं । अनुकृति होने के नाते उसके द्वारा उस अदृश्य की पहचान हो सकती है । अदृश्य ब्रह्म प्राकृतिक व्यापारों के माध्यम से अपने आपको निरंतर अभिव्यक्त किया करता है । उसके सूक्ष्म संकेत प्रकृति के क्रियाकलापों के रूप में क्षण-क्षण व्यक्त होते रहते हैं । इसीलिये छायावादी कवि प्रकृति को जीवन्त और चेतनामयी मानते हैं । प्रकृति के सौन्दर्य में कभी उन्हें' प्रियतम' की छवि दिखाई दी है, कभी प्रकृति के द्वारा उन्हें प्रियतम के संकेत प्राप्त हुए और कभी जड़ प्रकृति में उन्होंने उसी चेतन सत्ता का संस्पर्श अनुभव किया है जो मानव अथवा जीव मात्र में व्याप्त है ।

प्रकृति की अनेक रूपता में एकता स्थापन का यह प्रयास तथा उसे चेतन मानकर उसमें परमब्रह्म की छवि देखना[1] आदि सर्वात्मवाद का ही पक्ष है । नगेन्द्र का कथन है - "छायावाद में समस्त जड़ चेतन को मानव चेतना से स्पंदित मानकर अंकित किया गया है, और इस भावना को यदि कोई दार्शनिक रूप दिया जाएगा तो वह निश्चय ही सर्वात्मवाद होगा"।[2]

' सर्वात्मवाद' कोई स्वतंत्र दर्शन न होकर वस्तुतः अद्वैतवाद का ही एक विशिष्ट रूप है । वेदान्त दर्शन के अद्वैतवाद और सर्वात्मवाद में मात्र इतना ही अंतर है कि वेदान्ती जगत को माया अथवा मिथ्या मानते हैं किन्तु सर्वात्मवाद में जगत ईश्वर

१- "माँ वह दिन कब आएगा ?
मैं तेरी छवि देखूँगी ,
जिसका यह प्रतिबिम्ब पड़ा है
जग के निर्मल दर्पन में "।। - सुमित्रानन्दन पन्त- वीणा,पृष्ठ ३२ ।

२- नगेन्द्र - विचार और अनुभूति,पृष्ठ ५६ ।

रूप और ईश्वर मय होने के कारण मिथ्या न होकर सर्वकाल सर्वदशा में सत्य रूप रहता है ।

सर्वात्मवादी विचारधारा का प्रभाव हिन्दी साहित्य के प्रत्येक युग में न्यूनाधिक मात्रा में लक्षित होता है । मध्ययुग के कवियों ने विशेष रूप से सर्वात्मवाद के ही सर्वव्यापी सत्य का गान किया है । उदाहरणार्थ -

-" खालिक खलक, खलक में खालिक, सब घटरह्या समाई"[१]

-" सदा लीन आनन्द में सहज रूप सब ठौर ।
दादू देखै एक को दूजा नाही और ।।"[२]

- " सीय राममय सब जग जानी करौं प्रनाम जोरि जुग पानी ।"[३]

छायावाद में जैसा कि पहले कहा गया है " सर्वात्मवाद " का गहरा प्रभाव लक्षित होता है, उसका साधनात्मक और भक्तिमय मूलरूप नहीं जो कि उपर्युक्त मध्ययुगीन कवियों की रचनाओं में दिखाई देता है । छायावादी सर्वात्मवाद का मूलाधार प्रकृति सौन्दर्य और उसके भीतर निहित रहस्य की प्रेरणा है । वह उसकी धर्म साधना का परिणाम न होकर उसकी काव्य-साधना अथवा सौन्दर्यानुभूति का ही प्रतिफल है । छायावादी कवियों के इस प्रकृतिमूलक सर्वात्मवाद का मध्ययुग के संत और भक्त कवियों के सर्वात्मवादी दृष्टिकोण से अन्तर स्पष्ट करते हुए नन्ददुलारे वाजपेई लिखते हैं - " जहां पूर्ववर्ती भक्तिकाव्य में जीवन के लौकिक और व्यावहारिक पहलुओं को गौण स्थान देकर उनकी उपेक्षा की गई थी, वहां छायावादी काव्य प्राकृतिक सौन्दर्य और सामयिक जीवन परिस्थितियों से ही मुख्यतः अनुप्राणित है । इस दृष्टि से वह पूर्ववर्ती भक्तिकाव्य की प्रकृति निरपेक्षता और संसार मिथ्या की सैद्धान्तिक प्रतिक्रियाओं का विरोधी भी है । छायावाद मानव जीवन सौन्दर्य और प्रकृति को आत्मा का अभिन्न स्वरूप मानता है । उसे अव्यक्त की वेदी पर बलिदान नहीं कर देता ।"[४]

१- कबीर - कबीर ग्रंथावली, पृष्ठ ५१ ।

२- दादू - ज्ञानसागर, पृष्ठ ४२ ।

३- तुलसीदास - रामचरितमानस, बालकाण्ड, १।।८।।

४- नन्ददुलारे वाजपेई - आधुनिक साहित्य, पृष्ठ ३२० ।

छायावादी कवियों ने वर्णित सिद्धान्तों और अद्वैतगत अध्याय की व्याख्या को अपना लक्ष्य न मानकर सर्वात्मवाद के केवल भावनात्मक पक्ष को ग्रहण किया है । अंतर्मुखी प्रवृत्ति के कारण प्रकृति ही उनकी सर्वाधिक संगिनी बन सकती थी, जिससे वे अपने हृदय की बात खुलकर कह सकते थे । इसीलिए सर्वात्मवाद का आधार लेकर उन्होंने प्रकृति में मानवीय चेतना का आरोप कर लिया और प्रकृति के साथ अपने हृदय को एकाकार करके अपनी जिज्ञासाओं की तुष्टि तथा शान्ति और सुख पाने का प्रयास किया । इसके विपरीत मध्ययुग के संत और भक्त कवियों का ध्येय जड़ चेतन सभी में समान रूप से व्याप्त एक ही चेतन सत्ता की चर्चा द्वारा एक ओर तो परब्रह्म की महत्ता का दिग्दर्शन कराना था , दूसरे सांसारिकता को त्यागकर पारलौकिक सुख की प्राप्ति हेतु प्रयत्नशील होने की प्रेरणा देना ।

अद्वैतवाद -

अद्वैतवाद का मूल रूप सांख्य और वेदान्त की चिन्तनधारा में मिलता है । उपनिषद् काल में यज्ञों की प्रधानता समाप्त करके तार्किकों की अनेक श्रेणियां बनी जिनके फलस्वरूप षड्दर्शनों का जन्म हुआ । इन्हीं षड्दर्शन में एक सांख्य दर्शन है, और इसी का पुष्ट और लोक मंगलकारी रूप वेदान्त दर्शन है । प्राचीन यज्ञादि कर्मकाण्ड का अंत करके ज्ञान की प्रतिष्ठा करने के कारण ही यह वेदान्त कहलाया । वेदान्त को ही ब्रह्मसूत्र भी कहा गया ।

" ब्रह्मसूत्र " पर अनेक भाष्य लिखे गए, जिनमें भाष्यकारों ने अपनी-अपनी दृष्टि-कोण से वेदान्त का प्रतिपादन किया । शंकराचार्य , रामानुजाचार्य, मध्वाचार्य, वल्लभाचार्य, निम्बार्क आदि के नाम पर इसीलिए वेदान्त के विभिन्न संप्रदाय बने । इनमें शंकर और रामानुज के संप्रदायों को सर्वाधिक ख्याति प्राप्त हुई । शंकर और रामानुज दोनों ही अद्वैतवादी अर्थात् जीव और ब्रह्म की एकता (सोऽहंवाद) को मानने वाले हैं किन्तु जीव और ब्रह्म के पारस्परिक संबंधों को लेकर दोनों में मतभेद है ।

शंकराचार्य के अनुसार -" ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या ,ब्रह्म जीवैक: नापर।"[1]

१- विवेक चूडामणि - श्लोक संख्या २० ।

अर्थात् ब्रह्म सत्य है । शेष जगत मिथ्या है । जीव और ब्रह्म मूलतः एक है तथापि अविद्या अथवा माया उन्हें एक दूसरे से अलग करती है । माया के आवरण के कारण जगत मायिक और दुःखमय है । इस जगत रूपी दुःख समुद्र का संतरण करके जीव और ब्रह्म की एकता के पुनर्स्थापन हेतु शंकर ने 'अहं ब्रह्मास्मि' (मैं ही ब्रह्म हूँ) की अनुभूति को साधन माना जो शुद्ध ज्ञान पर आधारित है । शंकर ने शुद्ध बुद्ध निराकार ब्रह्म की उपासना पर बल दिया:, किन्तु रामानुज ने ब्रह्म में गुणों का आरोप कर के 'भक्ति' को आचार दृष्टि से मनुष्य जीवन का अन्तिम कर्तव्य माना । उन्होंने उपनिषद्, गीता, तथा ब्रह्मसूत्र पर भाष्य लिखकर शंकर के 'मायावाद' का खण्डन किया । उच्चकोटि की भक्ति के वशीभूत होकर निराकार ब्रह्म साकार भी हो सकता है, और संसार की रंगस्थली में प्रकट होकर मानवोचित लीलाएँ भी कर सकता है - 'ब्रह्म' संबंधी इस विशिष्ट धारणा के फलस्वरूप रामानुजाचार्य की विचारधारा को 'विशिष्टाद्वैत' की संज्ञा दी गई । इस विशिष्टाद्वैत में 'ज्ञान' की अपेक्षा 'भक्ति' को अधिक महत्व दिया गया ।

नगेन्द्र ने छायावाद मूलतः भारतीय अद्वैतवाद का ही प्रादुर्भाव माना है ।[1] इस कथन की उपयुक्तता पूरी तरह प्रमाणित नहीं होती, क्योंकि छायावादी काव्य का बृहत अंश लौकिक प्रेम विरह संबंधी अभिव्यक्तियों पर आधारित है तथापि इतना स्वीकार्य है कि छायावादी कवियों का पर्याप्त झुकाव भारतीय अद्वैत दर्शन की ओर रहा है । छायावादी कवियों में निराला विशेष रूप से अद्वैतवाद के सिद्धान्तों से प्रभावित दिखाई देते हैं । उदाहरणार्थ -

" पास ही रे हीरे की खान
खोजता और कहाँ नादान ?
कहीं भी नहीं सत्य का रूप
अखिल जग एक अंधतम कूप ।
ऊर्मि घूर्णित रे मृत्यु महान
खोजता कहाँ यहाँ नादान ?"[2]

१- नगेन्द्र - आधुनिक हिंदी काव्य की मुख्य प्रवृत्तियाँ, पृष्ठ १२ ।
२- सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' - गीतिका, पृष्ठ २७ ।

उपर्युक्त पंक्तियों में जीव और ब्रह्म की एकता का प्रतिपादन है तथा संसार को एक अंधकारमय कूप के सदृश दु:ख मय बताया गया है ।

निराला की इन पंक्तियों का बहुत कुछ भाव साम्य " कबीर " के इस सुप्रसिद्ध दोहे में देखा जा सकता है -

" कस्तूरी कुंडलि बसै मृग ढूंढै बन माहिं ।
तैसे घट घट राम है दुनिया देखै नाहिं ।।"[१]

शांकर अद्वैत के अनुसार जगत के समस्त दु:खों का मूल कारण "माया" है, क्योंकि वही जीव और ब्रह्म के बीच भ्रम का परदा डालकर उन्हें परस्पर एक दूसरे से अलग करती है । महादेवी वर्मा ने भी इस माया रूपी दर्पण की चर्चा की है जिसके टूटने पर ही परमसत्ता से आत्मा का साक्षात्कार संभव है -

" टूट गया वह दर्पण निर्मम
उसमें हँस दी मेरी छाया
मुझमें रो दी ममता माया
अश्रु हास ने विश्व सजाया,
रहे खेलते आंख मिचौनी
प्रिय जिसके परदे में " मैं " तुम "।[२]

परन्तु इस प्रकार के उदाहरण छायावादी काव्य में बहुत अधिक नहीं मिलते क्योंकि अद्वैतवाद का यह शंकराचार्य द्वारा प्रतिपादित प्राचीन रूप अतिशय बौद्धिक है ।

आधुनिक युग में अद्वैत दर्शन के प्रमुख समर्थकों में रामकृष्ण परमहंस का नाम विशेष उल्लेखनीय है । इन्हीं के प्रिय शिष्य स्वामी विवेकानन्द ने अद्वैत दर्शन का व्यवहारिक रूप प्रस्तुत किया जिसे अत्यधिक लोकप्रियता प्राप्त हुई । छायावादी कवि भी वस्तुत: प्राचीन अद्वैतवादी दर्शन की अपेक्षा स्वामी विवेकानन्द द्वारा बताए गए उसके लोक मंगलकारी और व्यवहारिक रूप से अधिक प्रभावित रहे हैं

१- पारसनाथ तिवारी - कबीर ग्रंथावली- पिउपहिचानिबे कौ अंग, साखी १ ।
२- महादेवी वर्मा - नीरजा, पृष्ठ ६६ ।

उदाहरणार्थ, विवेकानन्द के अनुसार - " प्रेम सदा देनेवाला ही होता है, लेनेवाला कभी नहीं बनता । इस प्रकार जो प्रेम पूर्णतया निस्वार्थ हो, वही प्रेम " प्रेम " है । और वही सचमुच ईश्वर का प्रेम है ।" [१]

और प्रसाद जी लिखते हैं -

" पागल रे वह मिलता कब ?
उसको तो देते ही हैं सब ।
फिर क्यों तू उठता है पुकार
मुझको न मिला रे कभी प्यार "। [२]

स्वार्थ रहित, त्यागपूर्ण और सेवा जन्य, प्रेम को ही विवेकानन्द ने ईश्वर प्राप्ति का साधन माना है । छायावादी कवि निराला ने भी इस विचार का समर्थन किया है -

" प्रेम का पयोधि तो उमड़ता है
सदा ही निःसीम भू पर ।
प्रेम की महोर्मि माला तोड़ देती क्षुद्र ठाट
जिसमें संसारियों के सारे क्षुद्र मनोयोग
तृण सम बह जाते हैं ।" [३]

छायावादी काव्य का " मानवतावाद " अद्वैतवाद " के इस व्यवहारिक पक्ष पर ही आधारित है । मानव मात्र की समानता का मूल मंत्र और मानवीय गौरव की प्रतिष्ठा का जो स्वप्न छायावादी ~~काव्य~~ काव्य में प्रकट हुआ है, उसकी प्रेरणा इन कवियों को स्वामी विवेकानन्द द्वारा ही प्राप्त हुई । विवेकानन्द के मतानुसार ईश्वर सर्व व्यापी है ।" ईश्वर की पूजा नहीं हो सकती, क्योंकि ईश्वर तो सृष्टि में सर्वत्र व्याप्त है । हम उसके मानव स्वरूप की ही उपासना कर सकते हैं ।" [४]

उक्त विचार के आधार पर छायावादी काव्य में मानव में ईश्वरत्व का आरोप करके उसके महिमा मंडित रूप का चित्रण किया गया ।

१- विवेकानन्द- प्रेमयोग, पृष्ठ २२ ।
२- जयशंकर प्रसाद - लहर, पृष्ठ ३७ ।
३- सूर्यकान्त त्रिपाठी " निराला " - परिमल, पृष्ठ २१० ।
४- विवेकानन्द - प्रेमयोग, पृ० ५० ।

विवेकानन्द के इस मानव ईश्वर से पंत सर्वाधिक प्रभावित हुए । उन्होंने "गांधी" और "अरविन्द" को देव-तुल्य मानते हुए बारंबार कामना की है कि इस धरती पर मानव ईश्वर पुन: अवतरित हो । उनकी "बापू के प्रति" लिखी गई निम्न पंक्तियां द्रष्टव्य है :-

"जड़वाद जर्जरित जग में तुम अवतरित हुए आत्मा महान ।
यंत्राभिभूत युग में करने मानव जीवन का परित्राण "।।[1]

अद्वैत दर्शन की विशिष्टाद्वैतवादी शाखा तथा द्वैताद्वैत आदि रूपों के भी स्फुट उदाहरण छायावादी काव्य में मिल जाते हैं । विशिष्टाद्वैत में जीव और ब्रह्म अभिन्न माने जाते हैं, जीव ब्रह्म से अलग होकर उसकी खोज में भटकता रहता है और अंत में उसी में लीन हो जाता है । निराला की निम्न पंक्तियों में यही भाव व्यंजित हुआ है :-

" तुम तुंग हिमालय शृंग और मैं चंचल गति सुर सरिता ।
तुम विमल हृदय उच्छ्वास और मैं कान्त कामिनी कविता "।।[2]

द्वैताद्वैत का सुन्दर उदाहरण महादेवी की "बीन भी हूं मैं तुम्हारी रागिनी भी हूं "[3] में मिलता है । कवयित्री आत्मा और परमात्मा की अभिन्नता स्वीकार करने के कारण ही सीमामय होकर भी अपने को अनन्त असीम मानती है और अपने को ब्रह्म भी कहती हैं तथा ब्रह्म का अंश (जीव) भी ।

दु:खवाद -

जगत की अस्थिरता और उसके परिणाम स्वरूप जीवन की दु:खमयता भारतीय दर्शन के मूल सिद्धान्त हैं । भारतीय दर्शन की प्राय: सभी चिन्तन धाराओं में दु:खों से पूर्ण नश्वर संसार के माया-मोह से ऊपर उठकर परम तत्व की खोज को जीवन का लक्ष्य माना गया है । अद्वैतवाद" के अनुसार तो यह जगत भ्रम मात्र है , बौद्ध और जैन दर्शन उसे क्षणिक और परिवर्तनशील मानते हैं ।

१- सुमित्रानन्दन पन्त - पल्लविनी, बापू के प्रति, पृष्ठ २५७ ।

२- सूर्यकान्त त्रिपाठी "निराला" - परिमल, "तुम और मैं , पृष्ठ ८४ ।

३- महादेवी वर्मा - नीरजा, पृष्ठ २६ ।

जीवन की क्षण भंगुरता और अस्थिरता ज्ञान यदि दार्शनिक की चिन्तन वृत्ति को उकसाता है तो कवि-हृदय की संवेदनशीलता को जगाता है, किन्तु लक्ष्य दोनों का एक ही रहता है, अर्थात् समस्या के समाधान रूप में उस परम सत्य की खोज, जिसके इंगित पर जगत में क्षण क्षण परिवर्तन का क्रम चलता रहता है।

भारतीय दर्शन के प्रति रुझान के फलस्वरूप छायावादी कवियों में जीवन की अनित्यता का बोध बड़ा गहरा था, जिसने उनके काव्य में दुःखवाद अथवा निराशावाद को प्रश्रय दिया। इस संदर्भ में पंत की 'परिवर्तन' शीर्षक रचना की कुछ पंक्तियाँ द्रष्टव्य है। संसार की अस्थिरता की अनुभूति कवि के हृदय को व्यथित कर देती है, और उसके उद्गार फूट पड़ते हैं -

"वही मधुऋतु की गुंजित डाल, झुकी थी जो यौवन के भार
अकिंचनता में निज तत्काल सिहर उठती जीवन है भार

+ + + +

खोलता इधर जन्म लोचन, मूँदती उधर मृत्यु क्षण क्षण।
अभी उत्सव औ हास विलास अभी अवसाद अश्रु उच्छ्वास"।[१]

कवि हृदय में व्याकुल प्रश्न उमड़ता है कि यह परिवर्तन क्यों होता है? वसंत का वैभव पतझार में विलीन हो जाता है, हास रुदन में डूब जाता है, संयोग सुख को विरह का समीर सुखा डालता है, जन्म को मृत्यु छल जाती है, गर्वोन्नत विशाल प्रसाद उलूकों के विहार स्थल बन जाते हैं?

इन दुखद स्थितियों पर विचार करते हुए ही छायावादी कवियों की दृष्टि उस परम सत्ता की खोज में भटकी है जो विश्वनियंता है और जिसके संकेत पर ही जीवन में यह उतार चढ़ाव के दृश्य समुपस्थित होते हैं।

इसके आगे एक और सोपान है। 'परम सत्य' और 'परमसत्ता' का ज्ञान हो जाने के बाद भी दुःखों से मुक्ति पाने का प्रश्न शेष रहता है। विभिन्न दार्शनिक धाराओं ने जीवन के दुःखों से मुक्ति पाने के लिये भिन्न - भिन्न मार्गों अथवा साधना पथों का दिग्दर्शन कराया है। 'अद्वैत-दर्शन' जीवन की दुःखमयता के

१- सुमित्रानन्दन पन्त - आधुनिक कवि (२) पृष्ठ ३३-३५।

ज्ञान को ही परम तत्व का ज्ञान समझता है । बौद्ध दर्शन अष्टांगिक मार्ग का निर्देश (सम्यक दृष्टि, सम्यक संकल्प, सम्यक कर्म , सम्यक वचन, सम्यक जीविका, सम्यक स्मृति और सम्यक समाधि) करता है, जिस पर चलकर कोई व्यक्ति निर्वाण की प्राप्ति कर सकता है । इस मार्ग पर चलने के लिये अनंत करुणा को मुख्य साधन माना गया है ।

सामान्य जीवन की विषमतायें भी व्यक्ति के हृदय में करुणा को जन्म देती है । मनोवैज्ञानिक दृष्टि से व्यक्तिगत जीवन की करुणा अवसाद और निराशा की उदात्तीकरण की प्रक्रिया द्वारा श्रेष्ठ काव्य में अपने विश्व व्यापी स्वरूप में प्रकट होती है । निजी दु:खों से दग्ध कवि अपने दु:ख को अनंत और विश्व के कण कण में व्याप्त देखता है और फिर वह उन दु:खों से मुक्ति का उपाय जीवन अथवा समाज में न खोज पाने के कारण किसी परमशक्ति ,परोक्ष सत्ता की ओर आकर्षित होता है । व्यक्तिगत वेदना विश्व वेदना में मिलकर कवि की दृष्टि को विस्तार देती है और उसके हृदय को गहराई ।

छायावादी कवि भी इस प्रक्रिया से गुजरे । व्यक्तिगत जीवन की असफलताओं[१] संसार की असारता का ज्ञान और दार्शनिक विचारधाराओं के मनन चिन्तन ने छायावादी कवियों के काव्य में जिस दु:खवाद को जन्म दिया है उसका रूप बड़ा व्यापक है । वह व्यक्ति समाज और राष्ट्र की सीमायें लाँघ कर अन्त में विश्व मानवता के चरम शिखर पर पहुँचा हुआ दिखाई देता है ।

१- " मेरी चाहें बदल रहीं नित आहों में
क्या चाहूं और ?"
- सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला - परिमल, पृष्ठ १४१ ।

" निराशा के झोंकों ने देव भरी मानस कुंजों में धूल ।
वेदनाओं के झंझावात, गए बिखरा यह जीवन फूल ।।"
- महादेवी वर्मा - यामा, पृष्ठ ४० ।

" मैं दिखा सकूंगा हृदय चीर, रसमय उर में है चपन ज्वाल"
- रामकुमार वर्मा - चित्ररेखा, परिशिष्ट, पृष्ठ ७० ।

" किन्तु टूटते ही रहते हैं आशाओं के तार ।
जीवन ही बन गया हाय रे सब जीवन का भार ।।"
- भगवती चरण वर्मा - मधुकण, पृष्ठ २७ ।

"निराला" अपने जीवन के दु:खों और घात प्रतिघात से विकल हो उठते हैं, किन्तु उनका निजी दु:ख अपने से परे शेष समाज पर दृष्टिपात करने को उन्हें प्रेरित करता है और वे पाते हैं कि केवल वे ही दु:खी नहीं है वरन् संसार भर के मनुष्यों की यही स्थिति है -

" अविराम घात प्रतिघात
आह । उत्पात
यही जगजीवन के दिनरात ।
यही मेरा, इनका, उनका सब का स्पंदन ।
हास्य से मिला हुआ क्रन्दन ।
यही मेरा इनका उनका सब का जीवन ।"[१]

दु:ख का यह सर्वव्यापी रूप एक ओर तो उन्हें दार्शनिक चिंतन की उस भावभूमि पर ले जाता है जहाँ संसार की नश्वरता का बोध पहले से ही विद्यमान रहता है । फलस्वरूप उन्हें जीवन में मृत्यु के विवर दिखाई देते हैं और वे परम प्रकाश की खोज में संलग्न होते हैं :-

" यह गुहा गर्त प्राचीन , रुद्ध
नव दिक प्रसार वह किरण शुद्ध ।
है कहाँ यहाँ मधु गंध लुब्ध
वह वायु विमल आलिंगन कर ?"[२]

और दूसरी ओर उनकी दृष्टि इतनी विस्तृत और उदार बन जाती हैं कि वे सड़क पर भीख माँगनेवाले निर्बल मनुष्य , पत्थर तोड़ती मजदूरनी, दीन दु:खी विधवा आदि समाज के भिन्न भिन्न प्रकार के पीड़ित मानवों के साथ सहानुभूति स्थापित करके अपनी रचनाओं में उनका करुणा व्यंजक रूप प्रस्तुत करते हैं -

---

१- सूर्यकान्त त्रिपाठी "निराला" - परिमल, पृष्ठ १२३ ।

२- सूर्यकान्त त्रिपाठी "निराला" - गीतिका, पृष्ठ ८८ ।

"सह जाते हो ।
उत्पीड़न की क्रीड़ा सदा निरंकुश नग्न
हृदय तुम्हारा दुर्बल होता भग्न
अंतिम आशा के कानों में
स्पंदित हम सब के प्राणों में
अपने उर की तप्त व्यथायें
क्षीण कंठ से कह जाते हो ।"[१]

"वह आता
दो टूक कलेजे के करता पछताता पथ पर आता
पेट पीठ दोनों है मिलकर एक
चल रहा लकुटिया टेक
मुट्ठी भर दाने को भूख मिटाने को
मुँह फटी पुरानी झोली को फैलाता ।"[२]

महादेवी जगत को दुःखमय मानने के साथ ही दुःख को साधन और साध्य दोनों मानती हैं। कभी तो वे सूफियों की भाँति दुःख को साधन मानकर उसके माध्यम से अपने "प्रियतम" के निकट पहुँचने की चेष्टा करती हैं और कभी दुःख को ही आराध्यमय मान लेती हैं; यथा -

"तुम दुख बन इस पथ से आना ।
शूलों में नित मृदु पाटल सा खिलने देना मेरा जीवन
क्या हार बनेगा वह जिसने सीखा न हृदय को बिंधवाना ।"[३]

और

तुमको पीड़ा में ढूंढा, तुझमें ढूंढूंगी पीड़ा ।[४]

१- सूर्यकान्त त्रिपाठी "निराला" - परिमल, दीन, पृष्ठ १४४ ।
२- सूर्यकान्त त्रिपाठी "निराला" - परिमल, भिक्षुक, पृष्ठ १३१ ।
३- महादेवी वर्मा - यामा- नीरजा, पृष्ठ १८८ ।
४- महादेवी वर्मा - यामा- नीहार, पृष्ठ ३२ ।

और अन्त में यही दु:खवाद कवयित्री के हृदय को इतनी विकलता प्रदान करता है कि वे अपनी आँखों के अश्रु को जन सामान्य के अश्रु प्रवाह में लीन देखने की इच्छुक हो उठती है -

" प्रिय जिसने दुख पाला हो,
जिन प्राणों से लिपटी हो पीड़ा सुरभित चंदन सी।
तूफानों की छाया हो जिसकी प्रिय आलिंगन सी॥
जिसको जीवन की हारें हों जय के अभिनंदन सी।
वर दो मेरा यह आँसू
उसके उर की माला हो॥"[1]

जीवन सत्यों की खोज में लगे हुए पंत को यह तथ्य प्राप्त होता है कि" जग पीड़ित है अति दुख से, जग पीड़ित है अति सुख से "[2] इसीलिये वे इच्छा प्रकट करते हैं कि -

" मानव जग में बँट जाये दुख सुख से औ सुख दुख से "[3]

प्रसाद भी दु:ख की जीवन में अनिवार्य स्थिति स्वीकार करते हुए सुख और दुख के मध्य समन्वय को ही जीवन के लिए मंगलकारी समझते हैं -

" वह हँसी और यह आँसू, घुलने दे मिल जाने दे ।
बरसात नई होने दे, कलियों को खिल जाने दे ।।"[4]

पंत के अनुसार जीवन में सिद्धि और सफलता पाने के लिए जीवन को साधनामय बनाना आवश्यक है -

" अलभ है इष्ट अत: अनमोल ।
साधना है जीवन का मोल ।।"[5]

१- महादेवी वर्मा - यामा - नीरजा, पृष्ठ १७० ।
२- सुमित्रानन्दन पन्त - आधुनिक कवि, पृष्ठ ५० ।
३- सुमित्रानन्दन पन्त - आधुनिक कवि, पृष्ठ ५० ।
४- जयशंकर प्रसाद - आँसू, पृष्ठ ५८ ।
५- सुमित्रानन्दन पन्त - आधुनिक कवि , पृष्ठ ४३ ।

और इस साधना-पथ में " वेदना " को माध्यम बनाकर उन्होंने जीवन में वेदना अथवा दु:ख का महत्व सिद्ध किया है । क्योंकि उसके द्वारा अखिल विश्व के साथ अपनत्व स्थापित किया जा सकता है -

" तप रे मधुर मधुर मन, विश्व वेदना में तप प्रतिपल
जग जीवन की ज्वाला में गल, बन अकलुष उज्ज्वल औ पावन
तप रे विधुर विधुर मन अपने सजल स्वर्ण से पावन
रच जीवन की मूर्ति पूर्णतम , स्थापित कर जग में अपनापन "[१]

इस प्रकार व्यक्तिगत वेदना व्यापक, असीम और अनंत रूप धारण करके छायावादी कवियों को व्यष्टि से समष्टि की ओर ले जाती है और उन्हें विश्व बंधुत्व का पाठ पढ़ाकर उनके व्यक्तित्व का विकास और परिष्कार करती है ।

जहां तक परंपरागत दार्शनिक चिन्तन का प्रश्न है छायावादी कवि दु:खवाद के क्षेत्र में बौद्ध दर्शन से सर्वाधिक प्रभावित हुए । महादेवी ने इस प्रभाव की स्वीकृति देते हुए एक स्थल पर लिखा है कि बुद्ध की " करुणा " ने उनके हृदय को विशेष आकर्षित किया है ।[२] महादेवी की समस्त काव्यभूमि इस करुणा-जल से सिंचित है । प्रसाद पर भी बौद्ध दर्शन का स्पष्ट प्रभाव ॿ लक्षित होता है । परंतु छायावाद में दु:खवाद का जो स्वरूप उपलब्ध होता है वह बौद्ध दर्शन अथवा किसी भी परंपरागत दार्शनिक धारा का रूपान्तर मात्र नहीं है । छायावादी कवियों ने संसार की असारता और दु:खमयता को ही स्वीकार किया । बौद्धदर्शन के अनात्मवाद अथवा निर्वाण सिद्धांत के प्रति उनकी आस्था नहीं है । बौद्ध दर्शन में जन्म, जरा, मरण, संयोग-वियोग सभी को दु:ख माना गया है । दु:ख का मूल कारण तृष्णा है अतएव तृष्णा के त्याग का उसमें संदेश दिया गया है और उसके लिये अष्टांगिक मार्ग का निर्देश दिया गया है । किन्तु छायावादी काव्य में न किसी प्रकार का सिद्धान्त कथन मिलता है, और न किसी विशिष्ट साधना पथ का उल्लेख । केवल उसमें व्यक्तिगत वेदना और विश्व वेदना के स्वीकरण तथा दु:ख को जीवन का अनिवार्य तत्व मानते हुए सहज भाव से स्वीकारने और सुख-दुख के मध्य उचित संतुलन बनाए रखने की बात पर बल दिया गया है ।

१- सुमित्रानन्दन पन्त - आधुनिक कवि, पृष्ठ ५१ ।
२- "करुणा बहुल होने के कारण बुद्ध संबंधी साहित्य भी मुझे बहुत प्रिय रहा है ।"
महादेवी वर्मा - आधुनिक कवि - अपने दृष्टिकोण से, पृ०३१ ।

समग्रतः छायावादी काव्य में दुःखवाद वैयक्तिक जीवन की कटुताओं और निराशाओं के उदात्तीकरण का परिणाम है, संसार की नश्वरता और दुःखमयता के चिर परिचित दार्शनिक सिद्धान्तों तथा बौद्ध दर्शन की करुणा की पीठिका पर उसका विकास हुआ है और उसकी अन्तिम परिणति विश्व मानवतावाद में हुई है ।

आनंदवाद -

अद्वैतवाद की ही एक और शाखा 'शैवागम' है, शैवागमवादी आत्मा को प्रधानता देते हैं और समस्त संसार को उसमें समाहित करने के सिद्धान्त को मानते हैं । उन्होंने सांसारिक कष्टों से मुक्ति हेतु 'आनंदवाद' का मार्ग बताया है, जो प्रत्यभिज्ञा (**Identification**) से प्राप्त होता है ।

'आनंदवाद' के प्रतिपादक प्रवृत्ति मार्ग में आस्था रखते हैं अर्थात् शंकराचार्य के 'अद्वैतवाद' की भाँति इस सिद्धान्त के अन्तर्गत संसार को मिथ्या मानकर त्यागने अथवा वैराग्य धारण करने की आवश्यकता नहीं समझी गई और न इन्द्रिय-निग्रह का ही उपदेश दिया गया है । आनंदवादी संपूर्ण सृष्टि में "आनंद घन शिव" की व्याप्ति मानते हैं । संसार में उनके लिये कुछ भी अशिव अथवा अमंगलकारी नहीं है । संसार के प्रत्येक अणु परमाणु में केवल दो तत्व निहित है "शिव और शक्ति" । "शक्ति" के अनेक स्वरूप हैं, जिनमें पाँच मुख्य हैं - चित शक्ति, आनंद शक्ति, इच्छा शक्ति, ज्ञान शक्ति और क्रिया शक्ति । इनसे संपन्न शिव स्वेच्छा से समस्त विश्व की अभि व्यक्ति करते हैं । यह दृश्य जगत शिव की शक्ति का ही व्यक्त रूप है ।[१] शिव अर्थात् परमेश्वर अपनी इच्छानुसार सृष्टि के विकास और विनाश की लीलाएं करता है । जिस प्रकार विकास में वह "व्यक्त" होता है, उसी प्रकार विनाश में "अव्यक्त" होता है, किन्तु दोनों स्थितियों में उसका आनंदमय रूप विद्यमान रहता है ।

आनंदवादियों के अनुसार दुःख कुछ भी नहीं, भ्रम मात्र है । सुख और दुख में भेद न रखना अर्थात् सुख-दुख दोनों को समान भाव से ग्रहण करने की क्षमता प्राप्त करना ही इस दार्शनिक पंथ की मुख्य साधना है । इसी को समरसता की स्थिति कहा गया है ।

१- उमेश मिश्र - भारतीय दर्शन, पृष्ठ ३८३ ।

संपूर्ण सृष्टि शिवमय अर्थात् ईश्वरमय और ईश्वर का प्रतिबिम्ब है, व्यक्ति को जब इस सत्य का बोध हो जाता है कि वह इस शिवमय सृष्टि का अंग होने के नाते स्वयं शिवत्व से पूर्ण है तो उसके समस्त दु:ख और भ्रम मिट जाते हैं। यह आत्म तत्व को पहचानने की स्थिति ही "प्रत्यभिज्ञा" (Identification) है। इस स्थिति में पहुंचकर व्यक्ति के हृदय में किसी भी वस्तु विशेष के प्रति मोह नहीं रह जाता। वह आनन्दमय हो जाता है और उसमें संसार के सभी मनुष्यों और समस्त पदार्थों के प्रति समभाव का उदय होता है।

छायावादी कवियों में जयशंकर प्रसाद इस आनंदवादी दर्शन से अत्यंत प्रभावित हुए हैं। उनके "कामायनी" महाकाव्य पर इस दार्शनिक विचारधारा की गहरी छाप लक्षित होती है अथवा कहा जा सकता है कि "कामायनी" में आनंदवादी दर्शन का काव्यात्मक अनुवाद प्रस्तुत हुआ है। प्रसाद ने आनंदवादियों की ही भांति संसार को शिव का मूर्त रूप माना है। और महाचिति को शिव रूप में नृत्य करते हुए दिखाया है -

" चिति का स्वरूप यह नित्य जगत
वह रूप बदलता है शत-शत।
कण विरह मिलनमय नृत्य निरत,
उल्लासपूर्ण आनंद सतत् ।।"[1]

प्रसाद ने संसार को दु:खों का आगार मानकर सन्यासमूलक तप और त्याग का समर्थन नहीं किया। जीवन की विकासशीलता और उसके भोगमय पक्ष के प्रति उन्होंने आस्था प्रकट की है :-

" तप नहीं केवल जीवन सत्य
करुण यह क्षणिक दीन अवसाद।
तरल आकांक्षा से है भरा
सो रहा आशा का आह्लाद ।।"[2]

जीवन से उदासीन होने की शिक्षा भी प्रसाद ने नहीं दी। प्रवृत्तिमार्गी बनकर वे जगत में कर्मरत रहने की प्रेरणा देते हैं -

---

१- जयशंकर प्रसाद - कामायनी, दर्शन सर्ग, पृष्ठ २५० ।
२- जयशंकर प्रसाद - कामायनी, श्रद्धा सर्ग, पृष्ठ ५३ ।

" यह नीड मनोहर कृतियों का, यह विश्व कर्म रंगस्थल है ।
है परंपरा लग रही यहां, ठहरा जिसमें जितना बल है ।।"[१]

प्रसाद का समरसता सिद्धान्त जो कामायनी को मेरु दण्ड है, आनन्दवादी दर्शन की ही देन है । अध्यात्म जगत के सिद्धान्त को व्यवहार्य बनाकर कवि ने प्रस्तुत किया है । प्रसाद इच्छा, क्रिया और ज्ञान का समन्वय आवश्यक मानते हैं । इनमें असामंजस्य ही जीवन की समस्त विडंबनाओं और दुःखों का मूल कारण है ।

" ज्ञान दूर कुछ क्रिया भिन्न है
इच्छा क्यों पूरी हो मन की ।
एक दूसरे से न मिल सके
यह विडंबना है जीवन की ।।"[२]

कामायनी के नायक मनु इस समन्वय के अभाव में जीवन में विविध प्रकार के दुःख झेलते हैं । अंततः कामायनी की नायिका श्रद्धा जो पराशक्ति की प्रतीक है मनु का पथ निर्देशन करती है और उन्हें इच्छा क्रिया ज्ञान के त्रिपुरों का दर्शन कराती हुई उस आनन्दलोक में पहुंचाती है, जहां -

" समरस थे जड़ या चेतन सुंदर साकार बना था ।
चेतनता एक विलसती, आनंद अखण्ड घना था ।।"[३]

उस आनंदलोक में पहुंचकर मनु के हृदय से सभी प्रकार के भेदभावों का लोप हो जाता है । न कोई छोटा रह जाता है न बड़ा, न कोई अपना, न कोई पराया । साथ ही उन्हें अपनी पूर्णता का भी बोध (प्रत्यभिज्ञा) हो जाता है -

" मनु ने कुछ मुस्क्या कर कैलास ओर दिखलाया ।
बोले, देखो कि यहां पर कोई भी नहीं पराया ।।

१- जयशंकर प्रसाद - कामायनी- कामसर्ग, पृष्ठ ८३ ।
२- जयशंकर प्रसाद - कामायनी- रहस्य सर्ग, पृष्ठ २८० ।
३- जयशंकर प्रसाद - कामायनी- आनन्द सर्ग, पृष्ठ ३०२ ।

हम अन्य न और कुटुंबी हम केवल एक हमीं हैं ।
तुम सब मेरे अवयव हो जिसमें कुछ नहीं कमी है ।।"[१]

अपनी पूर्णता का यह बोध और संपूर्ण सृष्टि के प्रति समदृष्टि की प्राप्ति ही आनंदवादी दर्शन के अंतर्गत साधक की चरम सिद्धि मानी गई है, जिसे कामायनी के नायक- मनु के जीवन के क्रमिक विकास के द्वारा प्रसाद ने अभिव्यक्ति दी है ।

सारांश: कामायनी की मूल चेतना आनंदवादी दर्शन पर प्रतिष्ठित है, किन्तु प्रसाद ने दार्शनिक तत्वों की व्याख्या मौलिक ढंग से की है । दार्शनिक विचारों और सिद्धान्तों को मनु-श्रद्धा की कथा में गुंफित करके उन्होंने उनका व्यवहारिक और लोक मंगलकारी रूप प्रस्तुत किया ।

मानवतावाद और विश्व मानवतावाद -

आधुनिक युग में गांधी और रवीन्द्रनाथ ठाकुर ऐसी दो महान विभूतियां हुई हैं जिन्होंने अपने विचारों द्वारा साहित्य को चतुर्दिक प्रभावित किया है । गांधी ने एक स्वस्थ और विकासशील समाज की नींव डालने के लिये वर्ग संघर्ष का अंत करके मानव मात्र में समानता स्थापित करने का संदेश दिया । इसके लिये उन्होंने 'बहुजनहिताय' के सिद्धान्त और सर्वोदय की भावना का प्रचार किया । उन्होंने अपने अध्यात्म चिन्तन और विभिन्न दार्शनिक धाराओं के श्रेष्ठ तत्वों का निचोड़ लेकर उसे एक निश्चित विचार-दर्शन का रूप दिया, जिसे 'गांधीवाद' की संज्ञा प्राप्त हुई । मानव मात्र से भेद रहित , समानतापूर्ण व्यवहार और प्रेम करने की जो शिक्षा गांधी ने दी, उसे हिन्दी कवियों ने भी अंतर्मन से ग्रहण किया ।

विश्व मानवतावाद की परिकल्पना रवीन्द्रनाथ ठाकुर की देन कही जा सकती है, यद्यपि इसकी जड़ें भारतीय अद्वैत दर्शन और सर्वात्मवाद में निहित हैं, जिसके आधार पर सृष्टि के समस्त प्राणी एक ही विराट चेतन सत्ता के अंश होने के फलस्वरूप समान हैं ।

१- जयशंकर प्रसाद - कामायनी - आनंदसर्ग, पृष्ठ २६५ ।

रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने मानव मात्र की इस आन्तरिक समानता को लक्ष्य करके पूर्व और पश्चिम की विभिन्न संस्कृतियों के सम्मेलन द्वारा एक नवीन मानव-संस्कृति का स्वप्न देखा जो "मानव" को देश, काल, समाज और राष्ट्र की परिधि में न बांधकर उसकी पारस्परिक समानता और सार्वभौम उन्नति पर आधारित था ।

गांधी और रवीन्द्रनाथ के यह स्वप्न और आदर्श तत्कालीन साहित्य में भी प्रतिफलित हुए । छायावादी कवियों ने भी इन दोनों महान प्रतिभाओं की उदारतापूर्ण वाणी को आत्मसात करके अपनी रचनाओं में उसे अभिव्यक्ति दी । इसके लिये उनकी मनोभूमि पहले से भी तैयार थी । बौद्ध दर्शन की अनंत करुणा ने संपूर्ण विश्व के प्रति उनके हृदय में संवेदना का भाव जगाया और सर्वात्मवाद" ने सब में अपने ही समान आत्मा के दर्शन करना सिखाया । इस भांति गांधी, टैगोर के विचारों और परंपरागत दार्शनिक सिद्धान्तों की पृष्ठभूमि पर छायावादी काव्य में लोकमंगल की भावनाओं और नव मानवता के निर्माण की आकांक्षाओं से युक्त जिस मानवतावाद अथवा विश्व मानवतावाद के दर्शन होते हैं, वह बड़ा ही उदार एवं गरिमामय है ।

छायावादी काव्य अपने प्रारंभिक वर्षों में विशेष रूप से भावना प्रधान और अंतर्मुखी था । किन्तु समाज में दिनोंदिन बढ़ते हुए संघर्षों ने कालान्तर में इन कवियों की बौद्धिक चेतना को झकझोर कर जगा दिया[1] और भावना के पंखों पर कल्पना गगन में विहार करनेवाले इन कवियों ने यथार्थ जगत की ओर भी दृष्टि डाली । जीवन की समस्याओं पर बुद्धितत्व के द्वारा मनन और चिन्तन की प्रवृत्ति बढ़ी ।

प्रकृति के मनोरम सौन्दर्य में ही भूले रहनेवाले कवि पंत को सहसा यह विचार व्यथित कर गया कि -

" प्राप्त नहीं मानव जग को यह मर्मोज्ज्वल उल्लास" [2]

अथवा

" प्रकृति धाम यह तृण तृण कण कण जहां प्रफुल्लित जीवित
यहां अकेला मानव ही रे चिर विषण्ण जीवन्मृत "।।[3]

१- "------ तब मैं प्राकृतिक दर्शन (नेच्युरेलिस्टिक फिलासफी) से अधिक प्रभावित था और मानवजाति के ऐतिहासिक संघर्ष के सत्य से अपरिचित था । + + + + मैं तब तक भावना ही से जगत का परिचय प्राप्त करता रहा । उसके बाद मैं बुद्धि से भी संसार को समझने की चेष्टा करने लगा हूं ।
सुमित्रानन्दन पंत- आधुनिक कवि, भूमिका, पृष्ठ १४-१५।

२- सुमित्रानन्दन पन्त - आधुनिक कवि, भूमिका, पृष्ठ १४-१५ ।

३- सुमित्रानन्दन पन्त - आधुनिक कवि , ~~मानव, पृष्ठ ६६~~ । भूमिका, पृष्ठ १४,१५ ।

और इसके साथ ही उनका काव्य-पथिक अपनी बदली हुई रुचि के साथ नए पथ (मानवतावाद) और नई दिशा की ओर अग्रसर होता है, कवि को नया अवबोध होता है कि सौन्दर्य केवल प्रकृति की ही थाती नहीं है, "मानव" प्रकृति से बढ़कर सुन्दर और श्रेष्ठ है -

सुन्दर है विहग सुमन सुन्दर
मानव तुम सब से सुन्दरतम ।
निर्मित सब की तिल सुषमा से
तुम निखिल सृष्टि में चिर निरुपम ।।[1]

"ताजमहल" का मोहक रूप अब कवि को प्रभावित करने के बदले पीड़ित ही करता है, क्योंकि अब उसका विवेक उसे कचोटता है । मृतकों की पूजा और जीवितों की उपेक्षा देखकर उसका हृदय करुणा-विगलित हो उठता है -

हाय मृत्यु का ऐसा अमर अपार्थिव पूजन ।
जब विषण्ण निर्जीव पड़ा हो जग का जीवन ।।
संग सौध में हो शृंगार मरण का शोभन ।
नग्न क्षुधातुर वास विहीन रहे जीवित जन ।।[2]

मानव द्वारा ही मानव की उपेक्षा के अनेकानेक दृश्य और मानवता का अध:पतन देखकर मानवता प्रेमी और मानवोत्थान के आकांक्षी छायावादी कवियों ने न केवल आँसू बहाए वरन इस पतन के कारणों पर भी विचार किया और उन्हें यह तथ्य प्राप्त हुआ कि विश्वास विवेक, श्रद्धा, प्रेम, सहानुभूति, त्याग, सहृदयता आदि श्रेष्ठ मानवीय गुणों का मानव हृदय से लोप हो जाना ही इस दुर्दशा का मूल कारण है । अतएव इन गुणों के पुनर्विकास की कामनायें की जाने लगी -

मानव का मानव पर प्रत्यय परिचय मानवता का विकास
विज्ञान, ज्ञान का अन्वेषण, सब एक, एक सब में प्रकाश ।
प्रभु का अनंत वरदान तुम्हें, उपभोग करो प्रतिक्षण नव नव ।
क्या कमी तुम्हें है त्रिभुवन में, यदि बने रह सको तुम मानव ।[3]

१- सुमित्रानन्दन पन्त - आधुनिक कवि, मानव, पृष्ठ ६६ ।
२- सुमित्रानन्दन पन्त - आधुनिक कवि, ताज , पृष्ठ ७१ ।
३- सुमित्रानन्दन पन्त - आधुनिक कवि, मानव, पृष्ठ ७० ।

नवीन और भव्य प्रासादों के निर्माण हेतु पुरातन और जीर्ण शीर्ण खंडहरों का मिटना अवश्यंभावी है । इसी कारण "निराला" नई मानवता के विकास के लिए प्राचीन संस्कृति के जर्जर तत्वों को मिटा देने की बात कहते हैं -

"जला दे जीर्ण शीर्ण प्राचीन
क्या करूँगा तन जीवन हीन ।"[1]

नवीन मानवता की प्रतिष्ठा का स्वप्न तभी पूरा हो सकता है जब समाज के समस्त सदस्यों को सम दृष्टि से देखा जाए । छोटा-बड़ा, ऊँच-नीच का भेदभाव न रहे और एक ही डाल पर खिलनेवाले अनेक फूलों की भाँति सब को फूलने फलने और अपना विकास करने के अवसर प्राप्त हों । निराला के शब्दों में -

"तोल तू उच्च नीच सम तोल
एक तरु के हैं सुमन अमोल ।
सकल लहरों में एक उठान,
उठा माँ । तंत्री के है गान ।।
+ + + +
सकल मार्गों से चलकर एक
लक्ष्य पर पहुँचे लोग अनेक ।
सकल शुभ फल प्रद एक विधान ,
बाँध माँ तंत्री के है गान ।।"[2]

जिस नए मानव समाज की परिकल्पना छायावादी कवियों ने की, उसकी रूपरेखा को "पंत" की इन पंक्तियों द्वारा समझा जा सकता है -

"क्यों न एक ही मानव मानव सभी परस्पर,
मानवता निर्माण करें जग में लोकोत्तर ।
जीवन का प्रासाद उठे भू पर गौरव मय ,
मानव का साम्राज्य बने मानव हित निश्चय ।

१- सूर्यकान्त त्रिपाठी "निराला" - गीतिका, पृष्ठ ३६ ।
२- सूर्यकान्त त्रिपाठी "निराला" - गीतिका, पृष्ठ ३५ ।

जीवन की क्षण धूलि रह सके जहाँ सुरक्षित
रक्त मांस की इच्छायें हों जन की पूरित ।
मनुज प्रेम से जहाँ रह सके मानव ईश्वर
और कौन सा स्वर्ग चाहिये तुझको धरा पर ?" [१]

प्रजातंत्र का सही रूप उपर्युक्त पंक्तियों में उतारा गया है । सचमुच समता, प्रेम और सौहार्द्य की भावना पर आधारित ऐसे समाज के सामने देवताओं का कल्पित स्वर्ग भी तुच्छ है ।

इस प्रकार की नई मानवता के निर्माण और उसके कल्याण की कामना करते हुए जयशंकर प्रसाद लिखते हैं :-

"विधाता की कल्याणी सृष्टि, सफल हो इस भूतल पर पूर्ण,
पटें सागर बिखरे ग्रह पुंज और ज्वाला मुखियां हों चूर्ण ।
उन्हें चिनगारी सदृश सदर्प कुचलती रहे खड़ी सानन्द ,
आज से मानवता की कीर्ति अनिल भू जल में रहे न बंद" ।। [२]

'मानवता' को इतना सशक्त और गौरवमय बनाने के लिए प्रसाद ने जो उपाय सुझाया है - शक्ति के विश्रृंखल सूत्रों का एकीकरण - वह युग-युगान्तर तक मानव समाज के लिये स्फूर्ति और प्रेरणा का अमर स्रोत रहेगा ।

"शक्ति के विद्युत्कण जो व्यस्त
विकल बिखरे हैं हो निरुपाय ।
समन्वय उनका करे समस्त
विजयिनी मानवता हो जाय ।" [३]

इस भाँति अपने कवि जीवन के प्रारंभिक वर्षों में अधिकांशत: प्रकृति और व्यक्तिगत प्रणय आदि के ही गीत गानेवाले छायावादी कवि कालान्तर में अपने अहं की सीमायें तोड़कर समाज और विराट विश्व की ओर भी अग्रसर हुए,

---

१- सुमित्रानन्दन पन्त- आधुनिक कवि, पृष्ठ ७६ ।

२- जयशंकर प्रसाद - कामायनी, श्रद्धासर्ग , पृष्ठ ६६ ।

३- जयशंकर प्रसाद - कामायनी, श्रद्धा सर्ग, पृष्ठ ६७ ।

और उनकी रचनाओं में मानव-प्रेम, मानवोत्थान तथा मानवता के कल्याणकारी स्वर गुंजरित हुए हैं । छायावादी कवियों का व्यष्टि से समष्टि की ओर यह झुकाव और भव्य मानवतावाद छायावादी काव्य के प्रारंभिक दुर्बल पक्ष का निराकरण करके उसे गौरवमय बनाता है, साथ ही उसके द्वारा हिन्दी काव्य में एक नई परंपरा का भी जन्म हुआ जिसे परवर्ती प्रगतिवादी कवियों ने आगे बढ़ाया ।

सामाजिक अभिव्यक्ति :-

छायावादी काव्य के संबंध में बहुधा यह कहा जाता है कि यह काव्य समाज से दूर अथवा समाज निरपेक्ष रहा । वस्तुत: इस प्रकार के विचार भ्रमपूर्ण हैं । साहित्य चाहे वह किसी भी भाषा, किसी भी देश का हो, कभी समाज निरपेक्ष नहीं हो सकता । युग विशेष की सामाजिक गतिविधियां ही तत्कालीन साहित्य को एक विशिष्ट सांचे में ढालने के लिए उत्तरदायी होती है । छायावादी कवि भी जिस युग में सांस ले रहे थे, उसके प्रभाव से अछूते रहना उनके लिये असंभव था । छायावाद की जन्म कालीन परिस्थितियों की व्याख्या के अंतर्गत जैसा कि कहा जा चुका है, बाह्य जीवन की विषमताओं और कठोर सामाजिक बंधनों के परिणाम स्वरूप छायावादी कवि प्रारंभ में अंतर्मुखी और आत्मनिष्ठ हो गए थे परन्तु धीरे धीरे सामाजिक यथार्थ ने उनका ध्यान आकर्षित किया और वे व्यष्टि से समष्टि की ओर अग्रसर हुए । अपने व्यक्तित्व के सीमित दायरे से बाहर निकलकर तथा वैयक्तिक सुख-दुख और प्रणय प्रसंगों की चर्चाओं से ऊपर उठकर उन्होंने जीवन के अन्यान्य पक्षों पर भी दृष्टि डाली है और उन्हें अपना काव्य विषय बनाया है । यद्यपि छायावादी काव्य का यह पक्ष परिमाण में कम अवश्य है ।

छायावाद से पूर्व, द्विवेदी युग में समाज के बाह्य रूप, समाजोन्नति और सामाजिक आदर्शों के विषय में बहुत कुछ लिखा जा चुका था । किन्तु पूर्ववर्ती युग की उपदेशात्मक शैली कलात्मक अभिरुचि से संपन्न और रुढ़ि विरोधी, छायावादी कवियों को मान्य नहीं हुई अतस्व उन्होंने भिन्न मार्ग से उसी लक्ष्य को पाने की चेष्टा की, जिसकी ओर पहले के कवि बढ़ चुके थे ।

छायावादी कवियों ने समाज के लिये व्यापक आचार सूत्रों की व्यवस्था न करके , समाज की महत्वपूर्ण इकाई मानव को अपने काव्य का

केन्द्र बिन्दु बनाया और उसकी कला, प्रेम और सौन्दर्य की सुप्त चेतना-को जगाने की चेष्टा की तथा उसके हास-रुदन, जय-पराजय, आशाकांक्षा एवं स्वप्नों को वाणी देकर समाज में व्यक्ति का महत्व स्थापित किया ।

अपने प्रारंभिक काव्य-काल में प्रकृति के अनन्य प्रेमी कवि पंत ने आगे चलकर मानव के महत्व का स्वर मुखरित करते हुए लिखा :-

"सुंदर है विहग सुमन सुंदर, मानव तुम सब से सुंदरतम"
बदली हुई मनोवृत्ति के फलस्वरूप मानव सुंदरतम ही[1]

ही नहीं, देवों से श्रेष्ठ प्रतीत होने लगा, और इस मानव भूमि के सामने देवों के स्वर्ग का वैभव भी फीका पड़ गया -

"न्योछावर स्वर्ग इसी भू पर
देवता यही मानव शोभन ।
अविराम प्रेम की बाहों में
है मुक्ति यही जीवन बंधन ।"[2]

किसी कल्पित मुक्ति की चाह के बदले यह कर्ममय जीवन और जीवन के बंधन अधिक मोहक लगने लगे । महादेवी वर्मा को अमरों के लोक की अपेक्षा नित्य बनने और मिटनेवाला यह मानव संसार अधिक आकर्षक प्रतीत हुआ अतएव अमरत्व की आकांक्षा न करके उन्होंने अपना मरने मिटने का अधिकार अक्षुण्ण रखने की कामना व्यक्त की -

"क्या अमरों का लोक मिलेगा
तेरी करुणा का उपहार ?
रहने दो हे देव । अरे यह
मेरा मिटने का अधिकार ।।"[3]

समाज का महत्व तो सर्वदा रहा है किन्तु समाज की उन्नति और विकास के मूल में व्यक्ति की उन्नति और विकास निहित है । जब तक समाज

१- सुमित्रानन्दन पन्त - आधुनिक कवि ६, मानव, पृष्ठ ६६ ।

२- सुमित्रानन्दन पन्त - पल्लविनी, मानव स्तव , पृष्ठ २२० ।

३- महादेवी वर्मा - नीहार, पृष्ठ ३२ ।

की जीवित इकाई रूप में प्रत्येक व्यक्ति आत्मचेतना से पूर्ण नहीं बनेगा, तब तक समाजोन्नति का स्वप्न पूरा नहीं हो सकता । सर्वप्रथम इस सत्य को छायावादी कवियों ने ही पहचानकर व्यक्ति में व्यक्तित्व की ज्योति जगाने का स्तुत्य प्रयास किया । पंत लिखते हैं -" क्या कमी तुम्हें है त्रिभुवन में, यदि बने रह सको तुम मानव ?[1]

तात्पर्य यह कि सामाजिक तत्वों अथवा सामाजिक स्थितियों पर सीधे लेखनी न चलाकर छायावादी काव्य में " व्यक्ति " के माध्यम से उनकी अभिव्यक्ति की गई है । व्यक्ति- जीवन से संबंधित पारिवारिक ,नैतिक,सामाजिक,सांस्कृतिक तथा राष्ट्रीय - प्राय: सभी पक्षों को उभारने का न्यूनाधिक प्रयत्न छायावादी कवियों ने किया है ।

पारिवारिक पक्ष -

पारिवारिक जीवन से संबंधित कविताओं में निराला की " सरोज-स्मृति " शीर्षक रचना ली जा सकती है जिसे कवि ने अपनी आत्मजा " सरोज " के निधन पर शोकगीत के रूप में लिखा है। इस लम्बी कविता में सरोज की बालक्रीड़ा से लेकर नानी के घर में उसका लाड़ प्यार और पालन-पोषण, ससुराल द्वारा पुनर्विवाह का आग्रह प्रस्तावों को ठुकराकर सरोज को नानी के घर से लाकर अपने साथ रखना , सामाजिक रूढ़ियों को तोड़कर योग्य वर से सरोज का ब्याह करना, सरोज की बीमारी और फिर उसकी मृत्यु तक की संपूर्ण कथा निराला ने कही है ।

इसके अतिरिक्त भी, पारिवारिक जीवन के अन्तर्गत सख्य, दाम्पत्य, वात्सल्य आदि विविध भावों के चित्र छायावादी काव्य में कम अवश्य है किन्तु उनका सर्वथा अभाव नहीं है ।

दाम्पत्य भाव का एक अत्यन्त सुन्दर चित्र प्रसाद की " कामायनी " में उपलब्ध होता है । दिन भर के परिश्रम से थके हुए उदास " मनु " के प्रति श्रद्धा की चिन्ता और उसका यह प्रश्न कितना स्वाभाविक प्रतीत होता है -

" दिन भर से कहां भटकते तुम, बोली श्रद्धा भर मधुर स्नेह ।
यह हिंसा इतनी प्यारी है जो भुलवाती है देह-गेह ?

१- सुमित्रानन्दन पन्त - आधुनिक कवि - मानव, पृष्ठ ७० ।

मैं यहाँ अकेली देख रही पथ सुनती सी पद ध्वनि नितान्त ।
कानन में जब तुम दौड़ रहे, मृग के पीछे बनकर अशान्त ।।
ढल गया दिवस पीला पीला तुम रक्तारुण वन रहे घूम ।
देखो नीड़ों में विहग युगल अपने शिशुओं को रहे चूम ।।
उनके घर में कोलाहल है मेरा सूना है गुफा द्वार ।
तुमको रैसी क्या कमी रही जिसके हित जाते अन्य द्वार ।।"[१]

दाम्पत्य जीवन के अन्तर्गत नारी और पुरुष के सम्मिलन का यह चित्र भी अवलोकनीय है -

"पाया आधार
भार गुरुता मिटाने को
था जो तरंगों में बहता हुआ,
कल्पना में निरवलंब
पर्यटक एक अटवी का अज्ञात
पाया किरण प्रभात
पथ उज्ज्वल सवर्ण गति
केन्द्र दो आ मिले -
एक ही तत्व के
सृष्टि के कारण वे
कविता के काम-बीज ।"[२]

तीव्र मिलनाकांक्षा से युक्त पंत की निम्न उद्धृत पंक्तियाँ दाम्पत्य रति का श्रेष्ठ उदाहरण प्रस्तुत करती है :-

"आज रहने दो यह गृह काज ।
प्राण रहने दो यह गृह काज ।।
आज जाने कैसी वातास
छोड़ती सौरभ श्लथ उच्छ्वास,
\+ \+ \+ \+

१- जयशंकर प्रसाद - कामायनी- ईर्ष्या सर्ग, पृष्ठ १५२ ।
२- सूर्यकान्त त्रिपाठी "निराला" - अनामिका, रेखा, पृष्ठ ७६ ।

प्रिय लालस सालस वातास
जगा रोओं में सौ अभिलाष ।

\+ \+ \+ \+

आज क्या प्रिय सुहाती लाज ?
आज रहने दो सब गृह काज ।।"[१]

दाम्पत्य रति के मर्यादापूर्ण उज्ज्वल चित्र प्रस्तुत करने में निराला सर्वोपरि हैं । रात्रि जागरण से थकी, अलसाई नायिका का यह चित्र दर्शनीय है -

"(प्रिय) यामिनी जागी
अलस पंकज दृग अरुण मुख
तरुण अनुरागी ।

खुले केश अशेष शोभा भर रहे
पृष्ठ,ग्रीवा, बाहु, उर पर भिर रहे ।
बादलों में घिर अपर दिनकर रहे,
ज्योति की तन्वी , तड़ित -
द्युति ने क्षमा माँगी ।

हेर उर पट फेर मुख के बाल ।
लख चतुर्दिक चली मंद मराल ।
गेह में प्रिय स्नेह की जयमाल ।।
वासना की मुक्ति मुक्ता,
त्याग में तागी ।।"[२]

वात्सल्य भाव की एक अत्यंत मनोरम फाँकी" कामायनी" की निम्न पंक्तियों में मिलती है -

"मां फिर एक किलक दूरागत गूँज उठी कुटिया सूनी ।
मां उठ दौड़ी भरे हृदय में लेकर उत्कंठा दूनी ।।

१- सुमित्रानन्दन पन्त - गुंजन, पृष्ठ ५१-५२।
२- सूर्यकान्त त्रिपाठी" निराला" - गीतिका, पृष्ठ ४ ।

छूटी खुली अलक, रज धूसर बाहें आकर लिपट गईं ।
निशा तापसी की जलने को धधक उठी बुझती धूनी ।।

कहाँ रहा नट खट तू फिरता अब तक मेरा भाग्य बना ।
अरे पिता के प्रतिनिधि तूने भी सुख दुख तो दिया घना ।।
चंचल तू बन चर मृग बनकर भरता है चौकड़ी कहीं ।
मैं डरती तू रूठ न जाए करती कैसे तुझे मना ?

मैं रूठूं माँ और मना तू, कितनी अच्छी बात कही ।
ले मैं सोता हूँ अब जाकर बोलूंगा मैं आज नहीं ।।
पके फलों से पेट भरा है, नींद नहीं खुलने वाली ।
श्रद्धा चुंबन से प्रसन्न कुछ, कुछ विषाद से भरी रही ".।।[१]

नैतिक पक्ष :

छायावादी काव्य का प्रारंभिक रूप निश्चय ही कुछ पलायनवादी था किन्तु कालान्तर में यह दोष स्वत: मिट गया । जीवन और संसार से दूर भागने वाले कवि " आत्मवेदना " को " विश्ववेदना " में समाश्रित करके संपूर्ण विश्व के साथ आत्मीयतापूर्ण संबंध स्थापित करने को उत्सुक हो उठे । " पंत " लिखते हैं -

" तप रे मधुर मधुर मन
विश्व वेदना में तप प्रतिपल
+ + + +
अपने सजल स्वर्ण से पावन,
रच जीवन की मूर्ति पूर्णतम ।
स्थापित कर जग में अपनापन,
ढल रे ढल आतुर मन ".।।[२]

कल्पना लोक में विहार करते समय भी अब कवि के सामने एक निश्चित लक्ष्य रहता है । वह उच्चादर्शों का प्रेमी है । वर्तमान जीवन का जो स्वरूप

१- जयशंकर प्रसाद - कामायनी, स्वप्न सर्ग, पृष्ठ १८७ ।
२- सुमित्रानन्दन पन्त- गुंजन, पृष्ठ ११ ।

वह देखता है उससे उसे संतोष नहीं है ; अतएव वह नवीन आदर्शों की प्रतिष्ठा द्वारा एक आदर्श लोक रचने का स्वप्न देखता है -

" मैं प्रेमी उच्चादर्शों का
संस्कृति के स्वर्गिक स्पर्शों का ।।
जीवन के हर्ष विमर्शों का ।
लगता अपूर्ण मानव-जीवन ।।"[१]

इस " आदर्शलोक " के लिये आवश्यक तत्व बाह्य जगत में प्राप्त न होने पर कवि उनकी खोज अंतर्जगत में करता है -

" मैं सृष्टि एक रच रहा नवल भावी मानव के हित भीतर ।
सौन्दर्य स्नेह उल्लास मुझे मिल सका नहीं जग में बाहर ।।"[२]

उपर्युक्त पंक्तियों में निस्संदेह भावुकता का कुछ अतिरेक हो गया है, परन्तु इसे दौर्बल्य जनित पलायन की संज्ञा देना अनुचित है ।

छायावाद " के कवियों में निराला प्रारंभ से ही जीवन के ठोस धरातल पर खड़े दिखाई देते हैं । व्यक्ति जीवन और कवि-जीवन दोनों में ही वे संघर्षशील रहे हैं, अतएव जीवन की कटुताओं को भी साहसपूर्वक झेलने की प्रवृत्ति उनकी रचनाओं में मिलती है । उदाहरणार्थ -

" जीवन की तरी खोल दे रे जग की उत्ताल तरंगों पर ।
दे चढ़ा पाल कलधौत धवल, रे सबल उठा तट से लंगर ।।
क्यों अकर्मण्य सोचता बैठ, गिनता समर्थ हो व्यर्थ लहर ।
आए कितने, ले गए अर्घ, बढ़ विषम बाड़वानल जलकर ।।"[३]

पंत के अनुसार सुंदर विश्वासों के द्वारा जीवन को सुंदर बनाया जा सकता है । (सुंदर विश्वासों से ही बनता रे सुंदर जीवन ") जीवन के प्रत्येक पल को सुंदर और सुखमय बनाने के आकांक्षी व्यक्तियों को पंत " साधना " का महत्त्व समझने के लिए प्रेरित करते हैं, क्योंकि साधना ही जीवन का वास्तविक लक्ष्य है -

---

१- सुमित्रानन्दन पन्त - गुंजन, पृष्ठ २६ ।

२- सुमित्रानन्दन पन्त - युगान्त, पृष्ठ ३४ ।

३- सूर्यकान्त त्रिपाठी " निराला " - गीतिका, पृष्ठ ५२ ।

"अलभ है इष्ट अत: अनमोल ।
साधना ही जीवन का मोल ।।"[१]

जीवन की सब से महत्वपूर्ण साधना है सुख में मतवाला न होना और दु:ख में धैर्य न खोना, वरन् सुख और दु:ख दोनों को समान भाव से जीवन के अनिवार्य तत्वों के रूप में स्वीकार करना । पंत के अनुसार जीवन की समस्त विषमताओं का मूलाधार सुख और दु:ख के मध्य का यह असंतुलन ही है :-

"अविरत दुख दुख है उत्पीड़न, अविरत सुख भी उत्पीड़न"।[२]

दु:ख तो पीड़ा दायक होता ही है किन्तु व्यक्ति को सर्वदा सुख ही सुख भोगने को मिले तो उसके लिये वह भी मूल्यहीन, उबाऊ और कष्टदायी बन जाता है । क्योंकि मानव स्वभाव से ही परिवर्तन प्रेमी है । अतएव पंत अतिवाद का खण्डन करते हुए इन दोनों का समान वितरण और क्रमानुसार आवागमन ही जीवन के लिये श्रेयस्कर समझते हैं :-

"यह सांझ उषा का आंगन, आलिंगन विरह मिलन का ।
चिर हास अश्रुमय आनन, रे इस मानव जीवन का ।।"[३]

अतिवादिता के प्रसाद भी घोर विरोधी है । "बुद्ध" की करुणा तथा मानवमात्र से प्रेम की भावना को वे वर्तमान जीवन के लिये भी आवश्यक मानते हैं -

"छोड़कर जीवन के अतिवाद, मध्यपथ से लो सुगति सुधार ।
दु:ख का समुदय उसका नाश, तुम्हारे कर्मों का व्यापार ।।
विश्व मानवता का जयघोष, यहीं पर हुआ जलद स्वर मंद्र ।
मिला था वह पावन आदेश, आज भी साक्षी है रवि चंद्र ।।"[४]

प्रसाद ने "कामायनी" द्वारा इच्छा, कर्म और ज्ञान के समन्वय का महत्वपूर्ण संदेश दिया है। जीवन को उन्नत और सुखमय बनाने के लिये उनकी दृष्टि

१- सुमित्रानन्दन पन्त- आधुनिक कवि, पृष्ठ ४३ ।
२- सुमित्रानन्दन पन्त - गुंजन, पृष्ठ १६ ।
३- सुमित्रानन्दन पन्त - गुंजन, पृष्ठ १६ ।
४- जयशंकर प्रसाद - लहर" भगवान बुद्ध के प्रति ", पृष्ठ १३ ।

में इस प्रकार का समन्वय अनिवार्य है । क्योंकि लक्ष्य छोटा हो या बड़ा , व्यक्ति को उसकी प्राप्ति में सफलता तभी मिल सकती है जब वह दृढ़ इच्छा शक्ति, कठिन श्रम और सूझ बूझ से काम लेने में समर्थ हो अन्यथा इनमें से एक भी तत्व के अभाव में जीवन विडंबनामय ही बना रहता है :-

"ज्ञान दूर कुछ क्रिया भिन्न है
इच्छा क्यों पूरी हो मन की
एक दूसरे से न मिल सकें
यह विडंबना है जीवन की ।।"[१]

वर्धमान समाज का भौतिकता के प्रति विशेष झुकाव प्रसाद मानवता के लिये घातक मानते हैं । श्रद्धा और विश्वास का भी जीवन में महत्वपूर्ण स्थान है । सफल और सुखमय जीवन जीने के लिए भौतिक प्रगति के साथ साथ आध्यात्मिक प्रगति भी आवश्यक है, तथा बुद्धि और " श्रद्धा " के उचित सामंजस्य द्वारा ही मानवता की उन्नति और विकास संभव है, कामायनी में एकत्व की योजना द्वारा प्रसाद ने इन्हीं महत्वपूर्ण तथ्यों पर प्रकाश डाला है । कामायनी की नायिका " श्रद्धा भावी मानवता के प्रतीक " मानव " को इसी संतुलन अथवा सामंजस्य का संदेश देती हुई कहती है -

" हे सौम्य इड़ा का शुचि दुलार
हर लेगा तेरा व्यथा भार ।
यह तर्कमयी तू श्रद्धामय
तू मननशील कर कर्म अभय
इसका तू सब संताप निचय
हर ले, हो मानव भाग्य उदय
सब की समरसता कर प्रचार
मेरे- सुत । सुन माँ की पुकार ।"[२]

इस प्रकार स्पष्ट उपदेशात्मक शैली न अपनाकर भी छायावादी काव्य में जीवन के नैतिक मूल्यों और नैतिक आदर्शों पर समुचित प्रकाश डाला गया है ।

१- जयशंकर प्रसाद - कामायनी, रहस्य सर्ग, पृष्ठ २८० ।

सामाजिक पक्ष -

समाज के दीन-दुखी, उपेक्षित व्यक्तियों की ओर छायावादी कवियों की दृष्टि निस्संदेह कुछ विलम्ब से आकर्षित हुई, तथापि उन्हें समाज के प्रति अपने कर्तव्यों का बोध नहीं था, इस प्रकार की धारणा भी असंगत है ।

विहग-बालिका से अपना रागात्मक संबंध जोड़ने वाले मधुप कुमारि के मीठे स्वर में स्वर मिलाकर गानेवाले[1] भावुक कवि पंत का मानसिक परिवर्तन उनकी रचनाओं में स्पष्ट फलकने लगा -

" प्रकृति धाम यह तृण तृण कण कण जहां प्रफुल्लित जीवित
यहां अकेला मानव ही रे चिर विषण्ण जीवन्मृत ।।"[2]

" ताजमहल " के कलात्मक सौन्दर्य पर रीफने के बदले कवि को क्षोभ होता है, यह सोचकर कि :-

"मानव ऐसी भी विरक्ति क्या जीवन के प्रति ।
आत्मा का अपमान प्रेत की छाया से रति ।।"[3]

सड़कों पर भीख मांगते हुए डोलनेवाले दीन हीन मानव ने निराला के हृदय को आन्दोलित कर दिया और उन्होंने " भिक्षुक " कविता में उसका करुणा व्यंजक सजीव चित्र प्रस्तुत किया :-

" वह आता ।
दो टूक कलेजे के करता पछताता पथ पर आता ।
पेट पीठ दोनों मिलकर है एक
चल रहा लकुटिया टेक ।
मुट्ठी भर दाने को भूख मिटाने को ,
मुंह फटी पुरानी फोली को फैलाता ।
दो टूक कलेजे के करता पछताता पथ पर आता ।।"[4]

१- सुमित्रानन्दन पन्त - पल्लव- मधुकरी, पृष्ठ २८ ।
२- सुमित्रानन्दन पन्त - आधुनिक कवि (२) ग्राम चित्र,पृष्ठ ६० ।
३- सुमित्रानन्दन पन्त - गुंजन, पृष्ठ १६ ।
४- सूर्यकान्त त्रिपाठी " निराला " - परिमल, पृष्ठ १३३ ।

धार्मिकता का ढोंग करनेवाले दीन दुखियों के प्रति असहिष्णु व्यक्तियों पर निराला ने अनेक व्यंग्यात्मक कवितायें लिखी हैं । समाज में चिरकाल से तिरस्कृत "विधवा" नारी की व्यथा को भी निराला ने समझा और उसे इष्टदेव के मंदिर की पूजा सी" पवित्र बताकर उसके प्रति सम्मान प्रदर्शित किया । पंत ने सामंती रूढ़ियों में जकड़ी भोग्या नारी के" संग में पावन गंगा स्नान" की कल्पना करते हुए उसे" देवि , माँ, सहचरि प्राण ।" कहकर संबोधित किया और उसे अपने भय कल्पित बंधनों को तोड़कर ऊपर उठने की प्रेरणा दी :-

"तुम में सब गुण है तोड़ो अपने भय कल्पित बंधन ।
जड़ समाज के कर्दम से उठकर सरोज सी ऊपर ।
अपने अन्तर के विकास से जीवन के दल दो भर ।।
सत्य नहीं बाहर, नारी का सत्य तुम्हारे भीतर
भीतर ही से करो नियंत्रित जीवन को, छोड़ो डर ।।"[१]

कड़ी धूप में सड़क पर पत्थर तोड़ती हुई श्रमजीविनी नारी के प्रति भी निराला ने अपनी श्रद्धा और सहानुभूति व्यक्त की है । छायावाद" के कुछ आलोचकों ने दलित शोषित वर्ग के प्रति छायावादी कवियों के इस प्रकार के भावोद्रेक को बौद्धिक सहानुभूति , की संज्ञा दी है । प्रथमत: सहानुभूति" को बौद्धिक कहना ही असंगत है क्योंकि वह हृदय की वस्तु है न कि मस्तिष्क की । दूसरे इन कवियों में मात्र सहानुभूति प्रदर्शन ही नहीं किया वरन् समाज के पुरातन जर्जर ढांचे को बदलने की अपील करते हुए नए समाज के निर्माण की प्रेरणा भी दी है जिसमें मानव मात्र सुखपूर्वक रह सके । उदाहरणार्थ -

" जला दे जीर्ण शीर्ण प्राचीन
क्या करेगा तन जीवनहीन ?"[२]

तथा

"जीवन की दारुण धूलि रह सके जहाँ सुरक्षित
रक्त मांस की इच्छायें हों जन की पूरित ।
मनुज प्रेम से जहाँ रह सके मानव ईश्वर
और कौन सा स्वर्ग चाहिये तुझे धरा पर ।।"[३]

१- सुमित्रानन्दन पन्त - ग्राम्या, पृष्ठ ८१ ।
२- सूर्यकान्त त्रिपाठी "निराला" - गीतिका, पृष्ठ ३६ ।
३- सुमित्रानन्दन पन्त - आधुनिक कवि,पृष्ठ ८६ ।

जीवन की विविध समस्याओं पर विचार करते हुए छायावादी कवियों ने उनका समाधान भी प्रस्तुत किया है, भले ही वह सर्वमान्य न हो। उदाहरण के लिए समाज की आर्थिक दशा में सुधार लाने की इच्छा से पंत विचार करते हैं कि क्या यह संभव नहीं है कि समाज के सभी सदस्यों के बीच उनके गुण और कर्म के अनुरूप आय और व्यय का समान वितरण हो ? -

"यह क्या संभव नहीं व्यवस्था में जग की कुछ हो परिवर्तन ?
कर्म और गुण के समान ही सकल आय-व्यय का हो वितरण ?"[१]

इन विचारों से सभी लोग सहमत भले ही न हों किन्तु कवि की सदिच्छा असंदिग्ध है।

इसी प्रकार समाज में सुख और दुख की शाश्वत समस्या पर भी पंत ने अपना मत व्यक्त किया है। पंत के अनुसार सुख और दुख सापेक्ष है किन्तु मानव समाज इस सापेक्षता को विस्मृत करके एक पक्षीय दृष्टिकोण अपनाता है, परिणामतः जीवन विषमतामय बन जाता है। जीवन में सुख और दुख की आँख मिचौली चलती रहे, दोनों के आविर्भाव और तिरोभाव का क्रम चलता रहे और उनके बीच जीवनधारा का प्रवाह चलता रहे, यही उचित है।

"सुख दुख के मधुर मिलन से
यह जीवन हो परिपूरन।
फिर घन में ओझल हो शशि
फिर शशि से ओझल हो घन"।।[२]

इस प्रकार के उदाहरणों को दृष्टि में रखते हुए इतना तो सहज स्वीकार्य है कि छायावाद के यह कवि अंधकार के गायक होते हुए भी "प्रकाश के याचक और जीवन के समर्थक थे।"[३]

"कामायनी" की निम्नलिखित पंक्तियों द्वारा -

"विधाता की कल्याणी सृष्टि सफल हो इस भूतल पर पूर्ण
पटें सागर बिखरे ग्रह पुंज और ज्वालामुखियां हो चूर्ण।

१- सुमित्रानन्दन पन्त - ग्राम्या, संध्या के बाद, पृष्ठ ६६-६७।

२- सुमित्रानन्दन पन्त, गुंजन, पृष्ठ १६।

३- श्री दीप्र- छायावाद की काव्य साधना, पृष्ठ ७१।

उन्हें चिन्गारी सदृश सदर्प कुचलती रहे खड़ी सानंद
आज से मानवता की कीर्ति अनिल, भू जल में रहे न बंद
जलधि के फूटे कितने उत्स द्वीप कच्छप डूबे उतरायें,
किन्तु वह खड़ी रहे दृढ़ मूर्ति अभ्युदय का कर रही उपाय ।।[१]

प्रसाद ने भारतीय समाज ही नहीं समग्र विश्व के मानव-समाज को जो महान संदेश दिया है, वह वर्तमान ही नहीं, सुदूर भविष्य में भी अमर प्रीत रहेगा, साथ ही वह छायावादी काव्य की सामाजिकता का प्रबल पदाधर भी है।

सांस्कृतिक पक्ष -

छायावादी कवियों के ऊपर बहुधा यह आक्षेप सुना जाता है कि उनका जीवन के प्रति वैज्ञानिक दृष्टिकोण नहीं रहा। यह बात किसी सीमा तक सत्य अवश्य है तथापि जीवन के प्रति वैज्ञानिक दृष्टिकोण न रखने का यह अर्थ नहीं कि छायावादी कवि अपने युग में विकासशील ज्ञान-विज्ञान के फलस्वरूप होनेवाले परिवर्तनों से अनभिज्ञ और उसके प्रभावों से अछूते थे। सुमित्रानन्दन पन्त ने स्पष्ट शब्दों में लिखा है - जिस संक्रान्ति काल से मानव सभ्यता गुजर रही है, उसके परिणाम हेतु आशावादी बने रहने के लिये विज्ञान ही हमारे पास अमोघ शक्ति और साधन है।[२]

भविष्य में वैज्ञानिक विकास नवीन मानव के लिये लोकोपयोगी समाज का निर्माण कर सकेगा, इसे पंत ने स्वीकार किया है। परंतु वर्तमान समाज में भौतिकतावाद का पलड़ा कुछ अधिक भारी हो गया है और वैज्ञानिक प्रगति के कल्याणकारी रूप की तुलना में उसके दुष्परिणाम ही अधिक प्रकट हो रहे हैं। विज्ञान और यंत्र युग के विकास के फलस्वरूप उत्पन्न होनेवाला वर्ग - संघर्ष,युद्ध, अतिशय बौद्धिकता, जीवन मूल्यों के प्रति अविश्वास, सांस्कृतिक मान्यताओं की उपेक्षा और इन सब की प्रतिक्रियावश जीवन में दिनों दिन बढ़ती हुई निराशा और नीरसता पंत को रुचिकर नहीं हुई। अतएव आज के युग में बौद्धिक चेतना का मूल्य और विज्ञान का महत्व समझते हुए भी कवि अथवा कलाकार होने के नाते

१- जयशंकर प्रसाद - कामायनी, श्रद्धा सर्ग, पृष्ठ ६६ ।
२- सुमित्रानन्दन पन्त - आधुनिक कवि, पर्यालोचन,पृष्ठ २१ ।

उन्होंने ऐसे समाज के निर्माण की आकांक्षा व्यक्त की जिसका संगठन सांस्कृतिक आधार पर हुआ हो, जिसमें मानव-मूल्यों की प्रतिष्ठा हो तथा जिसमें मानव समाज का बाह्य ही नहीं, आन्तरिक विकास भी संभव हो । पंत लिखते हैं :-

" आज वृहत्‌ सांस्कृतिक समस्या
जग के निकट उपस्थित ।
खण्ड मनुजता को युग युग की
होना है नव निर्मित ।।"[१]

इस प्रकार छायावादी कवि नव मानवतावाद के प्रति आस्थावान है क्योंकि वह मनुष्य की महिमा और मानवीय मूल्यों में विश्वास रखने के साथ मनुष्य को इसी दुनियां में सुख-समृद्धि से पूर्ण जीवन जीने का मार्ग दिखाता है । समता और पारस्परिक प्रेम ही वे मूल तत्व है जिनके आधार पर सुखी समाज का निर्माण संभव है-

" मनुज प्रेम से जहाँ रह सकें मानव ईश्वर,
और कौन सा स्वर्ग चाहिये तुझे धरा पर ?"[२]

तथा

"हो शान्त जाति विद्वेष, वर्ग गत रक्त समर,
हो शान्त युगों के प्रेत, मुक्त मानव अन्तर ।।
संस्कृत हो सब जन स्नेही हो, सहृदय सुंदर ।
संयुक्त कर्म पर हो संयुक्त विश्व निर्भर ।।
राष्ट्रों से राष्ट्र मिले देशों से देश आज ।
मानव से मानव हो जीवन निर्माण काज ।।"[३]

" संस्कृति " के स्वरूप पर प्रकाश डालते हुए हजारी प्रसाद द्विवेदी का कथन है -

"सभ्यता समाज की बाह्य व्यवस्थाओं का नाम है,
संस्कृति व्यक्ति के अंतर के विकास का नाम है ।"[४]

१- सुमित्रानन्दन पन्त - ग्राम्या, पृष्ठ ८६ ।
२- सुमित्रानन्दन पन्त - आधुनिक कवि , पृष्ठ ८६ ।
३- सुमित्रानन्दन पन्त - ग्राम्या, विनय, पृष्ठ १०८ ।
४- हजारी प्रसाद द्विवेदी - विचार और वितर्क, पृष्ठ १२२ ।

बाह्य व्यवस्थाओं की श्रेष्ठता बहुत कुछ आन्तरिक श्रेष्ठता पर निर्भर है । इसीलिये छायावादी कवि भी इसी अंतस को सुधारने संवारने की बात करता है । इस क्षेत्र में उसे विज्ञान और भौतिकवाद की अपेक्षा अध्यात्म से अधिक सहायता मिलती है, क्योंकि -

"मानव स्वभाव ही बन मानव आदर्श सुकर ।
करता अपूर्ण को पूर्ण असुंदर को सुंदर ।।"[१]

पंत की दृष्टि में वर्तमान समाज के पतन का मूल कारण विभिन्न वर्गों, धर्मों एवं जातियों का पारस्परिक वैमनस्य है, अतएव वे इन सब के संगठन और सहयोग के प्रति आग्रहशील हैं :-

" विविध जाति वर्गों धर्मों को होना सहज समन्वित ।
मध्ययुगों की नैतिकता को मानवता में विकसित ।।"[२]

और इस समन्वय का आधार मध्ययुगीन नैतिकता के तत्व हैं - समता, सहयोग और सौहार्द । यदि समाज के समस्त व्यक्ति पारस्परिक भेदभाव भुलाकर इन्हीं तत्वों को जीवनादर्श रूप में ग्रहण कर लें तो मानवता के सुख समृद्धिमय साम्राज्य की स्थापना का स्वप्न निश्चय ही पूर्ण हो सकता है -

" क्यों न एक हो मानव मानव सभी परस्पर ।
मानवता निर्माण करें जग में लोकोत्तर ।।
जीवन का प्रासाद उठे भू पर गौरवमय ।
मानव का साम्राज्य बने मानव हित निश्चय ।।"[३]

वैज्ञानिक उपलब्धियों के अनुचित उपयोग के फलस्वरूप संभावित युद्ध और विनाश से बचाव हेतु प्रसाद ने भी इसी प्रकार के संगठन और एकता पर बल दिया है । शक्ति के तत्वों का बिखराव ही सामाजिक विषमताओं को जन्म देता है, अतएव उनका समन्वय अनिवार्य है -

---

१- सुमित्रानन्दन पन्त - आधुनिक कवि, पृष्ठ २७ ।
२- सुमित्रानन्दन पन्त - ग्राम्या, पृष्ठ ८६ ।
३- सुमित्रानन्दन पन्त - आधुनिक कवि,पृष्ठ ८६ ।

" शक्ति के विद्युत्कण जो व्यस्त विकल बिखरे हैं हो निरुपाय
समन्वय उनका करे समस्त विजयिनी मानवता हो जाए ।।"[१]

प्रसाद की यह पंक्तियां प्रत्येक राष्ट्र के मानव-समाज के लिये उपयोगी एवं स्फूर्तिदायक है। प्रसाद ने अपने नाटकों के अनेक गीतों में प्राचीन भारतीय संस्कृति के अत्यंत भव्य और उज्ज्वल चित्र प्रस्तुत किये हैं जो वर्तमान सांस्कृतिक दुरावस्था की ओर ध्यान आकर्षित करने के साथ साथ सांस्कृतिक पुनरुत्थान और विकास की प्रेरणा देते हैं।

राष्ट्रीय पक्ष :

छायावाद के कवि स्वयं कर्मक्षेत्र में नहीं उतरे, किन्तु राष्ट्रीय गतिविधियों से वे अनभिज्ञ नहीं थे राष्ट्र के प्रति अपने कर्तव्य का बोध उन्हें था अतएव प्रत्यक्ष संघर्ष में भाग न लेकर भी उन्होंने नव निर्माण के गीत गाकर जड़ता की नींद में सोए हुए देशवासियों को जगाने का प्रयत्न अवश्य किया। छायावाद के प्रथम उत्थान में ही निराला ने -

" जागो फिर एक बार
शेरों की मांद में
आया है स्यार आज ---।"[२] कहकर क्रांतिपूर्ण

हुंकार भरी थी। समसामयिक कवियों पर इस पुकार का तुरंत प्रभाव नहीं हुआ, किन्तु कालान्तर में उसकी गूंज अन्य कवियों की रचनाओं में भी प्रतिध्वनित हुई। महादेवी वर्मा ने " तेरी उतारूं आरती मां भारती," श्रृंगारमयी अनुरागमयी भारत जननी भारतमाता, आदि गीत रचकर अपनी देश भक्ति का परिचय दिया। जयशंकर प्रसाद का भारत भूमि की प्रशंसा में लिखा हुआ यह गीत -

" अरुण यह मधुमय देश हमारा।
जहां पहुंच अनजान क्षितिज को मिलता एक किनारा।।
सरस तामरस गर्भ विभा पर नाच रही तरु शिखा मनोहर।
छिटका जीवन हरियाली पर मंगल कुंकुम सारा।।"[३]

१- जयशंकर प्रसाद - कामायनी- श्रद्धा सर्ग, पृष्ठ ६७।
२- सूर्यकान्त त्रिपाठी " निराला " - परिमल " जागो फिर एक बार ", पृष्ठ १६८।
३- जयशंकर प्रसाद - चंद्रगुप्त (नाटक) पृष्ठ १००।

- देश प्रेम की भाव प्रवण व्यंजना है । प्रसाद के " स्कन्दगुप्त" नाटक में " मातृगुप्त" द्वारा गाया जानेवाला गीत " हिमालय के आंगन में उसे प्रथम किरणों का दे उपहार " - भी भारत के सांस्कृतिक गौरव की मनोहारिणी छटा से पूर्ण और राष्ट्रीयता के भावों से ओत प्रोत है ।

सौन्दर्योल्लास के कवि पंत की दृष्टि से भी अपने ही घर में प्रवासिनी , दैन्य जर्जर भारतमाता की उदास मूर्ति छिपी नहीं रह सकी -

" भारत माता ग्रामवासिनी ।
खेतों में फैला है श्यामल,धूल भरा मैला सा आंचल ।
गंगा-यमुना में आंसू जल, मिट्टी की प्रतिमा उदासिनी ।।

+ + + +

तीस कोटि संतान नग्नतन,अर्ध क्षुधित,शोषित निरस्त्रजन
मूढ़,असभ्य अशिक्षित निर्धन, नत मस्तक तरु तल निवासिनी ।।"[1]

निराला की रचनाओं में राष्ट्रीयता और देश भक्ति की भावनायें अपेक्षाकृत सब से अधिक हैं । उनकी भारती वंदना की कुछ पंक्तियां द्रष्टव्य हैं -

" भारति जय विजय करे ।
कनक शस्य कमल धरे ।
लंका पदतल शतदल
गर्जितोर्मि सागरजल
धोता शुचि चरण युगल-
स्तव कर बहु अर्थ भरे ।"[2]

गीतिका के " वन्दूं पद सुंदर तव" अगणित आ गए शरण में जन" आदि गीतों में निराला ने भारत के प्राकृतिक और आध्यात्मिक वैभव के बड़े सुन्दर चित्र अंकित किये हैं । देश के भावी स्वरूप के प्रति कवि की आकांक्षा को निम्न-पंक्तियों में सुन्दर अभिव्यक्ति मिली है -

" गढ़ कर अवल तूलि रंग रंग कर
बहु जीवनोपाय भर दो घर ।

१- सुमित्रानन्दन पन्त - आधुनिक कवि (२) पृष्ठ ८५ ।
२- सूर्यकान्त त्रिपाठी " निराला" - गीतिका,पृष्ठ ७२ ।

भारति भारत को फिर दो वर ।
ज्ञान विपणि सनि कै ।"[1]

छायावाद के द्वितीय उत्थान के कवियों- नरेन्द्र, नेपाली, दिनकर , भगवती चरण वर्मा आदि ने इस परंपरा को और भी आगे बढ़ाया तथा देश प्रेम और राष्ट्रीयता के भावों से पूर्ण असंख्य ओजपूर्ण गीतों की रचना की । देशोन्नति के लिए आत्म बलिदान को तत्पर "नेपाली" लिखते हैं -

" हृदय रहे आधार हृदय का पत्थर भी दिलदार रहे,
खिसक पड़े कड़ियाँ बंधन की लगा नेह का तार रहे ।
सेवा का व्रत लेकर विचरूँ जग के कोने कोने में ,
मैं न रहूँ न सही पर भारत यह गुलजार रहे ।"[2]

और दिनकर की यह ओज तेजपूर्ण ललकार -

" जो मद होश बुरा फल हो, शूरों के शोणित पीने का
देना होगा तुझे एक दिन गिन गिन मोल पसीने का ।

\+ \+ \+ \+

मंजिल दूर नहीं अपनी दुख का बोझा ढोने वाले ,
लेना अनल किरीट भाल पर ओ आशिक होनेवाले ।"[3]

- भी उनके गहरे राष्ट्र प्रेम की परिचायक है ।

इस प्रकार भारतेन्दु युग और द्विवेदीयुग के काव्य में ग्रहण किये गए जीवन-सूत्रों को छायावादी कवियों ने उपेक्षित न करके उन्हें अत्यधिक और सुन्दर बनाने का ही प्रयत्न किया । उद्देश्य की एकता रहने पर भी छायावादी कवियों का मार्ग पूर्ववर्ती कवियों से भिन्न था । उन्होंने बाह्य जीवन की अपेक्षा अंतर्जगत को बदलने का आग्रह किया, समाज की उन्नति के लिये व्यक्ति की उन्नति पर बल दिया और साहित्य में मानव-महत्व तथा शाश्वत मानव मूल्यों की प्रतिष्ठा का सबल स्वर दिया । दृष्टिकोण की नवीनता के कारण छायावादी कवि अपने प्रयत्न में सफल रहे या असफल, यह अलग प्रश्न है, परंतु इतना असंदिग्ध है कि छायावादी

१- सूर्यकान्त त्रिपाठी "निराला" - गीतिका, पृष्ठ १७ ।
२- गोपाल सिंह नेपाली - उमंग ,पृष्ठ १०६ ।
३- रामधारी सिंह "दिनकर" - हुंकार, पृष्ठ २८ ।

काव्य जीवन प्रेरक और जीवन हेतुक था, वह समाज निरपेक्ष नहीं, समाज सापेक्ष था । वर्तमान जीवन और समाज की स्थितियों और समस्याओं की मौलिक विवेचना उसमें हुई है, जो सर्वमान्य भले ही न हो किन्तु सदिच्छा से प्रेरित होने के फलस्वरूप श्लाघ्य अवश्य है ।

समग्रत:, पूर्ववर्ती एकरसतापूर्ण काव्य की तुलना में छायावादी काव्य विषय-गत नवीनता लेकर आविर्भूत हुआ । किन्तु नवीनता का यह आशय नहीं कि छायावादी कवियों ने जिन विषयों पर काव्य रचना की, उनसे हिंदी जगत अपरिचित था । यह नवीनता मूलत: दृष्टिकोण की नवीनता थी जिसने परिचित विषयों को भी नवाकर्षण और नवीन आभा से संयुक्त कर दिया है । छायावाद का सर्वाधिक महत्वपूर्ण वर्ण्य विषय ' प्रेम ' है । प्रेम के लौकिक और अलौकिक दोनों रूपों का चित्रण उसमें विशदता से हुआ है । इसके अतिरिक्त ' प्रकृति ' और दार्शनिक चिंतन भी छायावाद के मुख्य वर्ण्य रहे हैं । व्यक्तिवादी चेतना से प्रभावित होने के फलस्वरूप छायावादी काव्य का सामाजिक पक्ष गौण अवश्य रहा है, तथापि उसे समाज निरपेक्ष भी नहीं कहा जा सकता । ' समाज ' की अभिव्यक्ति उसमें समाज की जीवित इकाई-व्यक्ति के माध्यम से हुई है और इस क्रम में व्यक्ति जीवन के पारिवारिक ,नैतिक,सामाजिक, सांस्कृतिक आदि सभी पक्षों का चित्रण उसमें हुआ है । स्पष्टत: यह समस्त विषय हमारे चिर परिचित और परंपरागत ही है । छायावादी कवियों की सिद्धि इसी में है कि उन्होंने परंपरागत विषयों पर काव्य रचना करते हुए भी परंपरा पालन को अपना ध्येय नहीं बनने दिया । लौकिक प्रेम का क्षेत्र हो या आध्यात्मिक प्रेम का, नारी सौन्दर्य का चित्रण हो अथवा प्रकृति सौन्दर्य का, दार्शनिक तत्वों की व्याख्या हो, अथवा सामाजिक स्थितियों की, सर्वत्र छायावादी कवियों की निजी दृष्टि, व्यक्तिगत विचार एवं मौलिक चिन्तन की प्रधानता रही है । इसीलिये छायावादी काव्य में परंपरित काव्य विषयों को भी नया संस्कार मिला और उसमें नए बोध को अभिव्यक्ति देने की अपूर्व क्षमता विकसित हुई ।

अध्याय - ३

छायावादी काव्य में रस - व्यंजना

' रस ' का काव्य में महत्व -

काव्य के श्रवण अथवा पठन-पाठन से उपलब्ध होनेवाली आनंदानुभूति ही ' रस ' है । संस्कृत के विभिन्न रसवादी आचार्यों ने काव्य के अंतर्गत रस की महत्ता प्रतिपादित करते हुए उसे काव्य की ' आत्मा ' उद्घोषित किया है । कविराज विश्वनाथ ने तो काव्य की परिभाषा ही ' वाक्य रसात्मक काव्यम् '[१] कहकर दी है । न केवल रसवादी आचार्य, वरन अलंकार, रीति, वक्रोक्ति और ध्वनि संप्रदायवादियों ने भी प्रकारान्तर से काव्य में रस की अनिवार्यता और महत्त्व को स्वीकार किया है । उदाहरणार्थ ध्वनि सिद्धान्त के प्रबल समर्थक आनंदवर्धन ने ध्वनि को काव्य के अंतर्गत सर्वाधिक महत्वपूर्ण मानते हुए भी रस ध्वनि ' की चर्चा की है । अर्थात् वे ' ध्वनि ' को रस-निरुपण की एक प्रक्रिया मानते हैं । अतः स्पष्ट है कि ध्वनिवादियों के अनुसार काव्य की आत्मा ध्वनि और ध्वनि की आत्मा ' रस ' है । वक्रोक्ति सिद्धान्त के समर्थक ' भोज ' के अनुसार

> " वक्रोक्तिश्च रसोक्तिश्च स्वभावोक्तिश्च वाङ्गमयम् सर्वासु
> ग्राहिणीं तासु रसोक्तिं प्रतिजानते ।। "५।८।।[२]

- अर्थात् वक्रोक्ति, रसोक्ति और स्वभावोक्ति वाङ्गमय है । इनमें भी ' रसोक्ति ' अति मनोग्राहिणी है ।

प्राचीन भारतीय वाङ्गमय में ईश्वर की व्याख्या "रसो वै सः"[३], कहकर करते हुए ' काव्यानंद ' को ' ब्रह्मानंद ' की कोटि में रक्खा गया है अर्थात् योगी ज्ञानी और भक्त परमब्रह्म के साक्षात्कार द्वारा जिस अलौकिक आनंद का आस्वादन करते हैं,

---

१- विश्वनाथ - साहित्य दर्पण १।३

२- भोज - सरस्वती कंठाभरण (काव्यमाला ९४) पृष्ठ ५२२

३- नगेन्द्र - रस सिद्धान्त , पृष्ठ ६, तैत्तिरीय उपनिषद् से उद्धृत ।

- " रसो वै सः । रसं ह्येवायं लब्ध्वाऽऽनन्दी भवति । "

वैसी ही आनंदानुभूति सहृदय रसिकों को उत्तम काव्य के पठन-पाठन अथवा श्रवण द्वारा होती है । इस प्रकार प्राचीन साहित्य में काव्यानंद अथवा `रस` का स्वरूप लोकोत्तर माना गया है ।

रसावयव -

सहृदय के मन में इस लोकोत्तर आनंद की अनुभूति किस प्रकार होती है ? इससे संबंधित भरत मुनि का सूत्र `तत्र विभावानुभाव व्यभिचारी संयोगाद्रस निष्पत्ति :`[1] बहु प्रचलित तथा सर्वमान्य रहा है । अर्थात् विभाव, अनुभाव और व्यभिचारी भावों के संयोग द्वारा रस की निष्पत्ति होती है। रस को निष्पन्न करनेवाले ये विभाव अनुभावादि क्या है, इन्हें भी संक्षेप में समझ लेना प्रासंगिक होगा ।

स्थायी भाव -

मनुष्य के हृदय में कुछ भाव अज्ञात रूप से सदैव विद्यमान रहते हैं । वैसे ये सुषुप्तावस्था में रहते हैं किन्तु अनुकूल प्रेरणा पाकर जाग उठते हैं और पुष्ट होकर `रस` बन जाते हैं । हृदय में स्थायी रूप से रहने के कारण साहित्य शास्त्रियों द्वारा इन्हें `स्थायी भाव` की संज्ञा दी गई है । रस के मूलाधार स्थायी भाव ही होते हैं अर्थात् रस की वास्तविक स्थिति इन्हीं में मानी गई है अन्य रसावयव इनकी पुष्टि में सहायक मात्र होते हैं । स्थायी भाव नौ होते हैं और उनसे संबंधित रसों की संख्या भी नौ ही है जो इस प्रकार है, (१) रति-श्रृंगार रस (२) हास-हास्यरस (३) शोक- करुणरस (४) उत्साह - वीररस (५) क्रोध रौद्ररस (६) भय-भयानक रस (७) जुगुप्सा (घृणा)- बीभत्स रस (८) विस्मय-अद्भुतरस और (९) निर्वेद- शान्तरस ।

विभाव -

सुषुप्त स्थायी भावों को जाग्रत करने के कारणों को विभाव कहा गया है । विभाव दो प्रकार के होते हैं - आलंबन विभाव और उद्दीपन विभाव । जिस वस्तु ,व्यक्ति, अथवा दृश्य के प्रति स्थायी भाव जाग्रत हो उसे आलंबन विभाव कहते हैं तथा जो कारण स्थायी भाव को उद्दीप्त अथवा उत्तेजित करते हैं, वे उद्दीपन विभाव कहलाते हैं ।

१- भरत - नाट्यशास्त्र, काव्यमाला ४२,पृष्ठ ९३ ।

अनुभाव आन्तरिक भावों के बाह्य व्यंजक होते हैं । जिस व्यक्ति के हृदय में भाव उद्दीप्त हुआ है, उसकी वे चेष्टायें अथवा क्रियाएं जो उसके आंतरिक भाव का बोध करानेवाली हो, अनुभाव कहलाती है । जैसे क्रोध में नेत्रों का लाल होना, भय से शरीर का कांपना आदि ।

संचारी भाव -

स्थायी भाव के साथ संचरण करके उसे संपुष्ट बनानेवाले भाव संचारी भाव कहलाते हैं । स्थायित्वहीन एवं बार बार कुछ समय के लिये आकार फिर चले जाने के कारण इन्हें व्यभिचारी भाव भी कहा जाता है । सामान्यत: संचारी भाव ३३ माने गए हैं - निर्वेद, शंका, गर्व, चिन्ता , मोह विषाद, दैन्य, असूया, मृत्यु, मद, आलस्य, श्रम, उन्माद , प्रकृति गोपन (अवहित्थ) चपलता, अपस्मार (मिरगी) भय, ग्लानि, व्रीड़ा, जड़ता ,हर्ष, धृति (धैर्य) मति ६ आवेग, उत्कंठा, निद्रा, स्वप्न, बोध, उग्रता, व्याधि, अमर्ष , वितर्क तथा स्मृति ।

रस के इन विभिन्न अवयवों के पारस्परिक सहयोग द्वारा ही कोई श्रेष्ठ रचना पढ़कर या सुनकर अथवा कोई श्रेष्ठ अभिनय देखकर पाठक, श्रोता अथवा दर्शक आनंद-मग्न होता है । विभावों की सहायता से स्थायी भाव जाग्रत होता है, अनुभावों द्वारा प्रतीति योग्य बनता है और व्यभिचारियों द्वारा पुष्ट होकर रस रूप में परिणत हो जाता है । इस प्रक्रिया को ही पारिभाषिक शब्दों में "रस-निष्पत्ति" कहा गया है । रस के पूर्ण परिपाक हेतु उपर्युक्त सभी तत्व अपेक्षित होते हैं ।

भरत के नाट्यशास्त्र में केवल आठ रसों का उल्लेख मिलता है ।[१] कालान्तर में रसो की संख्या नौ निश्चित की गई । हिन्दी कविता का भक्तियुग अपने साथ भक्ति और वात्सल्य की रस धाराओं का प्रवाह लेकर आया । मम्मट ने अपने काव्य प्रकाश के "रतिर्देवादिविषये" सूत्र में इन्हें केवल भाव माना था, किन्तु भक्तियुगीन

१- भरत - नाट्यशास्त्र ६ ।।१६ -

"शृंगार हास्यकरुणा रौद्रवीर भयानका: ।
वीभत्साद्भुतसंज्ञौ चेत्यष्टौ नाट्ये रसा: स्मृता: ।।"

सूर, तुलसी जैसे महाकवियों ने इन भावों की अत्यंत सूक्ष्म, गहन और सफल व्यंजना करके इन्हें 'रस' की कोटि तक पहुंचा दिया । इस प्रकार 'रस' की संख्या ग्यारह हो गई तथापि नौ रसों को ही शास्त्रीय दृष्टि से अधिक महत्व मिला । इन नौ रसों में भी 'श्रृंगार' को सर्वोपरि माना गया । 'रुद्रट' के अनुसार अन्य कोई भी रस श्रृंगार के समान आस्वाद्य नहीं है । इस रस का प्रसार बच्चों से लेकर वृद्धों तक है । इस कारण इसके नियोजन में कवि को पूरी सावधानी रखनी चाहिये । इस रस के बिना काव्य रसविहीन हो जाता है ।[१] इन्हीं का समर्थन करते हुए आनंदवर्धन का भी मत है कि श्रृंगार रस की योजना में कवि द्वारा सावधानी अपेक्षित है क्योंकि यह रस संसारियों के अनुभव का विषय होने के कारण अन्य सब रसों में कमनीय और प्रधान है ।[२] इस प्रकार संस्कृत साहित्य में 'श्रृंगार' का रस-राजत्व सिद्ध होता है ।

हिन्दी काव्य परंपरा की रस चेतना -

हिन्दी साहित्य का आदिकाल वीरत्व एवं शौर्य के प्रदर्शन का युग था । साहित्य सदैव युगानुगामी होता है, फलत: उस युग के साहित्य में भी वीर रस का प्राधान्य रहा । युद्ध में अतुल पराक्रम दिखाने वाले राजा महाराजाओं को युद्धावकाश के दिनों में सुरा और सुंदरियों की भी आवश्यकता होती थी । इन राजाओं के आश्रित चारण और भाट अपने काव्य-नायक के शौर्य वर्णन के साथ साथ उनके हास-विलास और केलि क्रीड़ाओं का भी बखान किया करते थे । इस प्रकार वीररस के क्रोड़ में श्रृंगार रस भी उस युग में पल्लवित होता रहा ।

मध्ययुग के पूर्वार्द्ध अर्थात् भक्तिकाल में सगुणोपासक कवियों- विशेषकर कृष्णभक्ति शाखा के कवियों ने अपने उपास्य-लीलाविहारी कृष्ण और उनकी संगिनी राधा एवं गोपबालाओं की केलि क्रीड़ा रास-रंग आदि के प्रसंगों में

१- रुद्रट - काव्यालंकार १४।३८

" अनुसरति रसानां रस्यतामस्य नान्य: ।
सकलमिदमनेन व्याप्तमाबालवृद्धम् ।।
तदिति विरचनीय: सम्यगेष प्रयत्नात् ।
भवति विरसमेवानेन हीनन्तु हि काव्यं ।।"

२- आनंदवर्धन - ध्वन्यालोक ३।२९ कारिकान्तर्गत वृत्ति

-" श्रृंगार संसारिणां नियमेनुभवविषयत्वात् सर्वरसेभ्य:
कमनीयतया - प्रधानभूत: ।।"

तथा कृष्ण के ब्रज से मथुरा प्रस्थान के बाद ब्रजबालाओं की विरह व्यंजना के अंतर्गत शृंगार की अपूर्व सरिता बहाई है ।

मध्ययुग का उत्तरार्द्ध- रीतिकाल मुख्यत: शृंगारिक रचनाओं का ही युग था । शृंगार का ऐसा अजस्र प्रवाह इस युग की कविता में उमड़ा कि वह अपने साथ नैतिक मर्यादाओं के समस्त मापदण्ड भी बहा ले गया । भूषण, सूदन जैसे इनेगिने कवियों को छोड़कर शेष सब ने शृंगार रस प्रधान काव्यों का ही सृजन किया ।

" शृंगार " की यही चिर परिचित धारा आधुनिक युग में भारतेन्दु के समय तक अप्रतिहत वेग से प्रवाहित होती रही । इस अनियंत्रित प्रवाह को रोकने के लिये महावीर प्रसाद द्विवेदी और उनके समकालीन कवियों ने सशक्त बांध की भूमिका प्रस्तुत की । रीतिकाल की अतिशय शृंगारिकता से ऊबे हुए नीति और आदर्श के पथगामी साहित्यकारों में " राधिका कन्हाई सुमिरन " के बहाने लिखी जानेवाली छिछली भोंडी और अतिशयोक्ति पूर्ण कविताओं का दृढ़तापूर्वक विरोध किया । लेकिन इस विरोध में भी अतिरेक इतना बढ़ा कि नीति और उपदेशों से भरी हुई नीरस कविताओं की भरमार होने लगी और कविता - क्षेत्र से शृंगाररस प्राय: निष्कासित हो गया । द्विवेदी युग की इस स्थिति की प्रतिक्रिया स्वरूप छायावादी कवियों ने पुन: शृंगार रस का आंचल थामकर उसे काव्य-मंच पर प्रतिष्ठित किया । छायावादी कविताओं में शृंगार रस का ही प्राधान्य है । करुण ,वीर, अद्भुत और शान्त रसों की व्यंजना भी इस युग में प्राप्य है किन्तु अत्यंत गौण रूप में ।

छायावादी काव्य में रस का स्वरूप -

अन्य सभी क्षेत्रों की भांति रस-व्यंजना के क्षेत्र में भी छायावादी कवि क्रान्तिकारी सिद्ध हुए हैं । उन्होंने भारतीय साहित्य शास्त्र के चिर-परिचित रसों को नए सुर-ताल के साथ रूढ़ियों से मुक्त करके नवीन रूप में प्रस्तुत किया है । वस्तुत: छायावादी कवियों का लक्ष्य आत्माभिव्यक्ति था, शास्त्रीय पद्धतियों का पिष्ट पेषण नहीं । उनके लिये अपनी अनुभूतियों को यथारूप पाठक हृदय तक पहुंचा सकना शास्त्र विहित नियमों के उदाहरण प्रस्तुत करने की अपेक्षा

कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण था । अतएव उनके द्वारा वर्णित प्रसंगों में " विभावानुभाव व्यभिचारी " की खानापूरी हो रही है अथवा नहीं, यह देखने का इन कवियों को अवकाश ही नहीं मिला । इसी कारण परंपरावादी समीक्षकों को छायावादी कवितायें " विश्रृंखल भावों का अर्थहीन विन्यास "[1] जान पड़ीं ।

रस परिपाक में बाधायें -

शास्त्रीयता के प्रति उदासीनता के अतिरिक्त प्राचीन शास्त्रीय पद्धति का साथ निभाने में छायावादी कवियों की असमर्थता के कुछ अन्य कारण भी थे । (क) इन कवियों की स्वच्छंदतावादी प्रवृत्ति (ख) आत्माभिव्यंजना की प्रवृत्ति का गीति काव्य की ओर अधिक रुझान तथा (ग) रहस्यात्मक चिन्तन और जिज्ञासा की भावनायें ।

जैसा कि पहले भी उल्लेख हो चुका है, स्वच्छंदतावादी कवि सदैव " पर " के बदले " स्व " को अधिक महत्त्व देता है । औरों की बात कहने के बदले उसकी प्रवृत्ति मुख्यत: अपनी मन: स्थितियों के चित्रण तथा आत्मानुभूतियों के कथन की ओर रहती है । प्राचीन युग में कवि जन शास्त्रोक्त परिपाटी के अनुसार किसी धीर प्रशान्त, धीरोदात्त, धीरललित या धीरोद्धत नायक का चयन करके काव्य रचना करते थे और उनमें आत्मानुभूति की अपेक्षा ग्रन्थस्थ ज्ञान के आधार पर रस परिपाक के लिये विभाव, अनुभाव और संचारी भावों की योजना करते थे । परंतु स्वच्छंदतावादी कवि अपने काव्य का नायक स्वयं होता है । वह किसी अन्य की नहीं, स्वयं अपनी बात कहता है । अपनी बात को सर्वदा बेखटके कह सकना कवि ही नहीं सामान्य मनुष्य के लिए भी प्राय: कठिन हो जाता है । इसी कारण बहुधा शील संकोचवश स्वच्छंदतावादी कवि अपने आत्मिक भावों की व्यंजना प्रच्छन्न रूप में अथवा संकेतों और प्रतीकों के द्वारा करने के लिए बाध्य होता है, जैसा कि छायावादी कवियों के साथ भी हुआ । अपनी आंगिक चेष्टाओं को भी उतने खुले रूप में व्यक्त करने में इन कवियों को कठिनाई होती है जैसे पूर्वयुगीन श्रृंगारी कवि किसी अन्य

१- रामचंद्र शुक्ल - हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ ५६६ ।

की बातें कहने के नाते सहज ही कर लेते थे। इसी कारण अनुभाव, संचारी भाव आदि बहुधा ऐसे काव्य में छिपे ही रह जाते हैं, उभरकर स्पष्ट नहीं हो पाते।

आत्माभिव्यंजना की प्रवृत्ति के फलस्वरूप छायावादी कवियों ने प्रगीत काव्य ही अधिक लिखा है। प्रगीतों का आधार लघु होने के कारण उसमें किसी भाव अथवा दृश्य के विशद वर्णन का अवसर नहीं रहता। प्रबन्ध काव्य का रचयिता किसी दृश्य अथवा भाव में पाठक मन को देर तक रमाए रखने के लिये विविध अलंकारों, उद्दीपन, संचारी भाव और अनुभावों की सहायता लेकर सरलतापूर्वक अपने अभीष्ट रस की व्यंजना कर सकता है। किन्तु किसी मनोभाव को परिपक्वावस्था तक पहुंचने के लिए जितना समय अपेक्षित होता है, वह प्रगीतों अथवा गीतों में मिल पाना प्राय: असंभव होता है। प्रगीतों के कलेवर की लघुता संचारियों, अनुभावों आदि के सम्यक् चित्रण का अवसर ही नहीं देती, अतएव हृदय की मुक्तावस्था [1] उसमें टिकाऊ नहीं हो पाती और भाव रस दशा को नहीं पहुंच पाता। यद्यपि भाव की व्यंजना अवश्य होती है जिसे रस-दशा की ही निम्नकोटि माना गया है। इसमें रस का अस्थायी आस्वादन होता है।

प्रबंध रचनायें छायावादी काव्य परंपरा में इनी गिनी ही हुई, उनमें भी शास्त्रीय परिपाटी पर चलने की अभिरुचि कवियों में नहीं दिखाई देती है। वहां भी कारण रूप में छायावादी कवियों की स्वच्छंदतावादी प्रवृत्ति ही है, जिसके फलस्वरूप वे शास्त्र-परिगणित रसावयवों के प्रति आग्रही न होकर शैलीगत विशेषताओं के माध्यम से रसानुभूति कराने के लिये सचेष्ट रहे हैं।

छायावादी कवियों की जिज्ञासु वृत्ति और रहस्य चिन्तन की भावनाएं भी बहुधा रसानुभूति में बाधक सिद्ध हुई हैं। काव्य का सीधा संबंध हृदय की सहज वृत्तियों से है और विचार तथा चिन्तन मस्तिष्क से उद्भूत एवं दर्शन के क्षेत्र से संबद्ध है। छायावादी कवि जिन स्थलों पर चिन्तन प्रवृत्त हो गया है अथवा प्रिय की असीमता और उसके निराकार रूप की चर्चा में लीन हुआ है, वहां उसकी कवितायें रस परिपाक से वंचित रह गई हैं जैसे

"मैं तुमसे हूं एक, एक है जैसे रश्मि प्रकाश" [2]

१- रामचन्द्र शुक्ल - चिन्तामणि भाग १, पृष्ठ १४४ -
"जिस प्रकार आत्मा की मुक्तावस्था ज्ञान दशा कहलाती है, उसी प्रकार हृदय की मुक्तावस्था रस दशा कहलाती है।"

२- महादेवी वर्मा - यामा- रश्मि, पृष्ठ १०४।

रामचंद्र शुक्ल के अनुसार कविता का प्रधान लक्ष्य बिम्ब ग्रहण कराना है ।[1] " बिम्ब ग्रहण " से उनका तात्पर्य वर्ण्यवस्तु को इंद्रिय सविष रूप में प्रस्तुत करना है । यह " बिम्ब ग्रहण " का कार्य तभी संभव है, जब वर्ण्य वस्तु का सं श्लिष्ट चित्रण किया जावे । किन्तु जहां पर वर्ण्य-वस्तु का स्पष्ट आकार ही न हो, वहां कोई बिम्ब किस प्रकार उभर सकता है ? उदाहरणार्थ महादेवी की निम्न उद्धृत पंक्तियों में-

> चित्रित तू मैं हूं रेखा-क्रम,
> मधुर राग तू मैं स्वर-संगम ।
> तू असीम , मैं सीमा का भ्रम ।"[2]

वर्ण्य की धुंधली छाया मात्र पकड़ में आती है, कोई स्पष्ट चित्र नहीं । प्रकारान्तर से कहा जा सकता है कि भाव को रसदशा तक पहुंचने के लिये अभिधा का आधार अपेक्षित होता है किन्तु छायावादी कवियों की रूमान व्यंजना की ओर अधिक रही है, इसीलिये छायावादी काव्य प्राचीन रस संप्रदाय से दूर तथा ध्वनि संप्रदाय के निकट जान पड़ता है । परन्तु इस कथन का यह आशय नहीं है कि छायावादी काव्य रस विहीन है ।" रस " को उसके पारिभाषिक अर्थ (विभावानुभाव व्यभिचारी के संयोग से निष्पन्न होनेवाला) में न लेकर उसके सामान्य अर्थ आनंद के रूप में लिया जाय तो निस्संदेह छायावादी काव्य में हृदय को आनंदित करने की क्षमता है । साहित्य-दर्पणकार द्वारा की गई काव्य की परिभाषा-" वाक्यं रसात्मकं काव्यं "[3] में भी संभवत:" रस " शब्द आनंद" के अर्थ में ही प्रयुक्त हुआ है । आनंदात्मक होने के फलस्वरूप छायावादी काव्य रस से परिपूर्ण है । रस-शास्त्रीय सरणि पर न चलकर भी छायावादी कवितायें पाठक-मन में कवि की अपेक्षित भावनाओं का उद्रेक करने में प्राय: सक्षम सिद्ध हुई है । मानव-मन ,जिसकी गहराई और व्यापकता असीम है, प्राचीन साहित्याचार्यों द्वारा आठ या नौ प्रकोष्ठों में बांट दिया गया था । इस दायरे के भीतर ही कवि-कर्म सीमित था । किन्तु छायावादी

१- रामचन्द्र शुक्ल - चिन्तामणि भाग १, पृष्ठ १४५ ।
२- महादेवी वर्मा - यामा- नीरजा, पृष्ठ १४३ ।
३- विश्वनाथ - साहित्य दर्पण, १।३ ।

कवियों की प्रकृति भिन्न थी । जड़ बंधनों से चिपककर चलना अथवा शास्त्र वर्णित कुछ संचारियों - अनुभावों द्वारा स्थायी भाव का संकेत देकर अपनी उक्तियों को रस विशेष के सांचे में ढालकर प्रस्तुत करना उन्हें मान्य नहीं हुआ ।

वस्तुत: किसी युग विशेष की मान्यतायें और आदर्श किसी अन्य युग में यथा रूप ग्राह्य नहीं हो सकते । समय और वातावरण के अनुरूप आदर्शों और मान्यताओं को भी बदलना पड़ता है अथवा उनके संशोधित रूप की आवश्यकता पड़ती है । इसी कारण आधुनिक युगीन समालोचक रामचंद्र शुक्ल ने "साधारणीकरण" के रूप में प्राचीन रस-व्यंजना पद्धति की नवीन व्याख्या प्रस्तुत की, जिसके अंतर्गत रसानुभूति को लोकोत्तर न मानकर इसी लोक से सम्बद्ध माना गया ।[१]

<u>रस व्यंजना की नई पद्धति -</u>

छायावादी काव्य में रस के समस्त अवयवों को प्रकट रूप में दर्शाना तथा रस निष्पत्ति हेतु तीनों रसावयवों का स्पष्ट संयोग अनिवार्य नहीं समझा गया। कहीं केवल विभावों का चित्रण अंकित होता है कहीं केवल अनुभाव अथवा संचारी भावों का, अथवा कहीं दो ही अवयव विद्यमान रहते हैं । उदाहरणार्थ -

" चातक की चकित पुकारें
श्यामा ध्वनि सरस रसीली ।
मेरी करुणार्द्र कथा की,
टुकड़ी आँसू से गीली ।।[२]

१- रामचन्द्र शुक्ल - चिन्तामणि, भाग १, पृष्ठ २२७ -

" जब तक किसी भाव का कोई विषय इस रूप में नहीं लाया जाता कि वह सामान्यत: सब के उसी भाव का आलंबन हो सके, तब तक उसमें रसोद्बोधन की पूर्ण शक्ति नहीं आती । इसी रूप में लाया जाना हमारे यहाँ "साधारणीकरण" कहलाता है । यह सिद्धान्त यह घोषित करता है कि सच्चा कवि वही है, जिसे लोक हृदय की पहचान हो जो अनेक विशेषताओं और विचित्रताओं के बीच मनुष्य जाति के सामान्य हृदय को देख सके । इसी लोक हृदय में हृदय के लीन होने की दशा का नाम रस दशा है ।"

२- जयशंकर प्रसाद - आँसू, पृष्ठ १३ ।

इन पंक्तियों में ' आश्रय ' कवि स्वयं है, स्थायी भाव है ' करुणा ' चातक की पुकार और श्यामा की सरस रसीली ध्वनि उद्दीपन विभाव है, आंसू अनुभाव है, किन्तु संचारियों का कोई उल्लेख नहीं है । फिर भी कवि हृदय की करुणा से पाठक प्रभावित हुए बिना नहीं रहता । इसी प्रकार -

' जो घनीभूत पीड़ा थी
मस्तक में स्मृति सी छायी ।
दुर्दिन में आंसू बनकर
वह आज बरसने आयी ।।[1]'

कवि का अभीष्ट यहां दुर्दिन में उमड़ पड़नेवाले अश्रुओं की मर्मव्यथा कहना है, जिसमें वह सफल रहा है । यह विचार करने के लिये उसकी लेखनी ठिठकती नहीं है कि स्थायी भाव इन पंक्तियों में पुष्ट हुआ है अथवा संचारी भाव का संचार मात्र हुआ है ।

निराला की निम्न पंक्तियों में केवल अनुभावों का ही कथन हुआ है, तथापि रति-भाव अपने परिपुष्ट रूप में स्पष्ट झलक जाता है -

' स्पर्श से आज लगी
अलक पलक में छिपी झलक
उर से नव राग जगी ।

चुम्बन चकित चतुर्दिक चंचल
हेर फेर मुख कर बहु सुख छल
कभी हास, फिर त्रास, सांस-बल
उर-सरिता उमगी ।[2]

पंत की रचनाओं से एक उदाहरण द्रष्टव्य है -
' शैवलिनि जाओ मिलो तुम सिन्धु से,
अनिल आलिंगन करो तुम गगन का।
चन्द्रिके चूमो तरंगों के अधर
उडुगणों गाओ पवन वीणा बजा ।।

१- जयशंकर प्रसाद - आंसू, पृष्ठ १४ ।
२- सूर्यकान्त त्रिपाठी ' निराला ' - गीतिका, पृष्ठ ३३ ।

पर हृदय सब भाँति तू कंगाल है
उठ किसी निर्जन विपिन में बैठकर
अश्रुओं की बाढ़ में अपनी बिकी
भग्न भावी को डुबा दे आँख सी ।"[1]

इन पंक्तियों में उद्दीपन और अनुभावों का उल्लेख हुआ है, "आश्रय" कवि स्वयं है किन्तु "आलंबन" का रूप अप्रकट है तथा संचारी भावों का भी कथन नहीं हुआ है। फिर भी कवि हृदय की निराशा, उदासी और विवशता मूर्तिमंत होकर पाठक हृदय को करुणा भिभूत कर देने में सक्षम है। इस भाँति यहाँ करुण रस की सफल व्यंजना हुई है।

जैसा कि प्रारंभ में कहा जा चुका है, जिज्ञासा और रहस्य की भावनाओं ने छायावादी कवियों की रस व्यंजना में विशेष बाधा पहुँचाई है। अनुभूतिमय क्षणों में जब छायावादी कवि चिन्तन प्रवृत्त हो जाता है तो पाठक भी अपने को रस परिधि से परे अनुभव करने लगता है और केवल भाव व्यंजना हो पाती है, रसानुभूति नहीं। इस तथ्य के प्रभूत प्रमाण महादेवी के काव्य में मिल सकते हैं। विप्रलंभ श्रृंगार के व्यंजक- स्मृति, उन्माद, व्याधि आदि संचारियों की उन्होंने कहीं कहीं अत्यंत सुन्दर योजना की है जैसे -

"बिछाती थी सपनों के जाल
तुम्हारी वह करुणा की कोर।
गई वह अधरों की मुस्कान
मुझे मधुमय पीड़ा में बोर ।।"[2]

अथवा -

"पल पल में उड़ते पृष्ठों पर
सुधि से लिख साँसों के अक्षर।
मैं अपने ही वेसुधपन में,
लिखती हूँ कुछ, कुछ लिख जाती ।।"[3]

१- सुमित्रानन्दन पन्त - ग्रन्थि, पृष्ठ ३५।
२- महादेवी वर्मा - नीहार, पृष्ठ १।
३- महादेवी वर्मा - यामा- नीरजा, पृष्ठ १५६।

यहाँ प्रथम उद्धरण में 'स्मृति' तथा द्वितीय में 'उन्माद' संचारियों का विधान हुआ है, किन्तु इस प्रकार के चित्रणों में भी प्रायः प्रिय की असीमता और निराकार रूप की व्यंजना रसानुभूति को पूर्णता नहीं प्राप्त करने देती। विरहानुभूति की व्यंजना करते समय यदि प्रत्यक्ष संयोग की बात कही जाए तो सामान्य पाठक के लिए वह स्वीकार्य नहीं होता। वियोग कष्ट कथन के मध्य 'किन्तु', 'परन्तु' के आ जाने से प्रभातिरेक में बाधा पहुंचती है और स्थायीभाव के परिपक्वावस्था में पहुंचने के पूर्व ही पाठक अन्य दशा में पहुंच जाता है। छायावादी कवियों की रहस्यवादी प्रवृत्ति के कारण ऐसा अनेक स्थलों पर हुआ है। उदाहरणार्थ रामकुमार वर्मा की निम्न पंक्तियां द्रष्टव्य है -

"आह वह कोकिल न जाने क्यों हृदय को चीर रोई,
एक प्रतिध्वनि सी हृदय में क्षीण हो हो हाय सोई।
किन्तु इससे आज मैं कितने तुम्हारे पास आया।
यह तुम्हारा हास आया।।"[1]

रस-बोध के लिये दृश्य को स्थायी बनाना और रूप चेष्टाओं को मूर्त करना परमावश्यक होता है। इसके लिये चित्रात्मक शैली अत्यन्त उपयोगी होती है, जो कि छायावाद की प्रिय शैली है। प्रसाद ने इस चित्रात्मक शैली का आधार लेकर लघु आकार वाले काव्य-रूप-गीत और प्रगीत में भी बहुधा रस की सुंदर और सफल व्यंजना की है जैसे -

"फिर कह दोगे पहचानो तो, मैं हूं कौन बताओ तो।
किन्तु उन्हीं अधरों से पहले उनकी हंसी दबाओ तो।।
सिहर भरे निज शिथिल मृदुल अंचल को अधरों से पकड़ो।
वेला बीच चली है चंचल बाहुलता से आ जकड़ो।।"[2]

यहाँ नायक-नायिका के मिलन-दृश्य को स्थायित्व प्रदान करके शृंगार रस की व्यंजना की गई है। प्रबंध काव्यों में यह शैली विशेष सहायक सिद्ध हुई है। प्रसाद की 'कामायनी' और निराला की 'राम की शक्ति पूजा' में शास्त्रीयता का पूर्ण निर्वाह न होते हुए भी इसी शैली के आधार पर पाठकों को रस मग्न कर देने की क्षमता है। उदाहरणार्थ निम्नलिखित पंक्तियों में केवल अनुभवों

१- रामकुमार वर्मा - चित्ररेखा, पृष्ठ ३।
२- जयशंकर प्रसाद - लहर, पृष्ठ १०।

को चित्रबद्ध करके ही प्रसाद ने रस-प्रतीति कराने की सफल चेष्टा की है -

" शिथिल शरीर वसन विश्रृंखल
कबरी अधिक अधीर खुली
छिन्न पत्र मकरंद लुटी सी
ज्यों मुस्काई हुई कली ।।"[१]

यहाँ उद्दीपन, संचारी आदि की चर्चा न होते हुए भी मात्र अनुभाव ही नायिका के नायक से मिलन की सांकेतिक अभिव्यक्ति कर देते हैं तथा इस भाँति श्रृंगार रस की व्यंजना हो जाती है।

चित्रात्मक शैली के अतिरिक्त छायावादी कवियों ने रस निष्पत्ति हेतु मनोवैज्ञानिक शैली का भी पर्याप्त आश्रय लिया है। अनुभावों की परंपरागत योजना न करके ये कवि संचारी भावों का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण करते हैं और उसे भी पाठकों के लिए आस्वाद्य बना देते हैं। उदाहरण के लिये प्रसाद ने कामायनी में "लज्जा" संचारी का मनोवैज्ञानिक विवेचन करते हुए आकर्षण, कुतूहल, संकोच, उत्सुकता हर्ष पुलक, मोह आदि को उसके सहचारी रूप में प्रस्तुत किया है और रोमांच, कानों की लालिमा, झुकी हुई दृष्टि" मंद स्मित, जड़ता आदि की योजना अनुभाव रूप में की है।

कहीं कहीं प्रतीकों के संस्पर्श द्वारा रसानुभूति की चेष्टायें भी छायावादी काव्य में लक्षित होती है। जैसे पंत की निम्नलिखित पंक्तियों में :-

" अभी तो मुकुट बंधा था माथ
हुए कल ही हल्दी के हाथ
खुले भी न थे लाज के बोल
खिले भी चुम्बन शून्य कपोल
वातहत लतिका वह सुकुमार
पड़ी है छिन्नाधार।"[२]

यहाँ माथे मुकुट बंधना, हल्दी के हाथ होना आदि सरल और

१- जयशंकर प्रसाद - कामायनी - निर्वेद सर्ग, पृष्ठ २२० ।
२- सुमित्रानन्दन पन्त - आधुनिक कवि, पृष्ठ ३८ ।

बोधगम्य प्रतीक पाठक की कल्पना को परिचालित कर " करुणा " के भाव को स्थायित्व प्रदान करते हैं । जीवन की अस्थिरता और क्षणभंगुरता का बोध कराने वाले यह प्रतीक भाव, विभाव, अनुभाव, और संचारी सभी का कार्य पूर्ण करके करुण रस की पुष्टि करते हैं । इसी प्रकार -

" लहरों में प्यास भरी है, है भंवर पात्र भी खाली
मानस का सब रस पीकर लुढ़का दी तुमने प्याली ।।
किंजल्क जाल है बिखरे, उड़ता पराग है रुखा
है स्नेह सरोज हमारा विकसा मानस में सूखा ।।"[१]

यहां भी प्यासी लहरें (अतृप्त इच्छायें) खाली भंवर पात्र (अपूर्ण आकांक्षायें) लुढ़की हुई प्याली (सर्वस्व अपहरण) बिखरे हुए किंजल्क जाल और उड़ता हुआ पराग (छिन्न भिन्न स्वप्न और कल्पनायें) आदि प्रतीक आश्रय (कवि स्वयं) की वियोग जन्य पीड़ा की अनुभूति को स्थायित्व प्रदान करके पाठकों को करुणाभिभूत करने में पूर्ण सक्षम है ।

शास्त्रीय पद्धति -

रस-निष्पत्ति हेतु शास्त्र वर्णित समस्त रसावयवों का प्रयोग भी छायावादी काव्य में कहीं कहीं दिखाई देता है, जैसे -

" आज उर के स्तर स्तर में प्राण
सजग सौ स्मृतियां सुकुमार,
दृगों में मधुर स्वप्न संसार
मर्म में मदिर स्पृहा का भार ।।

शिथिल स्वप्निल पंखड़ियां खोल
आज अपलक कलिकाएं बाल ,
गूंजता भूला भौंरा डोल ।
सुमुखि , उर के सुख से वाचाल ।।

१- जयशंकर प्रसाद - आंसू, पृष्ठ २८ ।

आज चंचल चंचल मन प्राण
आज रे शिथिल शिथिल तन भार
आज दो प्राणों का दिनमान
आज संसार नहीं संसार ।
आज क्या प्रिये सुहाती लाज ।
आज रहने दो सब गृह काज ।"[१]

यहाँ आश्रय कवि स्वयं है, "सुमुखि" आलंबन का बोधक है । द्वितीय चरण में उद्दीपनों का चित्रण है प्रथम और तृतीय चरणों में अनुभावों की योजना हुई है । अन्तिम दो पंक्तियों में "आज" शब्द कवि हृदय के तीव्र आवेग "(संचारी) को प्रकट करता है । इस प्रकार विभाव, अनुभाव और संचारी भावों के परस्पर संयोग द्वारा यहाँ शृंगार रस का पूर्ण परिपाक हुआ है । इसी प्रकार -

" यह तुम्हारा हास आया ।
इन फटे से बादलों में कौन सा मधुमास आया ?
आंख से नीरव व्यथा के
दो बड़े आंसू बहे हैं ।
सिसकियों में वेदना के
व्यूह ये कैसे रहे हैं ?
एक उज्ज्वल तीर सा रवि रश्मि का उल्लास आया ।"[२]

इन पंक्तियों में भी कवि स्वयं आश्रय रूप है "तुम्हारा" शब्द आलंबन का बोधक है । "फटे से बादल" कवि की वियोग दशा को व्यक्त करते हैं, मधुमास" प्रिय के हासमंडित मुख-सौन्दर्य का प्रतीक है । "आंसू" और "सिसकी" "आश्रय" के अनुभाव हैं तथा "रवि रश्मि का उल्लास" शब्द "संचारी" रूप में कवि के मन में उठनेवाली उमंग के द्योतक हैं । इस प्रकार उपर्युक्त उदाहरण में रस के समस्त अवयवों की सहयोजना द्वारा "रति" स्थायी भाव उद्दीप्त हुआ है और शृंगार रस" की

१- सुमित्रानन्दन पन्त - गुंजन, पृष्ठ ५२ ।
२- रामकुमार वर्मा - चित्ररेखा, पृष्ठ ३ ।

निष्पत्ति हुई है ; तथापि यहाँ पर भी " आश्रय " आलंबन ", उद्दीपन , अनुभाव, संचारीभाव आदि परंपरागत काव्य से अपना रूपगत साम्य न रखकर मौलिक और नवीन ही है ।

छायावादी काव्य में कुछ स्थल ऐसे भी हैं, जहाँ " श्रृंगार रस " का स्वरूप रीतिकालीन परंपरा के बहुत निकट प्रतीत होता है । उदाहरणार्थ निराला की " जुही की कली " और शेफालिका के कुछ अंश द्रष्टव्य हैं -

" निर्दय उस नायक ने निपट निठुराई की
कि झोंकों की झड़ियों से
सुन्दर सुकुमार देह सारी झकझोर डाली
मसल दिये गोरे कपोल गोल
चौंक पड़ी युवती
चकित चितवन निज चारों ओर फेर
हेर प्यारे को सेज पास
नम्र मुखी हँसी, खिली
खेल रंग प्यारे संग ।[१]

तथा -

" बंद कंचुकी के सब खोल दिये प्यार से
यौवन उभार ने
पल्लव पर्यंक पर सोती शेफालिके
मूक आह्वान भरे लालसी कपोलों के
व्याकुल विकास पर
झरते हैं शिशिर से चुम्बन गगन के ।"[२]

यहाँ पर प्रकृति के उपकरणों का मानवीकरण करके उसकी रति-क्रीड़ा के चित्रण द्वारा श्रृंगार रस की पुष्टि हुई है । विभावादिकों

१- सूर्यकान्त त्रिपाठी " निराला " - जुही की कली, परिमल, पृष्ठ १६३ ।
२- सूर्यकान्त त्रिपाठी " निराला " - परिमल - शेफालिका, पृष्ठ १६५ ।

का स्वरूप और उनकी योजना यहाँ परंपरागत ही जान पड़ती है परन्तु इन रचनाओं में जिस प्रकार की रस निष्पत्ति हुई है, उसे शास्त्र विहित उच्चकोटि की रस-निष्पत्ति नहीं कहा जा सकता। क्योंकि इन पंक्तियों में वर्णित क्रिया व्यापार प्राकृतिक उपकरणों पर घटित किये गए हैं और परंपरानुसार प्रकृति रति भाव को परिपुष्ट करती आई है, रति का विषय वह नहीं बनी। माता, पिता, गुरु, पशु-पक्षी, प्रकृति के विभिन्न जड़ उपकरणों आदि की रति क्रीड़ा का चित्रण सामाजिक दृष्टि से अनुचित समझा जाता रहा है। किन्तु छायावाद-काल तक नई शिक्षा के प्रसार और ज्ञान विज्ञान के आलोक द्वारा जीवन के नए क्षितिज खुल चुके थे; जिसके फलस्वरूप लोकादर्श और उचित अनुचित की परिभाषायें बदल चुकी थी। उपर्युक्त चित्र उसी बदली हुई लोक दृष्टि के परिचायक हैं। छायावादी कवि अपनी भावनाओं का आरोप प्रकृति पर करके ही संतुष्ट हो लेता है, क्योंकि अपने काव्य का नायक वह स्वयं है और बदली हुई सामाजिक मान्यतायें उसे आत्मरति के चित्रण की अनुमति नहीं देती।

शास्त्रीयता की कसौटी पर उपर्युक्त कविताओं की यदि परख की जाय तो विभावादिकों की अनुचित योजना के फलस्वरूप इन्हें रसाभास के अन्तर्गत रक्खा जाएगा। क्योंकि इनके द्वारा "भाव" का आभास तो भलीभाँति हो जाता है किन्तु वह "अनुभूति" नहीं बन पाता। लेकिन छायावाद के युगीन परिप्रेक्ष्य में देखने पर यह रचनायें रसानुभूति के गुण से पूर्ण हैं। यदि इनमें वर्णित बातें कवि अपने लिये कहता तो वर्तमान में वे ही रसाभास का उदाहरण होती क्योंकि आधुनिक युग में अपनी रति क्रीड़ाओं का गोपन ही उचित माना जाता है।

रसाभास और भावाभास की भाँति भावोदय, भावशान्ति भाव संधि और भाव शबलता के भी अनेक उदाहरण छायावादी काव्य में उपलब्ध होते हैं। मन भावों की एक जटिल समष्टि है, मनोविज्ञान के अनुसार मन में प्राय: एक साथ और एक दूसरे से भिन्न अनेक भाव स्थित रहते हैं। छायावादी काव्य मूलत: आत्माभिव्यंजक है, इस प्रकार के काव्य के लिए गीत और प्रगीत काव्य रूप ही सर्वोत्तम माने गए हैं, जिनकी प्रमुख विशेषता अल्पकाल में अधिक से अधिक बात कह देने की क्षमता है, जबकि रसानुभूति के लिये भाव को स्थायित्व देने की आवश्यकता होती है। इसीलिये छायावादी काव्य में इस प्रकार की अभिव्यक्तियां अधिक हुई हैं।

भावोदय -

जब एक भाव के शान्त हो जाने पर दूसरा भाव उत्पन्न होकर चमत्कार की सृष्टि करता हो, उसे "भावोदय" कहते हैं जैसे -

"यह तुम्हारा हास आया
इन फटे से बादलों में कौन सा मधुमास आया
आंख से नीरव व्यथा के दो बड़े आंसू बहे हैं
सिसकियों में वेदना के व्यूह यह कैसे रहे हैं।"
एक उज्ज्वल तीर सा रवि रश्मि का उल्लास आया ॥[१]

यहां वियोगावस्था के चित्र को "रविरश्मि" (जो उमंग और उत्साह की बोधक है) का उल्लेख चमत्कारिक ढंग से परिवर्तित कर देता है।

भाव शान्ति :

एक भाव के शान्त होने पर जब दूसरा भाव उत्पन्न होकर सौन्दर्य सृष्टि करें, जैसे -

"निज पलक, मेरी विकलता, साथ ही
अवनि से उर से मृगेक्षिणि ने उठा,
एक पल निज स्नेह श्यामल दृष्टि से
स्निग्ध कर दी दृष्टि मेरी दीप सी ॥[२]

भाव संधि :

जहां पर दो समान शक्तिवाले भाव एक साथ व्यंजित हुए हो, वहां भाव संधि होती है जैसे -

"यह रवि शशि का लोक, जहां हंसते समूह में उडुगण।
जहां चहकते विहग, बदलते क्षण क्षण विद्युत प्रभ घन ॥
यहां वनस्पति रहते, रहती खेतों की हरियाली।
यहां फूल है, यहां ओस, कोकिला आम की डाली ॥

१- रामकुमार वर्मा - चित्ररेखा, पृष्ठ ३।

२- सुमित्रानन्दन पन्त - आधुनिक कवि, पृष्ठ २२।

ये रहते हैं यहाँ और नीला नभ, बोई धरती
पूरब का चौड़ा प्रसार, ज्योत्स्ना चुपचाप विचरती ।
प्रकृति धाम यह, तृण तृण कण कण जहाँ प्रफुल्लित जीवित
यहाँ अकेला मानव ही रे चिर विषण्ण जीवन्मृत ।।[१]

भावशबलता :

जहाँ समान शक्तिवाले कई भावों का एक एक करके उदय और संयोग हो, वहाँ भाव शबलता होती है जैसे -

" अंतर्निहित थी
लालसायें, वासनायें जितनी अभाव में
जीवन की दीनता में और पराधीनता में
पलने लगी वे चेतना के अनजान में ।
धीरे धीरे आती है जैसे मादकता
आँखों के अजान में, ललाई में ही छिपती ;
चेतना थी जीवन की, फिर प्रतिशोध की ।
किन्तु किस युग से वासना के बिन्दु रहे सींचते
मेरे उपेक्षितों को ।
यामिनी के गूढ़ अंधकार में
सहसा जो जाग उठे तारा से
दुर्बलता को मानती सी अवलंब मैं
खड़ी हुई जीवन की पिच्छिल सी भूमि पर ।
बिखरे प्रलोभनों को मानती सी सत्य मैं
शासन की कामना में झूमी मतवाली हो ।[२]

छायावादी प्रबन्ध काव्यों में रस -

व्यक्तिवादी होने के कारण छायावादी कवियों की प्रवृत्ति प्रबंध रचना की ओर नहीं रही । जो प्रबंध ग्रंथ इस युग में लिखे भी गए, उनमें भी

१- सुमित्रानन्दन पन्त - ग्राम्या , पृष्ठ ६० ।
२- जयशंकर प्रसाद - लहर - प्रलय की छाया , पृष्ठ ७४ ।

रसाभिव्यक्ति की दृष्टि से शास्त्रीयता के स्थान पर स्वच्छंदता और नवीनता के ही दर्शन होते हैं। उदाहरण के लिए छायावाद युग के प्रतिनिधि महाकाव्य- कामायनी पर दृष्टिपात किया जा सकता है, जिसमें श्रृंगार और' शान्त' दो विरोधी रसों का अंगांगी रूप प्रस्तुत किया गया है।' श्रृंगार' के अन्तर्गत' उद्दीपन' अनुभावादि का नयापन उसे शास्त्रीयता से भिन्न रूप प्रदान करता है। इसी प्रकार' शान्त रस' का भी जो रूप कामायनी में उपलब्ध होता है, वह अपने स्वरूप में सर्वथा नवीन है। वह शास्त्र सम्मत न होकर प्रत्यभिज्ञा दर्शन के आनन्दवाद से प्रभावित है। शास्त्रीय दृष्टि से' शान्तरस' का स्थायी भाव है' शम' अर्थात् निरीहावस्था में आत्म विश्रान्ति जन्य आनन्द। इसका संचारी' निर्वेद' होता है जिसकी उत्पत्ति संसार की दुःखमयता और क्षण भंगुरता के ज्ञान से होती है। किन्तु इस सचराचर विश्व को चिति का विराट वपु मंगल और सत्य सतत चिर सुंदर'[१] माननेवाली कामायनी' का निर्वेद से कोई संबंध नहीं दिखाई देता।' काव्यरूप' प्रकरण के अन्तर्गत इस संदर्भ में विस्तार से विवेचन किया गया है, अतएव यहां पर विषय को अपेक्षित विस्तार न देकर इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि' कामायनी' में श्रृंगार और शान्त' प्रधान रूप में होने के साथ ही अन्य समस्त रस भी न्यूनाधिक रूप में प्राप्य हैं, किन्तु प्रकटतः परंपरागत होते हुए भी उनका स्वरूप नया है। कामायनी में सरसता पर्याप्त मात्रा में है तथापि कामायनीकार ने इसमें रस की निष्पत्ति शास्त्रीक पद्धति पर नहीं मनोवैज्ञानिक आधार पर मनोवृत्तियों के विश्लेषण चित्रात्मक शैली एवं प्रतीकों के माध्यम से कराई है। निराला रचित प्रबन्ध ग्रंथों ' तुलसीदास' और' राम की शक्ति पूजा' में भी रस निष्पत्ति मनोवैज्ञानिक पद्धति पर प्रतीकों एवं बिम्बों की योजना द्वारा हुई है। उदाहरण के लिये' राम की शक्ति पूजा' से उद्धृत यह पंक्तियां द्रष्टव्य हैं :-

' अनिमेष राम विश्वजित्- दिव्य -शर-भंग-भाव
विद्धांग-बद्ध कोदंड-मुष्टि खर रुधिर स्राव
स्कंध-धनु गुण है, कटिबंध स्रस्त तूणीर-धरण

१- जयशंकर प्रसाद - कामायनी- आनन्द सर्ग, पृष्ठ २९६।

दृढ़ जटा मुकुट हो विपर्यस्त प्रति लट से खुल
फैला पृष्ठ पर, बाहुओं पर, वक्ष पर विपुल
उतरा ज्यों दुर्गम पर्वत पर नैशान्धकार
चमकतीं दूर तारायें ज्यों हों कहीं पार ।"[1]

यहाँ राम के वीर वेश के चित्रण में उनके अनिमेष आयत लोचन एक आव और क्रोधवश मुट्ठी का बाँधना आदि से तो वीर-रस की व्यंजना होती है, किन्तु ढीला कटिबंध, बिखरे हुए बाल आदि उनके मन की उदासी, खिन्नता और संशय के व्यंजक हैं । वीररस के वर्णन में उत्साह के बदले उदासी का यह भाव भिन्न शास्त्रीय दृष्टि से भले ही अनुचित प्रतीत हो, किन्तु आधुनिक युगीन मान्यताओं के परिप्रेक्ष्य में यहाँ निराला ने मनोवैज्ञानिक धरातल पर राम की मनःस्थिति का अत्यंत सहज, जीवन्त और सशक्त बिम्ब प्रस्तुत किया है ।

निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि रसाभिव्यक्ति के क्षेत्र में छायावादी कवियों ने अपनी ओर से शास्त्रीयता के निर्वाह और परंपरा के पालन में कोई रुचि प्रदर्शित नहीं की है । यह और बात है कि छायावाद-युग में प्रसाद और निराला जैसे महान प्रतिभा संपन्न कवि हुए हैं, जिनकी रचनायें अपनी मर्मस्पर्शिता और प्रभविष्णुता के गुणों द्वारा किसी भी रस सिद्ध कवि से होड़ ले सकती हैं । इस संदर्भ में शंभूनाथ सिंह का निम्न उद्धृत कथन महत्वपूर्ण है -" कवि का लक्ष्य अपनी भावनाओं को दूसरों तक पहुँचा देना ही रहता है और यदि इसमें वह सफल हो जाता है तो किसी न किसी कोटि की रस निष्पत्ति अवश्य हो जाती है ।"[2] इस दृष्टि से यदि छायावादी काव्य की परख की जाये तो उसे रस-काव्य की कोटि में रक्खा जा सकता है क्योंकि अपनी भावनाओं का पाठक हृदय तक प्रसार करने में यह कवि अधिकांशतः सफल रहे हैं । हृदय को छूने और उसे भाव विभोर कर देने की शक्ति उनकी रचनाओं में असंदिग्ध रूप से है। छायावाद युग के पूर्वार्द्ध की अपेक्षा उत्तरार्द्ध के कवियों की रचनाओं में भाषा की प्रासादिकता के फलस्वरूप ये गुण अधिक मात्रा में है। परन्तु यह सब इन कवियों की अपनी विशिष्ट

२- शंभूनाथ सिंह - छायावाद युग, पृष्ठ २३५ ।
१- सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला - अनामिका - राम की शक्ति पूजा, पृष्ठ १४९ ।

प्रतिभा का परिणाम है । सामान्यत: छायावादी काव्य रस सिद्धान्त की कसौटी पर असफल और ध्वनि सिद्धान्त के निकट सिद्ध होता है ।

जिन स्थलों पर छायावादी कविताओं में रस निष्पत्ति हुई है वहां प्राय: मनोवैज्ञानिकता का धरातल ग्राह्य हुआ है अतएव उनमें विभाव अनुभाव और संचारियों का सुनियोजित क्रम ढूंढ पाना अत्यंत कठिन है ।

इसके अतिरिक्त छायावादी काव्य का बहुत सा अंश ऐसा भी है जो अमूर्त चित्रण, अत्यंत क्लिष्ट शब्दावली और अप्रचलित कल्पनाओं की भरमार के कारण रामचन्द्र शुक्ल के साधारणीकरण सिद्धान्त से भी मेल नहीं खाता । उपर्युक्त दोष उसे लोक काव्य की सीमा में प्रवेश की अनुमति न देकर एक विशिष्ट वर्ग तक ही सीमित रखते हैं । पंत की कविताओं से एक उदाहरण द्रष्टव्य है :-

"कल्पना के ये विह्वल बाल
आंख के अश्रु हृदय के हास
वेदना के प्रदीप की ज्वाल
प्रणय के ये मधुमास ।[१]

यहां कवि के आलम्बन का स्वरूप इतना अस्पष्ट है कि वह समस्त पाठक - समुदाय का आलंबन नहीं बन सकता । अत: इस प्रकार की रचनाओं में अधिकतर केवल रसाभास ही होता है, उच्चकोटि की रसानुभूति नहीं ।

वस्तुत: छायावादी कवियों ने बदले हुए युगादर्शों के अनुरूप ही काव्य सृष्टि की है, इसीलिये उनकी रचनाओं में रस का मौलिक स्वरूप उपलब्ध होता है । पूर्ववर्ती युगों में श्रृंगार प्रिय कवि ही नहीं, रसज्ञ पाठक भी नायिका-भेद, दूती अथवा सखी महत्त्व आदि से परिचित रहते थे अतएव बंधी हुई परिपाटी के अनुरूप काव्य वर्णन पढ़ते ही रस- निष्पत्ति सहज ही में हो जाती थी । किन्तु छायावादी कवि के लिये यह साधन महत्त्वहीन हो गए, क्योंकि परंपरा के विपरीत अपने काव्य का आश्रय वह स्वयं बन गया ।

रीतिकाल तक अथवा आधुनिक काल के प्रारंभिक चरण तक भी नख-शिख वर्णन और अंगों के कलात्मक चित्रण की परंपरा मिलती है । किंतु

१- सुमित्रानन्दन पन्त - पल्लव, पृष्ठ ३ ।

छायावादी कवियों ने स्वयं को इस प्रकार की परंपराओं से भी मुक्त रक्खा है। इधर उधर उद्दीपनों की खोज के बदले बहुधा शरीर के सुदृढ़ अंग ही इन कवियों के लिये उद्दीपन हुए हैं ; जैसे -

" छूते मसृण मुजमूलों से
वह आमंत्रण था मिलता
उन्नत वक्षों में आलिंगन
सुख लहरों सा तिरता
+ + +
वे मांसल परमाणु किरण से
विद्युत थे बिखराते ।"[१]

अथवा -

" यौवन ज्वाला से वेष्टित तन
मृदु त्वच सौन्दर्य प्ररोह अंग
न्यौछावर जिन पर निखिल प्रकृति
छाया प्रकाश के रूप-रंग
धावित कृश नील शिराओं में
मदिरा से मादक रुधिर धार,
आँखें हैं दो लावण्य-लोक
स्वर में निसर्ग संगीत सार ।
+ + + +
यौवन की मांसल स्वस्थ गंध
नव युग्मों का जीवनोत्सर्ग ।
आह्लाद अखिल सौन्दर्य अखिल
आः प्रथम प्रेम का मधुर स्वर्ग ।[२]

इस प्रकार छायावादी काव्य में रस निष्पत्ति की पद्धति ही नहीं बदली, रसावयवों का स्वरूप भी बदल गया ।

१- जयशंकर प्रसाद - कामायनी - कर्म सर्ग, पृष्ठ १३३ ।
२- सुमित्रानन्दन पन्त - आधुनिक कवि - मानव, पृष्ठ ६९ ।

छायावादी काव्य और ध्वनि सिद्धान्त -

जैसा कि उपर्युक्त विवेचन में संकेत किया गया है, शास्त्रीय दृष्टि से छायावादी काव्य रस सिद्धान्त की अपेक्षा ध्वनि सिद्धान्त के अधिक निकट प्रतीत होता है, अतएव इस आधार पर भी यहाँ छायावादी काव्य का संक्षिप्त विवेचन प्रासंगिक होगा ।

कविता पढ़ते समय दो प्रकार के अर्थों का बोध हमें होता है, एक तो उसका शाब्दिक अर्थ और दूसरा शब्दातिरिक्त अथवा प्रतीयमान अर्थ । ध्वनिवादियों ने इस द्वितीय प्रकार के अर्थ को ही विशेष महत्वपूर्ण माना है । कविता का अभिधेयार्थ और शब्द जहाँ अपने को गौण बनाकर दूसरे प्रकार के अर्थ की व्यंजना करते हैं, उस काव्य-विशेष को ही ध्वनि-काव्य की संज्ञा दी जाती है।[१] शब्द का सामान्य अर्थ अर्थात् वाच्यार्थ सभी व्यक्ति सहज ही जान लेते हैं किन्तु जब उसका शब्दातिरिक्त अर्थ प्रकट होता है तब उससे चमत्कृत होकर सहृदय का मन आनंद विभोर हो उठता है । यह चमत्कारोत्पादक एवं आनंददायक व्यंग्यार्थ ही रस की प्रतीति कराता है । अर्थात् पाठक का हृदय प्रतीयमान अर्थ की रमणीयता में डूबकर द्रवित होता है । मन की इस द्रवित अवस्था के कारण उसका चित्त कवि के भावों के अनुरूप ढलकर वर्ण्य वस्तु के साथ अपना रागात्मक संबंध स्थापित कर लेता है । चित्त की यह तल्लीनावस्था ही रस दशा है, जिसका उद्भव काव्य के व्यंग्यार्थ में निहित चमत्कार से होता है । इस प्रकार ध्वनिवादी भी काव्य के अंतर्गत रस को आनंदप्रद तत्व मानते हुए प्रकारान्तर से उसे ही काव्यात्मा मानते हैं । वाच्यार्थ और लक्ष्यार्थ की अपेक्षा व्यंग्यार्थ को अधिक महत्वपूर्ण मानने का कारण भी यही है कि वह रस की प्रतीति करानेवाला होता है ।

ध्वनिवादी आचार्य आनन्दवर्धन ने व्यंग्य तत्व के आधार पर ध्वनि के तीन भेद किये हैं - वस्तु-ध्वनि, अलंकार ध्वनि और रस ध्वनि । इनमें रस ध्वनि को ही उन्होंने मुख्य माना है । वस्तु ध्वनि और अलंकार ध्वनि की उत्पत्ति शब्द की शक्ति से होती है किन्तु रस ध्वनि शब्द अथवा अर्थ की शक्ति से वाच्य न होकर विभावादिकों से व्यक्त होती है । इस प्रकार ध्वनि सिद्धान्त के

१- आनंदवर्धन - ध्वन्यालोक १।१३ (व्याख्याकार आचार्य विश्वेश्वर)

" - यत्रार्थः शब्दो वा तमर्थमुपसर्जनीकृत स्वार्थौं ।
व्यक्तः काव्य विशेषः स ध्वनिरिति सूरिभिः कथितः ।।"

अन्तर्गत भी विभावादिकों की उपस्थिति आवश्यक मानी गई है, किन्तु उनके प्रतिपादक शब्दों को महत्व नहीं दिया गया है। विभावादिकों से पूर्णतया पुष्ट न होने वाले भाव अर्थात् भावाभास, रसाभाव के अतिरिक्त 'रस' की निम्नतर कोटि में आनेवाले भावोदय, भावशान्ति, भावसंधि, भावशबलता को भी ध्वनिवादियों ने अपने सिद्धान्त में अंतर्भुक्त कर लिया है। अर्थात् ये सभी व्यंग्य हैं।

वस्तु ध्वनि :

जहाँ किसी वस्तु का वास्तविक तथा मार्मिक चित्रण हो वहाँ वस्तु- ध्वनि होती है। वस्तु ध्वनि की उत्पत्ति अनेकार्थक शब्दों अथवा अनेक अर्थ व्यक्त करनेवाले अर्थों के कारण होती है जैसे -

" वन वन उपवन उपवन,
छाया उन्मन उन्मन गुंजन
नव वय के अलियों का गुंजन
\+ \+ \+ \+
अब फैला फूलों में विकास
मुकुलों के उर में मदिर वास
अस्थिर सौरभ से मलय श्वास
जीवन मधु संचय को उन्मन
करते प्राणों के अलि गुंजन "॥[१]

इन पंक्तियों में प्रकटत: प्रकृति चित्रण होते हुए भी अनेकार्थक अर्थ की अभिव्यक्ति हुई है। 'अलि' यहाँ पर भ्रमर भी है और संवेदनशील हृदय वाला नवयुवक कवि भी। फूलों में सुवास, मुकुलों के उर में मदिर वास आदि के द्वारा एक ओर तो वसंतागम का दृश्य चित्रित किया गया है, दूसरी ओर नव वर्ग के कवियों (छायावादी) के भावों में आती परिपक्वता और उनका भ्रमर वृत्ति अपनाकर जीवन के सार संचय के महत्वपूर्ण कार्य में प्रवृत्त होना आदि अर्थ भी ध्वनित हो रहे हैं। वस्तु ध्वनि दो प्रकार की होती है - अभिधामूलक शब्द - शक्त्युद्भव

१- सुमित्रानन्दन पन्त - गुंजन, पृष्ठ ६-१०।

ध्वनि और अभिधामूलक अर्थशक्त्युद्भव ध्वनि । उपर्युक्त उदाहरण द्वितीय प्रकार का कहा जाएगा । अभिधामूलक शब्द शक्त्युद्भव ध्वनि के उदाहरण रूप में निराला रचित निम्न पंक्तियाँ द्रष्टव्य है -

" वह मृत्यु तरणि पर तूर्ण चरण
कह " पित: , पूर्ण आलोक-वरण
करती हूँ मैं यह नहीं मरण
सरोज का ज्योति शरण- तरण ।।[१]

इन पंक्तियों के संपूर्ण चमत्कार का आधार " सरोज " शब्द है जो कवि की पुत्री का नाम है साथ ही कमल का पर्यायवाची भी । " कमल " पूर्वोदय में ही खिलता है उसी प्रकार कवि की स्वर्गवासिनी पुत्री " सरोज " भी वस्तुत: मृत्यु को नहीं प्राप्त हुई । वह पूर्ण आलोक का वरण करती हुई दूसरे लोक को चली गई है । वह " सरोज " है, अत: उसका ज्योति की शरण में जाना अनिवार्य था । यदि यहाँ " सरोज " के स्थान पर अन्य कोई नाम होता तो इन पंक्तियों में यह सौन्दर्य न उत्पन्न होता ।

अलंकार ध्वनि -

जिन स्थलों पर अलंकार शब्द या अर्थ के द्वारा वाच्य न होकर व्यंग्य हो अर्थात् वस्तु द्वारा ध्वनित हो, वहाँ अलंकार ध्वनि होती है । जैसे -

" विकसित सर सिज वन वैभव
मधु ऊषा के अंचल में ।
उपहास करावे अपना
जो हँसी देख ले पल में ।।"[२]

यहाँ शब्द या अर्थ द्वारा किसी अलंकार की योजना नहीं की गई है किन्तु प्रतीप अलंकार यहाँ व्यंग्य है, जिसके द्वारा नायिका के मधुर हास्य

१- सूर्यकान्त त्रिपाठी " निराला " - रागविराग- सरोज स्मृति,पृष्ठ ७९-८० ।
२- जयशंकर प्रसाद - आँसू, पृष्ठ २३ ।

की व्यंजना हुई है । छायावादी काव्य में अलंकार ध्वनि के उदाहरण बड़े परिमाण में प्राप्य है। पंत की ग्रन्थि की निम्न उद्धृत पंक्तियां द्रष्टव्य हैं :-

"सलिल सोमै जो पतित आहत भ्रमर
सदय हो तुमने लगाया हृदय से
एक तरल तरंग से उसको बचा
दूसरी में क्यों डुबाती हो पुन: ?[१]

इसमें भी उपमा और रूपक अलंकार वाच्य न होकर व्यंग्य है, जिनके द्वारा नायिका के प्रति उपालंभ की व्यंजना की गई है ।

ध्वनिवादी आचार्यों ने ध्वनि के मूलत: दो भेद किये हैं - (क) लक्षणामूला अथवा अविवक्षित वाच्य ध्वनि और (ख) अभिधामूला अथवा विवक्षितान्य पर वाच्य ध्वनि ।

लक्षणामूला ध्वनि के भी दो भेद बताए गए हैं - अर्थान्तर संक्रमित वाच्य ध्वनि - अर्थात् जब वाच्यार्थ दूसरे अर्थ में संक्रमित हो जाये तथा अत्यंत तिरस्कृत अविवक्षित वाच्य ध्वनि + जब वाच्यार्थ पूरी तरह से तिरस्कृत हो जाए । प्रथम प्रकार की ध्वनि के उदाहरण स्वरूप प्रसाद की "कामायनी" से उद्धृत निम्न पंक्तियां द्रष्टव्य हैं :-

"कहा हंसकर अतिथि हूं मैं,
और परिचय व्यर्थ ।
तुम कभी उद्विग्न इतने
थे न इसके अर्थ ।।"[२]

श्रद्धा का मनु के प्रति कथन है कि मैं तो "अतिथि" हूं मैरा और परिचय पूछने की आवश्यकता नहीं है । अतिथि = अ + तिथि, अर्थात् जिसका आना-जाना दोनों ही अनिश्चित हो ।" अतिथि" का वाच्यार्थ यहां दूसरे अर्थ में संक्रमित होकर नया अर्थ ध्वनित करता है - मैं तो अतिथि हूं, जिस प्रकार मैं अनायास

१- सुमित्रानन्दन पन्त - ग्रन्थि, पृष्ठ १० ।
२- जयशंकर प्रसाद - कामायनी - वासना सर्ग, पृष्ठ ६५ ।

आ गई थी उसी प्रकार मैं कभी अनायास चली भी जा सकती हूं अत: मुझसे घनिष्ठता बढ़ाने के लिये तुम्हारी यह उद्विग्नता उचित नहीं है।

द्वितीय प्रकार के अर्थात् अत्यंत तिरस्कृत अविवक्षित वाच्य-ध्वनि के उदाहरणों का छायावादी काव्य में बाहुल्य है। जैसे -

"उड़ गया अचानक लो भूधर,
फड़का अपार पारद के पर।"[१]

इन पंक्तियों का वाच्यार्थ अत्यंत तिरस्कृत है, क्योंकि पर्वत के पर नहीं होते, अत: वह उड़ नहीं सकता। ध्वनित होनेवाला प्रतीयमान अर्थ यह है कि पावस ऋतु के कारण आकाश कुहरे अथवा बादलों से इस प्रकार आच्छादित हो गया है कि उसमें बड़े-बड़े पर्वत तक अदृश्य हो गए हैं।

"हीरे सा हृदय हमारा
कुचला शिरीष कोमल ने।"[२]

अभिधेयार्थ की दृष्टि से यह पंक्तियां सर्वथा असंगत लगती हैं, क्योंकि शिरीष जैसे कोमल पुष्प से हीरे का कुचला जाना असंभव है। किन्तु यहां अभिधेयार्थ अत्यंत तिरस्कृत है "हीरे सा हृदय" का लक्ष्यार्थ है - हीरे के समान उज्ज्वल (स्वच्छ, पवित्र भावनाओं वाला) फलत: प्रतीयमान अर्थ यह हुआ कि शिरीष पुष्प जैसी सुंदर और कोमल नायिका ने कवि के स्वच्छ और पवित्र भावना-युक्त हृदय को तोड़ दिया।

महादेवी लिखती हैं :-

"तुम्हें बांध पाती सपने में।
+ + + +
रचती कितने स्वर्ग एक
लघु प्राणों के स्पंदन अपने में।।"[३]

१- सुमित्रानन्दन पन्त - आधुनिक कवि - पर्वत प्रदेश में पावस, पृष्ठ १३।

२- जयशंकर प्रसाद - आंसू, पृष्ठ ३०।

३- महादेवी वर्मा - नीरजा, पृष्ठ ६।

प्राणों के एक छोटे से स्पंदन में स्वर्ग रच सकना किसी प्रकार संभव नहीं । इस वाच्यार्थ को तिरस्कृत करके प्रतीयमान अर्थ यह प्रकट होता है कि कवियित्री को यदि प्रत्यक्ष न सही, स्वप्न में ही क्षण भर को प्रिय का साक्षात्कार हो जाए, तो वह छोटा सा क्षण भी अनेकानेक स्वर्गों की प्राप्ति के समान आह्लादकारी होगा ।

अभिधामूला ध्वनि -

इसके भी दो भेद हैं - असंलक्ष्यक्रम व्यंग्य ध्वनि और संलक्ष्यक्रम व्यंग्य ध्वनि । असंलक्ष्यक्रम व्यंग्य ध्वनि में वाच्यार्थ से व्यंग्यार्थ के बोध का क्रम लक्षित नहीं किया जा सकता । वाच्यार्थ को समझने के तुरंत बाद ही पाठक प्रतीयमान अर्थ की रमणीयता में डूब जाता है । असंलक्ष्यक्रम व्यंग्य ध्वनि के उदाहरण रस भावादिक होते हैं अर्थात् जहाँ कहीं रस भाव, रसाभास, भावाभास, भावोदय, भावशान्ति भावसंधि तथा भावशबलता होगी वहाँ- असंलक्ष्यक्रम व्यंग्य ध्वनि अनिवार्य रूप में होगी । छायावादी काव्य में रसभावादिकों का प्राचुर्य है; पिछले पृष्ठों में इनका विवेचन हो चुका है, अत: यहाँ इनकी पुनरावृत्ति अनावश्यक होगी । संलक्ष्यक्रम व्यंग्य ध्वनि में वाच्यार्थ से व्यंग्यार्थ के बोध का क्रम लक्षित किया जा सकता है । इसके तीन भेद बताए गए हैं - शब्दशक्त्युद्भव ध्वनि, अर्थ शक्त्युद्भव ध्वनि और उभय शक्त्युद्भव ध्वनि ।

शब्द शक्त्युद्भव संलक्ष्यक्रम व्यंग्य ध्वनि -

जिन स्थलों पर ऐसे शब्दों का प्रयोग हुआ हो कि उनके अतिरिक्त अन्य शब्द व्यंग्यार्थ का बोध कराने में अक्षम हों, वहाँ शब्दशक्त्युद्भव संलक्ष्यक्रम व्यंग्य ध्वनि होती है । जैसे -

" औरी मानस की गहराई
तू सुप्त शान्त कितना शीतल,
निर्वात मेघ ज्यों पूरित जल
+ + +
यह विश्व बना है पर छाई ।।"[१]

१- जयशंकर प्रसाद - लहर, पृष्ठ ४२ ।

यहाँ " मानस" शब्द से सरोवर, तदुपरान्त हृदय का व्यंग्यार्थ ध्वनित हो रहा है। " मानस " का समानार्थक अन्य कोई शब्द यदि उसके स्थान पर रख दिया जाए तो अभीष्ट व्यंग्यार्थ ध्वनित नहीं होगा। इसी प्रकार " (प्रिय) यामिनी जागी।"[1] में यदि " यामिनी " शब्द बदलकर उसके स्थान पर निशा, रजनी आदि कोई अन्य पर्यायवाची शब्द प्रयोग किया जाए तो याम-याम गिनकर प्रतीक्षारत अपलक जागरण की जो व्यंजना है, वह समाप्त हो जाएगी। छायावादी कवियों ने अधिकांशतः इसी प्रकार की सूझ बूझ के साथ अपने काव्य में ध्वनिमय शब्द मणियों की भाँति जड़े हैं। भाषा प्रकरण में इनका उल्लेख हो चुका है।

अर्थशक्त्युद्भव संलक्ष्यक्रम व्यंग्य ध्वनि -

जहाँ किसी विशिष्ट शब्द को हटाकर उसके स्थान पर अन्य कोई पर्यायवाची शब्द रख देने पर भी अर्थ के कारण व्यंग्यार्थ का बोध होता है, वहीं यह ध्वनि होती है। जैसे -

" अब धौत धरा खिल गया गगन,
उर उर की मधुर ताप प्रशमन
बहती समीर, चिर आलिंगन ज्यों उन्मन ।।
फरते हैं शशधर से क्षण क्षण
पृथ्वी के अधरों से निःस्वन
ज्योतिर्मय प्राणों के चुम्बन, संजीवन ।।[2]

इन पंक्तियों में मुगल शासित भारत की संस्कृति के सूर्यास्त और मुस्लिम सभ्यता के चंद्रोदय के पश्चात भारतीयों का विलासिता में डूब जाने का अर्थ ध्वनित हो रहा है। यहाँ शब्दों का क्रम परिवर्तित कर देने पर भी अर्थ के कारण इसी व्यंग्यार्थ का बोध होता रहेगा। अर्थशक्त्युद्भव ध्वनि के तीन उपभेद किये गए हैं - (अ) स्वतः संभवी (ब) कवि प्रौढोक्ति मात्र सिद्ध और (स) कवि निबद्ध पात्र प्रौढोक्ति मात्र सिद्ध। स्वतः संभवी से तात्पर्य है जो संसार में साधारणतया

१- सूर्यकान्त त्रिपाठी " निराला " - गीतिका, पृष्ठ ४।
२- सूर्यकान्त त्रिपाठी " निराला "- तुलसीदास, पृष्ठ १५।

दिखाई पड़े । उपर्युक्त उदाहरण इसके अन्तर्गत रक्खा जा सकता है । कवि प्रौढ़ोक्ति-मात्र सिद्धि ध्वनि वहाँ होती है जहाँ कवि विशेष द्वारा कही गई बात का संबंध कवि परंपरा से हो अर्थात् जो कवि कल्पना द्वारा ही सिद्ध हो सके, जिसका संसार में वास्तविक अस्तित्व न हो । कवि निबद्ध पात्र प्रौढ़ोक्ति मात्र सिद्धि ध्वनि वहाँ होती है जहाँ किसी कवि परंपरा से सिद्ध बात को कवि कल्पित पात्र कहे । छायावादी काव्य में इन सभी के अनेक उदाहरण सुलभ है । जैसे -

" धूम धुंआरे काजर कारे,
हम ही बिकरारे बादर ।
मदन राज के बीर बहादुर,
पावस के उड़ते फणिधर ।।"[१]

इन पंक्तियों में कवि द्वारा निबद्ध पात्र-बादल स्वयं अपना परिचय दे रहे हैं - बादलों के द्वारा स्वयं को " कामदेव के सैनिक " और पावस के उड़ते सर्प कहा गया है । इस प्रकार के कथन सत्य न होकर कल्पनाश्रित ही है किन्तु वाच्यार्थ से बादलों का काम भावना को उद्दीप्त करने और प्रिय वियोगवश वर्षा ऋतु में मन को संताप देने का अर्थ ध्वनित होता है । अतएव इन पंक्तियों में वाक्यगत कविनिबद्ध पात्र प्रौढ़ोक्ति मात्र सिद्धि- अर्थशक्त्युद्भव संलक्ष्यक्रम व्यंग्य ध्वनि है ।

उभय शक्त्युद्भव संलक्ष्यक्रम व्यंग्य ध्वनि -

जहाँ शब्द और अर्थ दोनों ही व्यंग्यार्थ का बोध करानेवाले हों, अर्थात् कुछ शब्दों को बदलकर उनके पर्यायवाची शब्द रख देने पर भी उसी अर्थ का बोध हो तथा कुछ शब्द बदल जाने पर उसी अर्थ को व्यक्त करने में असमर्थ हो, वहाँ उभयशक्त्युद्भव संलक्ष्यक्रम व्यंग्य ध्वनि होती है । जैसे-

" मूंद नयनों में अचंचल
नयन का जादू भरा तिल
दे रही हूं अलख अविकल
को सजीला रूप तिल-तिल ।"[२]

१- सुमित्रानन्दन पन्त - आधुनिक कवि - पृष्ठ २८ ।
२- महादेवी वर्मा - सांध्यगीत, पृष्ठ ४२ ।

यहाँ नयन का जादू भरा तिल , अलख , अविकल , सजीला आदि शब्द महत्त्वपूर्ण और अनेकार्थक है जिनसे एक साथ कई अर्थ ध्वनित हो रहे हैं ;- (क) मैं अपने अचंचल (ध्यानस्थ) नेत्रों की पुतली को मूंदकर (जिसमें किसी का जादू भरा रूप बस गया है) उस अलख (पुतली स्वयं को दिखाई नहीं देती) अविकल (निराशा के आधिक्यवश जो दर्शनार्थ विकल नहीं है) - को तिल तिल कर अपना रूप दे रही हूं (रात दिन आंखें बंद करके रोती हूं और रो रोकर अपना रूप सौन्दर्य नष्ट कर रही हूं।) (ख) - नयन का जादू भरा तिल - परमाकर्षक मेरा प्रियतम । मैं अपने प्रिय की स्थिर छवि को अपने नेत्रों में बंदकर उसे तिल तिल (धीरे-धीरे) सजीला रूप देने का प्रयास कर रही हूं । अर्थात् उसके रूप को साकार करने हेतु प्रयत्नशील हूं तथा (ग) - अचंचल (ध्यानस्थ) नेत्रों में जादूभरी पुतली (प्रियतम छवि सिक्त) को बंद करके मैं उस अलख, अविकल (निष्ठुर, अपरिवर्तनशील) को धीरे-धीरे अपना सजीला रूप दे रही हूं, अर्थात् रो रोकर क्षीण हो रही हूं । अपना रूप से तात्पर्य अहं के परित्याग से भी हो सकता है और आत्मा से भी । आत्मा के अर्थ में लेने पर व्यंग्यार्थ होगा कि उस अलक्ष्य स्थिर प्रियतम (परमब्रह्म) में मैं अपने को लय करती जा रही हूं ।

यहां जादू भरा तिल के बदले पुतली कहने पर भी व्यंग्यार्थ बाधित नहीं होगा, अलख के स्थान पर उसका पर्यायवाची अदृश्य भी रक्खा जा सकता है, किन्तु सजीला का स्थान सुसज्जित नहीं ले सकता क्योंकि सजीला में आर्द्रता और करुणा का भाव है । इसी भांति अविकल के स्थान पर अन्य कोई पर्यायवाची रख देने पर व्यंग्यार्थ वही रहेगा, किन्तु अविकल में प्रिय की निष्ठुरता की जो सूक्ष्म व्यंजना है, वह समाप्त हो जाएगी । इस प्रकार उपर्युक्त उदाहरण में शब्द और अर्थ की सम्मिलित शक्ति व्यंग्यार्थ को व्यक्त कर रही है अतएव यहां उभय शक्त्युद्भव अभिधामूला संलक्ष्य क्रम व्यंग्य ध्वनि है।छायावाद में इस प्रकार के उदाहरणों का भी बाहुल्य है क्योंकि व्यंजना शब्द शक्ति छायावादी कवियों को अत्यंत प्रिय रही है, तथा सस्वर शब्दों का प्रयोग उनकी शिल्पगत मौलिक विशेषता है । तथापि छायावादी - काव्य की एकाधिक अर्थ ध्वनित करनेवाली रचनायें भी उतनी दुरुह नहीं है कि उन्हें समझने के लिये पूर्वयुगीन

व्यंजनाश्रित काव्य (रीतिकालीन काव्य परंपरा, बिहारी आदि के दोहे) की भाँति शास्त्रीय ज्ञान अनिवार्य हो । छायावादी काव्य की ध्वनि न तो बिलकुल सहज सरल कही जा सकती है, और न अतिशय बौद्धिक । उसे हृदयंगम करने के लिये कामशास्त्र, नायिका भेद आदि के सैद्धान्तिक ज्ञान की आवश्यकता नहीं है तथापि एक विशेष मानसिक स्तर अवश्य अपेक्षित है ।

निष्कर्षत: छायावादी काव्य रसमय अवश्य है, किन्तु उसमें रस का परंपरित निर्वाह नहीं है, क्योंकि अधिकांशत:उसका स्वरूप प्रगीतात्मक और उसकी प्रकृति नवीनतानुगामी है । उसमें प्राचीन रस-सिद्धान्त का युगानरूप विकसित नवीन रूप प्राप्य है । उसमें रस की निष्पत्ति विभावादिकों की स्पष्ट योजना द्वारा न होकर मनोवैज्ञानिक धरातल पर मनोवृत्तियों के सूक्ष्म विश्लेषण द्वारा हुई है । इसमें बिम्बात्मक एवं प्रतीकात्मक शैली से पर्याप्त सहायता ली गई है ।

छायावादी काव्य में लक्षणा-व्यंजना का व्यापार अधिक है, इसीलिये उसमें रसवत्ता की अपेक्षा रमणीयता अधिक है । लक्षणा-व्यंजना के प्रति झुकाव के मूल में छायावाद का स्थूल के प्रति विद्रोह और सूक्ष्म-चित्रण की प्रवृत्ति सन्निहित है । अपनी इसी प्रवृत्ति के कारण छायावादी काव्य रसवादी-काव्य-परंपरा की अपेक्षा ध्वनि-सिद्धान्त के अधिक निकट है । वह ध्वनि-सिद्धान्त की दृष्टि से अत्यंत सफल और उच्चकोटि का काव्य है । अस्तु' शास्त्रीयता के निकष पर छायावादी कवियों को' रस-सिद्धान्त' नवीनतावादी अथवा' प्रयोगवादी' और' ध्वनि - सिद्धान्त' परंपरावादी के रूप में सिद्ध करता है ।

अध्याय - ४

छायावादी काव्य में काव्य रूप

काव्य रूप और प्रभेद -

"काव्य-रूप" अंग्रेजी शब्द फ़ार्म (Form) का समानार्थक है और कविता के बाह्य आकार के लिए प्रयुक्त होता है। प्रत्येक कवि अपने विचारों और अनुभूतियों को मूर्त रूप देने हेतु अभिव्यंजना शिल्प के विभिन्न तत्वों से समन्वित एक विशिष्ट प्रणाली का अनुसरण करता है, इस प्रक्रिया में उसकी रचना जो निश्चित आकार ग्रहण करती है, वही उसका काव्य रूप होता है। इस प्रकार काव्य रूप अभिव्यंजना शिल्प का ही अंग है, किन्तु अपेक्षाकृत अधिक व्यापक और महत्वपूर्ण है, क्योंकि इसमें शिल्प संबंधी अन्य तत्व-भाषा, छंद,अप्रस्तुत आदि भी समाविष्ट रहते हैं। काव्य रूप का काव्य के विषय पक्ष से भी गहरा संबंध रहता है। काव्य का विषय जैसा होता है उसी के अनुरूप कृति भी अपनी रूपरेखा निर्धारित कर लेती है। महाकाव्य में विषय की व्यापकता और औदात्य उसके बाह्य रूप में व्यापकता और विराटत्व उत्पन्न कर देता है, इसके विपरीत विषय-संकोच वैयक्तिकता और स्वच्छंदता के फलस्वरूप गीत और प्रगीत का बाह्याकार महाकाव्य जैसा विशाल और विराट न होकर सरल और लघु होता है।

काव्य रूप' के संदर्भ में एक महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि कवि के निजी व्यक्तित्व और उसके युगीन परिवेश के अनुरूप ही इनका रूप बनता-ढलता है। महाकाव्य के रचयिता का व्यक्तित्व किसी गीतकार की तुलना में निश्चय ही महान होगा। उसके विचार, आदर्श और स्वप्न एक साधारण कवि की अपेक्षा कहीं अधिक श्रेष्ठ उदात्त और विराट होंगे। इसके अतिरिक्त यह सर्व स्वीकृत सत्य है कि युग जीवन प्रत्येक साहित्यिक कृति में किसी न किसी रूप में अवश्य प्रतिबिम्बित होता है। प्रायः यह देखा जाता है कि युग-जीवन में जब शान्ति, स्थिरता और व्यवस्था रहती है तब तद्युगीन साहित्य के काव्य रूपों में भी स्थिरता और परंपरा

की प्रवृत्ति प्रधान रहती है । उसके विपरीत युग-जीवन की अशान्ति संघर्ष और विश्रृंखलतामयी स्थितियां काव्य रूपों में भी वैविध्य अस्थिरता और विश्रृंखलता के रूप में प्रतिभासित होती है । इस प्रकार किसी कृति के एक निश्चित रूपाकार में ढलने की प्रक्रिया में रचनाकार के व्यक्तित्व तथा युग परिवेश का महत्वपूर्ण योग रहता है । इसी के फलस्वरूप दो भिन्न व्यक्तियों द्वारा दो भिन्न युगों में लिखी गई एक ही काव्य विधा के अन्तर्गत आनेवाली कृतियों में भी पर्याप्त अंतर लक्षित होता है । तात्पर्य यह कि समान काव्य रूप के अन्तर्गत आनेवाली कृतियों का रूपाकार भी वस्तुत: समरूप नहीं होता ; फिर भी " प्रत्येक काव्य का एक विशिष्ट रूपाकार होना निश्चित है - चाहे वह किसी परंपरागत काव्य रूप में शास्त्रीय मान्यताओं एवं परिसीमाओं में आबद्ध हो अथवा कवि के अंढ़ विद्रोह व्यक्ति एवं प्रखर प्रतिभा के उन्मेष से सर्वथा नवीन अभूतपूर्व रूपाकार ग्रहण कर ले, चाहे वह कवि की विराट कल्पना को साकार करनेवाला वृहदाकार महाकाव्य हो, अथवा उसकी क्षणिक मन:स्थिति का गीतिमय सहज उच्छलन - क्योंकि काव्य रूप कवि के काव्य शिल्प का वह व्यापक तत्व है, जो उसकी प्रतिभा द्वारा संयोजित विभिन्न कलात्मक उपकरणों को परस्पर समन्वित कर एक निश्चित रूप रेखा में आबद्ध करता है और कवि की प्रतिभा के उद्दाम एवं असंयत ज्वार को संयत करता है[1]।

भारतीय काव्यशास्त्र में पद्य काव्य के मुख्य दो रूपों का उल्लेख मिलता है -" निबद्ध" और" अनिबद्ध" । इन्हें ही प्रबंध और मुक्तक की संज्ञा दी जाती है ।" अनिबद्धं मुक्तकं निबद्धं " प्रबंध रूपमिति प्रसिद्ध:"[2] जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है प्रबन्ध काव्यों में पूर्वापर संबंध की अनिवार्यता रहती है अर्थात् एक छंद दूसरे छंद से कथा सूत्र अथवा विचारों के आधार पर जुड़ा रहता है । इसके विपरीत मुक्तक काव्यों में प्रत्येक छंद अपने आप में पूर्ण और कथानक श्रृंखला से मुक्त रहता है ।

प्रबन्ध काव्य के अन्तर्गत" महाकाव्य" और" खण्ड काव्य " दोनों आ जाते हैं । महाकाव्य" जीवन का पूर्ण चित्र प्रस्तुत करता है और खण्ड काव्य जीवन का खण्ड चित्र अर्थात् महाकाव्य का" विषय" संपूर्ण जीवन होता है और

१- प्रतिभा कृष्णबल - छायावाद का काव्य शिल्प,पृष्ठ १८-१६ ।
२- वामन - काव्यालंकार सूत्रवृत्ति - १ अधिकरण,व्याख्या,गोपेन्द्रत्रिपुरहर भूपाल ।

खण्ड काव्य का " विषय " जीवन की कोई महत्वपूर्ण घटना अथवा परिस्थिति विशेष होती है ।

साहित्यशास्त्रियों द्वारा काव्य की केवल दो ही कोटियों का निरूपण हुआ है, अतएव मुक्तक काव्य में ही आज के बहुप्रचलित काव्य रूपों " गीत " और " प्रगीत " को भी अंतर्निहित समझ लिया जाता है किन्तु इनकी प्रकृति मुक्तक काव्य से उतनी ही भिन्न है जितनी प्रबन्धकाव्य से ।

प्रबन्ध काव्य में कवि का पूरा ध्यान कथा के वस्तु व्यापार और पात्रों के चरित्र चित्रण की दिशा में केन्द्रित रहता है ,अतएव उसमें वैयक्तिक अनुभूतियों के चित्रण के लिए कवि को अवसर नहीं मिलता, अथवा कम मिलता है । इसी प्रकार मुक्तक काव्य में भी कवि वस्तुगत चित्रण की ओर ही उन्मुख रहता है । उसे किसी तथ्य के उद्घाटन की चिन्ता इतना अवकाश ही नहीं देती कि वह अपने " स्व " को महत्व देकर स्वतंत्र रूप से अपनी बात " कह सके । इसके विपरीत गीत और प्रगीत स्वानुभूति पर आधारित शुद्ध वैयक्तिक काव्य रूप हैं । अर्थात् मुक्तककार का दृष्टिकोण जहां विषय गत एवं वस्तुपरक होता है, वहां गीतकार अथवा प्रगीतकार का दृष्टिकोण भावपरक होता है । दृष्टिकोण के इस सूक्ष्म किन्तु महत्वपूर्ण अन्तर को लक्ष्य करके बाबू गुलाबराय ने मुक्तक काव्य के भी " पाठ्य मुक्तक " और " गेय मुक्तक " दो भेद करते हुए प्रगीत को गेय मुक्तक " के अन्तर्गत रक्खा है ।[१] पाठ्य मुक्तक में चित्रण की प्रधानता रहती है और गेय मुक्तक में आत्मद्रव की । पाठ्य मुक्तक के अन्तर्गत वे रचनायें रक्खी जा सकती हैं जो यत्न साध्य है और जिनमें बुद्धि व्यापार , वाग्वैदग्ध्य, उक्ति चमत्कार आदि का प्राधान्य हो । गेय मुक्तक की कला अपेक्षाकृत सहज और अंत:स्फूर्त होती है ; आत्मपरक चित्रण की प्रधानतावश उसमें भावनाओं का तारल्य और एक सहज प्रवाह रहता है जो उसमें संगीत की सृष्टि करता है । गाये जा सकने की योग्यता रखने के कारण " प्रगीत " को गेय मुक्तक की संज्ञा देना युक्ति युक्त है । गेय मुक्तक का ही एक अन्य नाम गीति काव्य है, जो आजकल बहु प्रचलित है । गीतिकाव्य के अन्तर्गत गीत और " प्रगीत " दोनों आ जाते हैं ।

गीत शैली हमारी चिर परिचित काव्य शैली है । विद्यापति ,

१- गुलाब राय - काव्य के रूप, पृष्ठ ७ ।

कबीर, मीरा, सूर आदि के साहित्यिक गीतों की लम्बी परंपरा के अतिरिक्त सुख दुख की भावमयी स्थितियों में गाये जानेवाले सामाजिक संस्कारों और रीति-रिवाजों से संबंधित असंख्य लोकगीत भी हमारी सामाजिक संपदा रूप में उपलब्ध है, जिन्होंने बहुधा साहित्यिक गीतों को भी अपनी भावमयता और लय द्वारा परास्त किया है। वरन् यह भी कहा जा सकता है कि साहित्यिक गीतों के जन्म-दाता भी लोकगीत हैं। लोकगीतों के नाद सौन्दर्य युक्त अनगढ़ रूप में जैसे जैसे अर्थ योजना के साथ विभिन्न काव्यात्मक गुणों का समावेश होता गया, वैसे वैसे गीतों की नई शैलियां भी विकसित होती गई। "प्रगीत" गीत का ही एक प्रभेद अथवा उसका आधुनिकतम रूप है। इसका विकास पाश्चात्य पद्धति के प्रभाववश हुआ है।

पाश्चात्य विचारकों ने काव्य की दो कोटियां निर्धारित की है - (क) सबजैक्टिव पोएट्री (Subjective Poetry) और (ख) आबजैक्टिव या नैरैटिव पोएट्री (Objective or Narrative Poetry) जिन्हें विषय प्रधान और व्यक्ति प्रधान काव्य कह सकते हैं। यह विभाजन वहां पर काव्य के मूल में स्थित ~~व~~ दो प्रमुख प्रेरणाओं के आधार पर हुआ है। कवि या तो आत्माभि-व्यंजन की अदम्य प्रेरणा से काव्य रचना में प्रवृत्त होता है, उस स्थिति में दृश्य जगत की घटनाओं, व्यक्तियों आदि द्वारा उसके मन पर जो स्थायी अस्थायी प्रभाव पड़ते हैं उन्हीं की अभिव्यक्ति वह काव्य के अन्तर्गत करता है, आत्मनिरूपण के अतिरिक्त अन्य कोई उदात्त सामाजिक लक्ष्य उसके सामने नहीं रहता। दूसरी स्थिति वह है, जिसमें कवि केवल आत्माभिव्यंजन से संतुष्ट नहीं हो पाता। उसकी महत् प्रतिभा एक व्यापक और विशाल फलकाधार की अपेक्षा करती है, जिसके माध्यम से वह अपने उदात्त विचारों और उच्चादर्शों को समाज के सामने प्रस्तुत कर सके। ऐसी दशा में वह अपने व्यक्तित्व की परिधि से बाहर के विराट दृश्य जगत का अवलंब लेकर काव्य-रचना करता है। प्रथम स्थिति में रचा गया काव्य सब्जेक्टिव और द्वितीय प्रकार का काव्य आबजैक्टिव पोएट्री के अन्तर्गत आता है।

"आबजैक्टिव पोएट्री" और अपने यहां के प्रबंध काव्य में

कोई मौलिक अन्तर नहीं है । सबजैक्टिव पोएट्री की प्रमुखधारा लिरिक है, जिसका प्रगीत नाम से आधुनिक हिन्दी काव्य में अत्यधिक प्रचलन हुआ ।

पाश्चात्य काव्य शास्त्र में "लिरिक" नामक काव्यरूप का उल्लेख बहुत पहले से मिलता है । प्राचीन यूनानी साहित्य में "महाकाव्य", "प्रगीत" तथा नाटक काव्य के यह तीन रूप उपलब्ध थे ।[१]

अंग्रेजी के लिरिक (Lyric) शब्द की व्युत्पत्ति यूनानी भाषा के "लायर" (Lyre) से हुई है । "लायर" वहां का एक तंत्री वाद्य था, जिस पर गाए जा सकने योग्य गीत को लिरिक की संज्ञा दी गई । अर्थात् प्रारंभ में "लिरिक" का मुख्य गुण गेयता था । किन्तु धीरे धीरे यह प्रतिबंध दूर होता गया और आत्म प्रेरणा से युक्त प्रबल भावावेग की दशा में लिखी गई कवितायें लिरिक कहलाने लगी ।[२]

हिन्दी का "प्रगीत" शब्द सर्वथा आधुनिक है । अंग्रेजी के रोमांटिक काव्य से परिचित होने के बाद हिन्दी के कवियों ने भी "लिरिक" की पद्धति पर गीत रचना आरंभ की और प्रचलित गीत शैली से कुछ भिन्नता रखने के कारण इन्हें प्रगीत कहा ।

"गीत" और "प्रगीत" दोनों में स्वानुभूतियों की संगीतमयी अभिव्यक्ति तथा भावगत ऐक्य के दर्शन होते हैं ; अन्तर केवल इतना है कि गीतों में संगीत के स्वरों का प्राधान्य रहता है, वे संगीत के आरोह अवरोह एवं स्वर-ताल के बंधनों में निबद्ध रहते हैं, इसके विपरीत प्रगीतों में कवि संगीत शास्त्र के जटिल बंधनों और स्वरों के आरोह अवरोह की अवहेलना करके केवल "लय" का अनुशासन स्वीकार करता है । यद्यपि सस्वर पाठ-प्रगीतों का भी किया जा सकता है, किन्तु

1. Oxford Junior Encyclopedia , Vol.XII (The Arts) p.247 -
" T here were three kinds of poetry in Greece - Epic, Lyric and Dramatic ."

2. Worsfold- Judgement in Literature, p. 83.
" Lyric Poetry as the name implies, is poetry indeed to be accompained by the lyre or by some other instrument of music. The term has come to signify any outburst in song which is composed under a strong impulse of emotion or inspiration."

उसमें संगीत के तत्वों की अनिवार्यता नहीं रहती और न उनकी पंक्ति योजना गीतों की भाँति संगीत तत्वों पर आधारित होती है । प्रगीतों की गेयता इतने तक ही सीमित है कि जहाँ लय होगी किसी न किसी प्रकार का छंद होगा,वहाँ गेयता अपने आप आ जाएगी ।

गीतों में प्रथम पंक्ति संगीत में टेक की भाँति रहती है और बाद के पदों में कुछ पंक्तियों का " अंतरा " की भाँति प्रयोग होता है, तत्पश्चात एक ऐसी पंक्ति रखी जाती है जिसका टेक की पंक्ति से स्वर साम्य हो । मध्य-युगीन काव्य में गीत की प्रथम पंक्ति अर्थात्" टेक" को दोहराने की पद्धति प्रचलित थी और प्रत्येक पंक्ति का पहली पंक्ति के साथ अंत्यानुप्रास का क्रम रखा जाता था प्रगीतों में इस प्रकार की क्रमबद्धता नहीं रहती । इस बाह्य भिन्नता के अतिरिक्त वस्तुत: गीत और प्रगीत में कोई अन्तर नहीं है । दोनों का भाव पक्ष समान होता है, दोनों में ही आत्म तत्व की प्रधानता, संगीतात्मकता, भाव प्रवणता और भावगत एकता एवं संक्षिप्तता आदि गुण समान रूप से लक्षित होते हैं ।

छायावादी काव्य रूप -

युग परिवेश के अनुरूप काव्य रूपों का प्रचलन , निर्माण तथा स्वरूप परिवर्तन होता है । छायावाद युग वैयक्तिक, सामाजिक तथा राजनैतिक सभी स्तरों पर अशान्ति अस्थिरता एवं विद्रोह का युग था । अतएव इस युग के काव्य रूपों में भी वैविध्य और नए प्रयोगों के दर्शन होते हैं ।

छायावादी कवियों की युगानुरूप विकसित नव्य चेतना काव्य रूपों के संदर्भ में दो स्तरों पर दिखाई पड़ती है । एक तो छायावादी कवियों ने पारंपरिक शास्त्र निबद्ध काव्य रूपों को गतानुगतिक की भाँति यथारूप स्वीकार न करके उनका नव संस्करण किया, दूसरे पाश्चात्य साहित्य और साहित्यकारों की विचारधाराओं से प्रेरणा ग्रहण करके हिन्दी कविता के क्षेत्र में नवीन काव्य विधाओं की सृष्टि की । किन्तु छायावाद स्वच्छंदतावादी पद्धति पर मुख्यत: आत्मानुभूतियों के चित्रण का लक्ष्य लेकर चला था अतएव इस युग में गीतिकाव्य का ही अधिक विकास हुआ । जीवन में व्याप्त निराशा ,क्षोभ, वैषम्य और

अशान्ति के फलस्वरूप उस युग का वातावरण प्रबंध रचना [illegible] याँ न था । इसके अतिरिक्त पूर्ववर्ती युगों के कवि अपने वैयक्ति[illegible] र मौन रहकर सर्वदा आदर्शवादी पद्धति पर संसार भर का इतिहास ह[illegible] छायावादी कवियों ने इस प्रवृत्ति के प्रति विद्रोह व्यक्त किया और अपनी भाव[illegible] अपने स्वप्नों तथा अपने निजी जीवन से संबद्ध घटनाओं को वाणी देना चाहा । महादेवी वर्मा के शब्दों में -

" हिन्दी काव्य का वर्तमान नवीन युग गीत प्रधान ही कहा जाएगा । हमारा व्यस्त और व्यक्तिगत जीवन हमें काव्य के किसी और अंग की ओर दृष्टिपात करने का अवकाश ही नहीं देना चाहता । आज हमारा हृदय ही हमारे लिये संसार है । हम अपनी प्रत्येक सांस का इतिहास लिख रखना चाहते हैं, अपनी प्रत्येक कंपन को अंकित कर लेने के लिये उत्सुक हैं और प्रत्येक स्वप्न का मूल्य पा लेने के लिए विकल हैं ।"[१]

सुख-दुख , हर्ष-विषाद, आशा-निराशा, पराजय-उत्साह आदि मन के विविध आवेगों को व्यक्त करने के लिए छायावाद युग में " गीत " और " प्रगीत " ही श्रेष्ठ माध्यम सिद्ध हुए । अतएव छायावादी काव्य का अधिकांश गीतों और प्रगीतों के द्वारा ही रचा गया । प्रबन्ध-रचना इस युग में गौण रूप में हुई । केवल प्रसाद और निराला ही इस ओर प्रवृत्त हुए, शेष कवियों की रुचि प्राय: गीतात्मक ही रही है । निराला ने " तुलसीदास " और प्रसाद ने " प्रेम पथिक " , " आँसू " और " कामायनी " के रूप में अपनी प्रबंध क्षमता का परिचय दिया है, किन्तु महाकाव्यकार की प्रतिभा इस वर्ग के कवियों में केवल प्रसाद में ही दिखाई देती है । प्रसाद द्वारा रचित " कामायनी " छायावाद युग का प्रतिनिधि महाकाव्य है । विषमताओं और विशृंखलताओं से युक्त जीवन में बिखरे हुए शाश्वत जीवन मूल्यों को एक सूत्र में पिरोकर उनके सुसंगठित प्रस्तुतीकरण द्वारा समाज को दिशा निर्देश करना तत्कालीन युग की मांग थी जो कामायनी " द्वारा पूर्ण हुई । किन्तु महाकाव्य के अन्तर्गत भी प्रसाद गीत रचना का मोह छोड़ नहीं पाए हैं ।

१- महादेवी वर्मा - यामा (भूमिका) पृष्ठ ५ ।

अंग्रेज़ी के आपेरा (Opera) की पद्धति पर गीति नाट्यों के रूप में कुछ प्रयोगात्मक रचनायें भी इस काल में हुई जिनके उदाहरण प्रसाद का "करुणालय" और निराला का "पंचवटी प्रसंग" कृतियां हैं । कुछ इस प्रकार की लम्बी कवितायें लिखी गई जिनका बाह्य रूप प्रगीतात्मक है, किन्तु कथात्मक आधार लेकर चलने के कारण वे साधारण प्रगीतों से अपना पृथक अस्तित्व रखती हैं । इनमें प्रबंधत्व के साथ संगीतात्मकता और कवि की वैयक्तिकता का भी योग रहता है । इन्हें हम आख्यानक काव्य की संज्ञा दे सकते हैं । इनके अंतर्गत निराला की "राम की शक्ति पूजा", पंत की "ग्रन्थि" और प्रसाद की "अशोक की चिन्ता" "पेशोला की प्रतिध्वनि", "शेरसिंह का शस्त्र समर्पण" तथा "प्रलय की छाया" आदि रचनायें आती हैं ।

प्रसाद का "आंसू" एक ऐसी काव्य कृति है जिसका रूपाकार किसी प्रचलित काव्य रूप से साम्य न रखकर विशिष्ट है और स्वतंत्र विवेचन के योग्य है ।

प्रसाद ने अपने कविता काल के प्रारंभ में मुक्तक शैली में भी कुछ रचनायें की था जो उनके "चित्राधार और कानन कुसुम" में संग्रहीत हैं । किन्तु ये रचनायें काल और शैली दोनों की दृष्टियों से द्विवेदीयुगीन हैं, अतएव उनका उल्लेख यहां पर अनावश्यक है । इनमें छायावादी समृद्ध कल्पना, नवीन सौन्दर्य बोध, नवीन रोमानी विस्मय आदि की यत्र-तत्र झलक अवश्य मिलती है, जिनके आधार पर आगे का छायावादी काव्य विकसित हुआ ।

गीति परंपरा और छायावादी गीति काव्य -

काव्य रूपों की उपर्युक्त विविध उपलब्धियों के होते हुए भी छायावाद युग मुख्यतः गीतों और प्रगीतों का युग कहा जायगा । इस क्षेत्र में छायावादी कवियों ने अपनी उच्चकोटि की प्रतिभा का परिचय दिया है । जैसे प्राचीन हिन्दी कविता में "भक्तिकाल" को उसकी काव्यगत विशेषताओं के लिए हिन्दी काव्य का "स्वर्णयुग" कहा गया, उसी प्रकार आधुनिक हिन्दी कविता के क्षेत्र में और वह भी गीतिकाव्य के लिये छायावाद को स्वर्णयुग मानने में

दो मत नहीं हो सकते ।"[१]

गीतिकाव्य की परंपरा का उद्भव संस्कृत कवि जयदेव से माना जाता है । जयदेव की देववाणी से प्रेरणा ग्रहणकर मैथिल कवि विद्यापति ने अपनी पदावली की रचना की । तत्पश्चात् सूरदास, मीरा, कबीर आदि भक्त कवियों ने उस परंपरा के विकास में योग देते हुए संगीत की उस सरसधारा में अपना सुमधुर स्वर मिलाया । " रामचरितमानस " जैसा अमर महाकाव्य रचनेवाले तुलसीदास भी इस गीतिधारा के प्रवाह से अपने आपको मुक्त न रख सके, फलतः " विनय पत्रिका " के रूप में गीतिकाव्य श्रृंखला में एक और महत्त्वपूर्ण कड़ी जुड़ गई । उत्तर मध्ययुग अथवा रीतिकाल में अनुकूल वातावरण के अभाव में गीति रचना का यह क्रम प्रायः समाप्त हो गया । आश्रयदाताओं की चाटुकारिता के उस युग में बौद्धिक व्यायाम से युक्त उक्ति चमत्कार का विशेष मान था, अतएव कवित्त, सवैया ,छंद ही अधिक रचे गए । आधुनिक युग के प्रारंभ काल में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने भक्ति भावना पर आधारित सरस गीतों की रचना करके गीत परंपरा के टूटे हुए सूत्र को जोड़ने का प्रयास किया परंतु द्विवेदीयुग के आविर्भाव के साथ उसके विकास का मार्ग पुनः अवरुद्ध हो गया । द्विवेदीयुग के कवि आदर्शवादी और परंपरा प्रेमी थे तथा उनकी दृष्टि वस्तुपरक थी अतएव उस युग में प्रबंध काव्यों की रचना अधिक हुई । किन्तु कालान्तर में वस्तुनिष्ठा की पराकाष्ठा ही आत्मनिष्ठा की प्रेरक बनी और उसके फलस्वरूप गीतों का सरस प्रवाह उमड़ पड़ा । द्विवेदी युग के कुछ मूर्धन्य कवि भी स्वानुभूतिमय गीतों की रचना में प्रवृत्त हुए, जिनमें मुकुटधर पाण्डेय और मैथिलीशरण गुप्त के नाम विशेष उल्लेखनीय है । मुकुटधर की " कुररी क्रन्दन " रचना के आधार पर अनेक विद्वानों ने उन्हें ही छायावाद का जनक मान लिया । गुप्त जी के " साकेत " महाकाव्य का नवम सर्ग पूरा का पूरा गीतों के रूप में ही लिखा गया है ।

छायावाद युग में पहुंचकर गीतों ने भाव और कला दोनों ही दृष्टियों से अपने चरम उत्कर्ष बिन्दु को छूने का सफल प्रयास किया है । विस्तार की दृष्टि से महाकाव्य का क्षेत्र " संपूर्ण जीवन " खण्ड काव्य का क्षेत्र जीवन का " काल विशेष " तथा गीत का क्षेत्र जीवन का " क्षण-विशेष " है । छायावादी कवियों

१- आशा किशोर - आधुनिक हिंदी गीतिकाव्य का स्वरूप विकास, पृष्ठ २४३ ।

ने जीवन के बहुरंगे, अल्प स्थायी , लघु क्षणों को अपने हृदय-रस से सिंचित करके उन्हें चिर स्थायी, अजर अमर और महिमामय बना दिया ।

सौन्दर्याकर्षण ,प्रणय निवेदन, मिलनाकांक्षा, अतृप्ति, वेदनानुभूति, निराशा आदि की अत्यंत मार्मिक व्यंजना छायावादी गीतों में मिलती है । इसके अतिरिक्त जातीयता, संस्कृति, स्वदेश प्रेम और विश्वप्रेम संबंधी भावनाओं की अभिव्यक्ति भी गीतों के माध्यम से हुई । इस युग के " कुछ गीत मलय समीर के झोंकों के समान हमें बाहर से स्पर्श कर अंतरतम तक सिहरा देते हैं, कुछ अपने दर्शन से बोझिल पंखों द्वारा हमारे जीवन को सब ओर से छू लेना चाहते हैं, कुछ किसी आलक्ष्य डाली पर छिपकर बैठी हुई कोकिल के समान हमारे ही किसी भूले हुए स्वप्न की कथा कहते रहते हैं,और कुछ मंदिर के पूत धूप धूम के समान हमारी दृष्टि को धुंधला, किन्तु मन को सुरभित किये बिना नहीं रहते ।"[१] इनमें से साधारणतया प्रथम विशेषता प्रसाद के गीतों में,द्वितीय निराला में,तृतीय पंत में,तथा अंतिम महादेवी के गीतों में लक्षित होती है ।

छायावाद के उपर्युक्त चारों कवियों के अतिरिक्त रामकुमार वर्मा के रहस्योन्मुख गीत भी कम श्रुति मधुर और अंत:स्पर्शी नहीं है । उनमें भावाकुल मन की करुण पुकार स्पष्ट सुनाई पड़ती है । उत्तर छायावादी युग के कवि नरेन्द्र शर्मा, रामेश्वर शुक्ल" अंचल" और भगवती चरण वर्मा ने शुद्ध लौकिक धरातल पर हृदय के राग-विराग तृष्णा और निराशा को वाणी दी है । इनमें भावों की तीव्रता और भाषा की सरलता का अद्भुत सामंजस्य मिलता है । अपनी बात को सरल से सरल शब्दों में सादे ढंग से कह सकने की सर्वाधिक क्षमता हरिवंशराय" बच्चन " में लक्षित होती है । अनुभूति का तीखापन मर्मस्पर्शिता और सरलता बच्चन के गीतों की मूलभूत विशेषतायें कही जा सकती हैं । शिवमंगलसिंह" सुमन " और माखनलाल चतुर्वेदी ने अपने गीतों में राष्ट्रीय भावों की सुंदर व्यंजना की है । प्रसाद और निराला ने भी अनेक श्रेष्ठ राष्ट्रीय गीत लिखे हैं । रामधारी सिंह" दिनकर" ने रण गर्जन और प्रणय की स्निग्धता एवं तरलता, दोनों प्रकार के परस्पर विरोधी भावों की अभिव्यक्ति के लिये गीतों का ही माध्यम अपनाया ।

१- महादेवी वर्मा - यामा (भूमिका) पृष्ठ ५ ।

सारांशत: छायावादी कवियों ने गीत रचना के प्रति गहरी रुझान प्रदर्शित की तथा गीतों को उनके सीमित दायरे से निकालकर हर प्रकार की भावना के प्रकाशन योग्य बना दिया ।

छायावादी गीतों में नवीनता : (क) विषयगत -

प्रत्यक्षत: छायावादी काव्य में भारतीय गीत परंपरा का ही उन्नयन हुआ है, किन्तु वास्तव में छायावादी गीत विषय और शिल्प दोनों ही दृष्टियों से मौलिक तथा नवीन है । पूर्व युगों की अपेक्षा इन गीतों का क्षितिज कहीं अधिक विस्तृत और विशाल है । इस कारण है इस युग के कवियों की वैयक्तिकता, जिसके आधार पर उन्होंने किसी अदृश्य लोक नहीं , वरन् दृश्यमान जगत और वास्तविक जीवन की प्रत्येक हलचल तथा सिहरन को अपने मन के दर्पण में देखते हुए उसे मूर्त रूप देने की चेष्टा की है। इस संदर्भ में महादेवी वर्मा के विचार महत्वपूर्ण है :-" सूर के गीतों की एक बड़ी त्रुटि यह है कि उनकी कथा पराई है," इतनी पराई कि हम बहने की इच्छा मात्र लेकर उसे सुन सकते हैं ।" + + + + तुलसीदास के विनय के पद " आकाश की मंदाकिनी कहे जा सकते हैं, हमारी कभी गंदली, कभी स्वच्छ वेगवती सरिता नहीं । मनुष्य की चिरंतन अपूर्णता का ध्यान करके उसके पूर्ण इष्ट के सम्मुख हमारा मस्तक श्रद्धा से नम्रता से नत हो जाता है, परंतु हृदय कातर क्रन्दन नहीं कर उठता ।" + + + + कबीर के रहस्य भरे पदों में यह कमी है कि उन्हें पढ़कर" अधिकतर हम में उनके विचार ध्वनित हो उठते हैं, भाव नहीं, जो गीत का लक्ष्य है । + + + मीरा ही एकमात्र ऐसी कवयित्री कही जा सकती है जिनके कुछ पदों में व्यक्तिगत भावनाओं का उद्रेक तथा निजी अनुभूतियों का चित्रण हुआ है ।" उसका बाह्य राजरानीपन और आन्तरिक वेदना भी आत्मानुभूत थी, अत: उसका" हे री मैं तो ---- जाने कोय " सुनकर यदि हमारे हृदय का तार तार ध्वनि को दोहराने लगता है, रोम रोम उसकी वेदना का स्पर्श कर लेता है तो यह कोई आश्चर्य की बात नहीं ।"[१]

महादेवी के उक्त विचारों में निश्चय ही सत्यांश है किन्तु मीरा के पदों में भी वैयक्तिकता की कुछ झलक आ जाने के बाद भी व्यक्तित्व का वैसा

१- महादेवी वर्मा - यामा (भूमिका) पृष्ठ ५ ।

उन्मुक्त प्रकाशन नहीं मिलता जैसा छायावादी गीतों में प्राप्य है। छायावाद के मुख्य कवियों की रचनाओं के कुछ उद्धरण प्रासंगिक होंगे :-

(१) "आज रहने दो यह गृह काज
प्राण रहने दो यह गृह काज।
आज जाने कैसी वातास,
छोड़ती सौरभ श्लथ उच्छ्वास।
प्रिये लालस सालस वातास,
जगा रोओं में सौ अभिलाष।।"[१]

(२) "उज्ज्वल गाथा कैसे गाऊं मधुर चांदनी रातों की।
अरे खिलखिलाकर हंसते होनेवाली उन बातों की।।
मिला कहां वह सुख जिसका मैं स्वप्न देखकर जाग गया।
आलिंगन में आते आते मुस्क्या कर जो भाग गया।।"[२]

(३) "मैं नीर भरी दुख की बदली।
विस्तृत नभ का कोई कोना,
मेरा न कभी अपना होना।
परिचय इतना इतिहास यही,
उमड़ी कल थी, मिट आज चली।।"[३]

(४) "मुझे स्नेह क्या मिल न सकेगा ?
स्तब्ध दग्ध मेरे मरु का तरु
क्या करुणाकर खिल न सकेगा ?"[४]

छायावाद के द्वितीय उत्थान के कवियों में यह वैयक्तिकता और भावनाओं का उन्मुक्त प्रकाशन अपेक्षाकृत अधिक मात्रा में दृष्टिगत होता है।

१- सुमित्रानन्दन पन्त - गुंजन, पृष्ठ ५१-५२।
२- जयशंकर प्रसाद - लहर, पृष्ठ ११।
३- महादेवी वर्मा - यामा- सान्ध्यगीत, पृष्ठ २११।
४- सूर्यकान्त त्रिपाठी "निराला" - गीतिका, पृष्ठ ५५।

प्रसाद आदि के गीतों में तो फिर भी भावनाओं पर एक झीना आवरण पड़ा रहता है, किन्तु बच्चन, नरेन्द्र, अंचल, भगवती चरण वर्मा आदि ने अपने तथा पाठक वर्ग के मध्य कोई परदा नहीं रखा है तथा अपने व्यक्तिगत जीवन की घटनाओं का उल्लेख करने में किसी प्रकार का संकोच नहीं किया है, जैसे -

" मैं सब दिन पाषाण नहीं था ।

\+ + + +

था मेरा भी कोई मैं भी
कभी किसी का था जीवन में

बिछुड़ा भी पर भाग्य न बिगड़ा
रही मधुर सुधि जब तक मन में ।।
पर क्या है क्या बन जाऊँगा,
इसका कभी गुमान नहीं था ।।"[१]

अथवा -

" खिड़की से झाँक रहे तारे ।
जलता है कोई दीप नहीं,
कोई भी आज समीप नहीं ।
लेटा हूँ कमरे के अन्दर
बिस्तर पर अपना मन मारे ।"[२]

स्वानुभूतिमय गीत रचना के अतिरिक्त छायावादी कवियों ने जहाँ कहीं वस्तुपरक रचनायें की है, वहाँ भी वस्तु को अपनी भावनाओं के रंग में रंगकर प्रस्तुत किया है। निराला की " यमुना के प्रति " और पंत की " छाया " प्रभृति रचनायें इस संदर्भ में द्रष्टव्य है ।

छायावादी गीतों में नवीनता: (ख) शिल्पगत :

छायावादी गीतों में कलात्मकता भी पिछले युगों की अपेक्षा अधिक है । महादेवी और निराला के गीतों की जैसी कलात्मक श्रेष्ठता पूर्व युगों में प्राय: दुर्लभ है । इनके गीतों का प्रत्येक शब्द नगीने की भाँति जड़ा गया है ; यदि एक भी शब्द

१- नरेन्द्र शर्मा - प्रवासी के गीत, पृष्ठ ६५ ।
२- हरिवंशराय बच्चन - एकान्त संगीत , पृष्ठ १६ ।

हटाकर उसके स्थान पर उसका पर्यायवाची शब्द रखने की चेष्टा की जाये तो गीत के भाव सौन्दर्य को क्षति पहुंचती है । स्वर, वर्ण, लय, और भाव एक साथ घुल मिलकर गीत में अपूर्व माधुर्य की सृष्टि करते हुए उसे सहज संप्रेषणीय बना देते हैं ; जैसे -

(१) "धीरे धीरे उतर क्षितिज से आ वसंत रजनी ।
मर्मर की सुमधुर नूपुर ध्वनि,
अलि गुंजित पद्मों की किंकिणि ।
भर पद गति में अलस तरंगिणि,
तरल रजत की धार बहा दे स्मित से अपनी
चि विहंसती आ वसंत रजनी ।।"[१]

(२) "देख दिव्य छवि लोचन हारे ।
रूप अतन्द्र, चन्द्र मुख, श्रम रुचि
पलक तरलतम, मृग-दृग-तारे"।[२]

भावों की सुकुमारता को स्वर वर्ण और लय के समुचित योग द्वारा मूर्त कर देने की कला में प्रसाद भी पूर्ण सिद्धहस्त हैं, उदाहरणार्थ निम्न उद्धृत पंक्तियों में शब्द संयोजन का वैशिष्ट्य दर्शनीय है, जो रसमय भाव की अभिव्यक्ति को अधिकाधिक रसार्द्र और आकर्षक बनाता है -

"वह लाज भरी कलियां अनंत,
परिमल घूंघट ढंक रहा दंत ।
कंप कंप चुप चुप कर रही बात
कोमल कुसुमों की मधुर रात ।।[3]

मध्ययुगीन गीतों की एक सामान्य प्रवृत्ति रही है कि उनकी प्रत्येक पंक्ति तुकानुरूपिणी होती थी जैसे -

"यह विनती रघुवीर गोसाईं ।
और आस विस्वास भरोसो हरो जीव जड़ताई ।

१- महादेवी वर्मा - यामा - नीरजा, पृष्ठ १३० ।

२- सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला - गीतिका, पृष्ठ ४३ ।

3- जयशंकर प्रसाद - लहर, पृष्ठ २५ ।

चहौं न सुगति सुमति संपति कछु रिधि सिधि विपुल बड़ाई ।
हेतु रहित अनुराग राम पद बढ़ै अनुदिन अधिकाई ।।"[१]

अथवा -

"आली री मेरे नैणां बाण पड़ी ।
चित्त चढ़ी मेरे माधुरी मूरत उर बिच आन अड़ी ।
कब की ठाढ़ी पंथ निहारूँ अपने भवन खड़ी ।।"[२]

इस प्राचीन पद शैली को यदा-कदा छायावादी कवियों ने भी अपनाया है, किन्तु पंक्तियों के आकार में मनोनुकूल परिवर्तन करके उनमें कुछ नए पन की सृष्टि कर दी है जैसे -

" जग का एक देखा तार
कंठ अगणित, देह सप्तक
मधुर स्वर झंकार ।
बहु सुमन, बहु रंग, निर्मित एक सुंदर हार,
एक ही कर से गुंधा, उर एक शोभा भार ।"[3]

छायावादी गीतों में अन्तरे के विधान रूप में एक नई पद्धति सामने आई" टेक" की प्रथम पंक्ति के बाद एक संपूर्ण बंध अन्तरे के रूप में रक्खा जाने लगा उसके बाद की पंक्ति का" टेक" की पंक्ति से स्वर साम्य स्थापित किया गया जैसे-

" मैं सजग चिर साधना ले ।
सजग प्रहरी से निरंतर,
जागते अलि रोम निर्झर ।
निमिष के बुदबुद मिटाकर,
एक रस है समय सागर ।।
हो गई आराध्यमय मैं,
विरह की आराधना ले ।"[४]

१- तुलसीदास - विनय पत्रिका, पद १०३ , पृष्ठ १७६ ।
२- गंगाप्रसाद पाण्डेय - मीरा गीतावली, पृष्ठ ३३ ।
३- सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला" - गीतिका,पृष्ठ २२ ।
४- महादेवी वर्मा - यामा, सान्ध्यगीत,पृष्ठ २०६ ।

यहाँ प्रथम पंक्ति गीत की टेक है अन्तिम पंक्ति में "आराधना है" का "साधना है" से तुकान्त मिलाया गया है, बीच की पंक्तियाँ अन्तरा रूप में है।

कभी कभी एक पंक्ति का अन्तरा रक्खा जाता है और दूसरी पंक्ति "टेक" की भाँति चलती है -

" प्रथम रश्मि का आना रंगिणि
तूने कैसे पहचाना ?
कहाँ कहाँ है बाल विहंगिनि
पाया तूने यह गाना ?
सोई थी तू स्वप्न नीड़ में
पंखों के सुख में छिपकर
झूम रहे थे घूम द्वार पर
प्रहरी से जुगनू नाना ।।"[१]

इस प्रकार का क्रम लोकगीतों में अत्यन्त प्रचलित है, किन्तु साहित्यिक गीतों में उसका समावेश छायावादी कवियों ने किया।

छायावाद के पूर्ववर्ती गीतों में "टेक" की पंक्ति प्राय: शेष पंक्तियों से छोटी रक्खी जाती थी। छायावादी गीतों में टेक की पंक्ति की अन्य पंक्तियों से समानता भी दिखाई देती है और कहीं कहीं अन्य पंक्तियों की अपेक्षा वह अधिक मात्राओं वाली होती है जैसे -

" उसमें मर्म छिपा जीवन का
एक तार सब के कंपन का।
एक सूत्र सब के बंधन का
संसृति के सूने पृष्ठों में करुण काव्य वह लिख जाता।"[२]

समान मात्राओं वाली पंक्ति योजना पहले के कवियों-मीरा तुलसी आदि द्वारा भी हुई है किन्तु समतुकान्त पंक्तियों वाले उनके पदों में अन्तरा का विधान नहीं हुआ है।

१- सुमित्रानन्दन पन्त - आधुनिक कवि (२), पृष्ठ ३।
२- महादेवी वर्मा - आधुनिक कवि, पृष्ठ २७।

छायावादी गीतों में बहुधा टेक की पंक्ति और अन्तरा के बाद वाली पंक्ति में तुकान्त निर्वाह की परिपाटी भी त्याग दी गई है जैसे -

" धन बनूं वर दो मुझे प्रिय ।
जलधि मानस से नव जन्म पा
सुभग तेरे ही दृग व्योम में
सजल श्यामल मंथर मूक सा
तरल अश्रु विनिर्मित गात ले
नित धिरुं, झर झर मिटूं प्रिय ।"[1]

यहां प्रथम और अन्तिम पंक्तियों में मात्रा साम्य होते हुए भी स्वर साम्य नहीं है । अन्तरा की चारों पंक्तियों में भी अन्त्यानुप्रास की समानता नहीं है । प्रथम पंक्ति के बाद छंद का रूप भी बदल दिया गया है । अतएव प्रथम पंक्ति और अन्तरा की पंक्तियों की लय में भी असमानता है । संगीत शास्त्र की दृष्टि से इसे दोष माना जाएगा । किन्तु छायावादी गीतों में एक प्रवृत्ति स्पष्ट रूप से परिलक्षित होती है कि उनमें संगीत के शास्त्रीय नियमों की अपेक्षा " लय " का अधिक महत्व स्वीकृत हुआ है । भावों के उतार-चढ़ाव को दिखाने के लिये कवि संगीत तत्वों की विशेष चिन्ता न करके मुख्यत: लय का ही सहारा लेता है और यथा आवश्यकता उसमें परिवर्तन आदि कर लेता है इसी के फलस्वरूप छायावाद युग में गीतों की अपेक्षा प्रगीतों की रचना अधिक हुई ।

संगीत तत्व को महत्व देते हुए गीत रचना करनेवाले कवियों में एक मात्र " निराला " का नाम लिया जा सकता है । किन्तु निराला ने भी संगीत की बंधी हुई परिपाटी पर न चलकर अपने गीतों में स्वतंत्र रूप से भावानुकूल लय, छंद तथा संगीत का निर्माण कर लिया है । उनकी " गीतिका " का प्रत्येक गीत गेय तथा संगीत के आरोह-अवरोह से युक्त है, तथापि किसी प्रचलित शास्त्रीय राग-रागिनी में बंधा हुआ नहीं है ।

इस संदर्भ में गीतिका " की भूमिका में व्यक्त निराला के विचार प्रासंगिक होंगे -" हिन्दी संगीत की शब्दावली और गाने का ढंग, दोनों मुझे अब

१- महादेवी वर्मा - यामा, नीरजा, पृष्ठ १५३ ।

खटकते रहे । न तो प्राचीन " ऐसो सिय रघुबीर भरोसो " शब्दावली अच्छी लगती थी, यद्यपि इसमें भक्तिभाव की कमी नहीं थी, न उस समय की आधुनिक शब्दावली- " तोप तीरें सब धरी रह जाएँगी मगरुर सुन " यद्यपि इसमें वैराग्य की भावना यथेष्ट थी । हिन्दी गवैयों का सम पर आना मुझे ऐसा लगता था जैसे मजदूर लकड़ी का बोझ मुकाम पर लाकर धम्म से फेंककर निश्चिन्त हुआ । मुझे ऐसा मालूम देने लगा कि खड़ीबोली की संस्कृति जब तक संसार की अच्छी अच्छी सौन्दर्य भावनाओं से युक्त न होगी वह समर्थ न होगी । उसकी संपूर्ण प्राचीनता जीर्ण है ।"[१] निराला ने समस्त छायावादी कवियों का प्रतिनिधित्व करते हुए प्रारंभ में ही " नव स्वर " का वरदान माँगा । यह वरदान वास्तव में फलीभूत हुआ । छायावादी गीतों में भावों की नव्यता के साथ स्वर की नवीनता और मौलिकता के भी दर्शन होते हैं । गीतिका के गीत तो अपनी भावमयता , संगीत-सुषमा एवं कलात्मक सौष्ठव में सचमुच अपूर्व है ।

निराला की गीत रचना के अंतर्गत वर्ण-योजना शब्द विन्यास और लय निपात आदि सभी दृष्टियों से कहीं कहीं बंगला का भी स्पष्ट प्रभाव लक्षित होता है । शान्ति रंजन बंदोपाध्याय के अनुसार - " छायावाद युग के तथा आधुनिक हिन्दी साहित्य के सर्वाधिक सशक्त कवि निराला का जन्म बंगाल (महिषादल) में हुआ था अतः बंगाल देश का यह व्यक्ति बंगला साहित्य से विशेष रुप से प्रभावान्वित है । जैसे -

" गंध व्याकुल -कूल-उर सर
लहर कच कर कमल मुख पर
हर्ष-अलि स्वर स्पर्श-शर सर
गूँज बारंबार । - (रे,कह)

\+ \+ \+ \+

निशा-प्रिय -उर-शयन सुख-धन
सार या कि असार ? (रे,कह)

इस प्रकार की छंद भंगिमा हिन्दी काव्य में इसके पूर्व नहीं थी ।

१- सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला - गीतिका- भूमिका, पृष्ठ ६ ।

इस संबंध में निराला निस्संदेह रवीन्द्रनाथ के ऋणी हैं ।"[1]

निराला और माखनलाल चतुर्वेदी ने बंगला के "वंदेमातरम" आदि की शैली पर हिन्दी में वन्दना गीतों की रचना करने का भी प्रयास किया है । यथा -

" वंदू पद सुंदर तव,
  छंद नवल स्वर गौरव
जननि, जनक-जननि-जननि
  जन्म भूमि भाषे !
जागो नव अम्बर - भर
ज्योतिस्तर - वासे ।[2]

उपर्युक्त छंद का वर्ण विन्यास सर्वथा बंगला गीतों जैसा है । भाषे वा आदि एकारान्त शब्दों का प्रचलन हिन्दी कविता में अन्यत्र नहीं मिलता । इसी प्रकार-

" जय जय भाव मयी छवि वाणी
रस अणिमा, रस महिमा, रसना,
रस गरिमा कल्याणी ।
भावमयी छवि वाणी ।"[3]

इस सरस्वती वंदना का भी बंगला की सरस्वती वंदनाओं से पर्याप्त साम्य है ।

परन्तु इस प्रकार के प्रयोगों में इन कवियों को आंशिक सफलता ही मिली है क्योंकि बंगला शब्दों का उच्चारण और बंगला संगीत का स्वर निपात

१- शान्तिरंजन बंदोपाध्याय - आधुनिक भारतीय साहित्य, पृष्ठ ५७ ।
" छायावाद युगेर तथा आधुनिक हिंदी काव्य साहित्येर सब चेये शक्तिशाली कवि निराला बांगला देशे (महिषादल) ऐर जन्म, बांगला देशे मानुष करेन बांगला साहित्येर प्रभाव प्रभावान्वित सविशेष । यथा :-
गंध व्याकुल कूल उर सर
सार या कि असार ? (रे,कह)
ए धरणेर छंद भाँगि हिन्दी कविताय आगे छिलोना । ए व्यापारे निराला निस्संदेहे रवीन्द्रनाथ काछे ऋणी ।"
२- सूर्यकान्त त्रिपाठी "निराला - गीतिका, पृष्ठ ८२ ।
३- माखनलाल चतुर्वेदी - मरण ज्वार, पृष्ठ ३६ ।

हिन्दी से सर्वथा भिन्न है और हिन्दी में उसकी सायास अवतारणा से उसकी स्वाभाविकता नष्ट हो जाती है । इसी तथ्य पर पंत ने भी "पल्लव" की भूमिका में प्रकाश डाला है -

> " उनके (निराला के) कुछ छंद बंगला की तरह अक्षर मात्रिक राग पर ---- चलते हैं, ---- किन्तु जहाँ पर वह बंगला के अनुसार चलती वहाँ उसका राग हिन्दी के लिये अस्वाभाविक हो जाता है । इसका कारण यह है कि बंगला के उच्चारण की मांसलता हिन्दी में नहीं उसका ह्रस्व दीर्घ राग बंगला छंदों में स्वाभाविक विकास नहीं पाता ।"[1]

छायावाद के अन्य कवियों ने इन प्रयोगों को नहीं अपनाया । छायावादी गीतों का मूल आधार भारतीय संगीत ही है किन्तु अभिव्यंजना की नवीनता के फलस्वरूप उनमें नयापन दिखाई देता है। प्रसाद, पंत,निराला,महादेवी और रामकुमार वर्मा आदि के गीत किसी न किसी शास्त्रीय राग रागिनी के अन्तर्गत गाए जा सकते हैं । निराला की "गीतिका" के सभी गीत रूपक, धमार तीन ताल, दादरा आदि प्रचलित तालों में बंधे हुए हैं किन्तु निराला ने अपने गीतों के लिए राग रागिनियों का निर्देश नहीं किया है । क्योंकि उनके अनुसार -" गीत हर एक राग रागिनी में गाया जा सकता है । जो लोग राग रागिनी की सामयिकता का विचार करते हैं, वे गीत के भाव को समझकर समयानुकूल राग रागिनी में बांध सकेंगे ।"[2]

निराला ने कुछ गीत "मुक्त छंद" में भी लिखे हैं तथा उनमें नवीन एवं मौलिक संगीतात्मक संयोजनायें प्रस्तुत की है जैसे -

> " मेरे जीवन में हँस दी हर
> वारिद फर
> ऐ आकुल नयने ।
> सुरभि, मुकुल शयने !
> जागी चल श्यामल पल्लव पर
> छवि विश्व की सुघर ।"[3]

१- सुमित्रानन्दन पन्त - पल्लव, भूमिका, पृष्ठ -३२-३४ ।
२- सूर्यकान्त त्रिपाठी "निराला" - गीतिका, भूमिका , पृष्ठ १२ ।
३- सूर्यकान्त त्रिपाठी "निराला" - अनामिका- वारिद वंदना",पृष्ठ १६४ ।

इस गीत की पंक्तियों में यद्यपि आकार की असमानता है तथापि अन्त्यानुप्रास की योजना द्वारा संगीतात्मक लय की रक्षा की गई है । इस आन्तरिक लय के आधार पर इसे शास्त्रीय संगीत के स्वरों में बांध सकना दुष्कर नहीं होगा ।

छायावादी काव्य लोक जीवन से प्राय: असंपृक्त, शिष्ट और सुसंस्कृत वर्ग का काव्य है, उसका काव्य शिल्प लोक साहित्य के सहज अनगढ़ और निरायास शिल्प से पूर्णत: भिन्न है, किन्तु छायावादी कवियों ने अपने साहित्यिक और श्रेष्ठ कलात्मक गीतों में भी कहीं कहीं लोकगीतों का लयाधार ग्रहण करके उनमें नवीनता का समावेश किया है जैसे -

" बढ़ बढ़ कर बहती पुरवाई
धुन मलार कजली की छाई ।"[1]

अथवा -

"नयनों के डोरे लाल गुलाल भरे खेली होली
जागी रात सेज प्रिय पति संग रति सनेह रंग घोली,
दीपित दीप प्रकाश, कंज छवि मंजु-मंजु हंस खोली
मली मुख चुम्बन रोली "।[2]

प्रथम उद्धरण में लोक शैली के प्रसिद्ध कजली गीत की तथा दूसरे में होली गीत की धुन स्पष्ट है, किन्तु इन गीतों की परिष्कृत कला उनकी अलंकृत भाषा, चित्रात्मक एवं लाक्षणिक अभिव्यंजना इन्हें सामान्य लोकगीतों से पृथक कर देती है । स्पष्टत: छायावादी कवियों की अभिरुचि लोकगीतों की रचना की ओर नहीं रही वरन् लोकगीतों की लय और कहीं-कहीं लोकगीतों के विषय और शब्दावली को भी एक आकर्षक शैली के रूप में अपनाकर उन्होंने अपने गीतों में माधुर्य एवं श्री संपन्नता लाने का प्रयत्न किया है ।

महादेवी वर्मा ने इस प्रकार के अनेक प्रयोग किये हैं । लोकगीतों में प्रचलित कजली, सावन और बिरहा की धुनें उन्हें विशेष प्रिय रही हैं जिनका प्रयोग

१- सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला - गीतगुंज, पृष्ठ ४६ ।

२- सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला - गीतिका, गीत ४१, पृष्ठ ४६ ।

उनके गीतों में हुआ है । लोकगीतों की मिठास और श्रेष्ठ कलात्मक वैभव एवं गहन आत्मिक अनुभूति से संयुक्त उनके गीत अपनी मृदुता, मधुरता एवं शैल्पिक साज-सज्जा की दृष्टि से गीति काव्य की परंपरा में अभूतपूर्व है ।

स्पष्टत: छायावादी गीत दृष्टि भारतीय गीत परंपरा की कड़ी होते हुए भी उनसे भिन्न, मौलिक तथा नवीन है ।

कबीर के गीतों में अनुभूति की गहराई होते हुए भी भाषा संस्कार विशेष नहीं है । मीरा के गीतों में भाव-प्रवणता के साथ-साथ संगीत का माधुर्य भी है किन्तु कलात्मकता के प्रति रुझान न रखने के फलस्वरूप उनका शिल्प-वैभव सामान्य है । सूर, तुलसी के गीतों में मन को छूने की शक्ति है, उनमें साहित्यिकता भी भरपूर है और उनका उच्च कोटि का कलात्मक वैभव भी सराहनीय है,किन्तु वे गीत केवल आध्यात्मिक पक्ष तक ही सीमित है । राम अथवा कृष्ण के प्रेम में पगी हुई पदावली का बार बार गानकर के अथवा भजन कीर्तन सुनकर हृदय कुछ देर के लिये रसमग्न अवश्य होता है, किन्तु उसे पूर्ण तृप्ति नहीं मिल पाती । आध्यात्मिक पहलू के अतिरिक्त भी जीवन का विशाल विस्तृत क्षेत्र है जिसके प्रति इन भक्त कवियों को कोई आकर्षण न था । क्योंकि वे भगवत् प्रेमी और सांसारिक विषयों से वैराग्य के समर्थक थे । अतएव उनके गीतों ने हमारे आधुनिक विविधतामय सामाजिक जीवन को अछूता ही छोड़ दिया है । आधुनिक युग के प्रारंभ-काल में भारतेन्दु हरिश्चंद्र द्वारा रचे गए गीत भक्त कवियों की पद्धति पर ही लिखे गए हैं । उनमें विषय या शैलीगत किसी प्रकार का नावीन्य दृष्टिगत नहीं होता । इसके विपरीत, छायावादी कवियों ने व्यक्ति प्रेम से लेकर राष्ट्र प्रेम तथा उसके भी आगे - विश्व प्रेम और मानव प्रेम के भी गीत गाए हैं जो आधुनिक रुचि को पूर्णत: संतुष्ट करते हैं । छायावादी गीत हमारे समस्या बोझिल किन्तु प्रगतिकामी, हर्ष-रुदन, आशा-निराशा, उत्साह-पराजय आदि से संयुक्त जटिल जीवन के विभिन्न पक्षों को आलोकित करते हैं । ' विषय ' के अतिरिक्त छायावादी गीतों की कला में भी नयापन है । छायावाद युग के जैसी कला के प्रति रुझान पूर्ववर्ती युगों में अनुपलब्ध है । छायावादी कवि ' कवि ' होने के साथ साथ ' कलाकार ' भी थे अतएव उनके गीतों में भाव-माधुर्य, शब्द-माधुर्य और स्वर-माधुर्य का त्रिवेणी-संगम प्रस्तुत हुआ है । इसके अतिरिक्त यह स्मरणीय है

कि छायावादी कवियों ने यद्यपि अपने गीतों में बाह्य संगीत का सफल विधान किया है तथापि उनकी मूल प्रवृत्ति भाव एवं विषयगत सहज आन्तरिक संगीत की सुरक्षा ही है । लय पर आधारित अंत: स्फूर्त संगीत " प्रगीत " की विशेषता है । अतएव यह कहा जा सकता है कि छायावादी कवि मूलत: गीतकार न होकर " प्रगीतकार " है ।

प्रगीत :

प्रगीत केवल लयानुशासित होते हैं, उनमें गीत की भांति संगीत तत्वों का बंधन नहीं होता, अत: उनमे गीत जैसी टेक और अन्तरे का विधान नहीं किया जाता ।

छायावादी प्रगीतों में मुख्यत: दो प्रकार की पद्धतियां अपनाई गई हैं । कुछ प्रगीत समतुकान्त हैं और उनमें सममात्रिक चरणों की योजना मिलती है, जैसे -

" सुन्दर है विहग सुमन सुन्दर
मानव तुम सब से सुन्दरतम ।
निर्मित सब की तिल सुषमा से,
तुम निखिल सृष्टि में चिर निरुपम ।।
यौवन ज्वाला से वेष्टित तन
मृदुत्वच सौन्दर्य प्ररोह अंग ।
न्यौछावर जिन पर निखिल प्रकृति
छाया प्रकाश के रूप-रंग ।।"[१]

इस प्रगीत में तुकान्त निर्वाह भी है और सममात्रिक चरण योजना भी, किन्तु प्रथम पंक्ति को टेक की भांति दोहराने का आग्रह नहीं है ।

दूसरे प्रकार के प्रगीतों में तुकान्त चरणों की योजना हुई है,किन्तु उनके आकार में अन्तर है । किसी पंक्ति में अधिक मात्रायें हैं, किसी में कम, तथा पूरी कविता में भिन्न भिन्न छंदों के प्रयोग के कारण लय का रूप भी बदल गया है। जैसे -

"अहे दुर्जेय विश्वजित ।
नवाते शत सुरवर नरनाथ,

१- सुमित्रानन्दन पन्त - आधुनिक कवि, मानव, पृष्ठ ८ ।

तुम्हारे इन्द्रासन तल नाथ ।
घूमते शत शत भाग्य अनाथ ,
सतत रथ के चक्रों के साथ ।।
तुम नृशंस नृप से जगती पर चढ़ अनियंत्रित
करते हो संसृति को उत्पीड़ित, पद मर्दित,
नग्न नगर कर , भग्न भवन, प्रतिमायें खंडित
हर लेते हो विभव, कला, कौशल चिर संचित ।।
आधि व्याधि बहु वृष्टि, वात, उत्पात, अमंगल,
वह्नि बाढ़, भूकंप तुम्हारे विपुल सैन्यदल,
अहे निरंकुश , पदाघात से जिनके विह्वल
हिल हिल उठता है टलमल
पद दलित धरातल ।"[1]

यहाँ प्रथम पंक्ति " अहे दुर्जेय ------" की " नवाते शत सुरवर नरनाथ" से लय भिन्न है, तत्पश्चात आगे की पंक्तियाँ" तुम नृशंस नृप------" में पुन: छंद का रूप बदल गया है। प्रारंभिक पंक्तियाँ का बाद की पंक्तियाँ से मात्रात्साम्य भी नहीं है ।

छायावादी कवियों ने इसके अतिरिक्त मुक्त छंद में भी प्रगीतों की रचना की क्योंकि जैसा कि पहले कहा जा चुका है" प्रगीत" संगीत की नियमावली के प्रति आग्रहशील न होते हुए भी लय की महत्ता को स्वीकार करते हैं और" मुक्त छंद भी छंद बंधन से मुक्त होते हुए भी" लय" द्वारा अनुशासित होते हैं । अत: उनका भी सस्वर पाठ किया जा सकता है । क्योंकि जहाँ लय होगी, वहाँ शास्त्र द्वारा निरूपित न सही किसी न किसी प्रकार का छंद अवश्य होगा और जहाँ छंद होगा, वहाँ संगीत का गुण भी स्वत: आ जाता है ।

मुक्त छंद में लिखे हुए प्रगीतों में निराला की" शेफालिका", " जुही की कली", पंत की" जीव प्रभु", " नव दृष्टि", मंभा में नीम" आदि का नाम लिया जा सकता है ।

१- सुमित्रानन्दन पन्त - आधुनिक कवि" परिवर्तन " पृष्ठ ३६-३७ ।

प्रगीत - प्रभेद :

" भाव" अथवा " विचारों" के आधार पर प्रगीत के अनेक रूप छायावादी काव्य में उपलब्ध होते हैं, जैसे शोकगीति , संबोधन गीति, पत्र गीति व्यंग्य गीति चतुर्दशपदी आदि । यह सभी प्रगीत कुल के ही विभिन्न रूप हैं, किन्तु काव्य रूप" की समानता होते हुए भी" भाव और भाषा के थोड़े से परिवर्तन के कारण परस्पर भिन्न भिन्न दिखाई पड़ते हैं । वैसे ही, जैसे" मुक्तक" होते हुए भी" गीत" की विधा चौपाई सवैइया आदि से भिन्न है, और" गीत" का वंशज होते हुए भी " प्रगीत" गीत से कुछ अलग है ।

शोक गीति (Elegy) ?

गीति काव्य की यह वह शैली है जिसमें कवि अपने व्यक्तिगत शोकपूर्ण उद्गारों की अभिव्यक्ति करता है । शोकगीतों का विषय किसी प्रियजन का चिर वियोग होता है । अंग्रेज़ी साहित्य में इसी को" एलेजी " (Elegy) कहा गया है ।[१]

अंग्रेज़ी के कवि" ग्रे " (Gray) की एलेजी (Elegy-written on Country Church Yard) का द्विवेदीयुगीन कवि कामता प्रसाद गुरु ने पहले पहल हिन्दी में अनुवाद किया ।[२] तत्पश्चात तिलक, गोखले, लाजपतराय, महावीर प्रसाद द्विवेदी, जयशंकर प्रसाद आदि के निधन पर अनेक कवियों द्वारा लिखी गई मार्मिक शोक गीतियाँ विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हुईं जिनमें उनकी आंतरिक व्यथा और शोक की अभिव्यक्ति मिलती है ।

छायावाद युग में निराला का लिखा हुआ शोक गीति - " सरोज स्मृति" अपनी मार्मिकता में बेजोड़ है ।

शोक गीति में किसी प्रियजन के चिर विछोह के फलस्वरूप उसके जीवन काल में घटित हुई अनेक घटनाओं बातों आदि का शोक के मुख्य भाव के साथ स्मृति संचारी रूप में प्रकट होना अत्यंत स्वाभाविक है । चिर वियोग की पीड़ा

१- Elegy - A poem either of lament for a person, of persons or of serious musing-Cassell's Encyclopedia of Literature, page no. 178.

२- सरस्वती, मार्च १९०८" ग्रामीण विलाप" , पृष्ठ ११५ ।

से विकल हृदय में घोर नैराश्य और जीवन की क्षणभंगुरता तथा वैराग्य के भावों का उदय भी स्वत: हो जाता है । इस भाँति व्यक्तिगत शोकोद्गार की अभिव्यक्ति करने वाली इन रचनाओं में सामाजिकता और दार्शनिकता का भी पुट रहता है ।

" सरोज स्मृति " निराला ने अपनी एक मात्र पुत्री के मरणोपरांत लिखी थी ।

> " कन्ये गत कर्मों का अर्पण
> कर , करता मैं तेरा तर्पण "[1]

इन पंक्तियों से ऐसा लगता है जैसे कवि अपनी पुत्री के दाह-संस्कार के बाद उसे जल प्रदान कर रहा हो ।

पिता के जीवित रहते सन्तान का मरण अत्यंत दु:खप्रद घटना है । कवि समझ नहीं पाता कि ऐसा क्यों हुआ ? क्या पुत्री स्वयं उसकी स्वर्ग यात्रा को सरल बनाने के लिए पहले चली गई है ?-

> " तू गई स्वर्ग क्या यह विचार
> जब पिता करेंगे मार्ग पार
> यह अक्षम अति, तब मैं सक्षम
> तारूँगी कर गह, दुस्तर तम "?[2]

किन्तु इस विकल्प से कवि-मन को शान्ति नहीं मिलती । उसे तत्क्षण अपनी निर्धनता का स्मरण हो आता है और उसे यह तथ्य गहराई तक बेंध जाता है कि वस्तुत: उसकी पुत्री निर्धनता की ज्वाला में ही जलकर असमय भस्म हो गई -

> " ----- मैं उपार्जन में अक्षम
> कर नहीं सका पोषण उत्तम "[3]

इसके साथ ही स्मृतियों की एक लम्बी श्रृंखला जुड़ती चली जाती है । प्रकाशनार्थ भेजी गई रचनाओं का वापस लौट आना, प्रकाशकों के निराशाजनक उत्तर, आलोचकों की कटुता, धनाभाव , अपनी असमर्थता और सरोज की बीमारी ----- सभी कुछ एक एक कर याद आता है । सवा साल से लेकर उन्नीस साल तक की

१- सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला - अपरा - सरोज स्मृति", पृष्ठ १५८ ।
२- सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला - अपरा- सरोज स्मृति" , पृष्ठ १४६ ।
३- सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला - अपरा - सरोज स्मृति", पृष्ठ १४८ ।

अवस्था की सरोज के जीवन से संबद्ध प्रत्येक घटना का उल्लेख निराला ने किया है। मातृहीना पुत्री का नानी के घर पालन-पोषण उसकी बाल्यावस्था, भाई-बहन के परस्पर झगड़े- मारपीट, सरोज का यौवनावस्था में प्रवेश, वर की खोज, विवाह, विवाह के अवसर पर माता की प्रतिकृति कन्या का अपूर्व रूप-लावण्य आदि समस्त स्मृतियों की अत्यंत मर्मस्पर्शी और सफल अभिव्यंजना हुई है। यह संपूर्ण विवरण जितना ही सरल और सामान्य है, उतना ही सवेद्य भी। जितना ही व्यक्तिगत है, उतना ही प्रभावशाली भी। निराला के पितृ हृदय के शोकोद्गारों से पाठक भी अभिभूत हुए बिना नहीं रह पाते।

संबोधन गीति (Ode)-

अंग्रेज़ी के "ओड" के अनुकरण पर हिंदी में भी संबोधन गीति लिखे जाने लगे। जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है, किसी वस्तु अथवा व्यक्ति विशेष को संबोधित करके लिखे गए प्रगीत ही संबोधन गीति कहलाते हैं।[1]

छायावाद युग में प्रगीत की इस विधा का बहुत अधिक प्रचलन हुआ। वैयक्तिक अनुभूतियों का चित्रण करते हुए भी निरावृत्त और प्रत्यक्ष आत्मानुभूतियों की अभिव्यंजना छायावादी कवियों को रुचिकर नहीं थी। इस शैली के द्वारा उनके लिए आत्म की मनोवांछित अभिव्यक्ति हेतु एक कलात्मक साधन उपलब्ध हो गया। इसी कारण परिमाण और गुण दोनों ही दृष्टियों से छायावाद युगीन संबोधन गीतियों की समता आधुनिक युग का अन्य कोई काव्य नहीं कर सकता।

छायावाद युग में रचे गए संबोधन गीतियों पर उन्नीसवीं शताब्दी के अंग्रेज़ी के रोमांटिक कवियों शैली, कीट्स, बायरन, वर्ड्सवर्थ, टैनीसन, स्विनबर्न आदि का ही सीधा प्रभाव पड़ा है, पाश्चात्य साहित्य में "ओड" का जो मूल रूप मिलता है उससे उनका कोई प्रत्यक्ष सम्बन्ध नहीं है।

"अंग्रेज़ी के" ओड" का पूर्वज शब्द यूनानी" ओडे" है अपने मूलरूप में" ओडे" शब्द का व्यवहार ऐसी छंदोबद्ध रचनाओं के लिये किया जाता था

१- Ode - " Any serious lyric expressing aspiration, or addressed to a venerated person "- Cassell's Encyclopedia of Literature, p.no.399.

जिनका गायन वाद्ययंत्र के साथ किया जावे । यूनानी भाषा के ये प्रारंभिक गीत ही कालान्तर में दो विपरीत धाराओं में प्रवाहित हुए - प्रगीत तथा नाट्य रचना में व्यवहृत वृन्दगान की एक विशिष्ट छंद पद्धति - इसका अभिपरिणत रूप ही " ओड " कहलाया ।"[१]

अँग्रेजी के रोमांटिक कवियों द्वारा लिखे गए ओड विषय और शैली दोनों ही दृष्टियों से प्राचीन " ओड " से सर्वथा भिन्न है । इन कवियों के " ओड " के विषय भगवद् स्तुति तक ही सीमित नहीं हैं, वरन उनमें विभिन्न प्रकार के विचार, चिन्तन आदि की अभिव्यक्ति हुई है । इस प्रकार आधुनिक " ओड " भी " विषय " की दृष्टि से सहज सामान्य और अंतः स्फूर्त न होकर प्रायः गंभीर और चिन्तन प्रधान होते हैं । वैयक्तिकता प्रधान होने के कारण (जो कि प्रगीत काव्य की मुख्य विशेषता है) इनमें कवि को अपनी कल्पना के रंग बिखेरने हेतु पर्याप्त अवसर रहता है । किसी व्यक्ति अथवा वस्तु को संबोधित करके लिखे जाने के कारण इनकी शैली संबोधनात्मक होती है । आधुनिक ओड में संगीतात्मकता की भी अनिवार्यता नहीं रह गई है यद्यपि सामान्यतः अन्त्यानुप्रास का क्रम रहने से फलस्वरूप इनमें एक प्रकार का अंतः संगीत रहता है ।

भारतीय साहित्य में संबोधनात्मक शैली में लिखे गए काव्य का अभाव नहीं है " भंवरा ," पपीहा ", " बादल " आदि को " दूत " बनाकर " प्रिय " के पास संदेश भेजने की एक परंपरा रही है । सूर, जायसी ,मीरा आदि में इस प्रकार के अनेक उदाहरण उपलब्ध होते हैं तथापि जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, छायावादी संबोधन गीत, विषय और काव्य-विधा दोनों ही दृष्टियों से पाश्चात्य रोमांटिक कवियों के अधिक निकट है । परंपरा से भिन्न ,वैशिष्ट्य-प्रदर्शन हेतु ही " संदेश काव्य " ; दूत काव्य " आदि पूर्व प्रचलित नामों का व्यवहार न करके " ओड " के पर्याय रूप में एक नया नाम गढ़ने की आवश्यकता प्रतीत होना भी उपर्युक्त कथन का एक प्रमाण माना जा सकता है ।

पाश्चात्य आलोचकों ने " ओड " का विभाजन मुख्यतः दो दृष्टियों से किया है [२], छंद-रचना की दृष्टि से और संबोधन शैली की दृष्टि से ।

१- प्रतिभा कृष्णबल - छायावाद का काव्य शिल्प,पृष्ठ ४४ ।

२- W.H.Hudson - An introduction to the study of literature. page 99.

छंद रचना की दृष्टि से " ओड " छंद रचना के बंधनों से युक्त भी हो सकता है और छंद योजना के समस्त प्रतिबंधनों से मुक्त भी ।

संबोधनात्मक शैली के आधार पर भी ओड दो रूपों में वर्गीकृत किया गया है । एक में कवि स्वयं किसी को संबोधित करता है, संबोध्य विषय चाहे " आत्मगत " हो या " वस्तुगत " उसके द्वारा वह आत्मगत अभीष्ट भावों को संप्रेषित करता है । दूसरे प्रकार की शैली में कवि आत्माभिव्यंजना का यह कार्य स्वयं न करके संबोध्य विषय से कराता है ।

छायावादी काव्य में उपर्युक्त दोनों प्रकार के उदाहरण उपलब्ध होते हैं । छायावादी अधिकांश संबोधन गीतियों में कवि स्वयं किसी के प्रति संबोधित हुआ है । किन्तु दूसरे प्रकार की शैली का प्रतिनिधित्व करनेवाली पंत की " बादल " शीर्षक रचना है जिसमें बादल स्वयं अपना परिचय देते हैं ।

छायावादी कवियों में पंत का संबोधन गीतियों के प्रति सर्वाधिक मोह लक्षित होता है । पल्लव की अधिकांश रचनायें (उच्छ्वास, वीचि विलास, मधुकरी, अनंग , छाया, शिशु, नारी रूप, नक्षत्र, बादल, परिवर्तन आदि) संबोधन गीति - शैली में लिखी गई है । पल्लव काल में पंत का कवि हृदय विशेष रूप से रोमानी कल्पनाओं में डूबा हुआ था परिणामत: इस समय की उनकी संबोधन गीतियों में कल्पना का सौकुमार्य और लालित्य विशेष रूप से दर्शनीय है ।" गुंजन " तक आते आते कवि की मनोवृत्ति बदल चुकी थी , अतएव इस समय के उनके संबोधन गीति " तप रे मधुर मधुर मन "," भावी पत्नी के प्रति,मुस्कुरा दी थी क्या तुम प्राण " विश्व के प्रति तथा " युगान्त " की " द्रुत झरो जगत के जीर्ण पत्र ", " गा कोकिल बरसा पावक कण " आदि रचनाओं में कल्पना वैभव की अपेक्षा विचारात्मकता और चिन्तन का प्राधान्य है ।

निराला पंत के समान भावुक रोमानी और कल्पनाशील नहीं है, उनका विराट पौरुष उन्हें विराट और उदात्त काव्य रूपों की रचना के लिये अधिक प्रेरित करता रहा तथापि उन्होंने कतिपय सुंदर संबोधन गीतियों की रचना की है ।जैसे -" प्रिया के प्रति " ," यमुना के प्रति " ," तरंगों के प्रति "," जलद के प्रति ", " तुम और मैं "," कण " ," प्रपात के प्रति " ," बादल राग " आदि ।

निराला की " यमुना के प्रति " रचना निराला ही नहीं संपूर्ण छायावादी काव्य के संबोधन गीतियों में सर्वश्रेष्ठ कही जा सकती है।यमुना को संबोधित करते हुए कवि ने इसमें आत्माभिव्यंजना की अतीव रोचक प्रणाली अपनाई है । कल्पनाओं का आधार लेकर व्यक्तिगत मार्मिक अनुभूतियों के चित्रण के क्रम में उनकी लेखनी से एक नई यमुना फूट पड़ी है जिसका प्रत्यक्ष और स्थूल यमुना से विशेष संबंध नहीं रह जाता । यह कल्पित यमुना हमें सुदूर अतीत में खींच ले जाकर हमारे प्राचीन सांस्कृतिक जीवन की मनोरम झाँकियों के दर्शन कराती है -

" बता कहाँ अब वह वंशीवट
कहा गए नट नागर श्याम ?
चल चरणों का व्याकुल पनघट
कहाँ आज वह वृन्दा धाम ?"[१]

\+ \+ \+

" कहाँ छलकते अब वैसे ही
ब्रज नागरियों के गागर ?
कहाँ भीगते अब वैसे ही,
बाहु, उरोज, अधर, अम्बर ?
कहाँ कनक कोरों के नीरव
अश्रुकणों में भर मुस्कान ,
विरह मिलन के एक साथ ही
खिल पड़ते वे भाव महान ?" [२]

अतीत की स्मृति में लीन कवि के भावाकुल हृदय की स्पष्ट पुकार इन पंक्तियों में सुनाई पड़ती है । भावनाओं की तीव्रता, आवेग,कल्पना वैभव, कलात्मक श्रेष्ठता और गाम्भीर्य के समुचित योग से यह रचना अनुपम और प्रभावशाली बन गई है ।

महादेवी की " श्रृंगार कर ले री सजनि ", " ओ पागल संसार ", " धीरे धीरे उतर क्षितिज से, ओ वसंत रजनी ", " मुखर पिक हौले हौले बोल " , जाए कौन संदेश

१- सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला - परिमल- यमुना के प्रति, पृष्ठ ४६ ।
२- सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला - परिमल- यमुना के प्रति, पृष्ठ ५६ ।

नए पन" आदि गीत भी संबोधनात्मक शैली में लिखे जाने के फलस्वरूप संबोधन गीति की कोटि में रक्खे जा सकते हैं, इनमें अलंकरण की समृद्धि भी है और कल्पनाओं की सुकुमारता भी, किन्तु चिन्तन का औदात्य और विचारों का वैसा गाम्भीर्य इनमें नहीं है जो" ओड" के लिए अपेक्षित होता है। इनका कलेवर भी छोटा है जबकि "ओड" में सामान्यत: ५० से २०० पंक्तियां तक रहती हैं। अतः महादेवी के यह गीत संबोधन गीति शैली का पूर्ण प्रतिनिधित्व नहीं करते। इस दृष्टि से प्रसाद द्वारा रचित " अरी वरुणा की शान्त कछार ", " हे सागर संगम अरुण नील" आदि रचनायें अधिक सफल हैं, इनमें कवि ने संबोध्य विषय के व्याज से व्यक्तिगत विचारों और भावोद्गारों की सुंदर अभिव्यक्ति दी है।

अमूर्त विषय को लेकर संबोधन गीति-रचना में पंत को सब से अधिक सफलता मिली है। उनकी" उच्छ्वास", " छाया", " परिवर्तन" आदि रचनायें इसकी श्रेष्ठ उदाहरण हैं।

पत्र गीति (Epistle)-

पत्र-शैली में रचे जानेवाले उपन्यासों तथा कहानियों के समानान्तर आधुनिकयुगीन काव्य में पत्र-शैली में प्रगीतरचना की नई विधा का जन्म हुआ। पत्र-गीति अंग्रेज़ी के" एपीसिल" का हिन्दी अभिधान है। पत्र-गीति या एपीसिल में कोई व्यक्ति किसी अन्य व्यक्ति अथवा व्यक्ति-समूह को भावात्मक और गरिमामयी शैली में पत्र लिखकर कोई महत्वपूर्ण संदेश भेजता है। यह संदेश प्राय: नैतिक आदर्शों पर आधारित होते हैं अथवा दार्शनिकता का पुट लिये रहते हैं।[1]

साधारण पत्रों में आत्मीयता का भाव प्रमुख रहता है और अत: स्फूर्ति अधिक होती है। किन्तु पत्र-गीति में वर्ण्य विषय" अथवा विचार प्राचीनता की गरिमामय गंध से युक्त अपने सार्वकालिक स्वरूप के कारण उसे वैशिष्ट्य

1. Encyclopedia Britannica, Epistles in Poetry - " A branch of poetry bears the name of Epistle, and is modelled on these pieces of Harace which are almost essays on moral or philosophical subjects, and are chiefly distinguished from other poems by being addressed to particular patrons or friends ". page 660.

प्रदान करते हैं । पत्र-गीति की शैली वर्णनात्मक होती है और उसमें साहित्यिकता एवं कलात्मकता का विशेष योग रहता है ।

बंगला में माइकेल मधुसूदन दत्त की " वीरांगना " पत्र-शैली में रची गई है । उसी से प्रेरणा ग्रहण करके मैथिलीशरण गुप्त ने हिन्दी में पत्रावली की रचना की । छायावादी कवियों ने प्रगीत की इस विशिष्ट शैली के प्रति कोई रुचि नहीं दिखाई । केवल निराला की " हिन्दी के सुमनों के प्रति " और " महाराज शिवाजी का पत्र " यह दो रचनायें इस वर्ग में रखने योग्य हैं । इनमें " महाराज शिवाजी का पत्र " पत्र- गीति शैली की एक सफल और प्रतिनिधि रचना है । ऐतिहासिक पात्र शिवाजी के व्यक्तित्व से अपना पूर्ण तादात्म्य स्थापित करके निराला ने इस रचना में अपने मानसिक विक्षोभ, आक्रोश एवं भावावेश की बड़ी सशक्त अभिव्यंजना की है । यह रचना पत्र गीति के समस्त गुणों को वहन करती है । इतिहास का पृष्ठ पलटते हुए कवि ने औरंगजेब की कूट नीतियों और तत्कालीन सामाजिक राजनैतिक समस्याओं का गंभीर अवलोकन प्रस्तुत किया है । परिस्थितियों के प्रति विक्षोभ उसके हृदय में वीरत्व और जातीय गौरव के भाव उत्पन्न करता है -

" उठती जब नग्न तलवार है स्वतंत्रता की
कितने ही भावों से
याद दिला घोर दुख दारुण परतंत्रता का
फूंकती स्वतंत्रता निज मंत्र से
जब व्याकुल कान,
कौन वह सुमेरु
रेणु रेणु जो न हो जाए ?
इसीलिये दुर्जय है हमारी शक्ति ।"[१]

इन्हीं में नैतिकता और दार्शनिकता के भाव भी निरायास आकर गुंफित हो जाते हैं । औरंगजेब की दासता में भी अपने को गौरवान्वित समझनेवाले महाराज जयसिंह को धिक्कारते हुए शिवाजी का कथन है -

" चाहते हो क्या तुम
सनातन धर्म धारा शुद्ध

१- सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला - परिमल - छत्रपति शिवाजी का पत्र ", पृष्ठ २२२ ।

भारत से बह जाए चिरकाल के लिये ?

+ + + +

धन जन देवालय

देव, देश, द्विज, दारा-बंधु

इन्धन हैं हो रहे तृष्णा की भट्ठी में

स्वाहा सब हो चुकी ।

और भी कुछ दिनों तक

जारी रहा ऐसा यदि अत्याचार महाराज-

निश्चय है, हिन्दुओं की

कीर्ति उठ जाएगी -

चिन्ह भी न हिन्दू सभ्यता का रह जाएगा ।"[1]

ओज, तार्किकता और व्यंग्य कुशलता इस रचना की शैलीगत विशेषताएं हैं, उदाहरणार्थ -

" बाहुबल है, बल है या कौशल है

करके अधिकार किसी

भीरु पीनोरु, ललना नवयौवना पर

सहियों यदि भय से उसे

दूसरे कामातुर किसी लोलुप प्रतिद्वन्दी को

देख क्या सकोगे तुम

सामने तुम्हारे ही

अर्जित तुम्हारी उस प्यारी संपत्ति पर

प्राप्त करे दूसरा ही

भोग- संयोग आंखें दिखाकर ?

और तुम वीर हो ? ------"[2]

इन पंक्तियों द्वारा देश की तत्कालीन हिन्दू प्रजा की दुरावस्था का पूरा चित्र सजीव हो उठता है । ऐतिहासिक विवरण प्रस्तुत करते हुए हुए भी संपूर्ण प्रगीत आधन्त भावावेश और आत्मतत्व से मुखरित है । यही इस पत्र गीति की सफलता है ।

१- सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला - परिमल-छत्रपति शिवाजी का पत्र ,पृष्ठ २२४ ।
२- सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला - परिमल-छत्रपति शिवाजी का पत्र ,पृष्ठ २२५-२२६ ।

व्यंग्य गीति (Satire)-

व्यंग्य काव्य की परंपरा हिन्दी साहित्य में पूर्व प्रचलित रही है । सूरदास के " भ्रमरगीत " संबंधी पद इसके श्रेष्ठ उदाहरण हैं, जिनमें " भ्रमर " के माध्यम से वस्तुत: द्वारकावासी कृष्ण को लक्ष्य करके ब्रज की गोपियाँ अत्यंत मार्मिक वक्रोक्तियाँ करती हैं ।

अंग्रेजी में व्यंग्य गीति का पर्याय सैटायर (Satire) है । इस प्रकार की रचनाओं में रचनाकार का किसी स्थिति ,व्यक्ति अथवा व्यक्ति समूह के प्रति असंतोष ही कलात्मक अभिधान लेकर प्रकट होता है। व्यंग्यकार जब अपने जीवन अथवा सामाजिक ,सांस्कृतिक परिवेश से असंतुष्ट होता है, तो वह उनकी विकृतियों, असंगतियों तथा अन्यायपूर्ण स्थितियों का अभिधामूलक वर्णन न करके व्यंग का आश्रय लेकर कलात्मक और प्रभावशाली ढंग से भंडा-फोड़ करता है ।

छायावादी काव्य में व्यंग्य गीति के उदाहरण प्राप्य हैं, किन्तु अत्यंत सीमित संख्या में । क्योंकि छायावादी प्रवृत्ति अंतर्मुखी रही है, अपने परिवेश के प्रति घोर असंतोष रखते हुए भी, निराला को छोड़कर अन्य किसी कवि ने खुलकर विद्रोह प्रकट करने का साहस नहीं दिखाया । जबकि " व्यंग्य गीति के मूल में परिवेश से विद्रोह अनिवार्य रूप से छिपा रहता है । "[१]

निराला अपने कवि रूप में समाज की ओर प्रारंभ से ही उन्मुख रहे हैं, अतएव समाज की कुरूपताओं, असमानताओं एवं असंगतियों की उनमें गहरी पकड़ थी जो उनके विद्रोही व्यक्तित्व से घुल मिलकर उनके काव्य में भी प्रतिबिम्बित हुई है । निराला में एक श्रेष्ठ व्यंग्यकार की प्रतिभा थी, उनकी दान, हिन्दी के सुमनों के प्रति ", प्रभृति रचनायें इस तथ्य को प्रमाणित करती हैं । " दान " में निराला ने भूखे मनुष्यों की उपेक्षा करके बंदरों को मालपुआ खिलानेवाले तथाकथित धर्मनिष्ठ व्यक्तियों पर गहरी चोट की है और हिन्दी के सुमनों के प्रति " में तत्कालीन आलोचक वर्ग पर प्रहार किया है जो कविता के बदले हुए स्वर को सुनने और समझने के बदले उसका उपहास करने में ही सुख पाते थे ।

१- शम्भूनाथ सिंह - छायावाद युग , पृष्ठ ३८८ ।

'सरोज स्मृति' निराला के शोकोद्गारों से पूर्ण एक अत्यंत गंभीर रचना है, किन्तु उसमें भी कहीं कहीं अपनी विवशता और संपादकगण के अविवेक की बात सोचते सोचते कवि का व्यंग्यकार रूप उभर आता है -

"कवि जीवन में व्यर्थ ही व्यस्त,
लिखता अबाध गति मुक्त छंद,
पर संपादकगण निरानंद ।
वापस कर देते पढ़ सत्वर,
रो एक पंक्ति, दो में उत्तर ।।"[1]

निराला की आगे की रचनाओं - कुकुरमुत्ता, बन-बेला आदि में यह व्यंग्य का स्वर अधिकाधिक प्रखर होता गया है ।

छायावादी कवियों में पंत सब से अधिक कोमल स्वभाव वाले रहे हैं, किन्तु उनकी एक आध रचनाओं में भी सूक्ष्म व्यंग्य का पुट मिल जाता है । यथा-

"कहीं से ही कर दे मेरे सरल प्राण औ सरस वचन
जैसा जैसा मुझको छेड़े, बोलूं अधिक मधुर मोहन
जो अकर्ण अहि को भी सहसा कर दे मंत्र मुग्ध नत-फन"[2]

यहाँ 'अकर्ण' शब्द के द्वारा हिन्दी के उन 'बधिर आलोचकों' पर प्रहार है जो छायावादी काव्य-स्वर के प्रति उदासीन थे ।

चतुर्दशपदी (Sonnet)-

हिन्दी काव्य में चतुर्दशपदी का विकास पाश्चात्य साहित्य के संसर्ग से हुआ । पाश्चात्य कवियों में शेक्सपियर, पेट्रार्क, मिल्टन, स्पेन्सर आदि के नाम इस क्षेत्र में विशेष प्रसिद्ध हैं ।

अंग्रेजी कवियों ने 'सानेट' रचना के अन्तर्गत प्राय: पेट्रार्क की भाँति दो चतुष्पदी और दो त्रिपदियों का क्रम रक्खा है अथवा शेक्सपीयर और स्पेन्सर के समान तीन चतुष्पदी और एक युग्मक का । हिन्दी कवियों ने अंग्रेजी

1- सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला - अनामिका, पृष्ठ १२२ ।
2- सुमित्रानन्दन पन्त - पल्लव, पृष्ठ ११२ ।

कवियों का प्रभाव ग्रहण करते हुए भी केवल चौदह पंक्तियों का प्रतिबन्ध ही स्वीकार किया है, उसके अतिरिक्त सानेट का खण्ड विभाजन, लय तथा अन्त्यक्रम व्यवस्था उनकी मौलिक है। इसी रूप में "चतुर्दशपदी" नाम भी सार्थक हो जाता है, और अंग्रेजी "सानेट" से भिन्न उसका रचना वैशिष्ट्य भी प्रकट होता है।

द्विवेदीयुग में हरिऔध, पंडित रूप नारायण पाण्डेय आदि ने "चतुर्दशपदी" की रचना प्रारंभ की थी। उनके बाद प्रसाद, पंत, निराला, रामकुमार वर्मा आदि ने भी इस क्षेत्र में प्रयोग किये। किन्तु इस प्रगीत विधा का विशेष विकास छायावादी काव्य में नहीं हो सका, और न पंत के अतिरिक्त इस क्षेत्र में किसी अन्य कवि को विशेष सफलता ही मिल पाई।

"चतुर्दशपदी" में साधारण प्रगीत जैसा प्रवाह और स्वच्छंदता न होकर चिन्तन की प्रवृत्ति निहित रहती है।[१] चौदह पंक्तियों वाली इस रचना में छंद का कोई विशिष्ट रूप निश्चित नहीं रहता। उसकी मुख्य विशेषता मात्र इतनी है कि कवि का मनोवेग प्रारंभिक पंक्तियों में प्रकट होकर चिन्तन की ओर अग्रसर होता है और अंतिम पंक्तियों में अपना समाधान प्रस्तुत करता है।

इन गुणों से युक्त चतुर्दशपदियों के सफल और श्रेष्ठ उदाहरण रूप में पंत की "ताज" शीर्षक रचना द्रष्टव्य है। इस कविता का प्रारंभ ताज महल को देखकर कवि-हृदय में उत्पन्न होनेवाले विषाद की भावना से होता है -

" हाय मृत्यु का ऐसा अमर अपार्थिव पूजन।
जब विषण्ण निर्जीव पड़ा हो जग का जीवन।।"

इस विषाद के साथ चिन्तन की छाया स्पष्ट लिपटी हुई दिखाई देती है -

"मानव ऐसी भी विरक्ति क्या जीवन के प्रति।
आत्मा का अपमान प्रेत औ छाया से रति।।
प्रेम अर्चना यही करें हम मरण को वरण ?"[२]

१- A.R.Entwistle - The study of Poetry, 1928, page 51-52.
" Sonnet, unlike the true lyric, is frequently lacking in sponteneity and freshness, leaning rather reserve and reflection."

२- सुमित्रानन्दन पन्त - आधुनिक कवि, पृष्ठ ७१।

जीवितों की उपेक्षा और मृतकों की पूजा करनेवाली इस विचित्र प्रेम अर्चना पर विचार करते करते कवि को गहरा क्षोभ होता है और अन्तिम पंक्तियों में उसके विचार मंथन का अंत निराशापूर्ण वस्तु स्थिति को समाधान रूप में पाकर होता है -

" भूल गए हम जीवन का संदेश अनश्वर ।
मृतकों के हैं मृतक, जीवितों का है ईश्वर ।। "

चतुर्दशपदी की लघु आकारवाली रचना के अनुरूप सुरुचिपूर्ण, निर्भ्रान्त शब्द चयन, लय, छंद की सुनिश्चित योजना, विषय की पूर्णान्विति आदि सभी तत्व उपर्युक्त रचना में विद्यमान हैं, इसी कारण वह पाठक हृदय पर अपना अपेक्षित प्रभाव डालने में सफल हुई है । कविता पढ़ते समय पाठक भी कवि की विचारधारा के साथ स्वतः बह चलता है । यही किसी भी रचना की सब से बड़ी कसौटी कही जा सकती है ।

आख्यान काव्य

गीति काव्य की शैली में किसी आख्यान का आधार लेकर लिखी गई रचनाओं को ही " आख्यानक काव्य " अथवा " आख्यानक गीति " की संज्ञा दी जाती है । इस आधुनिक काव्य विधा का मूल रूप पाश्चात्य काव्य रूप " बैलेड " में मिलता है ।

बैलेड (Ballad) अथवा आख्यानक काव्यों का विकास लोकगाथाओं के द्वारा माना जा सकता है । प्रत्येक देश अथवा समाज में कुछ ऐसी कथायें अत्यंत प्रचलित हो जाती हैं जिनका संबंध प्रायः किसी ऐतिहासिक घटना से होता है, और कभी कभी ऐतिहासिक आधार पुष्ट न होने पर भी जन मानस में उनका समादर ऐतिहासिक सत्यों की ही भांति होता है । इन कथाओं के विषय प्रायः युद्ध , प्रेम, कोई चमत्कारी घटना अथवा किसी धार्मिक महापुरुष की जीवनी होती है । अपने स्वरूप में गेय, शैली में वर्णनात्मक तथा कुछ कुछ नाटकीय भाषा

१- सुमित्रानन्दन पन्त - आधुनिक कवि, पृष्ठ ७१ ।

की दृष्टि से सरल, सुबोध[1] यह गाथायें बहुधा शताब्दियों तक समाज की धरोहर बनी रह कर उसे अपने रस माधुर्य से आप्लावित करती रहती है ।

इन लोक प्रचलित कथाओं की प्रगीतात्मक प्रस्तुति ही " बैलेड " या " आख्यानक काव्य " का स्वरूप ग्रहण करती है । दूसरे शब्दों में - आख्यानक काव्य " सामान्य वर्णनात्मक कविताओं से भिन्न वह विशिष्ट काव्य रूप है जो प्रबन्धात्मक शैली में लिखा जाकर भी प्रगीत तत्वों से युक्त हो तथा प्रगीत का स्वरूप रखते हुए भी वर्णनात्मक हो ।[2]

आख्यानक काव्य का रचनाकार लोकगाथाओं में साहित्यिकता और कलात्मकता का समावेश करके उन्हें अपने ढंग से प्रस्तुत करता है । मौलिकता लाने के लिये कवि को प्रायः कथा के मूल रूप में कुछ परिवर्तन अथवा काट-छांट करना भी आवश्यक हो जाता है, किन्तु यह परिवर्तन भी वह लोकरुचि को ध्यान में रखकर ही करता है । तात्पर्य स्पष्ट है कि ऐसे कवियों को अपनी सफलता हेतु लोकरुचि तथा लोक विश्वासों का पूरा पूरा ज्ञान होना अनिवार्य है ।

आख्यानक काव्यों के भी प्रायः दो रूप दिखाई देते हैं, एक तो वे रचनायें जो प्रगीत के तत्वों से युक्त होकर भी लोक प्रसिद्ध आख्यान लेकर चलती हैं, किन्तु उनमें समाख्यान काव्य की वर्णनात्मक शैली की अपेक्षा प्रगीत का भावावेश ही प्रबल रहता है । और दूसरी कोटि में उन रचनाओं को रखा जा सकता है, जो

---

1. Cassell's Encyclopaedia of Literature. P.No. 40-
   Ballad - " A wide spread catagory of traditional poetry, mainly narrative in form,direct,simple and often dramatic in style,and generally composed to be recited or sung....The material with which the ballad poet works is the basic experience of the community,he draws upon local or national history, pseudo-history,legend and supernatural folklore and his tales are adventure and war,love, the supernatural and to a lesser extent religious persons and events."

2. Lectures and Notes by W.P.Ker(Edited by R.W.Chambers)
   Form and Style in Poetry:(on the History of Ballads)page 3.
   " Ballad is here taken as meaning a lyrical narrativ poem(all ballads are lyrical ballads)...It is not narrative poem only , it is a narrative poem lyrical in form, or a lyrical poem with a narrati body in it."

प्रथम कोटि की रचनाओं की भाँति प्रगीतात्मक होते हुए भी अपेक्षाकृत अधिक वस्तु-मुखी और वर्णन प्रधान होती है ।

शंभूनाथ सिंह ने उपर्युक्त प्रथम प्रकार की रचनाओं को "प्रबंध मुक्तक" तथा द्वितीय प्रकार की रचनाओं को "प्रगीत प्रबंध" कहा है ।[1] हम उन्हें आख्यानक प्रगीत और प्रबंधात्मक प्रगीत की संज्ञायें भी दे सकते हैं ।

लोकगाथायें प्रत्येक देश में प्रचलित होती हैं अतएव उनके आधार पर रचे जानेवाले आख्यानक काव्यों की परंपरा भी प्राय: प्रत्येक भाषा के साहित्य में मिलती है । हिन्दी साहित्य के आदियुग- वीरगाथा काल की साहित्यिक प्रवृत्तियों का विश्लेषण करते हुए रामचंद्र शुक्ल ने उस युग में प्राप्य इस काव्य-विधा के मूल रूप की ओर इंगित करते हुए लिखा है - " ये वीरगाथायें दो रूपों में मिलती हैं - प्रबंध काव्य के साहित्यिक रूप में और वीर गीतों (Ballads) के रूप में ।"[2]

जगनिक का "आल्हखण्ड" वीरगाथा युग के आख्यानक काव्यों का प्रतिनिधि ग्रंथ कहा जा सकता है । छायावाद युग में अंग्रेजी काव्य की प्रेरणा से इस परंपरा का पुनर्विकास हुआ । किन्तु छायावादी आख्यानक काव्य आल्हखण्ड सदृश पूर्ववर्ती भारतीय आख्यानक काव्यों से अपने रूपाकार में भिन्न है, साथ ही अंग्रेजी के "बैलेड" से भी अपना कुछ वैशिष्ट्य रखते हैं । छायावादी कवियों ने अलंकृति और कलात्मकता के प्रति विशेष रुझान दिखाई है अतएव इस युग के आख्यानक काव्यों में जन जीवन की मौखिक परंपरा में विकसित होनेवाले वीर गीतों की लोक शैली के संस्कारों का सर्वथा अभाव है । सरल, सुबोध और सहज भाषा के स्थान पर, कठिन शब्दावली प्रयुक्त हुई है और शैली, सूक्ष्म, चमत्कारपूर्ण एवं श्रमसाध्य है ।

छायावादी आख्यानक प्रगीतों के अन्तर्गत "प्रसाद" की "अशोक की चिन्ता", "पेशोला की प्रतिध्वनि", "शेरसिंह का शस्त्र समर्पण" और पंत की "ग्रंथि" आदि रचनाओं को उदाहरण रूप में रक्खा जा सकता है । अशोक की चिन्ता में कलिंग विजय के उपरान्त उस भीषण नर संहार की स्मृति से सम्राट अशोक के हृदय में उठनेवाले वैराग्यपूर्ण भावों की, पेशोला की प्रतिध्वनि" में प्रतापी प्रताप के प्रिय मेवाड़ के

१- शम्भूनाथ सिंह - छायावाद युग, पृष्ठ २३० ।
२- रामचंद्र शुक्ल - हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ ३१ ।

विगत गौरव की कथा" शेरसिंह का शस्त्र समर्पण" में पंचनद के सिंह सपूतों के शौर्य और पराक्रम की झाँकियाँ प्रस्तुत की गई है। इन रचनाओं में आख्यान पक्ष अत्यंत दुर्बल है और उनमें कथा की प्रत्यक्ष स्थिति न होकर उसका आभास मात्र मिलता है। उदाहरणार्थ -

" आज भी पेशोला के
तरल जल मंडलों में
वही शब्द घूमता सा-
गूँजता विकल है।
किन्तु वह ध्वनि कहाँ ?
गौरव की काया पड़ी माया है प्रताप की
वही मेवाड़
किन्तु आज प्रतिध्वनि कहाँ ?"[1]

उपर्युक्त पंक्तियों में कवि का भावावेग ही प्रकट है, ऐतिहासिक घटनाओं का चित्रण करना उसका लक्ष्य नहीं है, अतएव इसमें आख्यान" की अपेक्षा प्रगीत तत्व अधिक है।

"ग्रंथि" का मूल कथ्य कवि की प्रिय वियोगजन्य व्यथा है, जो स्मृति के माध्यम से अभिव्यक्त हुई है। इसमें कवि-जीवन से संबद्ध कुछ भौतिक घटनाओं का उल्लेख अवश्य हुआ है किन्तु उनकी संख्या इतनी कम है कि मात्र उन घटनाओं के आधार पर एक संपूर्ण काव्य का वस्तु विन्यास संभव नहीं था। कवि के विरह-विह्वल हृदय के भावोद्गारों की भीड़ में तथा अतिशय कलात्मक और रोमानी कल्पनाओं के समूह में इस रचना का क्षीण कथा-सूत्र खो सा जाता है और अध्येता का मन वास्तविक घटनाक्रम को समझ पाने के बदले केवल कवि के व्यथा समुद्र का ही अवगाहन कर पाता है। प्रेम कथा का आधार ग्रहण करके भी इस रचना में कथानक की कोई क्रमबद्ध सुनिश्चित योजना नहीं मिलती, मानसिक घात प्रतिघात ही इसमें प्रमुख है, इसी कारण इसका स्थान भी आख्यानक प्रगीतों के अंतर्गत ही है।

१- जयशंकर प्रसाद - लहर (पेशोला की प्रतिध्वनि) पृष्ठ ५८।

छायावादी प्रबंधात्मक प्रगीतों में "प्रसाद" की प्रलय की छाया और "निराला" की "राम की शक्ति पूजा" तथा "तुलसीदास" उल्लेखनीय है ।

प्रलय की छाया में गुजरात के राजा कर्णदेव की रूपगर्विता रानी कमलावती के अंतर्द्वन्द्व का अत्यंत मार्मिक चित्रण प्रसाद ने किया है । राजरानी कमला की स्मृति के माध्यम से उसके जीवन से संबद्ध अनेक ऐतिहासिक घटनाओं का भी उल्लेख हुआ है जो इस लम्बे प्रगीत में प्रबंधात्मकता के गुणों का समावेश करता है जैसे - गुजरात पर सुल्तान अलाउद्दीन का आक्रमण, राजा कर्णदेव की वीरता, रानी कमला का पति के साथ सैनिक वेश में युद्ध क्षेत्र में प्रवेश,गुजरात का पराभव, कमला का बंदिनी बनकर सुल्तान के महलों में जाना, पुराने दास मानिक द्वारा गुप्त रूप से कर्णदेव का कमला को मृत्युवरण का संदेश और उसे अस्वीकार कर जीवन की अदम्य लालसा से युक्त सौन्दर्याभिमानिनी कमला का सुल्तान की प्रणयिनी बन जाना" अंत में सुल्तान की मृत्यु आदि आदि । किन्तु यह घटना विवरण इतना संक्षिप्त है कि प्रबंधात्मकता इसमें केवल बीज रूप में ही रह गई है, विकसित नहीं हो सकी ।

राम की शक्ति पूजा में कवि निराला ने कथा सूत्रों का चयन लोक प्रचलित विश्वासों से ही किया है किन्तु अनुकरण के आधार पर परंपरित काव्य-रचना करना निराला का लक्ष्य नहीं जान पड़ता । पुरातन, स्थूल कथा को नवीन अर्थ गौरव से संयुक्त करने का प्रयास इसमें स्पष्ट झलकता है ।

" कुछ बंगला काव्य-कृतियों के अनुसार रावण-युद्ध के पूर्व शक्ति की पूजा कर राम ने रावण विजय का वरदान पाया था । कृत्तिवास के रामायण में इसका विस्तृत वर्णन है ।"[१]

निराला के "राम की शक्ति पूजा" का मुख्य कथ्य भी इसी प्रकार है, रावण युद्ध के समय युद्ध की भयंकरता देखकर राम अपनी विजय के प्रति संशयग्रस्त हो उठते हैं , जामवंत की प्रेरणा से राम युद्ध में विजय की कामना से शक्ति की पूजा का अनुष्ठान करते हैं, इसके लिये वे प्रतिदिन एक नील कमल की भेंट चढ़ाकर देवी की अर्चना करते हैं, एक सौ आठ दिन के इस अनुष्ठान के अंतिम दिन जब अन्तिम पुष्प चढ़ाने का अवसर आता है तो वह गायब मिलता है । राम चिन्तित हो उठते हैं किन्तु

१- शान्ति श्रीवास्तव - छायावादी काव्य और निराला, पृष्ठ २५५ ।

सहसा उन्हें स्मरण हो आता है कि बाल्यावस्था में माँ उन्हें "राजीव नयन" कहा करती थी । अतएव वे अनुष्ठान की पूर्ति हेतु अपनी आँख निकालकर देवी पर चढ़ाने को तत्पर होते हैं, देवी इस अद्भुत भक्ति से प्रसन्न होकर राम को विजयी होने का वरदान देती और उन्हीं के शरीर में अंतलीन हो जाती है ।

बंगाल में शक्ति पूजा का प्रचार बहुत अधिक है उधर प्रदेश में वैसा नहीं है तथापि शक्ति पूजा का यह प्रसंग उठाने का जो प्रयास निराला ने किया है उसके मूल में लोकाख्यान के माध्यम से कुछ मौलिक और नवीन अर्थों की व्यंजना ही उनका अभीष्ट है ।

तुलसी के "रामचरितमानस" में इस प्रसंग का कोई उल्लेख नहीं मिलता क्योंकि तुलसी के राम नर रूप में भगवान होने के नाते सर्व शक्तिमान है, उनके प्रति जड़ चेतन मय संपूर्ण प्रकृति उदार रहती है, किन्तु निराला ने राम को गरिमावान चरित्र से संपन्न होकर भी साधारण मानव रूप में प्रस्तुत किया है, इसीलिए मनोवैज्ञानिक कारणवश शक्तिपूजा का प्रसंग उनके चरित्र से जोड़ा है ।

राजवैभव में पले इस कोमल स्वभाव के मनुष्य के लिए वनवास जीवन के उन दुःखों को सहज ही सहन कर सकना कठिन होता जिनका उल्लेख तुलसी ने "मानस" में किया है, किन्तु राम को लीला मात्र के लिये शरीर धारण करने वाला बताकर तुलसी इस प्रकार की असंगति से बच गए हैं । निराला आधुनिक युग के अर्थात् क्रांति युग के कवि हैं, वे आधुनिक जीवन में इस प्रकार के उतार चढ़ावों की संभावना को स्वीकार करते थे । इसीलिए उन्होंने राम की स्वभावगत कोमलता और उनके जीवन की आपदाओं की परस्पर सूक्ष्म संगति बैठाने की चेष्टा में उनके द्वारा शक्ति की पूजा करवाई है । यह शक्ति पूजा वस्तुतः मूर्ति पूजा नहीं है, इस शक्ति साधना के द्वारा वस्तुतः राम अपने भीतर आत्म शक्ति का संचय करते हैं । इसका प्रमाण है आपातकाल में राम द्वारा सीता का स्मरण । सीता सदैव ही राम की प्रेरक शक्ति रही, विपत्ति के समय में उनको याद करना नैसर्गिक है । सीता के साथ ही कवि ने राम को धनुर्भंग प्रसंग का स्मरण कराया है, यह भी राम को उनकी आत्म शक्ति का स्मरण कराने के उद्देश्य से ही हुआ है ।

अनुष्ठान के अंतिम क्षण में राम का अपना नयन-कमल चढ़ाने को

तत्पर हो जाना सांकेतिक रूप में उनके भीतर जागनेवाली दृढ़ता को प्रकट करता है। निर्भीक होकर आत्म बलिदान को तैयार हो जाना ही नवीन शक्ति के उदय का परिचायक है और आत्मशक्ति का उदय ही विजय का वरदान है। इस भाँति इस प्रसंग में कवि ने अत्यंत गूढ़ और चमत्कारी व्यंजना भर दी है। नेत्र अर्पित करने की बात वही व्यक्ति सोच सकता है जो अपनी देह के प्रति निरासक्त अर्थात् योगी हो जाये और जो योगी है, निष्काम कर्म करनेवाला है, वह सदैव गौरवमय है, उसके लिये पराजय का कोई महत्व ही नहीं रह जाता। इस प्रकार लोक-प्रचलित कथा में मनोविज्ञान और दर्शन का समावेश करके निराला ने उसे मौलिक और नवीन आभामय बना दिया है।

उपर्युक्त संपूर्ण कथा-प्रसंग का एक प्रतीकार्थ भी ग्रहण किया जा सकता है, जिसकी ओर दूधनाथ सिंह ने निराला पर लिखी अपनी पुस्तक में संकेत किया है।[१] वह प्रतीकार्थ है विदेशी शक्ति रूपी रावण के हाथों से राष्ट्र रूपी सीता की मुक्ति की चिन्ता जो निराला ने समसामयिक जीवन की गंभीरतम समस्या थी। राष्ट्रीय मुक्ति के लिए निराला ने गांधीवादी सिद्धान्तों का अनुसरण न करके शक्ति की साधना को ही अधिक महत्वपूर्ण माना। निराला के राम राष्ट्र की स्वाधीनता के लिए तत्पर राष्ट्र प्रेमी जन-नायकों का प्रतिनिधित्व करते हैं। इस रूप में इस रचना को एक नया सामाजिक ऐतिहासिक धरातल प्राप्त हो जाता है और उसका संबंध युग-जीवन से स्थापित हो जाता है। राष्ट्रीय मुक्ति की चिन्ता का यह नया अर्थ पूर्व प्रचलित आख्यानों से भिन्न, राम के चरित्र को नूतन और आधुनिक परिप्रेक्ष्य में रखने में सफल हुआ है।

इसके अतिरिक्त दूधनाथ सिंह के अनुसार "राम की शक्ति-पूजा" में राष्ट्रीय मुक्ति के ऐतिहासिक समसामयिक अर्थ की प्रतिष्ठा से भी अधिक सघन और महत्वपूर्ण अर्थ राम के चरित्र के माध्यम से कवि की अपनी ही अखण्ड रचनात्मक विजय की पहचान है। + + + + निराला ने राम के संशय, उनकी खिन्नता, उनके संघर्ष और अंततः उनके द्वारा शक्ति की मौलिक कल्पना और साधना तथा अंतिम विजय में अपने ही रचनात्मक जीवन और व्यक्तिगतता के संशय, अपनी

१- दूधनाथ सिंह - निराला - आत्महंता आस्था, पृष्ठ १३८।

रचनाओं के निरंतर विरोध से उत्पन्न आन्तरिक खिन्नता, फिर अपने संघर्ष अपनी प्रतिभा को अभ्यास ,अध्ययन और कल्पना ऊर्जा द्वारा एक नयी शक्ति के रूप में उपलब्ध और प्रदर्शित करके अंततः रचनात्मकता की विजय का घोष ही इस कविता में व्यक्त किया है ।'[१]

आत्म साक्षात्कार वाले इस नए अर्थ से न पहला प्रतीकार्थ बाधित होता है और न प्रत्यक्ष कथा पर ही कोई विपरीत प्रभाव पड़ता है,अतएव इसको स्वीकार कर लेने से इस रचना की गरिमा में वृद्धि ही होती है । इन प्रतीकार्थों द्वारा कवि निराला की मौलिक प्रतिभा उद्भासित होती है क्योंकि राम द्वारा शक्ति पूजा का प्रसंग भले ही बंगला काव्यों में अथवा अन्यत्र लोकाख्यानों में प्राप्य हो, किन्तु उसके माध्यम से कवि ने जो नवीन सूक्ष्म उद्भावनायें की है, वे उसकी निजी संपत्ति है ।

इस आख्यान में वर्णित मूल कथा प्रसंग लोक विश्वास से गृहीत होते हुए भी यह कविता लोक संवेदना को छू पाने में असफल रहती है । कारण है उसकी भाषा, जो संस्कृत गर्भित होने के कारण कहीं कहीं अत्यंत क्लिष्ट हो गई है । अतएव उसे समझ पाना सर्वसाधारण की शक्ति से परे है उदाहरण के लिए -

" राघव -लाघव -रावण-वारण गत युग्म प्रहर
उद्धत लंकापति मर्दित-कपि-दल-बल-विस्तर
अनिमेष राम विश्वजिद् दिव्य-शर-भंग-भाव-
विद्धांग-बद्ध-कोदण्ड-मुष्टि-खर-रुधिर स्राव
रावण-प्रहार-दुर्वार-विकल-वानर- दल- बल
मूर्च्छित सुग्रीवांगद-भीषण-गवाक्ष-गय-नल -2".

' बार की भाषा' में अभिव्यक्ति का यह ढंग जिसमें पूरे पूरे प्रसंगों को एक दो शब्दों में कह दिया गया है, उत्कृष्ट काव्य शिल्प का नमूना कहा जा सकता है, किन्तु 'रावण प्रहार दुर्वार विकल' वानरों के से साथ युद्ध क्षेत्र से लौटे 'विद्धांग बद्ध-कोदंड-मुष्टि-खर-रुधिर स्राव' राम की हृदयगत व्याकुलता को समझ पाने में एक सामान्य व्यक्ति असमर्थ ही रहेगा। भाषा की दुरूहता और कठिन

१- दूधनाथ सिंह - निराला - आत्महंता आस्था, पृष्ठ १४७ ।

२- सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला - राग विराग - राम की शक्ति पूजा,पृष्ठ ६२

श्रम-साध्य शैली है फलस्वरूप लोककथा का आधार ग्रहण करके भी लोक कथा की मिठास और सरलता इस रचना में अप्राप्य है । इसके द्वारा निराला की प्रबंध क्षमता का परिचय अवश्य मिलता है । इस रचना की कथावस्तु अत्यंत संक्षिप्त है, और तदनुकूल इसका कलेवर भी लघु है अन्यथा अपने आन्तरिक गुणों की दृष्टि से इसे महाकाव्य की समकक्षी कहा जा सकता है । पाश्चात्य साहित्य में इस प्रकार की रचनाओं का उल्लेख मिलता है, जो अपने संपूर्ण रूपाकार में "महाकाव्य" न होती हुई भी महाकाव्योचित वैशिष्ट्य से पूर्ण होती है ।"[१]

सीमित परिधि में भी व्यापक एवं विराट प्रसंगों की योजना द्वारा जिस महत्व, गरिमा एवं औदात्य की सृष्टि "राम की शक्ति पूजा" में निराला द्वारा की गई है, वह उनके कवि रूप की महत्वपूर्ण उपलब्धि कही जा सकती है ।

अंतर्द्वन्द्व युद्ध आदि के गंभीर प्रसंगों से युक्त इस लम्बी कविता को निराला ने आदि से अन्त तक २४ मात्राओं वाले चरणों में बांधा है । यह भी निराला की महत्वपूर्ण विशेषता है, कि एक ओर उन्होंने छंद-बंधन को तोड़कर मुक्त छंद में रचनायें की, दूसरी ओर जहां उन्होंने छंद-बंधन को स्वीकार किया है वहां उसकी मर्यादा को पूरी तरह निभाया है । छायावाद के अन्य कवियों की भांति श्रम परिहार हेतु उन्होंने छंद के चरणों को छोटा या बड़ा न करके सर्वत्र उन्हें सम गति से चलने दिया है । छंदोधार दोष में कवि की मौलिकता को दृष्टि में रखते हुए इस कविता में प्रयुक्त छन्द को रचना के नाम के आधार पर "शक्ति पूजा छंद" भी कहा गया है ।[२] वैसे यह "शक्ति पूजा छंद" शास्त्रीय दृष्टि से "रोला छंद" से बहुत मिलता है ।

सारांशतः "राम की शक्ति पूजा" आख्यानक काव्यों की कोटि में होती हुई भी निराला की मौलिक सृष्टि है ।

१- L. Abercrombie - The Epic - page 52.

" But as a poem may have lyrical qualities, without being a lyric , so a poem may have epical qualities without being an Epic ."

२- पुत्तूलाल शुक्ल - आधुनिक हिन्दी काव्य में छंद योजना, पृष्ठ २६० ।

तुलसीदास - यह भी निराला की महत्वपूर्ण रचना है । लोक विश्वासों में अब तक प्रचलित तुलसीदास का प्रारंभिक स्त्री प्रेमी रसिक रूप उसकी कथा का मूलाधार है ।

कुछ समीक्षकों[1] ने 'तुलसीदास' को खण्ड काव्य की परंपरा में स्थान दिया है । निस्संदेह इसकी कथा का स्वरूप खण्ड काव्यों जैसा है शैली भी उदात्त और गरिमामयी है किन्तु वह इतिवृत्त कथन की शैली न होकर मनोविश्लेषण है।तुलसी के जीवन का स्थूल खण्ड चित्र प्रस्तुत करना मात्र इसमें कवि का लक्ष्य नहीं है, वरन् तुलसी की आत्म चेतना के विकास का सूक्ष्म अंत विश्लेषण करने में ही उसने अधिक रुचि दिखाई है । अतएव आभ्यान्तरिक अभिव्यक्ति की प्रधानता के कारण इसे गीति काव्य के अन्तर्गत रखना अधिक उपयुक्त जान पड़ता है ।

निराला ने 'तुलसीदास' में स्थान-स्थान पर किंवदंतियों के उल्लेख में पर्याप्त रुचि दिखाई है, जिससे उनका लोककथाओं के प्रति झुकाव प्रकट होता है और इस झुकाव के कारण ही यह कृति आख्यानक काव्यों की श्रृंखला की कड़ी बनती है । वैसे कुल मिलाकर यह निराला की एक विशिष्ट प्रयोगात्मक रचना है । शास्त्रीय ढंग के आख्यार्थ निरूपक वर्णन प्रधान खण्ड काव्यों से भिन्न, अपने मूल रूप में भावात्मक होते हुए भी यह खण्ड काव्य की विधा के बहुत निकट है,और जैसा कि प्रारंभ में ही कहा जा चुका है प्रगीतात्मक प्रबंध की संज्ञा उन रचनाओं को ही दी गई है जो प्रगीततत्व और प्रबंधतत्व दोनों से संयुक्त होने के कारण गीतिकाव्य और प्रबंध काव्य के बीच की कड़ी बनते हैं ।

'राम की शक्ति पूजा' की भाँति ही 'तुलसीदास' में भी स्थूल घटना प्रसंगों को नगण्य रूप देकर प्रचलित लोककथा के आवरण में कवि निराला ने अपने विचारादर्शों को वाणी दी है । प्रचलित कथाओं में कवि द्वारा यह स्वात्म प्रकाश ही इन कृतियों की मौलिकता और कवि का लक्ष्य है ।

'तुलसीदास' काव्य का प्रारंभ चित्रकूट की सुरम्य स्थली में गंभीर चिन्तन में निमग्न तुलसीदास के चित्र से होता है । प्रकृति चिरकाल से मनुष्य को अपनी क्षुद्रताओं से ऊपर उठने की प्रेरणा देती रही है । प्रकृति के सान्निध्य से

१- प्रतिमाकृष्णाबल - छायावाद का काव्य शिल्प,पृष्ठ १३० ।

तुलसीदास के भी उज्ज्वल संस्कार जाग उठते हैं और उनका ध्यान देश और समाज की दुरावस्था की ओर आकर्षित होता है -

" भारत के नभ का प्रभापूर्य
शीतलच्छाय सांस्कृतिक सूर्य
अस्तमित आज रे - तमस्तूर्य दिग्मण्डल ।"[१]

देश की उज्ज्वल संस्कृति का अस्तप्राय सूर्य और विलासिता का बढ़ता हुआ अंधकार उनके हृदय को घोर चिन्ता से आपूर्ण कर देता है । वे विचार करते हैं कि ऐसी विषम स्थिति में प्रकृति के साथ मानव जीवन का क्षीण होता हुआ संबंध सृष्टि के लिये कल्याणकारी हो सकता है । तुलसीदास इस संबंध की पुनर्प्रतिष्ठा के इच्छुक हैं वे देश को उसकी दैन्यमयी स्थिति से उबारने की युक्ति सोचते हैं । किन्तु सहसा प्रिया-रत्नावली की छवि उनके मानस चक्षुओं के सामने उभर आती है और जाते हो कहाँ ?" कहकर उनके विचारों के बढ़ते हुए कदम रोक देती है । प्रकृति के साथ उन्मुक्त रूप से सात्विक विचारों के आदान-प्रदान में लीन तुलसीदास का हृदय पत्नी के स्नेह पाश में उलझकर ठहर जाता है ।

इसी स्थान पर कवि प्रसंग बदलकर प्रचलित किंवदंती का आधार लेकर अत्यंत सहज ढंग से रत्नावली के भाई का बहन के घर आना और माता पिता का संदेश सुनाना, रत्नावली के हृदय में मायके का मोह जागना, पति की अनुपस्थिति में उनकी आज्ञा के बगैर ही रत्नावली का भाई के साथ प्रस्थान, तुलसीदास का घर आकर पत्नी को न पाना और उसकी खोज में तुरंत ससुराल पहुंचना, वहाँ पत्नी से भेंट होने पर उससे मिलनेवाली धिक्कार आदि घटनाओं से संबंधित वृत्त सुनाता है । किन्तु यह वृत्त कथन कवि का प्रतिपाद्य नहीं है । इन घटनाओं का महत्त्व तुलसी के अंतर्मन में व्याप्त विचारों के ऊहापोह के उद्दीपन या प्रतीक रूप में है । स्वतंत्र रूप में यह घटनाएं महत्त्वहीन तथा गौण है । रत्नावली से संबंधित उपर्युक्त विवरण का लक्ष्य केवल इतना ही था जो निम्न पंक्तियों में प्रकट हुआ है -

" जागा जागा संस्कार प्रबल
रे गया काम तत्क्षण वह जल
आनंद रहा, मिट गए द्वन्द्व बंधन सब ।[२]

१- सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला - तुलसीदास,पृष्ठ ३ ।
२- सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला - अपरा, तुलसीदास,पृष्ठ १७४ ।

पत्नी की फटकार सुनकर मोहासक्त तुलसीदास के उज्ज्वल संस्कार जाग उठते हैं , उनके भीतर नवीन आत्मचेतना का उदय होता है । इस नाटकीय परिवर्तन को बड़े कौशल से कवि ने काव्य की पृष्ठभूमि से जोड़ा है । आज का प्रबुद्ध पाठक इस बात पर विश्वास नहीं कर सकता कि मात्र किसी की एक बार की फटकार किसी व्यक्ति के जीवन को सहसा और पूर्णरूपेण बदल सकती है । किन्तु पृष्ठभूमि में व्यक्त तुलसीदास के मानसिक चिन्तन को याद कर उसके सामने यह स्पष्ट हो जाता है कि पत्नी की फटकार तो केवल बहाना थी, तुलसीदास पहले से ही त्यागपूर्ण पथ के पथिक बनने के इच्छुक थे । मौलिकता का यह रंग भरकर निराला ने पुरानी कथा को नयापन ही नहीं दिया, वरन् अपने युग के साथ उसका संबंध भी जोड़ दिया है । स्त्रैण तुलसीदास के विचारों में क्रान्तिकारी परिवर्तन दिखाकर और उनके द्वारा देश की दैन्यपूर्ण स्थिति का चित्र प्रस्तुत करके उन्होंने तत्कालीन समाज को भी स्त्रैणता (जो कायरता की प्रतीक है) से ऊपर उठकर देश-प्रेम और भारतीय संस्कृति के पुनरुद्धार की उज्ज्वल प्रेरणा दी है । इस रूप में " तुलसीदास " का पुराना आख्यान पुराना होकर भी नया और साधारण होकर भी असाधारण बन गया है ।

" तुलसीदास " की शैली अप्रतिहत वेग से चलती है, प्रसंगानुकूल कहीं वह ओजमयी दिखाई देती है, कहीं प्रसादगुण युक्त और कहीं माधुर्यमयी । स्थूल कथा सूत्र की क्षीणता होते हुए भी मन:स्थितियों के घात-प्रतिघात का सूक्ष्म सचित्र विश्लेषण प्रस्तुत करके कवि ने इसमें जिस महाकाव्योचित सक्रियता एवं सघनता की पुष्टि की है वह उसके काव्य शिल्प की चरम उपलब्धि है ।

" भाषा " सर्वत्र भावों की अनुवर्तिनी रही है, गंभीर प्रसंगों में अत्यंत क्लिष्ट संस्कृत मिश्रित भाषा व्यवहृत हुई है, यथा -

" भारत के नभ का प्रभापूर्य
शीतलच्छाय सांस्कृतिक सूर्य
अस्तमित आज रे - तमस्तूर्य दिग्मण्डल "[1]

विभिन्न स्थलों पर मुहावरेदार सामान्य जनभाषा का प्रयोग हुआ है -

" लेते सौदा जब खड़े हाट
तुलसी के मन आया उचाट ,

1- सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला - तुलसीदास, पृष्ठ ३ ।

सोचा अब किसके घाट उतारे इनको
जब देखो सब द्वार पर खड़े
उधार लिये हम चले बड़े
दे दिया दान तो बड़े पड़े अब किन को ?"[1]

इन दोनों के मध्य भाषा का एक और रूप भी उपलब्ध होता है जिसे हम काव्य भाषा का सहज रूप कह सकते हैं जैसे -

" आयत दृग, पुष्टदेह गत भय
अपने प्रकाश में निःसंशय
प्रतिभा का मंद स्मित परिचय संस्मारक "[2]

अथवा -

"खोलती मृदुल दल बंद सकल
गुदगुदा विपुल धारा अविकल
बह चली सुरभि की ज्यों उत्कल, निःशूला"[3]

एक ही कृति में भाषा के यह विविध प्रयोग भाषा के भंडार पर निराला के आधिपत्य के उद्घोषक हैं ।

" तुलसीदास" की छंद योजना में निराला ने अपूर्व सफलता प्राप्त की है । आख्यान की गति के साथ छंद ने पूर्णतया सहयोग किया है । आद्यन्त एक ही प्रकार का छंद व्यवहृत हुआ है जो अपने प्रवाह में प्रसिद्ध चौपाई ,छंद से मिलता जुलता है, किन्तु अंत्यानुप्रास की मौलिकता के कारण उसे पूरी तरह शास्त्रीय रूप नहीं दिया जा सकता ।" तुलसीदास" में जो गरिमा और महाकाव्योचित औदात्य उदित होता है उसका बहुत कुछ श्रेय सफल छंद योजना को ही है ।

उपर्युक्त रचनाओं के विवेचन के आधार पर समग्रत: यह कहा जा सकता है कि आख्यानक काव्य की परंपरा छायावादी कवियों की देन नहीं है

१- सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला - तुलसीदास, पृष्ठ ३७ ।
२- सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला - तुलसीदास, पृष्ठ ६ ।
३- सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला - तुलसीदास,पृष्ठ ४८ ।

किन्तु इस क्षेत्र में किये गये उनके प्रयोग मौलिक हैं । पूर्व युगों में ही नहीं, आधुनिक युग में भी छायावाद के पूर्व आख्यानक गीतियों की रचना कुछ कवियों द्वारा की गई । सियाराम शरण गुप्त की " एक फूल की चाह " किसी लोक प्रसिद्ध गाथा पर आधारित न होकर भी आख्यानक गीति का सुन्दर उदाहरण है ।

आख्यानक गीति का सर्वश्रेष्ठ उदाहरण प्रस्तुत करनेवाली रचना सुभद्राकुमारी चौहान की " झाँसी की रानी " कही जा सकती है । सुभद्रा जी ने प्रचलित कथा को कलात्मक रूप दे दिया है और -

" बुंदेले हर बोलों के मुँह हमने सुनी कहानी थी ।
खूब लड़ी मरदानी वह तो झाँसीवाली रानी थी ।।"

लिखकर झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई की अद्भुत वीरता, अद्वितीय तेज और अपूर्व साहस का गान किया है । भाषा की प्रासादिकता , लय, प्रवाह की तरलता और ओजपूर्ण वर्णन शैली ने इस रचना को अत्यंत हृदयग्राही बना दिया है ।

छायावादी कवियों ने आख्यानक काव्य रचना के अन्तर्गत प्राय: लोक प्रचलित कथाओं का आधार ग्रहण किया है किन्तु उनका अन्तिम लक्ष्य कथा वर्णन नहीं रहा है, वरन् कथा के माध्यम से वैयक्तिक विचारों अथवा मनोमंथन को उन्होंने वाणी दी है । इसके अतिरिक्त अपनी रचनाओं को सामान्य जन का कंठहार बनाने की चिन्तना के बदले उनमें शैली शिल्पगत विविध प्रयोग करने की प्रवृत्ति ही प्रमुख रही है । भाषा की दुरुहता, शैली का आभिजात्य और सूक्ष्म कलात्मकता ने मिलकर छायावादी आख्यानक काव्यों को सामान्य, लोक-कथाओं पर आधारित आख्यानक काव्यों की परंपरा से बहुत दूर कर दिया है ।

गीतिनाट्य (Opera)-

गीति तत्व एवं नाट्यतत्व के सम्मिश्रण से बनी यह काव्य-विधा आधुनिक युग की अत्यंत प्रचलित काव्य विधा है ।

गीति नाट्यों का हिन्दी कविता में विकास पाश्चात्य साहित्य के आपेरा (Opera) के प्रभाववश माना जा सकता है । इस प्रकार की रचनाओं का बाह्य स्वरूप काव्यात्मक और संगीत प्रधान रहता है किन्तु उसकी शैली संवादयुक्त

और अभिनय के योग्य होती है[1]। उसकी शब्दावली सरल और स्पष्ट होनी चाहिए।[2]

पाश्चात्य प्रारंभिक गीतिनाट्यकारों - बायरन, कीट्स, शैली आदि ने अतुकान्त छन्दों में गीतिनाट्यों की रचना की, किन्तु मात्राओं का बंधन संवादों के अखण्ड प्रवाह में तुक के अभाव में भी बाधक होता था अतएव परवर्ती कवियों ने इस विधा के लिये मुक्त छंद को अधिक उपयुक्त माना। तथापि किसी प्रकार का भी छंद हो, गीतिनाट्य का रूप विधान छंदोबद्ध ही होता है। गीतिनाट्य में छंद का प्रयोग अलंकृति मात्र के लिये नहीं होता वरन् उसके द्वारा नाटकीय प्रभाव में वृद्धि होती है।[3]

तात्पर्य यह कि गीतिनाट्य अभिनेय गुणों से युक्त विशिष्ट काव्य रचना है, भावों के अंत: संघर्ष को जिसमें लय संयुक्त, सरल, क्रियात्मक और संवादमयी भाषा में प्रस्तुत किया गया हो।

गीतिनाट्य की परंपरा का जन्म छायावाद के पूर्व हिन्दी काव्य में हो चुका था। नरोत्तमदास का "सुदामाचरित्र" नाटकीय तत्वों से पूर्ण गीति रचना का सुन्दर उदाहरण है। मैथिलीशरण गुप्त का "कुणाल", मंगल प्रसाद विश्वकर्मा का "उत्तरा और अभिमन्यु," "श्रीकृष्ण और सुदामा"[4], आनंदी प्रसाद का चाणक्य और चन्द्रगुप्त"[5] आदि इसी परंपरा के अन्तर्गत है।

---

1. Opera - Encyclopaedia Britanica, page no. 802-803.
" A drama set to music as distinguished from plays in which music is merely incidental. Two qualities take precedence of drametic power as conditions for success in opera. One is the theatrical sense and the other-the histrionic sense. They are inseperable but not identical."

2. W.P.Ker- Form and Style in Poetry(Twenty four lectures -XVI- Poetic diction) page 170.
"The business of dramatic poet is not to be too emphatic through mere words, mere vocabulary, he must use a vocabulary simple and clear.

2. T.S.Eliot - Poetry and Drama, page 19.
" ...... verse is not merely a formulation, or an added decoration, but that it intensifies the drama".

४- सरस्वती - दिसंबर, १६२७ तथा जनवरी, १६२८।

५- सरस्वती, मार्च, १६२८।

छायावाद युग में भी कुछ गीतिनाट्यों की रचना हुई, जिनमें प्रसाद का " करुणालय " निराला का " पंचवटी प्रसंग " और भगवतीचरण वर्मा का " तारा " उल्लेखनीय है । किन्तु इस क्षेत्र में सर्वाधिक सफलता निराला को मिली है

निराला के पंचवटी प्रसंग " में गीतिकाव्य की भावमयता के साथ नाटकीय तत्वों का सुन्दर सामंजस्य उपस्थित हुआ है । उसकी कथा का आधार रामचरितमानस से गृहीत है किन्तु शूर्पणखा के स्वरूप में किंचित परिवर्तन करके कवि ने उसे अधिक मानवीय और स्वाभाविक बना दिया है । उदाहरणार्थ, रामचरितमानस की शूर्पणखा राम और लक्ष्मण द्वारा उपेक्षित होकर अपना विकराल रूप प्रकट करती है

" तब खिसियानि राम पहिं गई, रूप भयंकर प्रकटत भई ।"[१]

उसका विकराल रूप देखकर सीता भयभीत हो उठती है । सीता को भयभीत देखकर राम लक्ष्मण को उसके नाक कान काटने के लिये संकेत करते हैं -

" सीतहि सभय देखि रघुराई, कहा अनुज सन सयन बुझाई " [२]

अर्थात् सीता भयभीत न होती तो राम शान्त ही रहते, किन्तु पंचवटी प्रसंग " के राम शूर्पणखा के व्यवहार से क्षुब्ध होकर उसे दण्ड देने की बात सोचते हैं । क्रोधाभिभूत शूर्पणखा राम को जी भरकर धिक्कारती है -

काल नागिनी सी लगी रहूँगी मैं घात में
तुझे भी रुलाऊँगी
जैसा है, रुलाया मुझे ।"[३]

शूर्पणखा के दुर्वचनों से पाठक या दर्शक एक प्रकार की उत्तेजना से भरकर मन ही मन उसे दण्ड दिये जाने की प्रतीक्षा करता है और इस अवसर पर राम का व्यवहार उसे अत्यंत सहज और औचित्यपूर्ण लगता है -

राम - अभी तो रुलाया नहीं
इच्छा यदि है तो तू
(लक्ष्मण को इशारा)
लक्ष्मण - रो अब भी सोलकर ।" (नाक कान काटते हैं)।[४]

१- तुलसीदास - रामचरितमानस, अरण्य काण्ड ६।।१७
२- तुलसीदास - रामचरितमानस, अरण्य काण्ड १०।१७
३- सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला - परिमल, पंचवटी प्रसंग, पृष्ठ २५६ ।
४- सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला - परिमल, पंचवटी प्रसंग, पृष्ठ २५६ ।

तुलसी के राम का व्यवहार मानवीय संवेदना न जगाकर उनके अंतर्यामी रूप को ही प्रकट करता है । अतएव उसका संबंध अलौकिक विश्वास से है । पंचवटी प्रसंग में अलौकिक विश्वास मानवीय संवेदना के माध्यम से प्रकट हुआ है । निराला की कल्पना नाटकीय सफलता के अधिक निकट है क्योंकि रंगमंच पर लक्ष्मण के शूर्पणखा का विकराल रूप दिखाना प्रायः असंभव होता, अतएव इस अभाव की पूर्ति और नाक कान काटे जाने का औचित्य, शूर्पणखा से दुर्वचनों का प्रयोग कराकर सिद्ध किया गया है ।

पांच खण्डों में विभाजित यह रचना आद्यंत संवाद शैली में ही लिखी गई है । इसकी सामासिक शब्दावली भी नाटकीय सघनता की उत्पत्ति में सहायक हुई है । तथापि गीतितत्व इसमें अपेक्षाकृत अधिक मुखर रहा है । अभिनेय गुणों से युक्त होती हुई भी यह रचना " दृश्य " की अपेक्षा " पाठ्य " अधिक है, नाट्यतत्व इसका प्राणभूत तत्व नहीं बन पाया है क्योंकि प्रत्यक्ष दृश्य विधान की इसमें कमी है।

आंसू :-

जैसा कि प्रारंभ में ही कहा जा चुका है, जयशंकर प्रसाद का " आंसू " एक ऐसी विशिष्ट रचना है जो किसी भी पूर्व प्रचलित काव्य रूप के अन्तर्गत नहीं रक्खी जा सकती । समीक्षक वर्ग में " आंसू " के विषय में तीन प्रकार के मत प्रचलित हैं । कुछ लोग इसे " मुक्तक काव्य " के अन्तर्गत रखते हैं । कुछ लोगों ने इसे एक लम्बा प्रगीत माना है और अधिकांश व्यक्ति इसे खण्ड काव्यों की कोटि में रखते हैं ।

आंसू - मुक्तक काव्य ? -

मुक्तक काव्य की मुख्य दो विशेषतायें मानी गई हैं - पूर्वा पर प्रसंग निरपेक्षता और प्रत्येक छंद की स्वतः पूर्णता ।

" आंसू " का बाह्य रूप मुक्तक काव्य के बहुत निकट है । इसमें १४-१४ मात्राओं वाले चार चरणों से निर्मित छंद पूर्वा पर प्रसंग से मुक्त होते हुए भी पाठकों को रस का आस्वादन कराने में सक्षम है। प्रत्येक छंद एक स्वतन्त्र अर्थपरंपरा से संयुक्त है । किन्तु मुक्तक काव्य में रचनाकार का दृष्टिकोण वस्तुपरक होता है, और वह अलंकृति चमत्कार आदि में विशेष रुचि लेता हुआ निर्वैयक्तिक रचनायें प्रस्तुत करता है, जबकि आंसू इसके सर्वथा विपरीत है ।

" आंसू " की प्रारंभिक पंक्तियां -

" जो घनीभूत पीड़ा थी मस्तक में स्मृति सी छाई ,
दुर्दिन में आंसू बनकर वह आज बरसने आई ।"

ही उसके वास्तविक रूप का परिचय दे देती हैं । क्योंकि इसमें कवि तटस्थ द्रष्टा नहीं है उसने जिस पीड़ा को कभी स्वयं झेला था वही " आंसू " के रूप में अभिव्यक्त हुई है ।

आंसू भाव प्रधान और विशुद्ध आत्मपरक रचना है । ये विशेषतायें प्रगीत काव्य की है ।" आंसू " में प्राप्य बाह्य अलंकृति और अप्रस्तुत विधान मस्तिष्क को प्रभावित करनेवाला है, किन्तु उसमें एक आन्तरस्पर्शी करुणा की धारा भी प्रवहमान रहती है, हृदय जिसमें गहराई तक डूब जाता है, आंसू की अभिव्यंजना शैली में तटस्थता और स्थिरता के बदले भावनाओं का तरल प्रवाह दिखाई देता है, इसके अतिरिक्त उसमें प्रत्यक्ष न सही, परोक्ष रूप में एक सूक्ष्म कथा का क्रमिक विकास भी लक्षित होता है । यह बातें भी " आंसू " को मुक्तक काव्य की परंपरा से मुक्त करती है।

आंसू एक प्रगीत ? -

आंसू में कवि का आत्मपरक दृष्टिकोण उसे प्रगीत काव्य के निकट रखता है। प्रगीत काव्य की अन्य विशेषतायें वैयक्तिकता , भावावेग और गेयता भी उसमें पूर्णरूपेण विद्यमान है । कवि स्पष्ट स्वीकारोक्ति करता है -

" ये सब स्फुलिंग है मेरी इस ज्वालामयी जलन के
कुछ शेष चिन्ह है केवल मेरे उस महा मिलन के ।"[१]

अनुभूति की तीव्रता ने " आंसू " को अत्यंत भावप्रवण बना दिया है, उदाहरणार्थ -

" लहरों में प्यास भरी है, है भंवर पात्र भी खाली
मानस का सब रस पीकर लुढ़का दी तुमने प्याली ।"[२]

१- जयशंकर प्रसाद - आंसू , पृष्ठ ६ ।
२- जयशंकर प्रसाद- आंसू , पृष्ठ २८ ।

किन्तु यह भाव प्रवणता केवल स्वतंत्र छंदों में ही सीमित नहीं है वरन संपूर्ण रचना में भावों की एकान्विति लक्षित होती है और उनका समग्र रूप से हृदय पर प्रभाव पड़ता है । समस्त स्फुट छंद एक ही भाव सूत्र में पिरोये हुए जान पड़ते हैं ।

" आंसू " की माधुर्य गुण युक्त सुकोमल भाषा, भावनाओं की उत्कटता और शैली की तरलता आदि ने मिलकर उसमें एक ऐसे संगीतात्मक प्रवाह की सृष्टि की है जिसका वेग आदि से अन्त तक अप्रतिहत ही रहता है । छंदों की तुकान्त योजना आंसू को प्रत्यक्षत: गेय रूप देने में सहायक सिद्ध हुई है । इस प्रकार उपर्युक्त लक्षण " आंसू " को प्रगीत काव्य सिद्ध करते हैं ।

" आंसू - एक खण्ड काव्य ? -

" आंसू " अपने आन्तरिक स्वरूप में " प्रगीत " सिद्ध होता है तथापि विशुद्ध प्रगीत से भिन्न इसमें एक सूक्ष्म कथा का निर्वाह और घटनाओं की एक सुसंबद्ध योजना भी दिखाई देती है, जो इस प्रकार है -

> अतीत के किसी असफल प्रणय प्रसंग की पीड़ा कवि के मन को झकझोर देती है और उसकी आंखों से अश्रुधारा प्रवाहित हो उठती है जिसे वह कविता के रूप में संजोता है । स्मृति के माध्यम से वह " प्रिय " से प्रथम परिचय, उसके मादक रूप, मिलन के सुखोल्लास और फिर प्रिय की छलना- निष्ठुरता आदि सभी बातों का बखान करता है । प्रिय के निष्ठुरता-पूर्ण व्यवहार से खंडित हो जानेवाले अपने मधुर सुख स्वप्न से जिस सघन विषाद की अनुभूति उसे होती है, उसे वह दार्शनिक स्तर पर नियति-प्रदत्त मानकर जीवन के अनिवार्य प्रसंग के रूप में स्वीकार कर लेता है । व्यक्तिगत वेदना उसके हृदय का परिष्कार करती है और वह अपनी वैयक्तिक व्यथा को विश्व व्यथा में समाहित कर देना चाहता है । इस प्रसंग में उसे करुणा या व्यथा के सार्वभौम रूप का दर्शन होता है । करुणा को सार्वभौम, सर्वव्यापी और अखिल विश्व को एक सूत्र में बांधनेवाली मानकर अन्त में कवि उससे प्रार्थना करता है कि वह संपूर्ण लोक में सरसता अनुराग और आशा का संचार करे ।

इस संपूर्ण कथा का मूलवर्ती भाव वेदना या करुणा ही है। प्रारंभिक वैयक्तिक करुणा अंत तक पहुंचते पहुंचते वैयक्तिक सीमायें तोड़कर समष्टि में लीन हो जाती है और उसका रूप भी ज्वालामय न रहकर शीतल और आनंददायी बन जाता है। भावनाओं का यह केन्द्रीभूत प्रभाव जो सूक्ष्म कथा के माध्यम से करुणा के रूप में प्रकट होता है, आंसू की प्रबंधात्मकता का पक्षपाती है। किन्तु परंपरागत खण्ड-काव्यों की भाँति आंसू में स्थूल घटनाक्रम का अभाव है। खण्ड काव्य में जीवन का खण्ड चित्र प्रस्तुत किया जाता है, आंसू में कथा का क्षीण आभास मात्र मिलता है। कथा सूत्र भावावेग की प्रखरता में अस्पष्ट और धुंधले धुंधले से रहते हैं।" आंसू " की वर्णन शैली भी साधारण कथात्मक खण्ड काव्यों से भिन्न है। इस भाँति " आंसू " को खण्ड-काव्य मानना युक्ति युक्त नहीं है।

" आंसू " के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए डा० विनय मोहन शर्मा का कथन महत्वपूर्ण है - " इस तरह " आंसू " उन मोतियों की लड़ी के समान है, जिसका प्रत्येक मोती चुनकर रहकर भी चमकता है और लड़ी के तार में गुंथकर भी " आब " देता है।"[1]

वस्तुत: " आंसू " प्रसाद की अथवा छायावाद युग की एक सर्वथा मौलिक प्रयोगात्मक रचना है जिसमें मुक्तक प्रगीत तथा प्रबंध तीनों की विशेषतायें सन्निहित हो गई हैं। इसका रूपाकार मुक्तक जैसा है प्रभावान्विति में यह खण्डकाव्य जैसा है और उसकी आत्मा में प्रगीत तत्व प्रधान है। बाह्य शरीर की अपेक्षा आत्मा का महत्व सदैव अधिक होता है, अतएव " आंसू " को एक विशेष कोटि का प्रगीत मानना ही उचित है। साधारण प्रगीतों से इसके वैशिष्ट्य को दृष्टि में रखकर प्रतिमाकृष्ण बल ने इसे " निबद्ध गीति " की संज्ञा दी है।[2] काव्य शास्त्रीय परंपरा न रखते हुए भी यह नाम इसके रूपाकार को देखते हुए उपयुक्त प्रतीत होता है।

प्रबन्ध काव्य -

अंतर्मुखी दृष्टिकोण, व्यक्तिवाद की उपासना और सूक्ष्म चित्रण की प्रवृत्ति के फलस्वरूप छायावाद युग में प्रबंध काव्यों की रचना अत्यंत सीमित

१- विनयमोहन शर्मा - कवि प्रसाद- आंसू तथा अन्य कृतियां , पृष्ठ ७०।

२- प्रतिमा कृष्णबल - छायावाद का काव्य शिल्प, पृष्ठ ८३।

रूप में हुई । प्रसाद और निराला को छोड़कर शेष सभी कवियों ने गीति काव्य को ही अपनी भावाभिव्यक्ति का माध्यम बनाया । अपने व्यक्तित्व की सीमाओं से ऊपर उठकर समाज को देखने- परखने और उसकी समस्याओं पर धैर्यपूर्वक विचार करने में समर्थ कवि ही प्रबंध रचना में सफल हो सकता है । यह विशेषता केवल " प्रसाद" और " निराला " में ही दिखाई देती है । इनमें भी महाकाव्यकार की प्रतिभा केवल प्रसाद में ही थी । निराला ने " राम की शक्ति पूजा " और तुलसीदास में महा-काव्योचित गरिमामयी शैली में जीवन के खण्ड चित्रों का सफल अंकन करके अपनी प्रबंध क्षमता का परिचय अवश्य दिया है, किन्तु जीवन का समग्र चित्रण करने में उनकी प्रतिभा भी असमर्थ रही ।

खड़ीबोली काव्य परंपरा में प्रबंध काव्यों की रचना का पथ प्रशस्त करने में द्विवेदीयुगीन कवियों का महत्वपूर्ण योग रहा है क्योंकि वह युग साहित्य में " व्यक्ति " नहीं समाज को ही प्रमुख स्थान देता था । अतएव सामाजिक मूल्यों एवं श्रेष्ठ आदर्शों की प्रतिष्ठा ही तद्युगीन साहित्य का लक्ष्य था । महावीर प्रसाद द्विवेदी और श्रीधर पाठक ने प्रारंभ में अनेक संस्कृत और अंग्रेजी प्रबंध काव्यों के भावानुवाद हिन्दी में प्रस्तुत किये । तत्पश्चात् रामनरेश त्रिपाठी ,अयोध्यासिंह उपाध्याय " हरिऔध ", रामचरित उपाध्याय, मैथिली शरण गुप्त, सियाराम शरण गुप्त प्रभृति कवियों ने अनेक मौलिक प्रबंध काव्य लिखे, जिनमें प्राचीन परिपाटी पर परंपरागत आदर्शों की ही प्रतिष्ठा मिलती है । केवल " हरिऔध " के " प्रिय प्रवास " और मैथिली शरण गुप्त के " यशोधरा " तथा " साकेत " में चरित्र चित्रण और शैली से संबंधित कुछ नवीनतायें लक्षित हुईं । इन कवियों ने उक्त कृतियों को युगीन संदर्भों से जोड़ने का प्रयत्न किया है ।

परंपरागत घिसे पिटे आदर्शों और जर्जर सामाजिक रूढ़ियों से मुक्ति के आकांक्षी छायावादी कवियों के लिए यह प्रायः असंभव ही था, कि वे अपने व्यक्तित्व को भुलाकर अपने " स्व " को ठेस पहुंचाने वाले समाज को अपने अग्रज कवियों की भांति पूजते रहते । वैयक्तिक सुख दुःखमयी अनुभूतियों के प्रकाशन हेतु गीत और प्रगीत की विधा ही उनके लिए अधिक उपयुक्त सिद्ध हुई । तथापि प्रबन्ध

काव्यों की परंपरा को छायावाद युग में भी प्रसाद ने लुप्त होने से बचा लिया ।

"प्रसाद" ने सन् १९१४ में "महाराणा का महत्व" खण्डकाव्य की रचना की । इसका रूप प्रायः आदर्शवादी ही है, वस्तु या शिल्प गत कोई महत्वपूर्ण उपलब्धि इसके द्वारा नहीं होती । इसके बाद उनका 'प्रेम-पथिक' खण्ड काव्य प्रकाश में आया, जिसमें "प्रेम" के परंपरागत त्यागमय स्वरूप की प्रतिष्ठा के साथ साथ शैली की दृष्टि से छायावादी विशेषतायें भी प्रकट हुई । छायावादी काव्य की मानवीय स्वच्छंदतामूलक और सर्वात्मवादी पृष्ठभूमि की झलक सब से पहले इसी कृति में मिलती है । छायावादी काव्य प्रवृत्तियों का पूर्ण प्रतिनिधित्व करनेवाला तथा युगीन जीवन स्थितियों को समग्र रूप में प्रस्तुत करनेवाला महाकाव्य इस काल में केवल एक ही लिखा गया - प्रसाद का "कामायनी" महाकाव्य । कामायनी को छायावाद युग ही नहीं, प्रबन्ध रचना के क्षेत्र में संपूर्ण हिन्दी साहित्य की अत्यंत महत्वपूर्ण उपलब्धि माना जा सकता है । देश-काल की सीमाओं के परे शाश्वत जीवन मूल्यों पर आधारित होने के फलस्वरूप यह महाकाव्य शाश्वत साहित्य ग्रंथों की शृंखला में एक नवीन कड़ी बन गया है ।

कामायनी स्वच्छंदतावादी महाकाव्य है अतएव महाकाव्यों की बनी बनाई प्राचीन कसौटी पर कामायनी को रखकर उसकी जाँच परख करना उसकी प्रकृति के प्रतिकूल है, परन्तु प्राचीन लक्षणों के प्रकाश में कामायनी के पर्यवेक्षण से उसकी स्वच्छंदतावादी प्रकृति को समझने में पर्याप्त सहायता मिलेगी । अतएव महाकाव्य से संबंधित प्राचीन मान्यताओं से अवगत हो लेना अनिवार्य है ।

संस्कृत आचार्यों में भामह, दण्डी, रुद्रट और कविराज विश्वनाथ ने महाकाव्य के स्वरूप पर विस्तारपूर्वक विचार व्यक्त किये हैं[1] किन्तु उनका अलग-अलग विवेचन न करके - सार रूप में कहा जा सकता है कि संस्कृत के आचार्यों के मतानुसार महाकाव्य के नायक को आदर्श चरित्र से संपन्न, देवता अथवा उच्चकुलीन

१- भामह - काव्यालंकार १।।१९।।२३

दण्डी - काव्यादर्श १।।१४।।२०

रुद्रट - काव्यालंकार १६।।२।।२९

विश्वनाथ - साहित्य दर्पण - ६।।३१५।।२४

मनुष्य होना चाहिये । महाकाव्य का कथानक उदात्त, सुसंगठित तथा किसी महत्वपूर्ण घटना पर आधारित होना चाहिये । नायक को चतुर्वर्ग फल की प्राप्ति होना चाहिये अर्थात् जिस महत् उद्देश्य को लेकर महाकाव्य की संरचना हुई है, उसकी पूर्ति नायक के द्वारा दिखाई जाना चाहिये । कथानक को छंदोबद्ध होना चाहिये तथा संपूर्ण कथा का सर्गों अथवा खण्डों में विभाजन होना चाहिए । सर्गों अथवा खण्डों की संख्या आठ से कम नहीं होनी चाहिये । प्रत्येक सर्ग का अंत आगामी कथा की सूचना के साथ होना चाहिये तथा सर्गान्त के छंद का स्वरूप भी अगले सर्ग के छंद से भिन्न रहना चाहिये ।

महाकाव्य में रस की स्थिति अनिवार्य बताई गई है । सभी रसों का समावेश उसमें संभव है, किन्तु श्रृंगार, वीर तथा शान्त में से किसी एक रस की प्रधानता होनी चाहिए । महाकाव्य का लक्ष्य जीवन को उसकी समग्रता में प्रस्तुत करना है, अतः उसमें जीवन के विविध पक्षों का सांगोपांग वर्णन होना चाहिए । महाकाव्य का नामकरण भी महत्वपूर्ण है । नामकरण नायक के नाम पर अथवा वर्णित कथा के आधार पर होना चाहिये । इन प्रधान लक्षणों के अतिरिक्त सज्जन स्तुति, दुर्जन निन्दा , संध्या , रात्रि, सूर्योदय, वन, वाटिका, सरोवर, विभिन्न ऋतुओं आदि का वर्णन, विभिन्न अवान्तर कथाएं, यात्रादि वर्णन, काव्यारंभ में देव स्तुति, आशीर्वचन , मंगलाचरण आदि भी महाकाव्य के गौण लक्षण बताए गए हैं । महाकाव्य में नाट्य संधियों एवं अर्थ प्रकृतियों की भी योजना होना चाहिए क्योंकि इनके द्वारा उसमें शैलीगत औदात्य उत्पन्न होता है ।

महाकाव्य के ये सभी लक्षण संस्कृत महाकाव्यों को दृष्टि में रखकर ही निर्धारित किये गए थे । हिंदी कवियों ने भी वीरगाथा युग से लेकर आधुनिक काल के द्विवेदी युग तक न्यूनाधिक रूप में इन्हीं को आधार मानकर महा-काव्यों की रचना की और हिन्दी महाकाव्यों के मूल्यांकन की कसौटी भी संस्कृत आचार्यों द्वारा निर्दिष्ट यही नियमावली रही है ।

पाश्चात्य साहित्य में अरस्तू से लेकर आधुनिक युगीन समीक्षकों , एबरक्राम्बी, मैकनील डिक्सन, डब्लू० पी० केर , सी० एम० बावरा आदि ने समय समय पर महाकाव्य के संबंध में अपने विचार व्यक्त किये हैं । परस्पर मतभेद रखते हुए भी इन पाश्चात्य विद्वानों द्वारा निर्धारित महाकाव्य के सर्वमान्य लक्षण

सार रूप में इस प्रकार कहे जा सकते हैं ; - महाकाव्य वीर काव्य है, जिसका कथानक लोक प्रसिद्ध तथा युद्ध आदि से संबंधित किसी घटना पर आधारित होना चाहिये । महाकाव्य के " नायक " को वीर असाधारण प्रतिभा संपन्न और महान व्यक्तित्व वाला होना चाहिये । महाकाव्य में जातीय जीवन का व्यापक चित्रण, कथा-विस्तार और वर्णन वैविध्य होना चाहिए । आदि से अन्त तक उसमें एक ही छंद का प्रयोग होना चाहिये । महाकाव्य का उद्देश्य महत् होना चाहिए तथा उसमें कथा वर्णन की भाषा ओजमयी और शैली उदात्तता के गुण से युक्त होना चाहिए ।

भारतीय और पाश्चात्य विचारकों के मतों में जो मुख्य अंतर है, वह यह है कि महाकाव्यों के लक्षण निर्धारित करते समय पाश्चात्य विचारकों के सामने वीर काव्यों की लम्बी परंपरा थी अतएव उन्होंने महाकाव्य को वीर काव्य का पर्याय मानते हुए वीर भावना, युद्ध पराक्रम आदि पर विशेष बल दिया है[१] और असाधारण शूरवीर को ही महाकाव्य का नायक होने योग्य ठहराया है ।

भारतीय महाकाव्यों में " वीर रस " ही नहीं " श्रृंगार अथवा शान्तरस की भी प्रधानता हो सकती है । रुद्रट ने तो सभी रसों को समान महत्व दिया है ।

महाकाव्य की भारतीय और पाश्चात्य दृष्टि का अंतर दो विभिन्न संस्कृतियों का अंतर है । भारतीय संस्कृति की नींव त्याग और वैराग्य की भावनाओं पर रक्खी गई है, जिसके फलस्वरूप भारतीय महाकाव्यों में शील तत्व और नीति तत्वों की प्रधानता दिखाई देती है । यहां पर महाकाव्य का उद्देश्य चतुर्वर्ग फल प्राप्ति है जबकि पाश्चात्य महाकाव्य का " महान " उद्देश्य प्रायः युद्ध से ही संबद्ध दिखाई देता है । भारतीय परंपरा में युद्ध नीति का धर्मनीति में

१- C.M.Bowra - The Epic , page 1.

" An Epic poem is by common consent a narrative of some length and deals with events, which have a certain grandour and importance and came from a life of action, specially a violent action such as war ."

पर्यवसान दिखाया जाता है । रामायण और महाभारत में युद्धों का विशेष चित्रण हुआ है किन्तु उनका अन्तिम लक्ष्य युद्ध नहीं, युद्ध का परिणाम चित्रित करना है । युद्धों का अंत सत्य की असत्य पर विजय के रूप में ही होता रहा है ।

पाश्चात्य जीवन-दर्शन का आधार "भौतिकतावाद" है अर्थात् वहाँ "त्याग" नहीं "संचय" या "भोग" महत्वपूर्ण है । भोगवृत्ति सदैव स्वार्थ-प्रेरित होती है और स्वार्थ का परिणाम संघर्ष द्वन्द्व और युद्ध के रूप में प्रकट होता है । इसी कारण वहाँ पर युद्ध और संघर्ष का चित्रण करनेवाले वीर-भावना प्रधान महाकाव्यों की रचना अधिक हुई ।

भारतीय आचार्यों ने महाकाव्य के शैलीगत सूक्ष्म गुणों का स्थूल संकेत मात्र कर दिया है, उनका सूक्ष्म विवेचन नहीं किया, पाश्चात्य विचारकों ने इस ओर पूरा ध्यान दिया है । अतएव ओजमयी भाषा और उदात्त शैली की स्पष्ट चर्चा की है । शैली की उदात्तता उनके अनुसार असामान्य भाषा प्रयोगों पर निर्भर करती है ।[१] शैली में अप्रतिहत वेग को भी उन्होंने बहुत महत्व दिया है और इसी लिए आदि से अंत तक एक ही छंद के प्रयोग पर बल दिया है जबकि भारतीय मत में समाप्ति में छंद परिवर्तित हो जाना चाहिये ।

इन छोटे मोटे भेदों को छोड़कर पाश्चात्य और भारतीय विचारों में विशेष अंतर नहीं दिखाई देता । महाकाव्य के आन्तरिक गुणों की दृष्टि से दोनों के मतों में पर्याप्त साम्य है अर्थात् महत्वपूर्ण कथानक, नायक का महान चरित्रवाला होना, घटना वैविध्य और जीवन का समग्र चित्रण, छंद बंधन, नायक द्वारा महान उद्देश्य की पूर्ति ,गरिमापूर्ण, भाषा शैली आदि । इस समानता को लक्ष्य करके ही पाश्चात्य विद्वान डिक्सन का कथन है कि महाकाव्य चाहे पश्चिम

१- Aristotle - The Poetics - edited by L.J.Potts, page 48.

" T he virtue of language is to be clear- without being low out of the way usages give dignity and transform the common speach ; by 'out of the way '. I mean loan words, metaphors, extended words and all departures from the standard."

का हो या पूर्व का, उसका रक्त समान होता है । सच्चा महाकाव्य, चाहे किसी जाति द्वारा या किसी भी देश में रचा गया हो, उसके लक्षण सर्वत्र एक जैसे रहेंगे।[१]

किन्तु यह साम्य की बात महाकाव्य के मूलभूत कुछ लक्षणों तक ही सीमित है जिन्हें हम शाश्वत और अनिवार्य लक्षण कह सकते हैं, अन्यथा महाकाव्यों के स्वरूप में निरंतर परिवर्तन होता रहता है । इस परिवर्तन का कारण जीवन के बदलते हुए परिवेश और मापदण्ड होते हैं । आज से सौ दो सौ वर्ष पूर्व हमारे जीवन और समाज का जो रूप था, वह आज नहीं है अतएव जीवन को उसकी समग्रता में चित्रित करनेवाले काव्य रूप - महाकाव्य का स्वरूप भी प्रत्येक युग में समान नहीं हो सकता । संस्कृत के आचार्यों द्वारा निर्धारित महाकाव्य के लक्षण इसी कारण वर्तमान युग में ही नहीं आज से शताब्दी पूर्व लिखे गए रामचरितमानस पर भी पूरी तरह घटित नहीं होते । उदाहरणार्थ, प्राचीन धारणानुसार महाकाव्य में कम से कम आठ सर्ग होना चाहिए जबकि 'मानस' में सात ही काण्ड है । किन्तु इसी आधार पर उसे महाकाव्यों की श्रृंखला से निकाल पाना असंभव है ।

तात्पर्य यह कि महाकाव्य की एक सर्वकालिक परिभाषा अथवा अटल नियमावली निश्चित करना असंभव भी है और असंगत भी । प्रत्येक युग में महाकाव्यों के विश्लेषण हेतु एक नई कसौटी बनाना होगी, अथवा महाकाव्यों के शाश्वत और अनिवार्य तत्वों पर दृष्टि केन्द्रित करना होगी ।

शंभूनाथ सिंह ने अपने शोध ग्रंथ - " हिन्दी महाकाव्यों का स्वरूप विकास " में महाकाव्य के निम्नलिखित लक्षण बताये हैं :-

---

१- M.Dixon - English Epic and Heroic Poetry, page 24.

" Yet Heroic poetry is one, whether of East or West, the North or South, its blood and temper are the same and the true Epic where ever created will be a narrative poem organic in structure, dealing with great actions and great characters in a style commensurate with lordiness of its theme, which tends to idealize these characters and actions and to sustain embellish its subject by means of episode and amplification ".

(१) महदुद्देश्य - महत्प्रेरणा, महती काव्य प्रतिभा

(२) गुरुत्व, गाम्भीर्य और महत्व

(३) महत्कार्य और युग जीवन का समग्र चित्र

(४) सुसंगठित जीवन्त कथानक

(५) महत्वपूर्ण नायक

(६) गरिमामयी शैली

(७) तीव्र प्रभावान्विति और गंभीर रसव्यंजना

(८) अनवरुद्ध जीवनी शक्ति और सशक्त प्राणवत्ता

महाकाव्य के संबंध में आधुनिक युग के अन्य प्रमुख शोधकर्ताओं प्रतिपाल सिंह, गोविन्दराम शर्मा, श्यामनन्दन किशोर आदि ने आधुनिक महाकाव्यों से संबंधित जिन लक्षणों का उल्लेख किया है [१] वे सब शंभूनाथ सिंह द्वारा निर्देशित लक्षणों में अंतर्भुक्त हो जाते हैं। शंभूनाथ सिंह द्वारा गिनाए गए लक्षणों में महाकाव्यों से संबंधित समस्त अनिवार्य और अपरिवर्तनीय, शाश्वत तत्वों का समावेश हो गया है अतएव अनेक विद्वानों द्वारा समर्थित ये लक्षण आधुनिक युगीन महाकाव्यों के लिए उपयुक्त कसौटी माने जा सकते हैं। 'कामायनी' के महाकाव्यत्व की परख के लिए भी इन्हीं का आधार ग्रहण करना समीचीन होगा।

(१) कामायनी का महदुद्देश्य, महत् प्रेरणा, महती काव्य प्रतिभा -

'कामायनी' अपने पूर्ववर्ती महाकाव्यों की परंपरा से भिन्न एक नया और महान लक्ष्य लेकर चली है। इसमें कवि ने स्थूल चरित्र-चित्रण अथवा

१- प्रतिपाल सिंह - बीसवीं शताब्दी के महाकाव्य, पृष्ठ २६३।
गोविन्दराम शर्मा - हिन्दी के आधुनिक महाकाव्य, पृष्ठ ४३।
श्यामनन्दन किशोर - आधुनिक हिंदी महाकाव्यों का शिल्प विधान, पृ०५६-५७
श्यामनन्दन किशोर - आधुनिक महाकाव्यों का शिल्प विधान, पृष्ठ ६०।
'महाकाव्य मर्मस्पर्शी घटनाओं पर आधारित एक महान कवि की ऐसी छंदोबद्ध कृति है जिसमें मानव जीवन की किसी ज्वलंत समस्या का व्यापक प्रतिपादन, किसी महान उद्देश्य की पूर्ति या जातीय संस्कृति के महाप्रवाह का उद्भावन उदात्त वर्णन शैली, व्यंजक भाषा, पूर्ण रसात्मकता और उच्चकोटि के शिल्पविधान के द्वारा किया जाता है और जिसका नायक किसी भी लिंग, जाति या वंश का होकर भी अपने गुणों से कवि के आदर्शों को मूर्तिमान करनेवाला होता है।'

ऐतिहासिक - पौराणिक घटनाओं की पुनरावृत्ति को ही अपनी अन्तिम सिद्धि न मानकर उनके भीतर निहित सूक्ष्म और चिरन्तन भाव-तथ्यों को खोज निकालना तथा उन्हें एक निश्चित जीवन-दर्शन के रूप में प्रतिष्ठा दिलाना ही अपना ध्येय माना है।

जीवन की विषमताओं से मुक्ति और शान्ति की खोज प्रत्येक युग के मानव की गंभीरतम समस्या रही है। समय-समय पर विभिन्न दार्शनिक-धार्मिक मतवादों का जन्म इसी समस्या के निराकरण हेतु हुआ है। प्रसाद के समक्ष भी मानव मात्र की कल्याण कामना से प्रेरित यही महान उद्देश्य था, जिसकी पूर्ति हेतु कामायनी का प्रणयन हुआ। वर्तमानयुगीन बौद्धिकता और भौतिकता के अतिरेक से उत्पन्न होने वाले संघर्ष और उनसे जर्जर, पीड़ित तथा विशृंखलित होती हुई मानवता का उद्धार कराने की महती आकांक्षा ही कामायनी की महत्प्रेरणा कही जा सकती है।

मानवता के उद्धार की कामना ही नहीं उसका उपाय भी प्रसाद ने जीवन के व्यवहारिक पक्ष में खोज निकाला है। -

" ज्ञान दूर कुछ क्रिया भिन्न है,इच्छा क्यों पूरी हो मन की
एक दूसरे से न मिल सकें यह विडंबना है जीवन की।"[१]

आधुनिक जीवन की इस विडंबनापूर्ण स्थिति से उबरने के लिए जीवन के विभिन्न पक्षों में समन्वय और संतुलन अनिवार्य है, इच्छा, क्रिया और ज्ञान में समन्वय हृदय और बुद्धि में समन्वय, सुख और दु:ख में समन्वय। एकांगी प्रगति और खंडित जीवन शक्तियाँ ही मनुष्य की वास्तविक उन्नति में बाधक और उसके समस्त दु:खों का मूल है। यदि इनके बीच वह संतुलन स्थापित कर ले तो अखण्ड आनन्द का स्रोत उसे स्वत: मिल जाएगा। मनुष्य जीवन की इस गंभीर समस्या को प्रसाद ने अत्यंत कलात्मक ढंग से श्रद्धा, इड़ा और मनु के स्थूल कथानक में रूपकत्व की योजना द्वारा प्रस्तुत किया है।

जीवन की किसी भी समस्या पर विजय प्राप्ति हेतु सब से आवश्यक वस्तु है मनुष्य की अपनी आस्तिक्य बुद्धि - उसकी अपनी " आस्था "। इसे ही प्रसाद ने श्रद्धा नारी का रूप दिया है। यही " श्रद्धा ", " मनु " अर्थात् मनुष्य को उस अखण्ड आनंद लोक में पहुंचाती अथवा पहुंचा सकती है जहां व्यक्ति के समस्त दुख चिन्तायें, अभाव द्वन्द्व और संघर्ष मिट जाते हैं और उसे अपने चारों ओर असीम शान्ति की व्याप्ति दिखाई देती है।

कामायनी की नायिका "श्रद्धा" नायक मनु को ही उस आनंदमय लोक का मार्ग प्रदर्शन नहीं करती वरन् संपूर्ण विश्व को जो कि बौद्धिकता के ताप से सूखकर जीर्ण शीर्ण हो रहा है, पुनः कोमलता और प्रेम के रस से सींचकर हरा-भरा बनाने की इच्छुक है। "काम" के मुख से प्रसाद ने कहलाया है -

"यह लीला जिसकी विकस चली
वह मूल शक्ति थी प्रेम कला।
उसका संदेश सुनाने को
संसृति में आई वह अमला"।।[१]

कामायनी का यह उच्चादर्श, उसकी यह महान प्रेरणा उसे न केवल महाकाव्यत्व की गरिमा से मंडित करती है वरन् उसे महाकाव्यों की उस उच्च श्रेणी में भी प्रतिष्ठित करती है, जहां पर अब तक रामचरितमानस को छोड़कर हिन्दी का अन्य कोई ग्रंथ नहीं पहुंच सका। लोक मंगल और लोक कल्याण की यह उदात्त भावना, वर्तमान ही नहीं, भविष्य के मानव को भी समता और समरसता के सिद्धांत पालन द्वारा सुखी बनाने की महती आकांक्षा और सार्वभौम मानव सत्यों की इतनी सजीव सुन्दर और मार्मिक व्यंजना अन्य किसी महाकाव्य में दुर्लभ है।

लोकमंगल के क्षेत्र में कामायनी वस्तुतः रामचरितमानस से भी आगे निकल गई है। "मानस" में केवल जातीय संस्कृति के उद्धार की चेष्टा व्यक्त हुई है, अतएव उसका संबंध हिन्दू जाति अथवा हिन्दू समाज से ही है; किन्तु कामायनीकार ने विश्व-मानव के कल्याण की कामना को अपने काव्य का धरातल बनाया है। इस भांति कामायनी केवल एक जाति, एक समाज अथवा एक राष्ट्र के लिये नहीं है। देशकाल की सीमायें इसके सम्मुख नगण्य हो गई हैं। पीड़ित मानवता के उद्धार की आकांक्षा से प्रेरित और विश्वशान्ति का उपाय बतानेवाले उच्चादर्शों पर प्रतिष्ठित इस कृति का संबंध विश्व काव्यों से स्वमेव जुड़ जाता है। अर्थात् जहां तक महान उद्देश्य और महत्प्रेरणा का प्रश्न है, कामायनी "महाकाव्य" ही नहीं "महान काव्य" भी सिद्ध होती है।

महान रचना को जन्म देनेवाले रचनाकार की प्रतिभा भी असाधारण होती है। अथवा यों कहा जाए कि असाधारण प्रतिभा संपन्न व्यक्ति ही

१- जयशंकर प्रसाद - कामायनी - कामसर्ग, पृष्ठ ८४।

किसी श्रेष्ठ कृति को जन्म दे सकता है, जिसमें सूक्ष्म पर्यवेक्षण शक्ति हो, जो व्यक्तिगत अनुभूतियों के उदात्तीकरण में समर्थ हो तथा जो वस्तु स्थितियों के मर्मच्छेदन द्वारा उनमें निहित अदृश्य सत्यों को पकड़कर उनकी सफल अभिव्यंजना में सक्षम हो।

कामायनी में दिखाई देनेवाली विराट कल्पना और दृष्टिकोण की व्यापकता स्वतः कामायनीकार की विशिष्ट प्रतिभा की परिचायक है। नंददुलारे वाजपेयी के शब्दों में " आध्यात्मिक और व्यवहारिक तथ्यों के बीच संतुलन स्थापित करने की सर्वप्रथम चेष्टा इस काल में की गई है। इस कार्य में सफलता प्राप्त करने के लिए मानवीय वस्तु स्थिति से परिचय रखनेवाली जिस मर्मभेदिनी प्रकृति की आवश्यकता है वह प्रसाद जी को प्राप्त थी। उन्होंने अपनी प्रतिभा के बल से शरीर मन और आत्मा, कर्म, भावना और बुद्धि, इतर-अन्तर और उत्तम तत्वों को सुसंगठित कर दिया है। यही नहीं उन्होंने इन तीनों तत्वों के भेद को मिटाकर इन्हें पर्यायवाची भी बना दिया है।"[१]

(२) कामायनी में गुरुत्व-गाम्भीर्य और महत्व -

जिस कृति का चिन्तन पक्ष जितना ही अधिक प्रौढ़ होगा तथा जिसकी प्रेरक प्रवृत्तियां उदात्त और उच्चादर्श से युक्त होंगी, उस कृति में उतना ही अधिक गाम्भीर्य और स्थायित्व आ जाता है।

कामायनी अपनी विचार गरिमा के आधार पर विश्व के किसी भी श्रेष्ठ महाकाव्य से होड़ ले सकती है क्योंकि कामायनी का चित्र-फलक अत्यंत व्यापक और विराट है। किसी एक जाति या राष्ट्र का नहीं, अखिल मानवता के विकास का कल्पित किन्तु गौरवपूर्ण इतिहास इसका कथ्य है। महान आदर्शों से प्रेरित और गंभीर मानवीय समस्याओं पर आधारित होने के परिणामस्वरूप इसमें आदि से अंत तक गंभीरता की छाप स्पष्ट दिखाई देती है। इस विचार गाम्भीर्य ने ही कामायनी को अन्य सामान्य कृतियों से अलग एक विशिष्ट धरातल पर रख दिया है, जहां साधारण पाठक की बुद्धि की पहुंच असंभव है। इसलिए उस पर प्रायः क्लिष्टत्व का दोषारोपण भी किया जाता है।

१- नन्ददुलारे वाजपेयी - आधुनिक साहित्य, पृष्ठ २६।

कामायनी का मूलाधार शैवागम का आनंदवाद है। इसी की एक शाखा काश्मीर का 'प्रत्यभिज्ञा दर्शन' है। आनंदवादी भीतर-बाहर, चर-अचर सभी में आनंदघन शिव की स्थिति मानते हैं। सृष्टि और संहार दोनों स्थितियों में आनंद रूप शिव प्रकट एवं अप्रकट रूपों में विद्यमान रहते हैं। संपूर्ण सृष्टि उसी परमानन्द रूप की छाया है, जिसमें स्वयं मनुष्य भी एक है, किन्तु भ्रमवश वह अपने वास्तविक रूप को भूला रहता है। अपने उसी रूप का ज्ञान होना ही प्रत्यभिज्ञा है, जिसके बाद जीव अर्थात् मनुष्य अखण्ड आनंदलोक में पहुंचकर स्वयं भी आनंदमय हो जाता है। सर्वत्र आनंद की स्थिति मानने के कारण यह दर्शन समरसता के सिद्धान्त का प्रतिपादक है, अर्थात् सुख-दुख, जन्म-मृत्यु, उत्थान-पतन सभी में मन की समान स्थिति रहना।

प्रसाद ने प्रत्यभिज्ञा दर्शन के इसी समरसता सिद्धान्त को सामयिक समस्याओं के परिप्रेक्ष्य में रखकर उसका एक सुन्दर और व्यवहारिक रूप प्रस्तुत किया है। दर्शन और धर्म का सहारा लेकर भी उन्होंने सैद्धांतिक विवेचन को अपने काव्य का प्रतिपाद्य नहीं बनाया। कामायनी' का महत्व इसी में है कि उसमें अति प्राचीन दार्शनिक तत्वों का जीवन के साथ न केवल सामंजस्य बैठाया गया है, वरन् उन्हें व्यवहार्य बनाकर जीवन और समाज के लिये उनकी उपयोगिता भी सिद्ध की गई है।

जीवन में भेदभाव रहित समरसतालाने के लिए इच्छा, क्रिया और ज्ञान का समन्वय आवश्यक है। कामायनी के नायक-मनु मन के प्रतीक हैं जो जीवन में समन्वय और संतुलन के अभाववश भटकते रहते हैं। इस भटकाव का अंत तभी होता है जब उनकी आन्तरिक आस्था अर्थात् श्रद्धा' इन इच्छा क्रिया और ज्ञान के त्रिपुरों का उन्हें दर्शन कराकर उनमें एकता स्थापित करने की प्रेरणा देती है।और इसके पश्चात ही मनु को अपने जीवन का चरम लक्ष्य प्राप्त होता है -

' स्वप्न स्वाप जागरण भस्म हो,इच्छा क्रिया ज्ञान मिल लय थे
दिव्य अनाहत पर निनाद में श्रद्धायुत मनु बस तन्मय थे।'[१]

मनु का यह भटकाव साधारण मानव मन का भटकाव है और अन्त में समरसता की स्थिति में पहुंचे हुए मनु की शान्त अवस्था संपूर्ण मनुष्यता के

१- जयशंकर प्रसाद - कामायनी - रहस्य सर्ग, पृष्ठ २८१।

लिये सम्भाव्य है । विचारों की यह व्यापकता और गहराई कामायनी को अदाय गरिमा से मंडित करती है ।

विज्ञान के अतिवादी प्रभावों से उत्पन्न जीवन की विद्रूपताओं एवं विषमताओं से मुक्ति पाने के लिये प्रसाद ने जो संदेश दिया है वह अत्यंत गरिमा-मय और महान है । आस्थामूलक संतुलित जीवन-दृष्टि को पाकर मनुष्य आनन्द का अखण्ड स्रोत पा सकता है ।

प्रसाद मानवतावादी कवि है । मानव मूल्यों के प्रति उनकी अटूट आस्था है । इसी आस्था ने उनके द्वारा मानवहितार्थ कृति " कामायनी " की रचना करवाई जिसका मूल उद्देश्य मानवोत्थान और लोकमंगल है । रूपक योजना द्वारा मानवता के जन्म और विकास की यह कथा शाश्वत जीवन मूल्यों पर आधारित है । अतएव कामायनी में विचारों की गुरुता स्वमेव आ गई है । महान उद्देश्य और गंभीर भावों की व्यंजना के फलस्वरूप इस कृति का महत्व अक्षुण्ण रहेगा ।

(३) कामायनी में महत्कार्य और युग जीवन का चित्रण -

प्रत्येक महाकाव्य में कोई न कोई महत्वपूर्ण ध्येय अवश्य रहता है, जिसे पाने के लिये उसका सर्वाधिक महत्वपूर्ण पात्र अर्थात् नायक प्रयत्नशील रहता है इसी को कथा का चरम बिन्दु भी कहा जाता है । कथारंभ से चरम बिन्दु तक नायक के पहुंचने की इस लम्बी अवधि में महाकाव्यकार द्वारा युगीन परिस्थितियों का समग्र रूप में चित्रण भी अनिवार्य माना गया है क्योंकि इसके अभाव में महाकाव्य एकांगी रह जाएगा क्योंकि उसका लक्ष्य भूत, भविष्य और वर्तमान, तीनों को अपने में समेट कर जीवन को उसकी समग्रता में प्रस्तुत करना है ।

कामायनी का महत्कार्य है - विषमताग्रस्त मानवता के प्रतीक " मनु " द्वारा अखण्ड आनन्दलोक की प्राप्ति । आदि मानव " मनु " एक ऐतिहासिक पात्र है, उनके जीवन पर आधारित इस कृति के कथा सूत्रों का चयन प्रसाद ने भारतीय वाङ्मय से किया है, किन्तु प्राचीन कथानक को उन्होंने अत्यंत कौशल के साथ वर्तमान जीवन के साथ जोड़ते हुए विभिन्न सामयिक समस्याओं का पूर्ण चित्र उसमें उपस्थित किया है ।

श्रद्धा की सहायता से मनु की आनन्द लोक यात्रा और उस अंतिम लक्ष्य प्राप्ति की प्रक्रिया में "मनु" के जीवन के विभिन्न उतार चढ़ावों पर प्रकाश डाला गया है जो मनु की नहीं "मानव-मन" की स्थितियों का भी उद्घाटन करता है। "कामायनी" में वर्णित "आनंदवाद" या "आनंदलोक" का संबंध प्रकटत: शैवदर्शन से है किन्तु उसका एक व्यवहारिक पहलू भी है। श्रद्धा मनु को पहले "इच्छा" "क्रिया" और "ज्ञान" के त्रिपुरों का दर्शन कराती है तत्पश्चात वे उस आनंदलोक में पहुंचने के अधिकारी होते हैं दार्शनिक क्षेत्र के इस "त्रिपुर" का संबंध हमारे प्रत्यक्ष जीवन से भी है। केवल भौतिक सुख साधनों की प्राप्ति से मनुष्य सुखी नहीं रह सकता। भौतिकता के साथ धार्मिकता अर्थात् श्रद्धा का योग अनिवार्य है। श्रद्धाहीन व्यक्ति के लिये जीवन में सफलता की आशा करना व्यर्थ है इसी प्रकार, सफल जीवन जीने के लिए हमारी इच्छाओं कार्यों एवम् चिन्तन पक्ष में भी समन्वय होना चाहिए। इन तीनों का संतुलन बिगड़ जाने के परिणाम स्वरूप ही जीवन में अनेकानेक कठिनाइयाँ एवं विषमताओं का जन्म होता है। कवि के शब्दों में -

> "ज्ञान दूर कुछ क्रिया भिन्न है, इच्छा क्यों पूरी हो मन की ?
> एक दूसरे से न मिल सके, यह विडंबना है जीवन की।"[१]

मानव सभ्यता के आदिम युग के नायक "मनु" के जीवन की घटनाओं के साथ प्रसाद ने आधुनिक वैज्ञानिक विकास की कथा को भी बड़े कलात्मक ढंग से गूंथ दिया है। "कामायनी" की कथा का प्रारंभ अतीत की चिन्ता में डूबे हुए मनु के द्वारा होता है, जो अपनी प्राचीन संस्कृति के एकमात्र अवशिष्ट व्यक्ति है। सुरापान, यज्ञ कर्म आदि ही उनके जीवन के मुख्य अंग थे। अनायास एक दिन मनु का परिचय श्रद्धा से होता है। श्रद्धा के आगमन के साथ कुछ नई समस्याएं सामने आती हैं। जीवन की आवश्यकतायें धीरे-धीरे बढ़ती हैं। एकाकी मनु गृहस्थ बनते हैं, कुटी का निर्माण होता है, "मानव" के जन्म की आशा प्रकट होती है। श्रद्धा भावी संतान के लिये वस्त्र बुनती है। यह सब घटनायें मानव सभ्यता के विकास पर प्रकाश डालती हैं। घटनायें आगे चलकर नया मोड़ लेती हैं। मनु की भेंट इड़ा से होती है, अर्थात्

१- जयशंकर प्रसाद - कामायनी - रहस्य सर्ग, पृष्ठ २८०।

मनुष्य में तर्क बुद्धि का विकास होता है । इड़ा मनु को सारस्वत प्रदेश ले जाती है । सारस्वत प्रदेश का चित्र वस्तुत: आधुनिक राज्यों का चित्र है । सारस्वत प्रदेश आधुनिक वैज्ञानिक साधनों से संपन्न दिखाया गया है । वहाँ की प्रजा भौतिक सुख साधनों से पूर्ण थी, किन्तु उसमें उस सांस्कृतिक चेतना का अभाव था जिसके द्वारा जीवन में सुख-शान्ति का आविर्भाव होता है । अतिशय बौद्धिकता और हृदय पक्ष के अभाव में शान्ति और आनन्द जीवन के लिए दुर्लभ बन जाते हैं । ज्ञान-विज्ञान का एकांगी विकास और सांस्कृतिक चेतना का लोप बहुधा भीषण परिणाम वाला तथा युद्ध और विनाश का जन्मदाता बन जाता है । प्रसाद ने इन्हीं विचारों की अभिव्यक्ति हेतु सारस्वत प्रदेश के जन-विद्रोह का चित्रण किया है ।

प्रजापति मनु के विरुद्ध सारस्वत नगरी की जनता के विद्रोह का चित्र सूक्ष्म रूप से आधुनिक युगीन प्रजातांत्रिक प्रणाली के सही रूप पर भी प्रकाश डालता है जिसमें शासक जन-प्रतिनिधि मात्र होता है, और वह स्वयं भी उन्हीं नियमों से बंधा होता है जिन नियमों का पालन वह सामान्य जनता से कराता है । 'अधिकार' और 'कर्तव्य' लोकतंत्र के दो ऐसे पहलू हैं जो प्रकटत: एक दूसरे से अलग होते हुए भी वस्तुत: एक दूसरे से भिन्न नहीं हैं । लोकतंत्र में शासक स्वयं भी अवाधित अधिकार नहीं भोग सकता । अधिकार पाकर उसे अपने कर्तव्यों का भी ध्यान रखना अनिवार्य होता है। मनु की इसी भूल ने सारस्वत नगरी में प्रबल जन-विद्रोह और भीषण रक्तपात करवाया था ।

प्रसाद ने 'कामायनी' के माध्यम से एक आदर्श प्रजातंत्र राज्य का रूप प्रस्तुत किया है जिसमें देव-संस्कृति की भाँति न तो अतिशय भोग-विलास का समर्थन है और न सारस्वत नगरी की भाँति एकांगी यांत्रिक विकास का । प्रसाद की प्रजातंत्र कल्पना सर्वतोमुखी विकास से पूर्ण, देश-काल की परिधि से बाहर तथा संपूर्ण मानवता को आधार मानकर की गई है और उसके मूल सिद्धांत समानता समन्वय एवं समरसता है ।

'समाज' में नारी पुरुष के पारस्परिक संबंधों पर भी कामायनीकार ने अच्छा प्रकाश डाला है । नारी पुरुष की वर्तमान युगीन समाज में क्या स्थिति है, अथवा क्या होना चाहिये - यह आज के युग की महत्वपूर्ण समस्या

आधुनिक युग की बौद्धिक चेतनामयी शिक्षिता नारी पहले की भाँति पुरुष की संपत्ति मात्र नहीं रह गई है, उसका अपना स्वतंत्र व्यक्तित्व होता है । वह पुरुष की दासी नहीं, सहयोगिनी तथा समकक्षिणी बनने योग्य है । प्रसाद ने इन्हीं विचारों की सांकेतिक अभिव्यक्ति " कामायनी " में की है' मनु " अपने शासक रूप में दंभ में भरकर उसी इड़ा पर अत्याचार करने को तत्पर हो उठते हैं जिसने उन्हें शासक पद पर प्रतिष्ठित करके सारस्वत नगरी के शासन का दायित्व सौंपा था । इस अन्याय का प्रतिरोध करने के लिए वहाँ की जनता " मनु " से युद्ध छेड़ देती है और उन्हें बुरी तरह पराजित कर देती है । " काम " के मुख से

" तुम भूल गए पुरुषत्व मोह में
कुछ सत्ता है नारी की
समरसता है संबंध बनी
अधिकार और अधिकारी की ।"[1]

कहलाकर प्रसाद ने पुरुष वर्ग के उस अहम् को चेतावनी दी है जो चिरकाल से नारी वर्ग को हीन और गर्हित समझता आया है ।

प्रसाद के साहित्य क्षेत्र में पदार्पण के समय तक राष्ट्रीय आन्दोलन देश व्यापी रूप ग्रहण कर चुके थे । सामाजिक इकाई होने के नाते - प्राय: तत्कालीन सभी साहित्यकार उन आन्दोलनों से प्रभावित थे । किन्तु राष्ट्रप्रेम संबंधी विभिन्न स्फुट विचारों को एक विराट सांस्कृतिक चेतना से संबद्ध करके एक निश्चित विचार प्रणाली के रूप में प्रस्तुत करने का कार्य प्रसाद ने ही किया । " कामायनी " में प्रसाद के यह उद्गार -

" शक्ति के विद्युत्कण जो व्यस्त
विकल बिखरे हैं हो निरुपाय
समन्वय उनका करे समस्त
विजयिनी मानवता हो जाए ।"[2]

१- जयशंकर प्रसाद - कामायनी - इड़ा सर्ग, पृष्ठ १७० ।
२- जयशंकर प्रसाद - श्रद्धासर्ग , पृष्ठ ३७ ।

भारतवर्ष के लिए ही संजीवनी शक्ति नहीं है वरन् किसी भी राष्ट्र के लिए अमर प्रेरणा स्रोत बन सकते हैं । इनमें फलकनेवाला" मानवतावाद" सर्वथा आधुनिक युग की देन है । इसी मानवतावाद की विशाल पीठिका पर कामायनी को प्रतिष्ठित करके प्रसाद ने स्पष्टतः अपनी कृति में अपने युग को प्रतिबिम्बित किया है, साथ ही युग की माँग को भी पूर्णता दी है ।

साहित्य में जो समय " छायावाद" का था राजनीति में वही समय गांधीवाद का था । इसी कारण कामायनी पर गांधीवाद की भी छाया दृष्टिगोचर होती है ।

मनु को मृगया से रोकने के लिए अहिंसा का शास्त्रीय प्रतिपादन करती हुई श्रद्धा कहती है :-

" वे द्रोह न करने के स्थल हैं, जो पाले जा सकते सहेतु
पशु से यदि हम कुछ ऊँचे हैं, तो भव जल निधि में बनें सेतु "[1]

गांधी के" जियो और जीने दो " के प्रिय सिद्धान्त का भी श्रद्धा समर्थन करती है :-

" पर जो निरीह जीकर भी कुछ उपकारी होने में समर्थ ।
वे क्यों न जियें उपयोगी बन, इसका मैं समझ सकी न अर्थ ।।"[2]

इसके साथ ही विश्व बंधुत्व की भावना स्वतः जुड़ जाती है :-

"अपने में सब कुछ भर कैसे व्यक्ति विकास करेगा ?
यह एकान्त स्वार्थ भीषण है, अपना नाश करेगा ।
औरों को हँसते देखो मनु हँसो और सुख पाओ,
अपने सुख को विस्तृत कर लो सब को सुखी बनाओ ।"[3]

श्रद्धा का तकली चालन और ऊन पट्टिका बुनना भी गांधीवादी प्रभाव को प्रमाणित करता है ।

१- जयशंकर प्रसाद - कामायनी, ईर्ष्या सर्ग, पृष्ठ १५५ ।
२- जयशंकर प्रसाद - ~~कामायनी~~ कामायनी, ईर्ष्यासर्ग, पृष्ठ १५४ ।
३- जयशंकर प्रसाद - कामायनी - कर्म सर्ग, पृष्ठ १४० ।

सारांशतः "कामायनी" में प्राचीन कथा के साथ अधुनातन जीवन के गठबंधन का यह प्रयास और उसका सफल निर्वाह "महाकाव्य" के रूप में कामायनी की सफलता का द्योतक है ।

(४) कामायनी का कथानक -

" महाकाव्य " में कथानक अत्यंत महत्वपूर्ण तत्व है । साहित्य मर्मज्ञों के अनुसार महाकाव्य के कथानक का चयन इतिहास-पुराण से भी किया जा सकता है तथा वह कल्पना प्रसूत अथवा वर्तमान जीवन से संबंधित भी हो सकता है । उसमें चमत्कारपूर्ण तथा अतिप्राकृतिक तत्वों का योग भी संभव है किन्तु जिस किसी घटना को आधार रूप में ग्रहण किया गया हो उसे महत् होना चाहिये । इसके अतिरिक्त, सुसंगठन ,नाटकीय तत्व और घटना-प्रवाह उसकी अन्य महत्वपूर्ण एवं अनिवार्य विशेषतायें हैं ।

कथानक के सुसंगठित होने से तात्पर्य यह है कि महाकाव्य का कथानक न बहुत छोटा होना चाहिए और न बहुत बड़ा । महाकाव्य किसी व्यक्ति के जीवन का संपूर्ण चित्र प्रस्तुत करता है, अतएव कथानक बहुत छोटा होने पर यह उद्देश्य अपूर्ण रह जाएगा । किन्तु कथानक में बहुत अधिक बिखराव भी अनुचित और कथा के समग्र प्रभाव में बाधक होता है ।

नाटकीय तत्वों का समावेश महाकाव्य के कथानक को प्रभावशाली बनाने में सहायक होता है । ये नाटकीय तत्व हैं संवाद सक्रियता, संधियां, सर्ग-विभाजन आदि ।

महाकाव्य का कथानक चाहे कितना रोचक और महत्वपूर्ण हो किन्तु घटना प्रवाह से शून्य होने पर उसका समस्त प्रभाव और आकर्षण फीका पड़ जाता है । घटना-प्रवाह से ही महाकाव्य में सक्रियता का गुण उत्पन्न होता है। यह सक्रियता अथवा घटनाचक्र की तीव्रता पाठक-मन को निरंतर अपने में उलझाये रखकर उस पर अपना अपेक्षित प्रभाव डालने में समर्थ होती है ।

" प्रसाद " ने " कामायनी " के कथानक का चयन प्राचीन पौराणिक आख्यानों से किया है । कामायनी के " आमुख " में उन्होंने अपने पात्रों की ऐतिहासिक

सिद्ध करते हुए बहुत कुछ कहा है, किन्तु साथ ही उनका यह भी कथन है कि " मनु श्रद्धा और इड़ा इत्यादि अपना ऐतिहासिक अस्तित्व रखते हुए सांकेतिक अर्थ की भी अभिव्यक्ति करें तो मुझे कोई आपत्ति नहीं ।" अर्थात् कामायनी की मूल और प्रस्तुत कथा में कवि ने श्लिष्ट रूपक की योजना भी कर दी है ।" मनु " मन है" श्रद्धा" हृदय तथा इड़ा बुद्धि । पात्रों के इस दोहरे व्यक्तित्व के माध्यम से नायक मनु द्वारा परमानन्द प्राप्ति की कथा के साथ मानव-मन की कथा भी सगुंफित हो गई है । इस प्रकार स्थूल पौराणिक कथा के भीतर एक सूक्ष्म कथा भी निहित है जो चिरंतन भाव-सत्यों की खोज और शाश्वत जीवन मूल्यों की प्रतिष्ठा से संबद्ध है । इस प्रकार की रूपक योजना प्रसाद की मौलिकता और कामायनी की विशिष्टता की परिचायक है, साथ ही स्थूल कथा के साथ मानव चेतना के विकास की कथा के योग ने कामायनी के कथानक को अभूतपूर्व गरिमा और औदात्य प्रदान किया है । मानव जाति के लिये मानवीय सभ्यता के विकास की कथा से बढ़कर महत्त्वपूर्ण कथानक और क्या हो सकता है ?

कामायनी के कथानक की गरिमा को उद्घाटित करते हुए नगेन्द्र लिखते हैं - " सामासिक रूप से विचार करने पर भी कामायनी के कथानक में अपूर्व आयाम है । वह केवल एक महापुरुष की जीवनगाथा नहीं है , एक राजवंश का वृत्त वर्णन मात्र नहीं है, एक युग या राष्ट्र की कथा नहीं है, वह तो संपूर्ण मानवता के विकास की गाथा है, अथ से इति तक । अन्य महाकाव्य जहाँ मानव सभ्यता के खण्ड चित्र प्रस्तुत कर रह जाते हैं वहाँ कामायनीकार ने उसका समग्र चित्र प्रस्तुत करने का सफलतापूर्ण प्रयास किया है । यह प्रयास पूर्ण नहीं हुआ, किन्तु इसका परिधि-विस्तार इतना अधिक है कि अपनी अपूर्णता में भी यह अद्भुत है, असामान्य है ।"[१]

कथानक -निर्माण हेतु प्रसाद ने ऐतिहासिक घटनाओं के साथ कुछ स्वनिर्मित एवं कल्पना प्रसूत घटनायें भी जोड़ दी हैं । देवजाति और इन्द्र वृत्र युद्ध, जलप्लावन और मनु की रक्षा की घटना, मनु और श्रद्धा का मिलन, किलात

१- नगेन्द्र - कामायनी के अध्ययन की समस्याएं, पृष्ठ १६ ।

आकुलि की प्रेरणा द्वारा मनु का काम यज्ञ, मनु और इड़ा की भैंट, मनु द्वारा नवीन सृष्टि की रचना, मनु और इड़ा का संघर्ष आदि घटनाओं की ऐतिहासिकता स्वयं प्रसाद ने "कामायनी" के आमुख में सिद्ध की है । किन्तु श्रद्धा का भावी पुत्र के प्रति वात्सल्य देखकर मनु की ईर्ष्या और गृह त्याग, सारस्वत प्रदेश की जनक्रान्ति श्रद्धा का स्वप्न, मनु और श्रद्धा की कैलाश यात्रा इड़ा और मानव का परिणय, मनु का पुत्रोत्पत्ति के लिये नहीं वरन् दैव वृत्ति के कारण यज्ञ करना, इड़ा को मनु की पालिता पुत्री के रूप में चित्रित न करना आदि प्रसाद की मौलिक उद्भावनायें हैं, जिनके द्वारा कथा के मनोवैज्ञानिक रूप को दृढ़ आधार प्राप्त हुआ है ।

कथा का संक्षिप्त रूप इस प्रकार है, देवयुग के ऐश्वर्य और भौतिक सुख साधनों के विनाश के उपरान्त उस देव संस्कृति के एक मात्र अवशिष्ट प्रतीक "मनु" में अपने पूर्व संस्कार शेष रहते हैं । अतीत की भूलों के प्रकाश में वे नए युग की स्थापना की चिन्ता करते हैं । उनके हृदय में नवीन आशा का जन्म होता है, तभी उनकी भैंट श्रद्धा से होती है । आदि मानव रूप में मृगया , अन्न-संचय, गुफावास आदि मनु के जीवन की प्रधान क्रियाएँ थी तथा काम वासनादि उनकी सहजात वृत्तियाँ थी । देवजाति की अतिशय भौतिकता के दुखद परिणाम से ऊबे हुए मनु सरल जीवन बिताना चाहकर भी पूर्व संस्कारों के कारण विवश होते हैं । हिंसा, पशु बलि, श्रद्धा का त्याग और कर्म कोलाहलमय जीवन की मनु की लालसा आदि घटनायें इसी तथ्य की ओर संकेत करती हैं । सारस्वत प्रदेश में "मनु" का "इड़ा" से परिचय होता है, अर्थात् आदि मानव की बुद्धि उसे औद्योगिक विकास , प्रजासंगठन, नए सामाजिक विधान आदि बनाने के लिए प्रेरित करती है । इसके साथ स्वाभाविक रूप से निरंकुशता और अहंकार के भावों का जन्म होता है जिसकी परिणति युद्ध और भीषण रक्तपात में होती है । सांकेतिक अर्थ यह हुआ कि अतिशय बौद्धिकता और एकांगी भौतिक विकास मानव-विनाश की भूमिका प्रस्तुत करते हैं । इस विनाश को रोकने के लिये तर्क बुद्धि और आस्तिक्य बुद्धि का समन्वय ही एकमात्र उपाय है । इस समन्वय द्वारा ही शान्ति और सर्वांगपूर्ण संस्कृति की प्रतिष्ठा हो सकती है । अतएव सारस्वत प्रदेश के संघर्ष से शिथिल, जर्जर मनु को श्रद्धा आध्यात्मिक उन्नति का मार्ग बताती है । आध्यात्मिक क्षेत्र के त्रिपुरों का दर्शन कराकर श्रद्धा अंत में मनु को उस आनंद लोक में

पहुँचाती है जहाँ सुख-दुःख की परस्पर भिन्न अनुभूति मिट जाती है और अखण्ड आनंद की व्याप्ति रहती है ।

आध्यात्मिक क्षेत्र के " इच्छा " क्रिया " और " ज्ञान " के त्रिपुर " प्रतीकार्थ में हमारे व्यावहारिक जगत में चिन्तन पक्ष और हृदय पक्ष की एकता और इच्छाओं एवं कार्यों के मध्य संतुलन की बात कहते हैं । अपने व्यवहार में इस प्रकार का संतुलन लाए बिना मनुष्य जीवन में सफलता और शान्ति नहीं पा सकता ।

" प्रस्तुत " कथा के साथ जो " अप्रस्तुत " कथा प्रसाद ने जोड़ी है उसका निर्वाह आद्यन्त अत्यंत सुन्दर और सफल रूप में हुआ है । मानव मन की सूक्ष्म वृत्तियों का विकास स्थूल घटनाओं में कुछ इस प्रकार घुल मिल गया है कि " मनु " की कथा और " मन " की कथा मिलकर एकाकार हो जाती है । नन्ददुलारे वाजपेई के शब्दों में कामायनी में " मनोविज्ञान में काव्य और काव्य में मनोविज्ञान एक साथ दिखाई देते हैं । मानस (मन) का ऐसा विश्लेषण और काव्यात्मक निरूपण हिन्दी में शायद शताब्दियों के बाद हुआ है ।"[१]

मानसिक वृत्तियों के विकास क्रम के आधार पर ही " कामायनी " का सर्ग विभाजन भी हुआ है, जिसके द्वारा वाजपेई जी के उपर्युक्त कथन की सत्यता प्रमाणित होती है । प्रथम सर्ग चिन्ता सर्ग है, मनुष्य-मन में वृत्तियों का जन्म होता है, प्रलय के भीषण उत्पात से मनु चिन्ताग्रस्त होते हैं । चिन्ता के पश्चात् हृदय में " आशा " का उदय होता है । आशा से हृदय में प्रेरणा जाग्रत होती है । मन हृदय की प्रतीक " श्रद्धा " को पाकर " काम " और " वासना " के वशीभूत होता है । हृदय की प्रतीक श्रद्धा वासनाद्भूत उच्छृंखलता के कारण " लज्जा " का अनुभव करती है । वासना से उत्तेजित मन काम जगत में प्रवेश करता है । ईर्ष्याविद्ध मनु या मन " श्रद्धा " का त्याग कर बुद्धि " इड़ा " से संपर्क स्थापित करता है । इड़ा सर्ग के बाद स्वप्न सर्ग उस स्थिति की ओर संकेत करता है जब मन तर्क बुद्धि से प्रभावित होकर भी आस्तिकता का त्याग नहीं कर पाता । बुद्धि के विरोध से संघर्ष होता है । संघर्ष से शिथिल मन में " निर्वेद "

१- नन्ददुलारे वाजपेयी - आधुनिक साहित्य - पृष्ठ ११३ ।

उत्पन्न होता है । श्रद्धा से पुनः संयुक्त होकर मन आनन्द लोक के दर्शन हेतु उत्सुक होता है और अंत में इच्छा क्रिया और ज्ञान तथा श्रद्धा और कर्म की समन्वयात्मक बुद्धि को प्राप्त कर मन, अखण्ड आनन्द में लीन हो जाता है ।

इस प्रकार कामायनी का कथा-संगठन अत्यंत उपयुक्त और उसका सर्ग-विभाजन कलात्मक एवं मौलिक ढंग से हुआ है । सर्ग-संख्या १५ है जो शास्त्रीय दृष्टि से भी ठीक है । कथा-सूत्र कहीं भी विश्रृंखलित नहीं होने पाए हैं अतएव कथानक में पूर्ण कार्यान्विति है । तथापि कथानक के विकास की गति अवश्य शिथिल है । अवान्तर कथाओं के अभाव में उसमें संश्लिष्टता और घटना चक्र की तीव्रता नहीं है, क्योंकि "कामायनी" अन्य महाकाव्यों की भाँति घटना प्रधान अथवा वर्णन प्रधान न होकर भाव प्रधान महाकाव्य है उसमें कथा" इंगितों के द्वारा आगे बढ़ती है । उसमें दीर्घता की अपेक्षा गाम्भीर्य अधिक है ।"[१]

भिन्न स्तरीय कथा के कारण" कामायनी" में नाट्य तत्वों के निर्वाह की अपेक्षा करना अनिवार्य तो नहीं है, तथापि उसमें भारतीय नाट्य शास्त्र में वर्णित कार्यावस्थाओं की कुछ फलक देखी जा सकती है । मनु के चिन्तन से लेकर मनु श्रद्धा मिलन, मनु के जीवन में प्रवृत्त होने तक का कथा भाग आरंभ अवस्था है । तत्पश्चात् शाश्वत सत्य के प्रति जिज्ञासु मनु का यज्ञादि कर्म प्रयत्न" कार्यावस्था है । किन्तु मनु द्वारा श्रद्धा का त्याग और फिर इड़ा पर अधिकार के इच्छुक मनु की पराजय में" प्राप्त्याशा" का रूप धूमिल पड़ जाता है । शिव के ताण्डव नृत्य का दर्शन और उनकी शरण में जाने की मनु की इच्छा के साथ" नियताप्ति" कार्यावस्था की स्थिति जोड़ी जा सकती है और श्रद्धा के सहयोग द्वारा मनु का सामरस्यजन्य चरम आनन्द को प्राप्त करना" फलागम" है ।

नाट्य संधियों और अर्थ प्रकृतियों का संयोजन कामायनी में नहीं हुआ है । वस्तुतः कामायनी का वस्तु विधान भारतीय पद्धति की अपेक्षा पाश्चात्य पद्धति के अधिक निकट दिखाई देता है । कथानक का चरमोत्कर्ष (संघर्ष सर्ग में

१- प्रेमशंकर - प्रसाद का काव्य , पृष्ठ ३१७ ।

वर्णित मनु का मानसिक एवं भौतिक परिस्थितियों के कारण संघर्ष जिसकी प्रारंभिक सूचना मनु श्रद्धा के वियोग से मिलती है) पाश्चात्य दु:खान्त नाटकों से बहुत साम्य रखता है किन्तु उसकी परिसमाप्ति भारतीय पद्धति के अनुकूल हुई है ।

सारांशत: कामायनी का कथानक युग और देश की सीमाओं से परे अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर संपूर्ण मानवता की कथा प्रस्तुत करने के फलस्वरूप अत्यंत गरिमामय और उदात्त है, इतिहास, कल्पना और मनोविज्ञान के मिश्रण से निर्मित होने के कारण वह अभूतपूर्व है और परंपरागत, वर्णन प्रधान महाकाव्यों से भिन्न मानव मन के सूक्ष्म भावों पर आधारित होने के कारण नवीन और क्रान्तिकारी भी है । अतएव केवल घटनाओं की मंदगति के आधार पर उसके महाकाव्योचित होने में संदेह नहीं किया जा सकता ।

(५) "कामायनी" में नायक -

भारतीय साहित्य शास्त्र के अनुसार किसी महाकाव्य के नायक का चरित्र आदर्श होना चाहिये । यह आदर्श उसने चाहे युद्ध के क्षेत्र में स्थापित किया हो या प्रेम अथवा त्याग के क्षेत्र में । विशिष्ट गुणों के आधार पर मुख्यत: नायक की चार कोटियां मानी गई हैं - धीरोदात्त, धीर प्रशान्त, धीर ललित और धीरोद्धत । इन सभी में अनुकरणीय और गरिमामय चरित्र का होना आवश्यक माना गया है ।

कामायनी" के नायक" मनु" के चरित्र का अवलोकन करने पर स्पष्ट हो जाता है कि वे उपर्युक्त परंपरागत नायकों की किसी भी कोटि में नहीं आते । प्रसाद ने प्रारंभ से ही उन्हें महानता की गरिमा से मंडित न करके उत्तरोत्तर उनका उस दिशा में प्रयत्नशील होना चित्रित किया है ।" मन " के प्रतीक होने के फलस्वरूप मनु का चरित्र आदर्श न होकर विकासशील है । मानवीय चेतना के विकास के साथ साथ मनु का चरित्र भी ऊँचा उठता जाता है । प्रारंभ के प्रणयी, विलासी, ईर्ष्यालु, अस्थिर चित्त और हिंसक प्रवृत्तियोंवाले मनु कथा के अन्त तक पहुंचते पहुंचते अपनी समस्त मानवीय दुर्बलताओं और स्वभावगत दुर्गुणों पर विजय प्राप्त करके पूर्णत: समरस होकर आध्यात्मिक शब्दावली में जिस" शिवत्व" को पाते हैं वह वस्तुत: मानवत्व का उच्चतम शिखर अथवा उसका श्रेष्ठतम आदर्श रूप है ।[१] इस स्थिति में पहुंचकर मनु शास्त्र वर्णित धीरोदात्त नायक

१- श्यामनन्दन किशोर-आधुनिक हिंदी महाकाव्यों का शिल्प विधान- पृष्ठ २०५ ।

" आदर्शवादी व्यक्ति प्राय: दोष विहीन माने गए हैं जिन्हें हमारे प्राचीन आचार्यों ने धीरोदात्त नायक माना है, पर आधुनिक युग में यह तथ्य विश्वसनीय नहीं है कि कोई व्यक्ति सर्वथा निर्दोष हो सकता है । अत: आदर्श चरित्रवाले नायक से तात्पर्य श्रेष्ठ गुणों से संपन्न अनुकरणीय व्यक्तित्व से है ।"

से भी कुछ ऊपर ही दिखाई देते हैं । इस प्रकार परिपाटी से बंधे न रहकर प्रसाद ने कामायनी के नायक के चरित्र-चित्रण में मनोवैज्ञानिकता का आधार ग्रहण किया है । महाकाव्य के क्षेत्र में नायक संबंधी यह प्रयोग मौलिक भी है और क्रान्तिकारी भी

" मनु " एक साधारण मनुष्य है मानवोचित दुर्बलताओं और सबलताओं के संघात से ही उनका चरित्र निर्मित हुआ है । इस कारण काव्यशास्त्र की परिपाटी से अलग रहकर भी उनके चरित्र में स्वाभाविकता है । यदि उनका चरित्र दोष रहित और प्रारंभ से ही पूर्ण विकसित दिखाया जाता तो कामायनी के कथानक से उसकी संगति न बैठती । बंधी हुई लीक पर न चलकर प्रसाद ने " नायक " का जो नया रूप प्रस्तुत किया है वह नए युग के नव आदर्शों के अनुकूल है । वर्तमानयुगीन बौद्धिक चेतना संपन्न पाठक वर्ग उन्हीं पात्रों को पसंद कर सकता है जो कल्पित आदर्शों के पुतले न होकर बुद्धि और तर्क की कसौटी पर खरे उतरते हों । मानवीय सभ्यता और संस्कृति के विकास की कथा कहनेवाले महाकाव्य का नायक यदि पूर्ण विकसित चरित्र वाला दिखाया जाता, तो महाकाव्य का संपूर्ण प्रभाव ही नष्ट हो जाता ।

आदर्श मानवीय चरित्र की उस ऊँचाई को कहा जा सकता है जहाँ तक पहुँचने के लिए वह प्रयत्नशील रहता है तथा जिसकी प्राप्ति में ही वह अपने जीवन की सार्थकता मानता है किन्तु चारित्रिक उच्चता के अनेक मापदण्ड होते हैं जिनके आधार पर विभिन्न उच्चादर्श विभिन्न युगों में प्रतिष्ठा पाते हैं । प्रत्येक युग में एक ही आदर्श को सर्वोपरि माना जाये, यह आवश्यक नहीं है ,युग-परिवर्तन के साथ साथ युगादर्शों का रूप परिवर्तित हो जाना भी एक सहज और स्वाभाविक प्रक्रिया है ।

इस दृष्टिकोण से " कामायनी " के नायक मनु प्राचीन साहित्य शास्त्र के अनुसार " आदर्श नायक " के गुणों से विभूषित पूर्ण पुरुष न होकर भी नवयुग के आदर्शों के अनुरूप अवश्य कहे जा सकते हैं । एक साधारण मनुष्य में अनेक दोष , दुर्बलतायें और अवगुण होना सहज बात है किन्तु असत से सत की ओर बढ़ना नीचे से ऊपर उठने की चेष्टा करना और अपने भीतर श्रेष्ठ मानवीय गुणों का विकास करना उसके जीवन का श्रेष्ठतम आदर्श कहा जा सकता है । " कामायनी " के नायक ने न केवल इस प्रकार की चेष्टा की है वरन् उसमें सफलता भी प्राप्त की है । इस दृष्टि से मनु का चरित्र " स्पृहणीय एवं अनुकरणीय बन जाता है । अतएव " मनु " नए युग के

आदर्शों के अनुरूप गरिमामय चरित्र के स्वामी हैं और उनका चरित्र नवीनादर्शों पर आधारित महाकाव्यों के नायक के गुणों से पूर्ण है । सफलता की सीढ़ी पर पहुंचकर मनु प्राचीन महाकाव्योचित नायक के रूप को भी सार्थक कर देते हैं, क्योंकि संपूर्ण कथानक में उनका महत्वपूर्ण स्थान रहता है और कथान्त में अन्तिम फल की प्राप्ति उन्हें ही होती है ।

कामायनी की कथा की नायिका " श्रद्धा " को प्रसाद जी ने नायक " मनु " से अधिक गरिमामयी चित्रित किया है । श्रद्धा में समस्त श्रेष्ठ मानवीय गुणों का पूर्ण विकसित रूप दिखाया गया है । महाकाव्य का नामकरण भी नायिका के नाम पर ही किया गया है । नायक की अपेक्षा नायिका की श्रेष्ठता का प्रदर्शन महाकाव्यों के अन्तर्गत प्रसाद का नया प्रयोग कहा जाएगा । किन्तु श्रद्धा " मनु " को आनन्दलोक तक पहुंचने में सहायता अवश्य करती है तथापि संपूर्ण कथा में सर्वत्र मनु का स्थान बना रहता है । कथानक की समस्त महत्वपूर्ण घटनायें उनके इर्द-गिर्द ही चलती है । कथा का प्रारंभ और अंत मनु के ही चिन्तन तथा समरसता प्राप्ति से होता है और संपूर्ण कथानक में चित्रित मनु की स्वभावगत दुर्बलतायें और उन दुर्बलताओं से मुक्ति पाने की चेष्टायें भी उन्हें आधुनिक विचारादर्शों पर आधारित मानवतावादी महाकाव्य का सफल नायक उद्घोषित करती है ।

मानवता के विकास की कथा प्रस्तुत करनेवाले कामायनी सदृश महाकाव्य में नायक का आदर्श रूप नहीं उसका सहज और संभाव्य रूप ही अपेक्षित था । प्रसाद ने अपनी कृति के अनुकूल नायक के चरित्र-चित्रण में सफलता पाई है । कामायनी के " मनु " शास्त्र वर्णित सफल और समर्थ नायक नहीं हैं (क्योंकि वे श्रद्धा के सहयोग से ही चारित्रिक उच्चता के शिखर पर पहुंचने में सफल होते हैं) उनमें महाकाव्य के ऐतिहासिक नायक के गुणों का अभाव है किन्तु वे आधुनिक संघर्षशील व्यक्ति के प्रतीक हैं जो अपनी दुर्बलताओं से जूझता हुआ ऊपर उठने का इच्छुक है । साथ ही वे उस आदि मानव का भी सफल चित्र उपस्थित करते हैं, जो शक्ति संपन्न होते हुए भी बर्बर और ईर्ष्यालु था और जो धीरे धीरे सभ्यता और संस्कृति के सोपानों पर चढ़ता हुआ अपने भीतर सात्विक गुणों का विकास करता है ।

(६) कामायनी की शैली -

महाकाव्य में जिस गरिमा, प्रशस्तता और उदात्तता की हमें अपेक्षा रहती है वह बहुत कुछ उसकी शैली पर आधारित होती है । महाकाव्य में जीवन के समग्र रूप का चित्रण किया जाता है, अतएव उसके कथानक में स्वतः एक प्रकार का गाम्भीर्य आ जाता है । यदि शैली उस गाम्भीर्य की रक्षा करने में सक्षम हुई तो महाकाव्य का प्रभाव स्थिर रहता है अन्यथा महत्वपूर्ण कथानक, पात्र और घटनाक्रम के रहते हुए भी उसका रूप आख्यायिका अथवा इतिहास मात्र बनकर रह जाता है ।

तात्पर्य यह कि महाकाव्य की शैली भी महाकाव्योचित होनी चाहिए । महाकाव्य का रचयिता अपने अभ्यंतर की जिस विराट चेतना को वाणी देने का अभिलाषी होता है, उसकी अभिव्यक्ति के लिए शैली ही सर्वाधिक महत्वपूर्ण साधन है ।

शैली के विभिन्न तत्वों को प्रधानता देते हुए प्राचीन साहित्य शास्त्रियों ने रीति संप्रदाय , गुण संप्रदाय, अलंकार संप्रदाय आदि बनाये थे किन्तु शैली इन बाह्य तत्वों की अपेक्षा उन आन्तरिक गुणों के कारण अधिक सशक्त बनती है जिनका मूल स्रोत महाकाव्यकार के हृदय में होता है अथवा यह कहा जाए कि महाकाव्य के कवि की महाप्राणता का परिचय उसके द्वारा व्यवहृत शैली के माध्यम से ही प्राप्त होता है ।

महाकाव्य की शैली के संबंध में बहुत कुछ कहा जा सकता है, किन्तु उसकी उपयुक्तता - अनुपयुक्तता की परख करने हेतु सब से सरल, साथ ही सब से महत्वपूर्ण कसौटी है उसकी स्वाभाविकता । अर्थात् वह ऊपर से ओढ़ी हुई न लगे और काव्य की आत्मा के साथ घुल मिलकर उसकी कान्ति को मोती के आब की तरह झलकाती रहे ।

भामह, दण्डी आदि साहित्याचार्यों के अनुसार महाकाव्य की शैली अलंकृत ही होनी चाहिये, किन्तु आधुनिक मनीषियों एवं साहित्य मर्मज्ञों को यह नियम मान्य नहीं है । असाध्य अलंकार से शैली की स्वाभाविकता के लिए खतरा उपस्थित हो जाता है । अलंकार जब तक कवि की चिन्तनधारा में पूरी तरह घुल मिल न जाये

उनका अस्तित्व पानी में तेल की बूंद की तरह पृथक ही दिखाई देगा अतएव अलंकार शैली के महत्वपूर्ण तत्व रूप में ही स्वीकार किये जा सकते हैं, भाषा छंद आदि भी शैली के महत्वपूर्ण अवयव हैं । किन्तु अलंकारों का प्रयोग सुन्दर शब्दावली और आकर्षक छंदों से भी बढ़कर इन सभी तत्वों की पारस्परिक संगति अधिक महत्वपूर्ण है जिसके आधार पर शैली का रूप गठित होता है । विभिन्न तत्वों का उचित सामंजस्य ही कवि प्रतिभा का परिचायक होता है । जो कवि इस क्षेत्र में जितना ही कुशल होगा अपनी भावनाओं को वह उतनी ही सशक्त अभिव्यक्ति दे सकेगा ।

शैली की दृष्टि से "कामायनी" छायावाद की ही नहीं वरन् संपूर्ण खड़ीबोली काव्य की महत्वपूर्ण कृति कही जा सकती है । प्रसाद की शैली में महाकाव्य की शैली के समस्त गुण विद्यमान हैं । प्राचीन काल में अधिकांश महाकाव्यों में वस्तु व्यापार वर्णन की प्रधानता होती थी अतएव उनकी शैली भी वर्णनात्मक होती थी । "कामायनी" में परंपरागत महाकाव्यों की लीक से हटकर आधुनिक विचार और मनोविज्ञान का आधार ग्रहण किया गया है । उसमें मनोवैज्ञानिक निरूपण के फलस्वरूप अन्तर्मुखी प्रवृत्तियों की प्रधानता है और बाह्य वस्तु वर्णन गौण है । ~~बाह्य वस्तु वर्णन है~~ । बाह्य संघर्षों, जीवन की भौतिक समस्याओं आदि की ओर संकेत मात्र कर दिया गया है किन्तु आन्तरिक भावों की मनोरम और विशद व्याख्या की गई है । अतएव कामायनी की शैली भी अन्य महाकाव्यों से भिन्न है । उसका स्वरूप भावानुरूप बदलता रहता है फिर भी वह वर्णनात्मक की अपेक्षा भावात्मक ही अधिक है ।

शैली के अनेक रूप कामायनी में लक्षित होते हैं । जहाँ कहीं वस्तु वर्णन प्रमुख है वहाँ शैली का रूप वर्णनात्मक ही है, जैसे प्रलय वर्णन, युद्ध, सारस्वत प्रदेश, त्रिपुर-दाह आदि प्रसंगों में ।

भावनात्मक शैली प्रसाद की प्रिय शैली है कोमल, भावनामय प्रसंगों में इसका सफल प्रयोग हुआ है, जैसे "श्रद्धा" का "मनु" के प्रति आत्म समर्पण का यह चित्र -

" समर्पण लो सेवा का सार,
सजल संसृति का यह पतवार ।
आज से यह जीवन उत्सर्ग
इसी पद तल में विगत विकार ।

दया, माया, ममता लो आज
मधुरिमा लो, अगाध विश्वास ।
हमारा हृदय रत्न निधि स्वच्छ
तुम्हारे लिये खुला है पास ।"[1]

भावात्मक प्रसंगों से परे जहां कहीं गंभीर विचार और दर्शन संबंधी तत्वों की प्रधानता है, वहां पर शैली भी विचारात्मक और विश्लेषणात्मक हो गई है, जैसे " दर्शन सर्ग" और " रहस्य सर्ग" में । " कर्मलोक" का विश्लेषण करती हुई " श्रद्धा" के इस कथन में विश्लेषणात्मक शैली का स्वरूप द्रष्टव्य है -

" नियति चलाती कर्म चक्र यह तृष्णा जनित ममत्व वासना ।
पाणि पादमय पंचभूत की, यहां हो रही है उपासना ।।
यहां सतत् संघर्ष, विफलता, कोलाहल का यहां राज है ।
अंधकार में दौड़ लग रही, मतवाला यह सब समाज है ।।
स्थूल हो रहे रूप बनाकर कर्मों की भीषण परिणति है ।
आकांक्षा की तीव्र पिपासा ममता की यह निर्मम गति है ।।[2]

अलंकारिक शैली के प्रति प्रसाद की बहुत रुझान दिखाई देती है । अलंकारों का प्रयोग उन्होंने बहुलता से किया है किन्तु उनमें कृत्रिमता नहीं है, वे काव्य की कलापक्ष गत् अभिवृद्धि में सहायक हुए हैं । सरसता और रमणीयता के साथ उनमें मौलिकता और नव्यता भी है । अलंकारिक शैली के अनेक सुन्दर उदाहरण " काम" और " लज्जा" सर्गों में प्राप्य है । " लज्जा" जैसे सूक्ष्म भाव का यह अलंकारिक वर्णन मनोरम होने के साथ साथ सजीव और नूतन भी है :-

" कोमल किसलय के अंचल में
नन्हीं कलिका ज्यों छिपती सी,
गोधूली के धूमिल पट में
दीपक के स्वर में दिपती-सी ।

१- जयशंकर प्रसाद - कामायनी - श्रद्धा सर्ग, पृष्ठ ६५ ।
२- जयशंकर प्रसाद - कामायनी - रहस्य सर्ग, पृष्ठ २७५ ।

मंजुल स्वप्नों की विस्मृति में
मन का उन्माद निखरता ज्यों
सुरभित लहरों की माया में
बुल्ले का विभव बिखरता ज्यों,
वैसी ही माया में लिपटी,
अधरों पर उँगली धरे हुए ।
माधव के सरस कुतूहल का
आँखों में पानी भरे हुए ।
नीरव निशीथ में लतिका सी
तुम कौन आ रही हो बढ़ती ।
कोमल बाहें फैलाए सी
आलिंगन का जादू पढ़ती ?"[1]

कहीं-कहीं प्रतीकात्मक शैली का सफल प्रयोग भी प्रसाद ने किया है जैसे -

"मधुमय वसंत जीवन-वन के, वह अंतरिक्ष की लहरों में,
कब आए थे तुम चुपके से रजनी के पिछले प्रहरों में ?"[2]

कामायनी का इड़ा सर्ग पूरा का पूरा प्रतीकात्मक है । महाकाव्य के मध्य में गीतों का संयोजन सर्वथा आधुनिक प्रयोग है । मैथिलीशरण गुप्त ने " साकेत " का नवम सर्ग भी गीतों के रूप में ही लिखा है । कामायनी की इड़ा बुद्धि की प्रतीक है, इड़ा का रूप चित्रण वस्तुत: बुद्धिवाद की व्याख्या है । इस जटिल विषय की व्याख्या हेतु गीतों का आधार लेकर प्रसाद ने विषय की नीरसता को बहुत कुछ कम करके उसे कठिन और दुर्बोध होने से बचा लिया है, तथा प्रबंधात्मक और गीतात्मक शैलियों का सफल सामंजस्य प्रस्तुत करके अपनी विशिष्ट और मौलिक प्रतिभा का परिचय दिया है । " इड़ा " अथवा बुद्धिवाद का यह रूप कितना आकर्षक और प्रभावशाली है -

" बिखरी अलकें ज्यों तर्क जाल ।
वह विश्व मुकुट सा उज्ज्वल तम शशिखंड सदृश था स्पष्ट भाल ,

१- जयशंकर प्रसाद - कामायनी - लज्जा सर्ग, पृष्ठ १०५ ।
२- जयशंकर प्रसाद - कामायनी - काम सर्ग, पृष्ठ ७१ ।

हो पथ पलाश चषक से दृग देते अनुराग विराग ढाल
गुंजरित मधुप से मुकुल सदृश वह आनन जिसमें भरा गान
वक्षस्थल पर एकत्र धरे संसृति के सब विज्ञान-ज्ञान --- ।"[१]

प्राचीन साहित्य शास्त्रियों के अनुसार महाकाव्य में नाटकीय तत्वों का समावेश भी रहना चाहिये । प्रसाद ने इस मान्यता को कामायनी के शैली पक्ष के अन्तर्गत स्वीकार किया है । नाटकों की संवाद शैली का कामायनी में सफल प्रयोग हुआ है । "चिन्ता" और "आशा सर्ग" छोड़कर प्राय: अन्य सभी सर्गों में इस शैली के उदाहरण मिल सकते हैं । संवाद शैली के प्रयोग द्वारा कामायनी में नाटकों जैसी रोचकता आ गई है तथा वर्णन अधिक सजीव हो उठे हैं ।

सारांशत: परंपरागत पद्धति का अनुसरण न करके भी "कामायनी" की शैली महाकाव्योचित औदात्य से पूर्ण सशक्त और गरिमामयी है । सुगठित भाषा, अलंकारों का समुचित प्रयोग, उपयुक्त छन्द आदि सब ने मिलकर सूक्ष्म से सूक्ष्म और गंभीर भाव अथवा प्रसंग की सफल अभिव्यक्ति देने में सहायता की है । अतएव शैली पक्ष की ओर से कामायनी के महाकाव्यत्व में संदेह के लिये कोई स्थान नहीं है ।

(७) कामायनी में रसाभिव्यक्ति -

भारतीय साहित्याचार्यों ने महाकाव्य में "रस" को अनिवार्य मानते हुए "श्रृंगार", "वीर" तथा शान्त रसों में से किसी एक को प्रधानता देने की बात कही है ।

आधुनिक विचारकों के अनुसार इस प्रकार की सीमायें बांधना अनुचित है, उपर्युक्त तीन रसों के अतिरिक्त अन्य रसों का भी प्राधान्य महाकाव्य में हो सकता है । प्राचीन आचार्यों में एकमात्र रुद्रट ने सभी रसों की स्थिति को आवश्यक बताया है, प्रधानता चाहे जिसकी हो । इसीलिये आधुनिक महाकाव्यों के संदर्भ में "रुद्रट" के विचार अपेक्षाकृत अधिक महत्वपूर्ण ठहरते हैं ।

१- जयशंकर प्रसाद - कामायनी - इड़ा सर्ग, पृष्ठ १७६ ।

पाश्चात्य साहित्य में भी " रस " को महत्वपूर्ण माना गया है, किन्तु उसका स्वरूप भारतीय ढंग के " विभावानुभाव व्यभिचारी " के संयोग से उद्भूत से भिन्न है । वहाँ इसे " यूनिटी आफ़ इफ़ैक्ट " की संज्ञा दी गई है । आधुनिक युगीन साहित्यकारों को पाश्चात्य विचारों ने प्रत्येक क्षेत्र में प्रभावित किया है, इस तथ्य की पुष्टि अनेक बार हो चुकी है । महाकाव्यों के क्षेत्र में भी वर्तमान युग में " रस " का प्राचीन रूप प्रायः अप्राप्य हो गया है, विशेषकर स्वच्छंदतावादी महाकाव्यों में पाश्चात्य ढंग की प्रभावान्विति ही अधिक दिखाई देती है ।

आधुनिक महाकाव्यों के अधिकारी समीक्षक शंभूनाथ सिंह ने इस विषय पर विस्तृत विवेचन किया है ।[१] उनके अनुसार मनोवैज्ञानिक दृष्टि से " रस व्यंजना " और " प्रभावान्विति " (Unity of Effect) में कोई अंतर नहीं है । अन्तर है तो केवल इतना ही कि आदर्शवादी साहित्य में रस व्यंजना होती है और यथार्थवादी साहित्य में प्रभावान्विति । रसव्यंजना भी प्रभावान्विति का ही एक रूप है ।

महाकाव्य में किसी महद् उद्देश्य की पूर्ति का लक्ष्य रहता है । लक्ष्य की ऊँचाई तक पाठक वर्ग को उठाने हेतु महाकाव्य का कवि उन पर गंभीर प्रभाव डालकर अथवा रसमग्न करके उनके व्यक्तित्व को कपमकोर कर बदलने का प्रयत्न करता है जिससे कि वे कवि द्वारा निर्दिष्ट भावभूमि पर पहुंचकर महाकाव्य के पात्रों तथा घटनाओं से अपना तादात्म्य स्थापित कर सकें ।

कामायनी " रस " के क्षेत्र में पाश्चात्य प्रभावान्विति के अधिक निकट है ।" रस " का संबंध भाव व्यंजना से होता है । भावों की सफल अभिव्यक्ति की दृष्टि से कामायनी निस्संदेह रसात्मक कृति है, किन्तु कामायनी की रसाभि-व्यक्ति प्राचीन नियमावली के अनुसार केवल " विभाव " अनुभाव " आदि के साधारण समन्वय पर आधारित नहीं है ।" कामायनी " जीवन के एक व्यापक धरातल पर प्रतिष्ठित होकर अनेक युगीन और चिरंतन समस्याओं का समाहार प्रस्तुत करती हुई कलात्मक रूप में हमारे सामने आती है । उसका प्रणयन मात्र परंपरा निर्वाह के लिए नहीं हुआ है । उसमें भाव-निरूपण, वस्तु वर्णन, चरित्र चित्रण सभी कुछ उच्चकोटि

१- शंभूनाथ सिंह - हिन्दी महाकाव्यों का स्वरूप विकास, पृष्ठ ११८-११६ ।

का है और रस ने रस परिपाक में सहायता की है किन्तु रसों का विधान उसमें स्वाभाविक रीति से हुआ है, गणना मात्र के लिये नहीं । अतएव शास्त्रीयता की कसौटी पर वह खरी नहीं उतरेगी, किन्तु भावों की सशक्त अभिव्यक्ति के माध्यम से पाठकों को रसमग्न करने की उसमें भरपूर क्षमता है ।

मुख्यत: श्रृंगार और शान्त दो रसों की प्रधानता कामायनी में लक्षित होती है । पूर्वार्द्ध में श्रृंगार रस प्रधान है और उत्तरार्द्ध में शान्तरस दोनों रस विसंवादी है तथा उनका जो रूप प्रस्तुत हुआ है वह भी शास्त्र सम्मत नहीं है ।

" मनु " और श्रद्धा " के प्रणय प्रसंगों में श्रृंगाररस का माधुर्य उपलब्ध होता है । श्रद्धा सर्ग से श्रृंगार के संयोग पक्ष का प्रारंभ होता है । मनु के जीवन में श्रद्धा वसंतागम का सौन्दर्य और उल्लास लेकर प्रकट होती है । काम, वासना लज्जा, कर्म और ईर्ष्या सर्ग तक श्रृंगार रस की ही व्याप्ति रहती है । इन सर्गों में कवि ने पुलक, स्पर्श, लज्जा आदि अनुभावों के अत्यंत सूक्ष्म और मनोरम चित्र प्रस्तुत किये हैं । उद्दीपन रूप में प्राकृतिक उपादान भी सहयोग देकर श्रृंगार भावना को उद्दीप्त करते हैं किन्तु उनका प्रयोग परंपरा पालन के लिये नहीं हुआ है ।

श्रद्धा और मनु के पारस्परिक वियोग में विप्रलंभ श्रृंगार का रूप प्रकट हुआ है जिसका वर्णन प्रसाद ने स्थूल रूप में न करके स्मृति संचारी के माध्यम से किया है । वियोग वर्णन की परंपरा में बारहमासा, षड्ऋतु वर्णन, विरह की दस दशाओं आदि का बहुत महत्व रहा है, किन्तु कामायनी-कार ने इस परिपाटी को सर्वथा त्यागकर विरह की सूक्ष्म और गहन अनुभूति को केवल संचारियों द्वारा अभिव्यक्ति दी है । किन्तु उनके विरह दशा के चित्र मर्म स्पर्शी हैं, इसमें संदेह नहीं । एक उदाहरण पर्याप्त होगा -

" आज सुनूँ केवल चुप होकर कोकिल जो चाहे कह ले ।
पर न परागों की वैसी है चहल पहल जो थी पहले ।।
इस पतझड़ की सूनी डाली और प्रतीक्षा की संध्या
कामायिनि तू हृदय कड़ा कर धीरे धीरे सब सह ले ।

विरल डालियों के निकुंज सब ले दुख की विश्वास रहे,
उस स्मृति का समीर चलता है, मिलन कथा फिर कौन कहे ?
आज विश्व अभिमानी जैसे रूठ रहा अपराध विना ।
किन चरणों को धोयेंगे जो अश्रु पलक के पार बहे ?"[१]

कामायनी के शेष सर्गों में शान्त रस की प्रधानता है, किन्तु यह शान्तरस शास्त्र वर्णित निर्वेदमूलक शान्तरस नहीं है । चिति का विराट वपु मंगल" कहकर संसार को" सत्य सतत् चिर सुंदर" माननेवाली भावनाओं के मध्य वैराग्य या निर्वेद का कोई स्थान नहीं है । नायक" मनु" को अक्षय आनन्द की खोज अवश्य रहती है, जिसकी प्राप्ति उन्हें इच्छा क्रिया और ज्ञान के सामंजस्य द्वारा होती है किन्तु कामायनी में संसार त्याग की बात कहीं भी नहीं कही गई ।

वस्तुत: कामायनी का" शान्तरस" अभिनवगुप्त के" शैवागम" के " आनंदवाद" पर आधारित आनन्दरस का बदला हुआ नाम है ।

व्याप्ति की दृष्टि से कामायनी का अंगीरस शृंगार ही है प्रस्तुत कथा में इसी की प्रधानता है । अप्रस्तुत कथा शान्तरस प्रधान है ।" हास्य" को छोड़कर अन्य रसों की झलक भी कामायनी में मिल जाती है जैसे -

<u>वीर रस -</u>

"छूट चले नाराच धनुष से तीक्ष्ण नुकीले ,
टूट रहे नभ धूमकेतु अति नीले पीले ।
अंधड़ था बढ़ रहा प्रजादल सा झुंझलाता ।
रण-वर्षा में शस्त्रों सा बिजली चमकाता ।।
किन्तु क्रूर मनु वारण करते उन बाणों को ।
बढ़े कुचलते हुए खड्ग से जन- प्राणों को ।।"[२]

<u>वीभत्स रस -</u>

"यज्ञ समाप्त हो चुका तो भी धधक रही थी ज्वाला ।
दारुण दृश्य, रुधिर के छींटे अस्थि खंड की माला ।।

१- जयशंकर प्रसाद - कामायनी - स्वप्न सर्ग, पृष्ठ १८५ ।
२- जयशंकर प्रसाद - कामायनी - संघर्ष सर्ग, पृष्ठ २०८ ।

वेदी की निर्मम प्रसन्नता, पशु की कातर वाणी ।
मिलकर वातावरण बना था कोई कुत्सित प्राणी ।।[१]

भयानक रस -

" धूमकेतु सा चला रुद्र नाराच भयंकर ।
लिये पूँछ में ज्वाला अपनी अति प्रलयंकर ।।
अंतरिक्ष में महा शक्ति हुंकार कर उठी ।
सब शस्त्रों की धारें भीषण वेग भर उठीं ।।
और गिरीं मनु पर मुमूर्षु वे गिरे वहीं पर ।
रक्त नदी की बाढ़ फैलती थी उस भू पर ।।[२]

करुण रस -

" गया सभी कुछ गया मधुरतम सुर बालाओं का श्रृंगार ।
उषा ज्योत्स्ना सा यौवन स्मित मधुप सदृश निश्चिंत विहार ।।
भरी वासना सरिता का वह, कैसा था मदमत्त प्रवाह ।
प्रलय जलधि में संगम जिसका, देख हृदय था उठा कराह ।।"[३]

वात्सल्य रस -

झूले पर उसे झुलाऊँगी, दुलराकर लूँगी वदन चूम ।
मेरी छाती से लिपटा इस घाटी में लेगा सहज घूम ।।
वह आयेगा मृदु मलयज सा लहराता अपने मसृण बाल ।
उसके अधरों से फैलेगा नवमधुमय स्मिति लतिका प्रवाल ।।"[४]

किन्तु ये सभी रस अल्पव्यापी और श्रृंगार तथा शान्त रसों के सहायक बनकर आए हैं ।

निष्कर्षत: कामायनी की रस व्यंजना पूर्ववर्ती महाकाव्यों की कोटि की न होकर मौलिक और नवीन है । जिन रसों की व्याप्ति उसमें

१- जयशंकर प्रसाद - कामायनी , कर्म सर्ग, पृष्ठ १२४ ।
२- जयशंकर प्रसाद - कामायनी , संघर्ष सर्ग, पृष्ठ २१० ।
३- जयशंकर प्रसाद - कामायनी , चिन्ता सर्ग, पृष्ठ १७-१८।
४- जयशंकर प्रसाद - कामायनी , ईर्ष्या सर्ग, पृष्ठ १६० ।

दिखाई देती है, वह भी विभावानुभाव व्यभिचारी के चौखटे में पूरी तरह फिट नहीं बैठती, और न उनका लक्ष्य ही शास्त्रीय ढंग का रस परिपाक दिखाना रहा है। अतः शास्त्रीयता की दृष्टि से रस-व्यंजना के क्षेत्र में कामायनी एक असफल महाकाव्य है, किन्तु नवीनादर्शों के आलोक में प्रभावान्विति की दृष्टि से कामायनी की सफलता में संदेह नहीं किया जा सकता। क्योंकि वह परंपरागत महाकाव्यों की लीक से कुछ अलग घटना प्रधान न होकर भाव प्रधान है।[1]कामायनीकार को कोमल, मधुर और गंभीर सभी प्रकार के भावों की व्यंजना में सफलता मिली है और वह पाठक हृदय पर स्थायी और अपेक्षित प्रभाव डालने में सक्षम रहा है यह प्रभाव कामायनी के महाकाव्यत्व का समर्थक है।

कामायनी की जीवनी शक्ति -

" महाकाव्य के सामान्य लक्षणों से अधिक आवश्यक यह है कि उसमें ऐसी अनवरुद्ध जीवनी शक्ति हो, जो युग-युग में गंगा की धारा की तरह सामाजिक परिवर्तनों, राजनीतिक उलटफेर और सांस्कृतिक विकास की विषम भूमि के बीच से समाज के हृदय प्रदेश में महाकाव्य की सरस धारा को अजस्र रूप में प्रवहमान रख सके।"[2]

यह जीवनी शक्ति महाकाव्यकार अपने समाज अथवा राष्ट्र से ग्रहण करता है और महाकाव्य के माध्यम से उसे पुनः आदर्श रूप में समाज के सामने प्रस्तुत करता है। समाज की मूलभूत शाश्वत चेतना, जिसके आधार पर समाज की नींव खड़ी हुई है, कवि के मानस से एकाकार होकर महाकाव्य में अवतरित होती है और उसे सशक्त तथा प्राणवान बनाती है, जिससे कि वह भावी युगों के लिए

१- श्यामनन्दन किशोर- आधुनिक हिंदी महाकाव्यों का शिल्प विधान, पृष्ठ ८६
" आज के महाकाव्यों में रस व्यंजना से अधिक भाव व्यंजना पर ध्यान दिया जाता है। एक तो रस अंतः सलिला की तरह प्रच्छन्न रूप से प्रवाहित तो होते हैं पर उनसे अधिक चरित्र, परिस्थिति और वातावरण को ध्यान में रखकर क्षण-क्षण परिवर्तित मनोभावों की व्यंजना को ही अधिक महत्त्व दिया जाता है। इसका एक कारण आज के महाकाव्यों में घटनात्मकता का अभाव भी है। कथात्मकता या घटनात्मकता की सघन योजना के अभाव में पूर्ण सावयव रस निष्पत्ति की न तो आवश्यकता रहती है, न पूर्ण संभावना।

२- शंभूनाथ सिंह - हिंदी महाकाव्य का स्वरूप-विकास, पृष्ठ १२०।

भी प्रेरणा स्रोत बन सके । अर्थात् समाज द्वारा ग्रहण की गई यह जीवनी शक्ति ही महाकाव्य के लिए संजीवनी बूटी है तथा यही उसके जीवंत होने का प्रमाण बनती है अन्यथा इसके अभाव में महाकाव्य के अन्य समस्त बाह्य लक्षणों से युक्त होते हुए भी कोई महाकाव्य स्थायित्व नहीं प्राप्त कर सकता ।

इस निकष पर कामायनी को परखने से उसका महाकाव्यत्व असंदिग्ध प्रमाणित होता है । उसमें एक समाज अथवा राष्ट्र के नहीं वरन अखिल विश्व के मानव सत्यों का आधार ग्रहण किया गया है । कथ्य की उदात्तता, शैलीगत गरिमा, भावों की भव्य और सशक्त व्यंजना तथा युगीन और शाश्वत सत्यों की ठोस आधार शिला पर प्रतिष्ठित होने के फलस्वरूप वह गहन जीवनी शक्ति से भरपूर है और वर्तमान ही नहीं भावी मानवता के लिये भी वह प्रेरणामयी, आनंद दायिनी तथा महत्वपूर्ण रहेगी ।

जीवन की जटिलताओं से मुक्ति और स्थायी आनन्द की खोज प्रत्येक समाज, प्रत्येक राष्ट्र तथा प्रत्येक युग के मानव का लक्ष्य है । अतिशय बौद्धिकता इस चिरंतन लक्ष्य में बाधक सिद्ध होती है । बुद्धिवाद का एकांगी विकास मानवता के विनाश का कारण बन सकता है, अतएव स्थायी शान्ति और सर्वांग पूर्ण संस्कृति की प्रतिष्ठा हेतु उसे रोकना अनिवार्य है । बुद्धितत्व के साथ हृदय तत्व का उचित योग भी अनिवार्य है । आज के मनुष्य ने अपने को खण्डों में बांट लिया है, इसीलिए उसकी शक्ति छिन्न भिन्न हो गई है और वह जीवन में विषमताओं और दुःख का अनुभव कर रहा है । वह यदि अपने बिखरे हुए शक्ति तत्वों को बटोरकर उनमें समन्वय स्थापित कर ले तो उसे अपने लक्ष्य की प्राप्ति सहज और सरल रूप में हो सकती है :-

" शक्ति के विद्युत्कण जो व्यस्त, विकल बिखरे हैं हो निरुपाय ,
समन्वय उनका करे समस्त, विजयिनी मानवता हो जाय ।"[१]

कामायनी का वह अमर संदेश है जो प्रत्येक युग के मानव के लिये प्रेरणा का अजस्र स्रोत है । इस दृष्टि से कामायनी महाकाव्य ही नहीं विश्व काव्य की गरिमा से मंडित दिखाई देती है ।

१- जयशंकर प्रसाद - कामायनी - श्रद्धा सर्ग, पृष्ठ ५७ ।

निष्कर्ष रूप में "कामायनी" में परंपराबद्ध महाकाव्यों के समान शास्त्रीय तत्वों का समावेश नहीं हुआ है, वरन् उसमें रूढ़ियों को त्यागकर महाकाव्य का एक निर्व्याज निखरा हुआ, भावात्मकता रूप प्रस्तुत किया गया है जो छायावाद युग की प्रवृत्तियों का पूर्ण प्रतिनिधित्व करता है।

बंधी हुई ठीक पर न चलने के कारण अन्य महाकाव्यों की तुलना में कामायनी में जो नयापन लक्षित होता है वह भी वस्तुत: शिल्पगत ही है, कामायनी के सूक्ष्म अध्ययन परीक्षण से यह स्पष्ट हो जाता है कि महाकाव्य की आन्तरिक गरिमा और महत्ता उसमें पूर्णरूपेण सुरक्षित है। उसका कथानक भव्य और उदात्त तथा महाकाव्योचित है, घटनाक्रम में बाह्य रूप से शैथिल्य दोष होते हुए भी मानवीय भावों के विकास को अत्यंत मनोवैज्ञानिक और सुंदर ढंग से प्रस्तुत किया गया है। पात्रों का चरित्र चित्रण समुचित ढंग से हुआ है। नायक "मनु" का चरित्र प्राचीन महाकाव्यों के आदर्श नायक से मेल न खाने पर भी कामायनी के कथानक के अनुकूल है। इसके अतिरिक्त नायिका श्रद्धा का चरित्र अत्यंत भव्य और उदात्त दिखाकर तथा उसी के नाम पर महाकाव्य का नामकरण करके चरित्र चित्रण की दृष्टि से महाकाव्य की गरिमा को खंडित न होने देने का सफल प्रयत्न किया गया है। कामायनी की रस व्यंजना प्राचीन पद्धति पर नहीं हुई, तथापि उसमें आन्तरिक सरसता है जो उदात्त भावनाओं की सफल अभिव्यंजना के फलस्वरूप स्वत: आ गई है। यह अवश्य है कि "कामायनी" में रसलीन होने के लिये सामान्य से कुछ ऊपर, एक विशिष्ट पाठक समुदाय अपेक्षित है। शैली शिल्प की दृष्टि से कामायनी छायावाद का ही नहीं हिन्दी काव्य का भी उत्कृष्टतम रूप प्रस्तुत करती है। लक्षण ग्रन्थों का अनुकरण न करने पर भी आशीर्वचन, सज्जन स्तुति दुर्जन निन्दा सर्गान्त में छन्द परिवर्तन आदि कुछ तत्वों को छोड़कर आचार्यों द्वारा निर्दिष्ट प्राय: सभी महत्वपूर्ण लक्षण इसमें किंचित परिवर्तित रूप में

प्राप्य है । आधुनिक युग का तो यह प्रतिनिधि तथा सर्वश्रेष्ठ महाकाव्य है, इस संबंध में आधुनिक युगीन श्रेष्ठ साहित्य मनीषी एकमत हैं ।[1]

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि छायावादी काव्य काव्य रूपों के प्रयोग में विविधता संपन्न है । उसमें परंपरित काव्य रूपों को नया संस्कार मिला। साथ ही छायावादी कवियों ने अनेक अप्रयुक्त काव्य रूपों का भी प्रयोग किया । छायावादी कवियों की प्रतिभा गीतिकाव्य के क्षेत्र को उजागर करती हुई निरंतर प्रखरतम होती गई है । अर्थात् गीत और प्रगीत सदृश निर्बन्ध काव्य से प्रारंभ करके ये कवि उत्तरोत्तर रचना प्रक्रिया की प्रौढ़ता की ओर उन्मुख हुए हैं । आख्यानक काव्य, खण्ड काव्य, गीति नाट्य आदि सोपानों को पारकर अंतत: उनकी प्रतिभा महाकाव्य के शिखर पर पहुँचकर अपने भव्यतम रूप में प्रकट हुई । अस्तु, छायावादी कवियों द्वारा प्रयुक्त सभी काव्यरूप अपने स्वरूप एवं शिल्प में परंपरागत उपकरणों को प्रयोगोन्मुख करने में प्रवृत्त दिखलाई पड़ते हैं । इसीलिए उनके द्वारा प्रयुक्त काव्य-रूपों में सृजनशीलता पल्लवित हुई है ।

१- नन्ददुलारे वाजपेयी - आधुनिक साहित्य, पृष्ठ ८०

" परंपरागत महाकाव्य के लक्षणों की पूर्ति न करने पर भी कामायनी को नए युग का प्रतिनिधि महाकाव्य कहने में हमें कोई झिझक नहीं होती ।"

शम्भुनाथ सिंह - हिन्दी महाकाव्य - स्वरूप तथा विकास , पृष्ठ ५६२

" कामायनी के महाकाव्यत्व पर संदेह करनेवाले वे ही लोग हो सकते हैं जो या तो महाकाव्य की शास्त्रीय रूढ़ियों को दृढ़तापूर्वक पकड़कर चलनेवाले होंगे या जिन्हें कामायनी में विशद काव्य की अंतर्योजना और समष्टि रूप में कोई समन्वित प्रभाव नहीं दिखाई पड़ता होगा ।"

नगेन्द्र - कामायनी के अध्ययन की समस्याएं , पृष्ठ १८

" अन्य महाकाव्य जहां मानव सभ्यता की खण्ड चित्र प्रस्तुत कर रह जाते हैं वहां कामायनीकार ने उनका समग्र चित्र प्रस्तुत करने का साहसपूर्ण प्रयास किया है । वह प्रयास पूर्ण नहीं हुआ, किन्तु इसका परिधि विस्तार इतना अधिक है कि अपनी अपूर्णता में भी यह अद्भुत है - असामान्य है ।"

अध्याय - ५

छायावादी काव्य की भाषा

काव्य भाषा -

काव्य के अंतर्गत भाषा का वही महत्व है जो आत्मा के लिये शरीर का । अकारहीन आत्मा शरीर द्वारा व्यापित होकर सुस्पष्ट और प्रभावशाली बनती है, तथा कवि की भावनायें भाषा का परिधान ग्रहण कर प्रेषणीय बनती है । " भाव " काव्य की आत्मा है, तो भाषा उसका कलेवर । काव्य की श्रेष्ठता के लिये दोनों की पारस्परिक संगति अनिवार्य है । चाहे कितने उत्कृष्ट भाव हों, यदि भाषा भी उसी के अनुरुप व्यंजक नहीं है तो कविता का सौन्दर्य फीका पड़ जाता है । कवि-प्रतिभा की परख के लिए उसके द्वारा व्यवहृत भाषा एक महत्वपूर्ण कसौटी कही जा सकती है । भाषा का प्रयोग प्रत्येक कवि अपने ढंग से तथा अपनी रुचि के अनुसार करता है, किन्तु श्रेष्ठ कवि वही होता है, जिसकी रचनाओं में भाषा सर्वत्र उसके इंगित पर चलती है । भाषा को अपनी वशवर्तिनी बनाकर चलने के लिये कवि को भाषा (जिस भाषा का प्रयोग वह अपने काव्य में कर रहा है) की विशिष्ट लय और उसकी प्रकृति का पूर्ण ज्ञान होना अनिवार्य है । इस ज्ञान के आधार पर ही वह अपनी रचनाओं में सौन्दर्य और आकर्षण की वृद्धि करके उन्हें अधिकाधिक प्रेषणीय बना सकता है ।

खड़ीबोली का विकास -

हिन्दी कविता के क्षेत्र में एक लम्बी अवधि तक ब्रजभाषा का ही एक मात्र साम्राज्य रहा और वही काव्य की मुख्य भाषा बनी रही । आधुनिक युग के प्रारंभ में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने गद्य के क्षेत्र में खड़ीबोली को प्रश्रय दिया, किन्तु पद्य के क्षेत्र में खड़ीबोली प्रयोग के प्रयास अत्यंत नगण्य से रहे । क्योंकि भारतेन्दु तथा उनके समयुगीन कवियों की धारणा के अनुसार खड़ीबोली काव्यभाषा के गुणों से शून्य थी और उसका प्रयोग केवल गद्य के क्षेत्र में ही संभव था । गद्य में वैचारिकता की

प्रधानतावश पारिभाषिक शब्दावली और बोलचाल की भाषा भी व्यवहृत हो सकती है, किन्तु पद्य की अथवा कविता की भाषा के लिये रागात्मक तथा बोलचाल की साधारण भाषा से उत्कृष्ट होना अनिवार्य है। ब्रजभाषा में उच्चारण की दृष्टि से एक स्वाभाविक मिठास है, इसके अतिरिक्त अनेक वर्षों तक काव्य के लिये व्यवहृत होने के फलस्वरूप वह भलीभाँति मँज चुकी थी। अतएव उसकी तुलना में खड़ीबोली बहुत पीछे रह जाती थी। ब्रजभाषा की ललित-मधुर पदावली के चिर प्रेमी कवियों ने खड़ीबोली की सामर्थ्य को पहचानने परखने की न तो कोई चेष्टा की और न उसे परिमार्जित करने का ही कोई उपाय किया। आगे चलकर महावीर प्रसाद द्विवेदी ने पूर्ववर्ती कवियों की भ्रान्त धारणा का खण्डन करते हुए कविता के क्षेत्र में खड़ीबोली के प्रयोग को न केवल प्रोत्साहन दिया वरन् उसे काव्योपयोगी बनाने हेतु व्यक्तिगत रूप से विशेष श्रम किया। द्विवेदी जी ने आदर्श भाषा के नमूने प्रस्तुत किये और व्याकरण संबंधी अनेक नियम बनाने के साथ-साथ भाषागत प्रचलित दोषों की ओर भी अपने सहकर्मियों तथा पाठकों का ध्यान आकर्षित किया। "सरस्वती" इसके लिए उपयुक्त माध्यम सिद्ध हुई। खड़ीबोली के प्रति हिन्दी कवियों की रुचि जगाने तथा उसे प्रांजल और गरिमामयी बनाने में महावीर प्रसाद द्विवेदी तथा उनके द्वारा संपादित पत्रिका "सरस्वती" का अत्यंत महत्वपूर्ण योगदान रहा है। द्विवेदी जी से प्रेरित होकर यद्यपि उस युग के शीर्षस्थ कवि अयोध्यासिंह उपाध्याय "हरिऔध", मैथिलीशरण गुप्त रामनरेश त्रिपाठी आदि निरंतर खड़ीबोली में सफलतापूर्वक काव्य-रचना कर रहे थे तथापि उस समय तक भी कवियों, पाठकों और आलोचकों के हृदय एवं मस्तिष्क ब्रजभाषा के लालित्य के सर्वव्यापी प्रभाव से मुक्त नहीं हो सके थे और न खड़ीबोली इतनी समर्थ बन पाई थी कि वह ब्रजभाषा की रस माधुरी में आपाद-मस्तक डूबे हुए काव्य रसिकों को अपनी भंगिमाओं से लुभा पाती। खड़ीबोली को व्यंजना की कान्ति से मंडित करके सुकोमल, मधुर और महिमामयी बनाने का श्रेय छायावाद के कवियों को ही है। सुमित्रानन्दन पन्त के अनुसार -"खड़ीबोली जागरण की चेतना थी। द्विवेदीयुग जिस जागरण का प्रारंभ था हमारा युग उसके विकास का समारंभ था। छायावाद के शिल्प कक्ष में खड़ीबोली ने धीरे धीरे सौन्दर्यबोध, पद मार्दव तथा भाव-गौरव प्राप्त कर प्रथम बार काव्योचित भाषा का सिंहासन ग्रहण किया।"[१]

१- सुमित्रानन्दन पन्त - रश्मिबंध (भूमिका परिदर्शन) पृष्ठ ६।

छायावाद युग : खड़ीबोली की प्रतिष्ठा -

चार सौ वर्षों से भी अधिक समय तक हिन्दी काव्य-क्षेत्र में राज्य करनेवाली पूर्णतः परिष्कृत और समृद्धि के सर्वोच्च शिखर पर पहुंची हुई ब्रजभाषा को अपदस्थ करके खड़ीबोली ने छायावाद-युग में काव्यभाषा के रूप में भरपूर सफलता और लोकप्रियता प्राप्त की। छायावाद के समस्त कवियों की काव्य भाषा विशुद्ध साहित्यिक खड़ीबोली है। केवल प्रसाद की कुछ प्रारंभिक कवितायें ब्रजभाषा में लिखी गई थी। उनमें भी छायावादी कवि का नवीनता प्रेम अंशतः फलक जाता है। प्रसाद ने एक ओर तो ब्रज प्रदेश में प्रचलित तद्भव और देशज शब्दों जैसे लसत, भीजि, निवारि, ठांव, ठिठकी, टेरो, उछाह, ठौर, पसीजत आदि का खुलकर प्रयोग किया है, दूसरी ओर अपने भाषा वैशिष्ट्य को बनाए रखने के लिये प्रायः संस्कृत के तत्सम शब्दों का यथा रूप प्रयोग किया है। जैसे -

" विस्तृत कुंतल भार पूर श्रम बिंदु कनी के।
रति श्रम जल लव मंडित श्रान्त वदन रमनी के ।।"[१]

इस प्रकार के प्रयोगों में ब्रजभाषा की सुपरिचित मधुरिमा अनुपलब्ध रहती है, क्योंकि संस्कृत के तत्सम शब्दों, दीर्घ समासों तथा स्वरों की संधि पर आश्रित क्लिष्ट शब्द योजना ब्रजभाषा की मूल प्रकृति से मेल नहीं खाती।

खड़ीबोली के निरंतर बढ़ते हुए प्रभाव के फलस्वरूप प्रसाद का यह ब्रजभाषा मोह शीघ्र ही समाप्त हो गया और अपनी आगामी रचनाओं के लिये उन्होंने खड़ीबोली को ही अपनाया। वस्तुतः ब्रजभाषा का शब्द-चयन, पद-विन्यास, अभिव्यंजना की भंगिमा और छंद आदि सभी कुछ रूढ़ि ग्रस्त हो चुके थे। शताब्दियों तक निरंतर परंपरागत रूप में प्रयुक्त होने के कारण उन वाग्रूपताओं में चित्त चमत्कृति की शक्ति निःशेष हो गई थी। अतः प्रतिपाद्य एवं अभिव्यंजना शिल्प दोनों की ही दृष्टि से नवयुग की चेतना से प्रबुद्ध इन युवा कलाकारों के मन में नूतन विचार एवं भाव भंगिमाओं के साथ साथ आगे पग बढ़ाने में असमर्थ जर्जर भाषा के प्रति तीव्र विकर्षण उत्पन्न हो गया।[२]

१- जयशंकर प्रसाद - चित्राधार - मकरन्द बिन्दु, पृष्ठ २५।
२- प्रतिमा कृष्णबल - छायावाद का काव्य शिल्प- पृष्ठ १६१-६२।

सुमित्रानन्दन पन्त ने " पल्लव " की भूमिका में " छायावाद " के रूप में हिन्दी काव्य की नवजागृत चेतना पर प्रकाश डालने के साथ-साथ भाषा के संबंध में भी अपने विचार व्यक्त किये हैं जो काव्यभाषा के क्षेत्र में नवीन क्रान्ति के दिग्दर्शक हैं । परंपरानुमोदित " ब्रजभाषा " के संबंध में वे लिखते हैं - " मुझे तो उस तीन चार सौ वर्ष की वृद्धा के शब्द बिल्कुल एक मांस हीन लगते हैं, जैसे भारती की वीणा की झंकारें बीमार पड़ गई हों --------- ।"[१]

छायावादी काव्य का भाषागत उत्तराधिकार : -

छायावादी कवियों को द्विवेदी युग से जो भाषा उत्तराधिकार में मिली थी वह व्याकरण सम्मत और शुद्ध होती हुई भी उतनी समर्थ न थी कि उसके द्वारा वैयक्तिक अनुभूतियों की भावुक अभिव्यंजना और वस्तुगत सूक्ष्म सौन्दर्य का चित्रण हो सकता । इसके साथ ही द्विवेदीयुगीन कवियों के समक्ष संस्कृत ही आदर्श भाषा थी, अतएव उन्होंने संस्कृत के शब्दों को अपनाकर अपने शब्द भण्डार में वृद्धि की । संस्कृत तत्सम शब्दों और दीर्घ समासों की हिन्दी कविता में ऐसी भरमार हुई कि प्राय: उनमें खड़ीबोली का निजर्म स्वरूप खोज पाना कठिन हो गया । उदाहरणार्थ -

" भीतेवाम्बुदमण्डलीव्वनुगता आकाश क्या स्वच्छ है ?
लोक: सुप्तविबुद्धवत् विमलधी: प्रोत्साह से है भरा ।।[२]

हरिऔध प्रभृति द्विवेदीयुग के मूर्द्धन्य और लोकप्रिय कवियों की रचनाओं में इस प्रकार की संस्कृत निष्ठा और दीर्घ समस्त पदावली प्रेम के अनेकानेक उदाहरण प्राप्य है । पद विन्यास की शैली भी प्राय: संस्कृत के ढंग की दिखाई देने लगी । यथा -

" चकित दृष्टियाँ व्याप्त हुई ।
वहाँ सुमित्रा प्राप्त हुई ।।[३]

१- सुमित्रानन्दन पन्त - पल्लव (भूमिका) पृष्ठ २१ ।

२- रामचरित उपाध्याय - आमंत्रण, सरस्वती , नवंबर १९२४, पृष्ठ १२४७ ।

३- मैथिली शरण गुप्त - साकेत, पृष्ठ २४ ।

खड़ीबोली का नव शृंगार -

संस्कृत से आतंकित हिन्दी भाषा का यह व्याकरणिक नियमों में जकड़ा हुआ रसार्द्रता-विहीन रूप , भावुक , कला प्रेमी और सूक्ष्म सौन्दर्यानुभूति को नवीन रूपरेखा में अंकित करने के अभिलाषी छायावादी कवियों को मान्य नहीं हुआ । अतएव उन्होंने कुशल शिल्पी की भाँति प्रत्येक शब्द की अंत:प्रकृति का सूक्ष्म अध्ययन करके आवश्यक काँट-छाँट और परिवर्तन द्वारा भाषा में भाव व्यंजकता की पुष्टि की ; तथा उसकी समृद्धि हेतु अंग्रेज़ी, बंगला, उर्दू तथा अन्य प्रांतीय भाषाओं के अनेक शब्द ग्रहण करके अपने शब्द भण्डार का विस्तार किया । कुछ अप्रचलित शब्दों का पुनर्प्रयोग और कुछ नवीन शब्दों की रचना करके भी उन्होंने भाषा को सशक्त और प्रभावशाली भी बनाया । द्विवेदी युग खड़ीबोली का निर्माण युग था तो छायावाद युग उसका कला-युग अथवा चरमोत्कर्ष का युग । छायावादी कवि स्वच्छंदता प्रेमी होने के नाते काव्य भाषा के क्षेत्र में भी परंपरागत व्याकरणिक नियमों से बंधकर नहीं चले हैं उनकी दृष्टि मूलत: सौन्दर्यनिष्ठ रस-दृष्टि रही है, अतएव भाषा-संबंधी नियमों से बढ़कर उन्होंने काव्य में नाद-सौन्दर्य को महत्ता दी है । नाद-सौन्दर्य की रक्षा हेतु उन्होंने कवि के विशेषाधिकार का प्रयोग करते हुए यथावश्यकता व्याकरण के नियमों को तोड़ा भी है,क्योंकि उनकी मान्यतानुसार कविता का प्राणतत्व उसमें निहित 'नाद' अथवा राग ही है । 'पंत' लिखते हैं - 'भाषा का और मुख्यत: कविता की भाषा का, प्राण राग है । राग ही के पंखों की अबाध उन्मुक्त उड़ान में लयमान होकर कविता सान्त को अनंत से मिलाती है। + + + + + + + + + जिस प्रकार शब्द एक ओर व्याकरण के कठिन नियमों से बद्ध होते, उसी प्रकार दूसरी ओर राग के आकाश में पक्षियों की तरह स्वतंत्र भी होते हैं ।[१]

छायावाद के प्रत्येक कवि ने भाषा प्रयोग के अन्तर्गत अपनी विशिष्ट रुचियों का प्रदर्शन करते हुए शब्दों का चयन और पदों का विन्यास मौलिक ढंग से अपने अपने मन के अनुकूल किया है तथापि समग्र रूप में उनकी मूल प्रवृत्तियाँ एक जैसी ही हैं ।

१- सुमित्रानन्दन पन्त - पल्लव (भूमिका) पृष्ठ २२-२३ ।

काव्य भाषा विवेचन के आधार -

किसी भी काव्यभाषा के विश्लेषण विवेचन के दो आधार हो सकते हैं, भाषा का बाह्य स्वरूप और उसकी आन्तरिक सज्जा। बाह्य स्वरूप से तात्पर्य उसके शब्द-समूह और व्याकरणिक नियमावली दोनों से है तथा आन्तरिक सज्जा के अन्तर्गत भाषा की अर्थ व्यंजकता में वृद्धि करनेवाले तत्वों तथा उसकी विशिष्ट शब्द-मैत्री अथवा पद विन्यास पर विचार किया जा सकता है। छायावादी काव्यभाषा में परंपरानुगमन और नवीन प्रयोगों के परीक्षण विश्लेषण हेतु भी उपर्युक्त आधार समीचीन होगा।

छायावादी काव्यभाषा का स्वरूप :-

भाषा के तीन मुख्य अवयव है - वर्ण, शब्द और वाक्य। छायावादी भाषा के स्वरूप को समझने के लिये उसके इन तीनों अवयवों पर अलग अलग दृष्टिपात करना आवश्यक है।

वर्ण मैत्री :-

वर्ण भाषा का लघुतम किन्तु अत्यंत महत्वपूर्ण अंश है। वह एक ऐसा ध्वनिखण्ड है जिसके द्वारा किसी भाषा की लय में कर्मण्यता आती है। वर्ण का अपना एक व्यक्तित्व होता है। एक ही वाक्य में एक वर्ण को हटाकर उसके स्थान पर दूसरा रख दिया जाए, तो पूरे वाक्य का अर्थ परिवर्तित हो जाएगा।

भाषा, चाहे वह किसी भी देश की हो, सर्वदा समाज-सापेक्ष होती है, क्योंकि मनुष्य स्वयं एक सामाजिक प्राणी है। मनुष्य की भाषा मनुष्य के जीवन की अनुगामिनी होती है। परिवर्तन जीवन का नियम है। जीवन के बदलते हुए परिवेश भाषा और उसके ध्वनि खण्डों में भी परिवर्तन ला देते हैं। इसीकारण किसी एक ही भाषा के जो ध्वनिखण्ड किसी एक युग में बहुत अधिक प्रचलित होते हैं, अन्य युगों में उनका प्रयोग कम हो जाता है, अथवा उनका रूप परिवर्तित हो जाता है। यदि ऐसा न हो तो भाषा की जीवनी - शक्ति समाप्त हो जाएगी। जातीय जीवन से संपर्क बनाए रखकर ही कोई भाषा प्राणमयी बनी रह सकती है। किन्तु

युगानुरुप ढलने के साथ ही प्रत्येक युग की भाषा अपने पूर्ववर्ती युग के कुछ ध्वनि खण्डों को यथारूप अथवा कुछ बदले हुए रूप में ग्रहण करके चलती है, यह एक स्वाभाविक प्रक्रिया है। परन्तु कभी-कभी किसी भाषा विशेष के ध्वनि खण्डों को अपनाने का मोह प्रबल हो उठता है, परिणामत: भाषा की मूल प्रकृति से मेल न खाने के कारण ऐसे प्रयोग भाषा के स्वाभाविक विकास क्रम में बाधक हो जाते हैं, और उसे अस्वाभाविक रूप प्रदान करते हैं। परिणामत: जन-जीवन से मेल न खाने के कारण ऐसी भाषा अधिक समय तक स्थायी नहीं रह पाती।

द्विवेदी युग में खड़ीबोली को संस्कृत गर्भित बनाने का प्रयत्न किया गया था अतएव इस युग के कवियों में संस्कृत के ही ध्वनि खण्डों को अपनाने की प्रवृत्ति विशेष रूप से रही है। यत्नज तथा जनभाषा से पृथक होने के फलस्वरूप द्विवेदी युग की उस संस्कृत मिश्रित खड़ीबोली के ध्वनि खण्डों में वह प्रवाह और माधुर्य नहीं मिलता जैसा कि पूर्ववर्ती काव्य-भाषा (ब्रजभाषा) में था। भाषा संस्कार और व्याकरणिक नियमों के निर्वाह की धुन में वर्ण-योजना के सौन्दर्य और श्रुति माधुर्य की ओर तत्कालीन कवियों का ध्यान बहुत कम गया। इसी कारण ब्रजभाषा की कविताओं की तुलना में तत्कालीन खड़ीबोली की कवितायें रस-हीन और कर्ण कटु प्रतीत हुईं।

छायावादी कवियों ने खड़ीबोली को भी ब्रजभाषा जैसी ही कोमल मसृण और ललित बनाने का प्रयत्न किया। इसके लिए वर्णों की योजना में उन्होंने पर्याप्त सतर्कता दिखाई है और स्वर तथा व्यंजन दोनों प्रकार के वर्णों का प्रयोग भावानुरुप सोच विचार कर करने की चेष्टा की है। वर्ण-संगीत के संबंध में विचार करते हुए पंत ने लिखा है - " काव्य संगीत के मूल तन्तु स्वर हैं न कि व्यंजन, ------ कविता में भी भावना का रुप स्वरों के सम्मिश्रण, उनकी यथोचित मैत्री पर निर्भर करता है, ध्वनि चित्रण को छोड़कर (जिसमें राग व्यंजन प्रधान रहता, यथा " घन घमण्ड गरजत नभ घोरा ") अन्यत्र व्यंजन संगीत भावना की अभिव्यक्ति को प्रस्फुटित करने में प्राय: गौण रूप से सहायता मात्र करते हैं।"[१]

भावानुरूप वर्ण-योजना में पंत और निराला ने विशेष कुशलता का परिचय दिया है। स्वयं पंत द्वारा दिया गया एक उदाहरण द्रष्टव्य है -

---

१- सुमित्रानन्दन पन्त - पल्लव, प्रवेश, पृष्ठ १७।

" इन्द्र धनु सा आशा का छोर
अनिल में अटका कभी छोर ।" -

इसमें "आ" स्वर की आवृत्ति निस्संदेह आशा के फैलाव को व्यक्त करती है । इसी प्रकार निराला की इन पंक्तियों में

" मधुर स्नेह के मेघ प्रखर तर
बरस गए रस निर्झर झर झर
उगा अमर अंकुर उर भीतर
संसृति भीति भगी "[१]

"झ" और "र" वर्णों की आवृत्ति द्वारा मेघों की झड़ी का दृश्य साकार हो उठा है । अन्य छायावादी कवि वर्ण योजना के प्रति इतने अधिक सचेत नहीं रहे हैं तथापि उनकी वर्ण मैत्री सुंदर, संगीतमयी और भाव-व्यंजना में सहायक रही है । उदाहरणार्थ -

" मकरंद मेघ माला सी
वह स्मृति मदमाती आती ।
इस हृदय विपिन की कलिका,
जिसके रस से मुस्क्याती ।।"[२]

यहां पर "ई" की आवृत्ति द्वारा धीरे धीरे किसी के चरण निःक्षेप करने के भाव को बल मिला है ।

भारतीय साहित्यशास्त्र के अनुसार परुष वर्णों तथा संयुक्ताक्षरों के अधिक प्रयोग से काव्य में दुःश्रवत्व दोष आ जाता है । परुष वर्णों का प्रयोग खड़ीबोली की स्वाभाविक लय के भी अनुकूल नहीं है । इस प्रसंग में निराला के विचार अत्यंत महत्वपूर्ण और युक्ति युक्त प्रतीत होते हैं - " प्रकृति की स्वाभाविक चाल से भाषा जिस तरफ भी जाए, ओज सामर्थ्य और मुक्ति की तरफ या सुखानुश्रवता मृदुलता और छंद लालित्य की तरफ, यदि उसके साथ जातीय जीवन का भी संबंध है तो यह निश्चित रूप से कहा जाएगा कि प्राण-शक्ति उस भाषा में है । +++++

१- सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला - गीतिका, पृष्ठ ३३ ।
२- जयशंकर प्रसाद - आंसू, पृष्ठ ३५ ।

यहाँ जातीय साहित्य के प्राणों की चर्चा करते हुए यह कहना पड़ता है कि ब्रजभाषा में भाषा जन्य जातीय जीवन था जो बुद्ध के बाद संस्कृत के कवि और दार्शनिकों में नहीं। इसलिए यह निर्विवाद है कि ब्रजभाषा के बाद की जो भाषा होगी उसमें ब्रजभाषा के कुछ चिन्ह जीवन की शक्ति या रूप के तौर पर अवश्य होंगे। खड़ीबोली का उत्थान ब्रजभाषा के पश्चात् होता है, इसलिये ब्रजभाषा के कुछ जीवन चिन्ह उसमें रहने जरूरी है। हम देखते हैं कि ब्रजभाषा में "श" "ष" दोनों "स" बन गए हैं, बहुत जगह "व" "ब" बन गया है। खड़ीबोली में शुद्ध उच्चारण की ओर ध्यान रहने पर भी वर्णों की यह अशुद्धि ही जैसे अच्छी लगती है। इसकी विशेषता हम अच्छी तरह देख लेते हैं जब कोई उर्दू मिली चलती जबान लिखता है "बस" "वश" की जगह "बेबस" "विवश" की जगह किरन किरण की जगह लाते हैं + + + + + + कुछ हो यह मालूम हो जाता है कि वर्णों में श ण व खड़ीबोली के प्राणों को खटकते हैं।[1] फिर भी छायावाद के प्रायः सभी कवियों ने निस्संकोच परुष वर्णों का प्रयोग किया है। पंत की रचनाओं में इनका बाहुल्य लक्षित होता है। किन्तु पंत वर्ण योजना में इतने कुशल हैं कि परुष वर्णों के प्रयोग से उनकी भाव-व्यंजना और भी सशक्त रूप ले लेती है जैसे :-

" लक्ष अलक्षित चरण तुम्हारे चिन्ह निरंतर,
छोड़ रहे हैं जग के विक्षत वक्षःस्थल पर।
शत शत फेनोच्छ्वसित स्फीत फूत्कार भयंकर।।"[2]

इन पंक्तियों में "क्ष" "ण" और "श" वर्णों द्वारा प्रकृति के रौद्र रूप का सजीव चित्र उपस्थित हो गया है।

स्वयं निराला ने भी इन "श" "ण" व वर्णों का प्रयोग अनेक स्थलों पर किया है। उदाहरणार्थ -

" कण कण कर कंकण प्रिय
किण किण रव किंकिणी
रणन रणन नूपुर, उर लाज लौट रंकिणी
और मुखर पायल स्वर करें बारबार।।"[3]

१- सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला - प्रबंध प्रतिमा, पृष्ठ २७०-७१।
२- सुमित्रानन्दन पन्त - आधुनिक कवि (२) "परिवर्तन" पृष्ठ ३६।
३- सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला - गीतिका, पृष्ठ ८।

यहाँ " र " और परुष वर्ण " ण " की आवृत्तियों द्वारा आभूषणों के स्वरों को मुखर किया गया है ।

स्पष्टत: इस प्रकार के प्रयोग छायावादी काव्यभाषा पर संस्कृत के प्रभाव के परिचायक हैं । ध्वनि खण्डों के चक्र में जहाँ कहीं संस्कृत का प्रभाव गहरा हो गया है, वहाँ भाषा क्लिष्ट और साधारण पाठकों के लिये दुर्बोध बन गई है । किन्तु सर्वत्र ऐसा नहीं है । संस्कृत के तत्सम रूपों के बदले जहाँ कहीं तद्भव रूपों का प्रयोग हुआ है, वहाँ " ण " न में भी बदल गया है जैसे -

" सरलपन ही था उसका मन
निरालापन ही आभूषण । "[1]

अथवा

" चुन चुन ले रे कन कन से,
जगती की सजग व्यथायें । "[2]

इसी प्रकार " शरण " के लिये " शरन ", " बाण " के लिये " बान " किरण " के लिये " किरन " आदि का प्रयोग हुआ है । वस्तुत: छायावादी कवियों ने रमणीयता और संगीत को प्रमुखता देते हुए स्वेच्छानुसार वर्ण-योजना की है । जहाँ कहीं भाषा की प्रासादिकता की ओर उनकी रुचि रमी है, वहाँ ध्वनिखण्डों का चक्र भी भिन्न प्रकार का हुआ है तथा भाषा की लय हिन्दी के अनुकूल हुई है । निराला की बाद की रचनाओं में यह तथ्य स्पष्ट है । संस्कृत निष्ठता को त्यागकर वे धीरे धीरे भाषा - सारल्य की ओर अग्रसर हुए हैं । छायावाद के उत्तरार्द्ध के कवियों भगवती चरण वर्मा, नरेन्द्र शर्मा, रामकुमार वर्मा, बच्चन, अंचल, नेपाली आदि ने संस्कृत तत्सम शब्दों के प्रयोग से अधिकाधिक बचते हुए जन जीवन की भाषा में रचनायें करने का प्रयत्न किया है अतएव उनकी वर्ण योजना पूर्वार्द्ध के कवियों से सर्वथा भिन्न है । जैसे -

" नादान तुम्हारे नयनों ने
चूमा है मुझको कई बार
कर लिये बंद क्यों आज कहो
मानस के दो घनश्याम द्वार ? "[3]

१- सुमित्रानन्दन पन्त - आधुनिक कवि, पृष्ठ ६ ।
२- जयशंकर प्रसाद - आँसू, पृष्ठ ५८ ।
३- नरेन्द्र शर्मा - [illegible]टी और फूल, पृष्ठ ४० ।

अथवा

'पल भर जीवन फिर सूनापन
पल भर तो लो हंस बोल प्रिये
कर लो निज प्यासे अधरों को
प्यासे अधरों से मोल प्रिये ।।'[१]

इनमें 'न', 'म', 'प' आदि कोमल वर्णों का स्वाभाविक रूप से प्रयोग हुआ है ।

मधुर भावों की व्यंजना हेतु प्राय: समस्त कवि कोमल वर्णों की ही योजना करते आए हैं । माधुर्य गुण के लिये ट वर्ग वर्णों का प्रयोग वर्जित माना गया है, किन्तु निराला ने इस प्रकार के अनेक प्रयोग किये हैं और उनमें सिद्धि भी प्राप्त की है ; यथा -

' बीती रात सुखद बातों में प्रात पवन प्रिय डोली
उठी संभाल बाल, मुख लट, पट, दीप बुझा हंस बोली
रही यह एक ठठोली ।'[२]

समग्र रूप में छायावादी कवि संगीतपूर्ण वर्ण मैत्री और भाषा की लय के प्रति सचेत रहे हैं, परन्तु उन्होंने इस क्षेत्र में परंपरा, सामाजिक रुचि अथवा भाषा की प्रकृति की अपेक्षा अपनी रुचि को ही प्राथमिकता दी है ।

शब्द भण्डार :

वर्णों के योग से शब्दों का निर्माण होता है और शब्दों के द्वारा अर्थ का बोध होता है (यद्यपि बहुत से ध्वन्यर्थक अथवा निरर्थक शब्द भी भाषा में प्रचलित हो जाते हैं ।) गद्यकार हो अथवा कवि उसकी संपूर्ण सफलता का आधार उसका शब्द भण्डार ही होता है । भावानुरूप शब्द योजना में सक्षम साहित्यकार ही श्रेष्ठ कलाकार होने का दावा कर सकता है । एक कुशल शिल्पी की भांति वह प्रत्येक शब्द की आत्मा से परिचित होता है और उन्हें अपने मनोनुकूल गढ़ने के लिये उनके स्वरूप में काट-छांट करके उनकी औचित्यपूर्ण सार्थक योजना द्वारा अपनी रचना में भाव सौन्दर्य की वृद्धि और प्रभावान्विति की पुष्टि करता है ।

१- भगवती चरण वर्मा - प्रेम संगीत, पृष्ठ ३६ ।
२- सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला - गीतिका, पृष्ठ ४६ ।

जैसा कि पहले उल्लेख हो चुका है, द्विवेदी युग में खड़ीबोली अंकुरित हुई थी, पुष्पित और पल्लवित होने का अवसर उसे छायावाद युग में ही मिला। द्विवेदी युग की खड़ीबोली में काव्योचित मधुरिमा और लालित्य की कमी ने बहुधा प्रतिभावान कवियों की रचनाओं को भी नीरस तुकबंदी मात्र बना दिया। खड़ीबोली की समृद्धि में वृद्धि के लिये छायावादी कवियों ने स्तुत्य प्रयास किया। उन्होंने प्रत्येक शब्द को परंपरानुसार काव्योचित और व्याकरण की दृष्टि से शुद्ध होने के कारण नहीं वरन् भावानुरूप होने के कारण ही ग्रहण किया। प्रचलित शब्द यदि भाव-वहन में असमर्थ प्रतीत हुआ, तो उसमें कुछ हेर फेर भी कर लिया है अथवा नया शब्द गढ़ लिया है।

शब्द शिल्पी के रूप में छायावादी कवियों में पंत अग्रगण्य हैं। उनके लिये शब्द अक्षरों के निस्पंद समूह न होकर सजीव सृष्टि रहे हैं। "पल्लव" की भूमिका में अपने भाषा-संबंधी विचारों पर विस्तृत प्रकाश डालते हुए पंत एक स्थान पर लिखते हैं :- "जिस प्रकार समग्र पदार्थ एक दूसरे पर अवलंबित हैं, ऋणानुबंध है, उसी प्रकार शब्द भी। इनका आपस का संबंध, सहानुभूति, अनुराग, विराग, जान लेना ---- इनकी पारस्परिक प्रीति- मैत्री, शत्रुता तथा वैमनस्य का पता लगा लेना क्या आसान है? प्रत्येक शब्द एक कविता है लता और मालद्वीप की तरह कविता भी अपने बनानेवाले शब्दों की कविता को खा खाकर बनती है।"[१]

कविता का मूल तत्व राग मानते हुए पंत ने शब्दों को कविता में निहित राग का अनुरागी तथा सहगामी बताया है। शब्द योजना करते समय कवि को प्रत्येक शब्द की आन्तरिक झंकार अथवा उसके संगीत का पूरा पूरा ध्यान रखना चाहिये, साथ ही प्रत्येक शब्द के संगीत का मेल पूरे वाक्य के संगीत से होना चाहिये। वाक्य के संगीत से शब्द को संगीत अलग जा पड़ने पर शब्द अनमेल हो जाता है और उसके द्वारा संपूर्ण वाक्य के भाव सौन्दर्य को क्षति पहुंचती है। प्रत्येक शब्द का अपना महत्व अथवा व्यक्तित्व होता है, पर्यायवाची अथवा समानार्थी शब्द बहुधा उसके विशिष्ट राग को ध्वनित नहीं कर पाते। इस बात को पंत ने समझाने का प्रयत्न किया है ;" जैसे भ्रू भृकुटि और भौंह शब्द इनमें प्रथम से क्रोध की वक्रता, द्वितीय से कटाक्ष की चंचलता तथा तृतीय से स्वभाव की प्रसन्नता, ऋजुता का हृदय में अनुभव होता है। ऐसे ही हिलोर

१- सुमित्रानन्दन पन्त - पल्लव - भूमिका, पृष्ठ १८।

में उठान' लहर' में सलिल के वक्ष स्थल की कोमल कंपन ,' तरंग' में लहरों के समूह का एक दूसरे को धकेलना उठकर गिर पड़ना,' बढ़ो-बढ़ो कहने का शब्द मिलता है ' वीचि' से जैसे किरणों में चमकती , हवा के पलने में छोटे छोटे झूलती हुई हंसमुख लहरियों का, ऊर्म्मि' से मधुर मुखरित हिलोरों का, हिल्लोल कल्लोल से ऊंची ऊंची बाहें उठाती हुई उत्पातपूर्ण तरंगों का आभास मिलता है ।"[१]

शब्दों का इतना सूक्ष्म और गंभीर अध्ययन शायद ही किसी युग के किसी अन्य कवि ने किया हो । शब्दों की अन्तरात्मा का इतना सूक्ष्म ज्ञान होने के फलस्वरूप ही छायावादी कवियों की भाषा इतनी समृद्धिमयी बन सकी कि उसने काव्य-भाषा के रूप में परंपरा से उच्चासीन ब्रजभाषा को अपदस्थ करके स्वयं उसका स्थान ग्रहण कर लिया । छायावादी कवियों के हाथों खड़ीबोली भी ब्रजभाषा सदृश कोमल, लालित्यपूर्ण, सरस और सूक्ष्मातिसूक्ष्म भाव की व्यंजना में समर्थ बन गई । प्रसाद ने' कामायनी' में' लज्जा' जैसे मन के सूक्ष्म और कोमलतम भाव को शब्दों द्वारा सफलतापूर्वक रूपायित कर दिया है :-

" लाली बन सरल कपोलों में,
आंखों में अंजन सी लगती ।
कुंचित अलकों सी घुंघराली,
मन की मरोर बनकर जगती ।।
चंचल किशोर सुंदरता की,
मैं करती रहती रखवाली हूं
मैं वह हल्की सी मसलन हूं
जो बनती कानों की लाली ।"। [२]

और पंत की इन पंक्तियों में जीवन का अथाह सूनापन जैसे स्वयं बोल पड़ता है और वेदना की सजलता और तीव्रता मन की गहराई तक छू जाती है :-

"शून्य जीवन के अकेले पृष्ठ पर
विरह । ----- अहह कराहते इस शब्द को

१- सुमित्रानन्दन पन्त - पल्लव, भूमिका ,पृष्ठ १६ ।

२- जयशंकर प्रसाद - कामायनी , लज्जा सर्ग, पृष्ठ १११ ।

किस कुलिश की तीक्ष्ण चुभती नोक से
निठुर विधि ने अश्रुओं से है लिखा ।"[१]

शब्द भण्डार :-

छायावादी काव्य-भाषा के गौरव का प्रमुख आधार उसका शब्द भण्डार है, जो अत्यंत व्यापक और विशाल है । सुयोग्य कलाकार की भाँति इन कवियों ने इस भण्डार के रत्न चुन चुनकर और उन्हें नई तराश देकर अपनी काव्य - प्रतिमाएं निर्मित की है ।

तत्सम शब्द :-

परिमाण की दृष्टि से छायावाद की काव्यभाषा भण्डार में संस्कृत तत्सम शब्दावली का योग सब से अधिक है । संस्कृत के प्रति यह अनुराग पूर्ववर्ती युग का उत्तराधिकार कहा जा सकता है । छायावाद से पूर्व बंगला, गुजराती, मराठी आदि विभिन्न भाषाओं में संस्कृत तत्सम शब्दों के नव-संस्कार का अभियान प्रारंभ हो चुका था । हिन्दी में भी इस प्रकार के प्रयत्न हो रहे थे । महावीर प्रसाद द्विवेदी, अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध आदि विशेष रूप से इस ओर प्रवृत्त थे । किन्तु उनकी रचनाओं में संस्कृत के विशालकाय गुरु भारवाही शब्दों का ऐसा बाहुल्य हुआ कि उनके कारण खड़ीबोली का स्वरूप लुप्तप्राय हो गया । छायावादी कवियों की विशेषता इसमें है कि उन्होंने पूर्व प्रचलित संस्कृत के तत्सम शब्द रूपों को नए संदर्भों में तथा नूतन क्रम में संयोजित करके उनके द्वारा नवीन अर्थ क्रान्ति को जन्म दिया । उदाहरणार्थ -

"आँखें निद्रित
रजनी अलसित
श्यामल पुलकित कंपित कर में
चमक उठे विद्युत के कंकण "।[२]

इन पंक्तियों में संस्कृत तत्सम शब्दों का प्रचुर प्रयोग हुआ है । द्विवेदीयुगीन कविताओं में इस प्रकार के शब्द किसी बिम्ब अथवा चित्र को प्रस्तुत करने में प्रायः अक्षम होते थे, किन्तु छायावादी कविताओं में उनके द्वारा वातावरण का

१- सुमित्रानन्दन पन्त - ग्रन्थि,पृष्ठ ४२ ।
२- महादेवी वर्मा - यामा - नीरजा,पृष्ठ १८२ ।

पूर्ण चित्र सजीव हो जाता है तथा अर्थ चमत्कार उत्पन्न होता है । उपर्युक्त पंक्तियों में " निद्रित " कल्पित " रजनी के चौंकने की क्रिया में उसके कंकण रूपी विद्युत की कौंध का उल्लेख अत्यन्त युक्ति-युक्त है ।

तत्सम शब्दों में नवीन अर्थ क्रान्ति -

तत्सम शब्दावली को नवीनार्थ से संयुक्त करने के लिये छायावादी कवियों ने जहाँ कहीं स्वर संधि के आधार पर उनको विशाल आकार-प्रदान कर दिया है, जैसे -

- " सघन मेघों का भीमाकाश
  गरजता है जब तमसाकार ।"[1]

- " तुम्हारी आँखों का आकाश ।
  सरल आँखों का नीलाकाश ।।"[2]

- " उतरा ज्यों दुर्गम पर्वत पर नैशान्धकार ।"[3]

उपर्युक्त पंक्तियों में भीमाकाश (भीम+आकाश) तमसाकार (तमस+ आकार) , नैशान्धकार (नैश+ अंधकार) के द्वारा मेघाच्छन्न आकाश की विकरालता तथा नीलाकाश (नील+आकाश) के द्वारा आकाश के विस्तार के भावों की सफल व्यंजना हुई है ।

शब्दों के सामासिक प्रयोग द्वारा भी पूर्व प्रचलित तत्सम शब्दों को नई अर्थ व्यंजकता प्राप्त हुई है । निराला को इस प्रकार के प्रयोग विशेष प्रिय रहे हैं और उन्होंने इस कला में विशेष सिद्धि प्राप्त की है । इस प्रकार के प्रयोगों द्वारा भाषा में कम से कम शब्दों में अधिक से अधिक बात कह डालने की सामर्थ्य आती है । जैसे -

" आज का, तीक्ष्ण-शर-विधृत-क्षिप्र-कर-वेग, प्रखर
शतशेल संवरणशील, नील-नभ-गर्जित-स्वर ।
प्रतिपल-परिवर्तित व्यूह, भेद कपि-विषम-हूह ,

१- सुमित्रानन्दन पन्त - आधुनिक कवि - मौन निमंत्रण,पृष्ठ ३० ।
२- सुमित्रानन्दन पन्त - गुंजन,पृष्ठ ४८ ।
३- सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला - अनामिका- राम की शक्ति पूजा,पृष्ठ १४६ ।

विच्छुरित-वह्नि राजीव-नयन-हत-लक्ष्य-बाण
लोहित-लोचन-रावण-मदमोचन- महीयान ।"[१]

अनेक अप्रचलित संस्कृत शब्दों के पुनर्प्रयोग द्वारा भी छाया-वादी कवियों ने भाषा की समृद्धि बढ़ाने का प्रयत्न किया है । प्रसाद की कामायनी में प्राचीनकाल के वातावरण को मूर्त करने के लिये पुरोडाश[२] तिमिंगल आदि अप्रचलित शब्दों का सार्थक प्रयोग हुआ है ।

संस्कृत तत्सम शब्दावली के बाहुल्य के फलस्वरूप छायावादी भाषा एक विशिष्ट वर्ग की भाषा बन गई है, इसमें कोई संदेह नहीं ; तथापि लोक जीवन की सर्वथा उपेक्षा कर सकना किसी भी जीवंत भाषा के लिये संभव नहीं है । इसीलिए छायावादी कवियों ने खड़ीबोली को भी ब्रजभाषा सदृश लोकप्रिय और श्रुति मधुर बनाने का प्रयत्न किया ।

__ब्रजभाषा के शब्द :__

इन कवियों ने अपने लक्ष्य की पूर्ति हेतु ब्रजभाषा के बहुत से शब्द अपने परंपरागत रूप में अपना लिये हैं जैसे - धीरे, ठौर, पुरनिमा, पाँति, नेह, सूना, लाज, पाँखि, पसार, अचरज, भरम, साँझ आदि ।[३] एक विशिष्ट मनोदशा में बहुधा ब्रजभाषा के प्रचलित तद्भव शब्द जितने सटीक बैठते हैं, उतने संस्कृत के तत्सम रूप नहीं । इसीलिये छायावादी कवियों ने दरस, रसीली, छलिया निठुर, सेज, बिछलना, बिछोह आदि व्यंजकता के गुण से भरपूर शब्दों का प्रयोग

१- सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला - अनामिका- राम की शक्ति पूजा, पृष्ठ १४८।
२- " सोम पात्र भी भरा धरा था,
पुरोडाश भी आगे ।" - जयशंकर प्रसाद - कामायनी कर्म सर्ग, पृष्ठ १२५।

रत्न सौध के वातायन, जिनमें
आता मधु मदिर समीर,
टकराती होगी अब उनमें
तिमिंगलों की भीड़ अधीर । - जयशंकर प्रसाद - कामायनी, चिन्तासर्ग, पृष्ठ २० ।

३- रे गंध अंध हो ठौर ठौर, उड़ पाँति पाँति में चिर उन्मन -
सुमित्रानन्दन पन्त - गुंजन, पृष्ठ १०।
कामना सिन्धु लहराता, छवि पुरनिमा सी छाई-
जयशंकर प्रसाद - आँसू, पृष्ठ ३३ ।

अपनी रचनाओं में बहुलता से किया है ।[1]

कभी कभी चित्र को अधिक प्रभावशाली बनाने के लिये खड़ीबोली के बदले ब्रजभाषा के शब्द व्यवहृत हुए हैं । जैसे -

"धूम धुंआरे काजर कारे -
हम ही बिकरारे बादल ।"[2]

शब्द योजना के वैशिष्ट्य के फलस्वरूप ही उपर्युक्त पंक्तियों में उमड़ते हुए काले काले बादलों का चित्र साकार हो सका है । इसी प्रकार "भौंरे" के स्थान पर भौंर, नैत्र के स्थान "नैन" प्रक्षालन के स्थान पर पखार शब्द गृहीत हुए हैं[3] जिनसे छायावादी काव्यभाषा का कोष भी बढ़ा और उसकी भाव-व्यंजकता की सामर्थ्य भी ।

ज्यों, त्यों तुरत, तदपि, नित आदि शब्दों का बहिष्कार भाषा- संस्कार के प्रति अत्यंत सचेत, द्विवेदीयुगीन कवि भी नहीं कर सके थे, छायावादी काव्य में भी यह पूर्ववत प्रचलित रहे हैं ।[4] इसके अतिरिक्त "मनुज", "रैन", "भौर" बखान , लोल आदि शब्द भी ब्रजभाषा की दैन है, जिनका पर्याप्त प्रयोग इस युग में हुआ है ।[5]

ब्रजभाषा के कुछ ग्रामीण शब्द अथवा परंपरागत जन-भाषा के शब्द भी छायावादी कवियों ने अपनाये हैं । जैसे- हौले- हौले, चहुंदिसि, लुकना, भटकना, हुलास ढिग, दुराना, दुराव, रार आदि । यद्यपि सर्वत्र वे उनकी

१-"निठुर होकर डालेगा पीस, इसे छलिया सपनों का हास"-
महादेवी वर्मा - नीहार , पृष्ठ ६५ ।
"हैं बने बिछोह मिलन दो देकर चिर स्नेहालिंगन"-
सुमित्रानन्दन पन्त - गुंजन, पृष्ठ १८ ।

२- सुमित्रानन्दन पन्त - पल्लव, पृष्ठ ६६ ।

३-"नीले, पीले औ ताम्र भौंर"- सुमित्रानन्दन पन्त - गुंजन, पृष्ठ १० ।

४-"नित मधुर मधुर गीतों से उसका उर था उकसाया"- सुमित्रानन्दन पन्त - आधुनिक कवि, पृष्ठ १० ।
"ज्यों ज्यों उलझन बढ़ती थी बस शान्ति विहंसती बैठी"-
जयशंकर प्रसाद - आंसू , पृष्ठ २५ ।

५-"वह स्वर्ण भौर को ठहरी, जग के ज्योतित आंगन पर"-
सुमित्रानन्दन पन्त- गुंजन, पृष्ठ ३४ ।
"लोल लहरों से यति गति हीन"- सुमित्रानन्दन पन्त - गुंजन, पृष्ठ १०७ ।

भाषा में रूप नहीं पाए हैं ; कहीं कहीं व्यंजकता बढ़ाने के बदले वे बाधक ही अधिक प्रतीत होते हैं । जैसे :-

"नवोढ़ा बाल लहर
अचानक उपकूलों के
प्रसूनों के ढिंग रुककर
सरकती है सत्वर"[1]

अथवा -

"जब लीला से तुम सीख रहे ।
कौरक कोनों में लुक रहना ।।"[2]

उपर्युक्त साहित्यिक शब्दावलीवाली पंक्तियों में "ढिंग" और "लुक" जैसे ठेठ ग्रामीण शब्द ऐसे ही लगते हैं जैसे मखमल में टाट का पैबंद लगा दिया गया हो ।

<u>अन्य बोलियों के शब्द -</u>

ब्रजभाषा के अतिरिक्त पूर्वी हिन्दी पश्चिमी हिन्दी, बैसवाड़ी, बनारसी बोली आदि अनेक बोलियों से भी कुछ शब्द छायावादी भाषा में अपनाए गए हैं जैसे - गुदगुदाते, उकसाया, छिटकाये, निचोड़, बीहड़, उसांस, बटोरती, मंडराना, बाला, धाम, ढेरी आदि[3] ।

<u>बंगला प्रयोग -</u>

छायावादी काव्य पर अन्य क्षेत्रों की भांति भाषा के क्षेत्र में भी बंगला का किंचित प्रभाव दृष्टिगत होता है । छलना, झलमल, छलछल, जुगुनिनी

१- सुमित्रानन्दन पन्त - आधुनिक कवि, पृष्ठ १७ ।
२- जयशंकर प्रसाद - कामायनी - काम सर्ग, पृष्ठ ७९ ।
३- गुदगुदाते ये तन मन प्राण, - सुमित्रानन्दन पन्त- पल्लव- मुस्कान, पृष्ठ ६० ।
- तू उड़ी जहां से बन उसांस - महादेवी वर्मा - यामा (रश्मि) पृष्ठ १२४ ।
- क्या न तुमने दीप बाला - सुमित्रानन्दन पन्त - गुंजन, पृष्ठ २०५ ।

राशि-राशि आदि शब्द छायावादी काव्य ने बंगला से ग्रहण किये हैं ।[१]

बहुत से शब्द ऐसे भी हैं जो हैं तो संस्कृत के, किन्तु उनका विन्यास बंगला भाषा का है ; जैसे - मदिर गंध, स्वप्न-मग्न, गंध-अंध आदि । पंत और निराला की रचनाओं में इस प्रकार के प्रयोगों का आधिक्य मिलता है ।[२]

अंगरेजी प्रयोग -

अंगरेजी भाषा के कुछ शब्द भी अनूदित होकर छायावादी काव्य भाषा के अंग बन गए हैं ।[३] जैसे -" कान से मिले अजान नयन" में " अजान" शब्द Innocent का रूपान्तर है । इसी प्रकार -

" बाल रजनी सी अलक थी डोलती
भ्रमित हो शशि के वदन के बीच में
अचल रेखांकित कभी थी कर रही
प्रमुखता मुख की सुछवि के काव्य में ।"[४]

- यहां रेखांकित शब्द Underline का अनुवाद है ।

कहीं कहीं अंगरेजी के पूरे पूरे मुहावरे भी रूपान्तरित होकर प्रयुक्त हुए हैं जैसे Broken Heart के लिये " भग्न हृदय" Divine Light के लिए स्वर्गीय प्रकाश Golden age के लिये " सुवर्ण का काल" dreamy smile

---

१-"छलना थी तब भी मेरा
उसमें विश्वास घना था ।" - जयशंकर प्रसाद - आंसू, पृष्ठ २४ ।

- "संध्या कुसुमकिनि अंचल में
कौतुक अपना कर जाता ।" - जयशंकर प्रसाद - आंसू, पृष्ठ ३३ ।

- "जीवन का जलनिधि डोल डोल ,
कल कल छल छल करता किलोल"। - सुमित्रानंदन पंत - गुंजन, पृष्ठ ७७ ।

२-"सोई थी । स्नेह स्वप्न-मग्न ।
अमल कोमल तनु तरुणी - जुही की कली ---" सूर्यकांत त्रिपाठी निराला - परिमल - जुही की कली"

३- सुमित्रानन्दन पन्त - आधुनिक , पृष्ठ ६ ।

४- सुमित्रानन्दन पन्त - आधुनिक कवि, पृष्ठ २० ।

के लिये स्वप्निल मुस्कान आदि ।[1]

प्रसाद के "चमत्कृत होता हूं मन में, विश्व के नीरव निर्जन में"[2] में चमत्कृत शब्द Mystified का और भगवती चरण वर्मा के नए जीवन का पहला पृष्ठ यदि तुमने पलटा है आज"[3] में To turn the page of life का भाव मिलता है ।

उर्दू प्रयोग -

महादेवी, प्रसाद, दिनकर और बच्चन आदि ने कुछ उर्दू शब्दों का प्रयोग भी अपनी रचनाओं में किया है जैसे - नादान, खुमार, याद, छाले, बंदीखाना, मदहोश, परवाना, बेपीर, दीवानी, बेमन, अलबेला आदि ।

इस प्रकार छायावादी कवियों ने तत्सम तद्भव, देशज तथा विदेशी, सभी प्रकार के शब्दों को आवश्यकतानुसार ग्रहण करके खड़ीबोली के शब्द-भण्डार को व्यापकता प्रदान की है तथा उसकी अर्थ व्यंजकता में वृद्धि की है ।

शब्दों का रूप परिवर्तन -

भाषा को लचीली, मधुर और अधिक अर्थमयी बनाने के उद्देश्य अनेक स्थलों पर चिर परिचित शब्दों में कुछ काट छांट करके उन्हें नया रूप दिया गया है । जैसे "भौंह" से "भौंह" या "भौं", "प्याला" से "पियाला", निर्मित कर

१- "तेरे उज्ज्वल आंसू सुमनों में सदा बास करेंगे,
भग्न हृदय उनकी व्यथा अनिल पोछेगी ---" - सुमित्रानंदन पंत - आधुनिक कवि
पृष्ठ १

२- जयशंकर प्रसाद - झरना, पृष्ठ १८ ।

३- भगवती चरण वर्मा - "नूरजहां की कब्र पर" - माधुरी, अगस्त-सितंबर,१९२८, पृष्ठ १६१ ।

४- "छिल छिल कर छाले फोड़े" - जयशंकर प्रसाद - आंसू, पृष्ठ ११ ।

- "मैं मदिरा तू उसका खुमार" - महादेवी वर्मा - नीहार, पृष्ठ ३६ ।

- विश्व का लेती छोटी बाद,
प्राण का बंदीखाना त्याग" - महादेवी वर्मा, नीहार, पृष्ठ २० ।

- "दीपक पर परवाने आए" - हरिवंश राय बच्चन- निशा निमंत्रण, पृष्ठ ३८ ।

से निमाऊँ , प्रकट करूं से प्रकटाऊं, और से औ , प्रिय से प्रि आदि ।[1] इसी प्रकार अनिर्वच, आशी, अयास, अभिलाष आदि शब्द भी प्रचलित शब्दों को संक्षिप्त करके गढ़े गए हैं ।

कहीं कहीं शब्दों को नया रूप देने के क्रम में पूर्ण स्वेच्छाचारिता दिखाई गई है तथा उसकी व्याकरण संबंधी अशुद्धियों को भी विस्मृत कर दिया गया है । जैसे प्रिह्लाद (प्रिया आह्लाद, प्रियाह्लाद) प्रभापूर्ण्य (प्रभापूर्ण) खैंच (खींच) ऐंचीला (ऐंचा) सौभार (सभार) कटिनी (कटि) मरुदाकाश (मरुताकाश) विहगिनी (विहगी) आदि ।[2] इस प्रकार के प्रयोगों द्वारा छायावादी काव्य भाषा में नयापन अवश्य आया, किन्तु सर्वत्र ऐसे प्रयोग सफल नहीं रहे हैं । कहीं-कहीं भाषा की निरंकुशता खटकने वाली भी हुई है । जैसे- होकर सीमाहीन शून्य में मंडरायेंगी अभिलाषें[3] - में अभिलाषायें के स्थान पर अभिलाषें का प्रयोग काव्य पंक्ति की श्रीवृद्धि न करके दोषपूर्ण ही लगता है ।

बहुत से शब्दों का नवनिर्माण प्रचलित तत्सम एवं तद्भव शब्दों में प्रत्यय लगाकर किया गया है । छायावादी शब्द कोष में इस प्रकार के शब्द बड़े परिमाण में प्राप्य है । उदाहरणार्थ- रोमिल, फेनिल, स्वप्निल, धूमिल ,

---

१- पियालों में फूलों के प्रिये भर भर अपना यौवन - सुमित्रानन्दन पन्त - आधुनिक कवि , पृष्ठ १७ ।
 मैंने पूछा माँ पूजा को ,
 मैं भी माला निमाऊँ ? - सुमित्रानन्दन पन्त - वीणा, पृष्ठ ८४ ।
 - स्पन्दन कंपन औ नवजीवन सीखा जग ने अपनाया - सुमित्रानन्दन पन्त - आधुनिक कवि, पृष्ठ ५ ।

२- खैंच ऐंचीला भ्रू सुरचाप- सुमित्रानन्दन पंत - आधुनिक कवि , पृष्ठ १६ ।
 - भारत के नभ का प्रभापूर्ण्य - सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला - तुलसीदास, पृष्ठ ११ ।
 - तुम्हारे शैशव में सौभार ,
 पा रहा होगा यौवन प्राण । - सुमित्रानन्दन पंत- गुंजन, पृष्ठ ४३ ।
 - प्रिय प्रि आह्लाद रे इसका - सुमित्रानन्दन पंत - गुंजन, पृष्ठ १८ ।

३- महादेवी वर्मा - नीहार , पृष्ठ ६ ।

तन्द्रिल, स्वर्णिम, रँगिणि आदि ।[१]

स्वर-संधि के आधार पर भी कुछ नए शब्द गढ़ लिये गये हैं जैसे मदिरालस, मदिराभ, स्वप्नोत्पल पुलकाकुल आदि ।[२] बे-गुन शब्द उर्दू (बे-बिना) और संस्कृत शब्द-गुण के तद्भव रूप " गुन " को मिलाकर बनाया गया है । कुछ शब्दों का आविर्भाव मात्र - असाधारणता के मोहवश हुआ है जैसे द्रवित " के अर्थ में " भावित " शब्द का प्रयोग[३] आत्मिक शक्तियों के अर्थ में आत्मा बांधव " शब्द का प्रयोग तथा क्रीड़ांगन के अर्थ में " आक्रीड़ " शब्द का प्रयोग ।[४]

इसी तरह अज्ञात " शब्द का प्रचलित अर्थ है " जो ज्ञात न हो, " किन्तु पंत ने उसका प्रयोग " अनजान " (Unnoticed) के अर्थ में किया है ।

" छूकर अपना ही गात मुरझा जाती हो अज्ञात " [५]

" प्रसाद " ने संवेदन " शब्द - से " बोधवृत्ति " का अर्थ व्यक्त किया है -

- मनु का मन था विकल हो उठा ,
संवेदन से खाकर चोट ।"[६]

" चल चितवन " का साधारण अर्थ हुआ " चंचल , चितवन " किन्तु निराला ने चल चितवन लिखकर चंचल चितवनवाली " की ओर संकेत किया है :-

" मरुत पुलक भर की प्रकंपित ,बार बार देखती चपल चित ,
स्पर्श चकित कम्पित हो हर्षित, लक्ष्य पार करती चल चितवन ।[७]

१-"जीवन के फेनिल मोती को ले ले चल करतल में टलमल " - सुमित्रानंदन पंत - आधुनिक कवि, पृष्ठ ४७
- "तन्द्रिल पलकों में निशि के शशि,सुखद स्वप्न बनकर बिखरी हैं" - सुमित्रानन्दन पन्त- आधुनिक कवि,पृष्ठ ४६ ।
- "प्रथम रश्मि का आना रँगिणि तूने कैसे पहचाना ?" सुमित्रानन्दन पन्त - आधुनिक कवि,पृष्ठ ३ ।
२-"छू छू मृदु मलयानिल रह रह करता प्राणों को पुलकाकुल " - सुमित्रानंदन पंत - आधुनिक कवि,पृष्ठ ४७
३-"भावित नयनों से सजल गिरे दो मुक्तादल" - सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला - अनामिका-राम की शक्तिपूजा- पृ०१५२।
४-"हृदय मेरा तेरा आक्रीड़" - सुमित्रानन्दन पन्त-गुंजन,पृष्ठ ८३ ।
५- सुमित्रानन्दन पन्त - वीचि विलास- सरस्वती मई,१६२४,पृष्ठ ५०६ ।
६- जयशंकर प्रसाद - कामायनी ,पृष्ठ ३६ ।
७- सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला - गीतिका,पृष्ठ १५ ।

दिनकर ने उर्दू शब्द "शाम" को उसके प्रचलित अर्थ में न ग्रहण करके उसके द्वारा दिन-रात के संधिकाल के अर्थ की व्यंजना की है -

" वसन कहाँ सूखी रोटी भी
मिलती दोनों शाम नहीं ।"[१]

<u>शब्द - मोह :</u>

कुछ सामान्य शब्दों जैसे सा, ना, रे आदि का अत्यंत मोहक और श्लाघ्य प्रयोग छायावादी कविताओं में दिखाई देता है । परन्तु इन शब्दों के प्रति मोह कहीं कहीं सीमायें लाँघ गया है , परिणामत: अनेक स्थलों पर यह शब्द सौन्दर्य और चमत्कार से हीन तथा निरर्थक से प्रतीत होते हैं जैसे :- " बैंधते मर्म बार रे बार," "आज बौरे रे तरुण रसाल ," "झिला रे गई पात से पात" आदि प्रयोग ।[२]

चिर, सुभग, स्वर्ण, मधु, बाल, नव आदि भी छायावादी भाषा के कुछ ऐसे बहु प्रचलित शब्द हैं जिनके प्रति इन कवियों ने अनावश्यक आसक्ति दिखाई है। जैसे चिर- चिर मूक, चिर नव, चिर अनजान, चिर सजल, सुभग - चिर सुभग, सुभग स्वाति, सुभग दीप, स्वर्ण- स्वर्ण सुहाग, स्वर्ण विहार, स्वर्ण रेख, स्वर्ण छवि,

मधु - मधु प्रात, मधु बाल, मधु प्यास, मधुमय, मधुराका
बाल - मेघों के बाल, मधुबाल, पिक बाल
नव - नव गति, नव लय, नव पर, नव स्वर, नवोन्मेष
नव नभ, नव विहग आदि ।

शब्दों के प्रति निरर्थक मोह सब से अधिक पंत की रचनाओं में दिखाई देता है । अपने शब्द मोह की स्पष्ट स्वीकृति देते हुए वे स्वयं लिखते हैं -

" पल्लव की कविताओं में मुझे " सा " के बाहुल्य ने लुभाया था । यथा-
अर्ध निद्रित सा, विस्मृत सा
न जाग्रत सा, न विमूर्छित सा - इत्यादि
गुंजन में " रे " की पुनरुक्ति का मोह मैं छोड़ नहीं सका यथा -
सब रे मधुर मधुर मन - इत्यादि "[३]

१- रामधारी सिंह दिनकर - हुंकार, पृष्ठ २२ ।
२- सुमित्रानन्दन पन्त - गुंजन, पृष्ठ ५० ।
३- सुमित्रानन्दन पन्त - गुंजन (भूमिका) ।

शब्द मोह की तीव्रता के कारण पंत की कविताओं में बहुधा एकरसता का दोष आ गया है ।

" जो है " के लिये छायावादी कविताओं में प्राय: " अये", " अहे ", "अयि" शब्दों का प्रयोग भी हुआ है । इस प्रकार के प्रयोग भी सब से अधिक पंत ने किये हैं । इनके द्वारा निश्चय ही भाषा में मृदुता और आकर्षण की पुष्टि हुई है जैसे -

- निखिल कल्पनामयि अयि अप्सरि ।[१]

- अहे निष्ठुर परिवर्तन ।[२] आदि

<u>वाक्य रचना -</u>

भाषा का सर्वाधिक महत्वपूर्ण अवयव वाक्य ही होता है क्योंकि वाक्य के द्वारा ही किसी भाषा विशेष की प्रकृति , रूप व एवं शैली का स्वरूप -ज्ञान संभव है । वर्ण और शब्द सहायक मात्र होते हैं, अकेला वर्ण या अकेला शब्द भाषा के स्वरूप को प्रकट करने में असमर्थ है, जब तक कि उन वर्णों और शब्दों से निर्मित संपूर्ण वाक्य रचना पर न दृष्टिपात किया जाय ।

वाक्य रचना के आधार वर्ण तथा शब्द ही होते हैं शब्दों के औचित्यपूर्ण क्रम-संयोजन से युक्त पद-समूह को ही वाक्य कहते हैं।भारतीय आचार्यों ने काव्यभाषा के अन्तर्गत पद- विन्यास को अत्यधिक महत्वपूर्ण माना है । कुशल पद विन्यास भाषा के सौन्दर्य में वृद्धि करता है ।

छायावादी काव्य की भाषा के समस्त सौन्दर्य आकर्षण और मार्दव का आधार उसका अनोखापद-विन्यास ही है । छायावादी कवियों ने शब्दों की आत्मा में पैठकर उनके सूक्ष्म स्पंदन को सुना है और योग्य शिल्पी की भांति प्रत्येक शब्द को भावानुरूप चुनकर बड़े कलात्मक ढंग से पदों अथवा वाक्यों में नगीनों की भांति जड़ा है । छायावादी कविताओं में व्यवहृत अधिकांश शब्द को प्रथमत: नए प्रतीत होते हैं, अलग अलग खोजने पर कहीं न कहीं मिल ही जाएगें, परन्तु शब्दों की ऐसी विशिष्ट मैत्री और उसके आधार पर पदों का ऐसा मनोरम विन्यास पूर्वयुगीन काव्य में सर्वथा अप्राप्य है । द्विवेदीयुगीन पद-विन्यास की शैली विशेष रूप से संस्कृत काव्य द्वारा

१- सुमित्रानन्दन पन्त - गुंजन, पृष्ठ ६२ ।

२- सुमित्रानन्दन पन्त - आधुनिक कवि ,पृष्ठ ३६ ।

गृहीत है जो दीर्घ समासों से युक्त होती थी, इसके विपरीत छायावादी कवियों ने बंगला के रवीन्द्रनाथ आदि की छाया ग्रहण करते हुए पूर्व प्रचलित संस्कृत तत्सम शब्द रूपों को नए क्रम में संयोजित करके उनके द्वारा भाषा में अद्भुत अर्थ व्यंजना और चमत्कृति को जन्म दिया है । नूतन भंगिमायुक्त पदावली ने छायावादी भाषा को विशेष सौष्ठव प्रदान किया है । इस संदर्भ में विस्तृत विवेचन से पूर्व छायावादी कवियों द्वारा व्याकरण के क्षेत्र में किये गए क्रान्तिकारी प्रयोगों पर दृष्टिपात करना अनिवार्य है, जिन्होंने छायावादी काव्य की भाषा को पूर्व युगीन भाषा से भिन्न रूप में गठित किया है ।

व्याकरण :

खड़ीबोली हिन्दी को व्याकरण सम्मत, विशुद्ध एवं परिष्कृत रूप देने में महावीर प्रसाद द्विवेदी तथा उनके युग के साहित्यकारों का महत्वपूर्ण योगदान रहा है, किन्तु छायावादी कवियों ने काव्य में सर्वाधिक महत्वपूर्ण तत्व राग को माना है ।[1] यदि व्याकरणिक नियमों में बद्ध भाषा प्रयोगों द्वारा कविता के मूलवर्ती भाव अथवा राग को क्षति पहुंचती है तो ऐसे स्थलों पर इन कवियों ने व्याकरण के नियम-निर्वाह की चिन्ता न करके पूर्ण स्वेच्छा से कार्य किया है ।

लिंग प्रयोग :

सुमित्रानन्दन पन्त छायावाद की भाषा-संबंधी क्रान्ति के अग्रवाहक कहे जा सकते हैं । भाव के अनुरूप भाषा को ढालने के लिए उन्होंने व्याकरण की अनेक कड़ियां तोड़ी हैं । स्त्रीलिंग और पुल्लिंग के मनमाने प्रयोग करके उन्होंने परंपरानुमोदित मान्यतायें बदलने में अद्भुत साहस का प्रदर्शन किया है । इस प्रसंग में " पल्लव" की भूमिका में अपने तर्क प्रस्तुत करते हुए वे लिखते हैं -" प्रभात आदि को पुल्लिंग मान लेने पर मेरे सामने प्रभात का सारा जादू , स्वर्णश्री, सौरभ सुकुमारता आदि नष्ट-भ्रष्ट हो जाते हैं । उसका चित्र नहीं उतरता । बूंद, कंपन आदि शब्दों को मैं उभय

१- सुमित्रानन्दन पन्त - पल्लव , भूमिका, पृष्ठ २२-२३ ।

लिगों में प्रयुक्त करता हूं । जहां छोटी सी बूंद हो वहां स्त्रीलिंग, जहां बड़ी हो, वह पुल्लिंग ; जहां हल्की सी हृदय की कंपन हो वहां स्त्रीलिंग जहां और जोर से धड़कन का भाव हो, वहां पुल्लिंग ।"

स्पष्ट है कि लिंग का प्रयोग उसके प्रचलित रूप के अनुसार नहीं, वरन् कविता के मूल रूप के अनुरूप करना पंत को अधिक उपयुक्त प्रतीत हुआ । इसी कारण उनकी कविताओं में प्रभात, अनिल, आलाप जैसे शब्द जो परंपरानुसार पुल्लिंग है, स्त्रीलिंग में बदल दिये गए हैं :-

- " पल्लवों की यह सजल प्रभात [1]
- अनिल भी भरती ठण्डी आह" [2]
- सरल उर की सी मृदु आलाप" [3]

पंत के तर्क से प्रभावित होकर छायावादी कवियों के मध्य इस प्रकार की परंपरा सी बन गई । सुकुमार भावनाओं की अधिकता के कारण छायावादी काव्य में स्त्रीलिंग का प्रयोग अधिक होने लगा, उन वस्तुओं के लिए भी, जो साधारण प्रचार में पुल्लिंग रूप ही थे । जैसे -

घोर घन की अवगुंठन डाल
करुण सा क्या गाती है रात ।"[4]

- शशि सा मुख, ज्योत्सना सी गात" [5]
- सुयश लता की बीज उर्वरा भूमि में" [6]

नवीनता- मोह के फलस्वरूप कहीं कहीं ऐसे प्रयोग असंगत तथा कविता के भाव-सौन्दर्य के लिये घातिकारक सिद्ध हुए हैं । जैसे -

---

१- सुमित्रानन्दन पन्त - पल्लव , पृष्ठ २ ।
२- सुमित्रानन्दन पन्त - पल्लव, आंसू , पृष्ठ २६ ।
३- सुमित्रानन्दन पन्त - पल्लव, शिशु , पृष्ठ ७६ ।
४- महादेवी वर्मा - नीहार , पृष्ठ ३७ ।
५- सूर्यकान्त त्रिपाठी - निराला - परिमल, यमुना के प्रति, पृष्ठ ४६ ।
६- जयशंकर प्रसाद - महाराणा का महत्व, पृष्ठ २४ ।

" करुणार्द्र विश्व की गर्जन, बरसाती नव जीवन कण"[1]

उपर्युक्त पंक्ति में विश्व का गर्जन न कहकर विश्व की गर्जन" कहने में नयापन अवश्य है किन्तु नादात्मक व्यंजना की दृष्टि से यह प्रयोग उचित नहीं कहा जा सकता है, क्योंकि" गर्जन" पौरुष का प्रतीक होने के कारण पुल्लिंग रूप में ही उपयुक्त लगता है ।

प्रभात और उसके पर्यायवाची शब्दों को गुणानुरूप स्त्रीलिंग मानना तो उचित था, किन्तु पंत ने असावधानीवश अथवा नवीनता- प्रदर्शन हेतु इस क्षेत्र में प्राय: अत्यंत मनमानी की है, जैसे -

विचारों में बच्चों के सांस[2] (बच्चों की सांस)
खुले पलक फैली सुवर्ण छवि[3] (खुली पलक)

इस प्रकार के प्रयोगों के आधिक्य से छायावाद में भाषा-संबंधी विश्रृंखलता बहुत बढ़ गई । परवर्ती कवियों ने यत्नपूर्वक छायावादी भाषा से कविता को मुक्त किया ।

क्रिया प्रयोग :-

पंत की कविताओं में क्रिया पदों का भी बहिष्कार किया गया । " है", " हैं " (जिसे पंत ने दो सींगोंवाला कनक मृग कहा है) का प्रयोग उन्हें रुचिकर नहीं हुआ । कविता में वैसे भी समासगुण की अपेक्षा रहने के कारण प्राय: कविगण हैं (सहायक क्रिया) का लोप कर देते हैं, क्योंकि उनके सम्मुख थोड़े-शब्दों में अधिक बात कह डालने का लक्ष्य रहता है । स्थान संकोच और भाव-विस्तार की दृष्टि से हिन्दी की लम्बी-क्रियायें कविता के लिये बहुत उपयुक्त नहीं कही जा सकती । इसी कारण पंत ने संयुक्त क्रियाओं के प्रयोग पर बल दिया, जैसे -

मैंने पूछा माँ पूजा को
मैं भी माला मिमाऊँ[4]

---

१ - सुमित्रानन्दन पन्त - गुंजन , पृष्ठ २२ ।
२- सुमित्रानन्दन पन्त - आधुनिक कवि , पृष्ठ ११ ।
३- सुमित्रानन्दन पन्त - आधुनिक कवि, पृष्ठ ५ ।
४- सुमित्रानन्दन पन्त - वीणा, पृष्ठ ८४ ।

लोक भाषाओं की पद्धति पर यहाँ निर्मित कर" के स्थान पर " निमांकि" का प्रयोग हुआ है जिससे कथन में लाघव और भाषा में संक्षिप्तता के गुण में वृद्धि हुई है । इसी प्रकार -

" फिर मूले नव वृन्तों पर
अनुकूले अति अनुकूलें ।[1]

तथा -
आज न छन अलकों में हीरे
थाँका है जग, साध न हीरे ।[2]

में " अनुकूले " तथा हीरे " शब्दों के प्रयोग क्रिया रूपों में नवीनता के घोतक हैं । यद्यपि इस प्रकार के प्रयोग सर्वथा नए नहीं कहे जा सकते । द्विवेदीयुगीन कवियों ने भी इस प्रकार के प्रयोग किये हैं ।[3]

सर्वनाम प्रयोग -

प्रसाद, पंत, निराला आदि कवियों ने सर्वनामों के प्रयोग में भी नवीनता लाने का प्रयत्न किया । इस क्षेत्र में निराला सर्वाधिक सफल रहे हैं । " तुम" सर्वनाम का प्रयोग करते समय उन्होंने जहाँ कहीं सम्मान प्रदर्शित करना चाहा है, क्रिया पदों के साथ अनुस्वार का प्रयोग किया है और जहाँ कहीं समानता दर्शाना चाही है, अनुस्वार हटा दिया है।गीतिका में इसके अनेक उदाहरण उपलब्ध हैं जैसे -

- उतर आई तुम ले उपहार"[4]
- मध्य तुम बैठी चिर अम्लान "[5]

विशेषण प्रयोग -

छायावादी काव्यभाषा का एक प्रमुख आकर्षण उसमें व्यवहृत होनेवाले आलोकमय विशेषण और भाववाचक संज्ञाएं हैं । विशेषणों का प्रयोग इस युग के कवियों ने बहुलता से किया है। बहुधा एक ही पंक्ति में कई कई विशेषण प्रयुक्त हुए हैं जैसे -

---

१- सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला - परिमल, पृष्ठ ७७ ।
२- महादेवी वर्मा - गीत, सरस्वती जनवरी,१९३४,पृष्ठ २९ ।
३- 'राधा के अनुरुप सौंग की कोई जुगति जुगाते' - मैथिलीशरण गुप्त,द्वापर,पृ०१८३ ।
४- सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला - गीतिका, पृष्ठ ५६ ।
५- सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला - गीतिका,पृष्ठ ७६ ।

"अँगड़ाते तम में
अलसित पलकों से स्वर्ण स्वप्न मित
सजनि देखती हो तुम - विस्मित
नव, अलभ्य, अज्ञात ।"[1]

अथवा -

"वह सहसा सजीव कंपन द्रुत, सुरभि समीर अधीर वितान
वह सहसा स्तंभित वक्षस्थल, टलमल पद, प्रदीप निर्वाण
गुप्त रहस्य सृजन अतिशय श्रम, वह क्रम क्रम से स्तंभित ज्ञान
स्खलित वसन तनु सा तन अमरण, नग्न उदास व्यथित अभिमान" ।[2]

बहुत से विशेषण और भाव वाचक संज्ञायें संस्कृत साहित्य से लेकर उनका प्रयोग हिन्दी में प्रारंभ किया गया । इसके अतिरिक्त कुछ नए विशेषण भी बना लिये गए, जैसे - स्वप्न- स्वप्निल, अवसान-अवसित, अतिशय-अतिशयता, आलस्य- अलसित, अलस , इंद्रधनुष - इंद्रधनुषी, उर्मि - उर्मिल, पांशु-पांशुल आदि

संधि-समास प्रयोग -

संधि, समासों में भी छायावादी कवियों ने बहुधा अपनी स्वच्छंदतावादी प्रवृत्ति का परिचय दिया है । पंत की कविताओं में प्रियाह्लाद के स्थान पर प्रि आह्लाद[3] ज्योतिर्मयी के स्थान पर "ज्योतिमयी" जैसे प्रयोगों द्वारा संधि के व्याकरणिक नियमों के प्रति उपेक्षा भाव प्रकट होता है । निराला के काव्य में उपलब्ध निश्चल प्राण, तमस्तूर्य, प्रभापूर्य[4] आदि शब्द समास रचना के व्याकरणिक नियमों के अनुरूप नहीं है ।

छायावादी कवियों द्वारा प्रचलित शब्दों के बदले गए रूप जैसे अंधकार के लिये "अंधाकार" अनिर्वचनीय के लिये अनिर्वच, मकरंद के लिए मरंद निष्काम के लिए अकाम, निर्बल के लिए निबल आदि भी व्याकरण की दृष्टि से अशुद्ध है, तथापि इनका प्रयोग भाषा को सुष्ठु और कोमल बनाने हेतु हुआ है तथा

१- सुमित्रानन्दन पन्त - वीणा, अँगड़ाते तम में, पृष्ठ ५२ ।
२- सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला - परिमल- यमुना के प्रति, पृष्ठ ५४ ।
३- प्रिय प्रि आह्लाद रे इसका - सुमित्रानन्दन पंत- गुंजन, गीत सं० ६, पृष्ठ १८ ।
४- भारत के नभ का प्रभापूर्य
अस्तमित आज रे तमस्तूर्य दिङ् मंडल - सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला- तुलसीदास,

इनसे काव्य-पक्ष की हानि भी नहीं हुई है । अतएव इन प्रयोगों की सार्थकता असंदिग्ध है ।

छायावादी काव्यभाषा का अंत: सौन्दर्य -

खड़ीबोली हिन्दी के स्वरूप निर्माण का जो कार्य द्विवेदी युग में प्रारंभ हुआ था, शब्दकोष को व्यापकता प्रदान करके छायावादी कवियों ने उसमें महत्वपूर्ण योगदान किया, किन्तु इससे भी अधिक महत्वपूर्ण कार्य उन्होंने विविध उपायों द्वारा भाषा की रूप-सज्जा करके उसे सुमधुर, आकर्षक और श्री संपन्न बनाने का किया ।

संगीतात्मकता :

कवि के लिये व्यापक और विशाल शब्द समूह तो उपयोगी होती ही है , किन्तु शब्दों का चयन और उनका उचित क्रम में संयोजन, जिसके द्वारा कविता के सौन्दर्य, व्यंजकता और प्रेषणीयता में वृद्धि हो सके, कहीं अधिक महत्वपूर्ण है । छायावादी काव्य का वैशिष्ट्य भी उसके शब्द समूह में नहीं, वरन् उसके शब्द संगीत में निहित है जिसने उसके पद विन्यास को अद्भुत मिठास और प्रवाह से युक्त करके विशिष्ट बना दिया है । विभिन्न प्रकार की वर्ण मैत्रियों के द्वारा कविता में अनूठे संगीत की सृष्टि करने में छायावादी कवियों ने विशेष कौशल दिखाया है । उदाहरणार्थ -

"झूम झूम मृदु गरज गरज घनघोर,
राग अमर अम्बर में भर निज रोर ।
झर झर झर निर्झर गिरि सर में,
घर ,मरु, तरु, मर्मर सागर में ।।
सरित तड़ित गति चकित पवन में,
मन में विजन गहन कानन में,
आनन आनन में रव घोर कठोर ।
राग अमर अम्बर में भर निज रोर"।।[1]

1- सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला - परिमल, बादल राग, पृष्ठ १७५ ।

इन पंक्तियों में संगीत शास्त्र में वर्णित किसी राग की ध्वनि नहीं है, परंतु कवि ने वर्णों की मैत्री में अपनी विशेष प्रतिभा का परिचय दिया है तथा ऐसे शब्द चुने हैं और उन्हें कुछ इस प्रकार क्रमबद्ध किया है कि उनसे स्वतः निर्झर सी संगीत धारा फूट पड़ी है।

इसी प्रकार महादेवी की निम्न पंक्तियों में आन्तरिक संगीत की मधुरिमा दर्शनीय है -

" पिक की मधुमय बंशी बोली, नाच उठी सुन अलिनी भोली ,
अरुण सजल पाटल बरसाता, तम पर मृदु पराग की रोली ।।
मृदुल अंक धर, दर्पण सा सर, आँज रही निशि दृग इंदीवर ।
आज नयन आते क्यों भर भर ।।[१]

यहां प, म, र, ल आदि कोमल वर्णों से निर्मित शब्दों की योजना ने पदों को संगीतात्मक बना दिया है। तात्पर्य यह कि छायावादी कवियों का लक्ष्य शब्दों द्वारा केवल अर्थ की अभिव्यक्ति ही नहीं है, वरन् उनके द्वारा कविता में संगीत संगीत तत्व को भी जन्म देना है, जिससे उसका सौन्दर्य और आकर्षण द्विगुणित हो उठता है। काव्य-सौन्दर्य के वृद्धिकारक तत्वों में संगीत तत्व का विशेष महत्व है। भारतीय आचार्यों ने कविता को श्रव्य काव्य के अंतर्गत स्थान देकर प्रकारान्तर से उसमें निहित नाद-सौन्दर्य अथवा संगीत तत्व की महत्ता की ओर ही संकेत किया है। पाश्चात्य साहित्याचार्यों ने भी काव्य में संगीततत्व को महत्वपूर्ण माना है।[२] इस प्रकार काव्य और संगीत का शाश्वत संबंध रहा है, किन्तु शब्द-संगीत के प्रति जितनी सजगता छायावादी कवियों ने दिखाई उतनी संभवतः किसी अन्य युग के कवियों ने नहीं। छायावादी कविताओं में प्रयुक्त होने वाले शब्द नहीं किन्तु उनका संगीतमय

१- महादेवी वर्मा - नीरजा, पृष्ठ ६।

२- Aristotle's Poetics , Chapter 3 (On the art of Fiction)

- " And just as imitation is natural to us, so also are music and rhythm - page 21.

- " Of the remaining elements, Melody is the chief of the enhancing beauties "- Chapter 4, page 26.

क्रम अवश्य नवीन है । इस क्षेत्र में इन कवियों ने विशेष सिद्धि प्राप्त की है ।

कविता में नाद-सौंदर्य ,संगीत अथवा राग की सृष्टि शब्दों की ध्वनि से होती है, अतएव सामान्य शब्दों की अपेक्षा ध्वन्यात्मक शब्द ही काव्य के लिये अधिक उपयोगी होते हैं । काव्यभाषा के संबंध में विचार करते हुए छायावादी कवि पंत ने भी अपना यही मत व्यक्त किया है - " उसके शब्द सस्वर होने चाहिये, जो बोलते हों, ---- जो अपने भाव को अपनी ही ध्वनि में आंखों के सामने चित्रित कर सकें, जो झंकार में चित्र, चित्र में झंकार हों, जिनका भाव संगीत विद्युत्धारा की तरह रोम-रोम में प्रवाहित हो सके ।"[१]

" ध्वन्यात्मकता " हिन्दी काव्य के लिये नवीन तत्व नहीं है, छायावाद से पहले भी इस प्रकार की रचनायें उपलब्ध हैं जिनमें उच्चकोटि की ध्वनि व्यंजना हुई है जैसे -

"डगमगी डगनि धरनि छवि ही के भार ।
ढरनि छबीले उर वाही बनमाल की ।।"[२]

परन्तु छायावादी कवियों, विशेषकर निराला और पंत का नाद, ध्वनि , वर्ण आदि का ज्ञान अप्रतिम था । ध्वन्यात्मक बोध को शाब्दिक परिधान देने में इन दोनों कवियों को विशेष सिद्धि प्राप्त हुई है । निराला ने अपनी उक्ति -" वर्ण चमत्कार ।

एक एक शब्द बंधा ध्वनिमय साकार ।"[३] को अपनी कविताओं के द्वारा पूर्णरूपेण सार्थक कर दिखाया है । उनके अनुसार ध्वन्यात्मक सौन्दर्य द्वारा ही वर्ण योजना में चमत्कार की सृष्टि होती है । इसीलिए निराला ने शब्द संगीत का आधार लेकर विभिन्न प्रकार की श्रेष्ठ वर्ण संगतियों की सर्जना की है, जिनका ध्वन्यात्मक सौन्दर्य दर्शनीय है । जैसे -

"कण कण कर कंकण प्रिय
किण किण रव किंकिणी
रणन रणन नूपुर उर लाज लौट रंकिणी ।।"[४]

१- सुमित्रानन्दन पन्त - पल्लव, भूमिका, पृष्ठ २० ।
२- घनानन्द - सुजानसागर, पृष्ठ ५० ।
३- सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला - गीतिका, पृष्ठ ६२ ।
४- सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला - गीतिका, पृष्ठ ६ ।

यहां शब्दों के द्वारा आभूषणों की झंकार को मूर्त कर दिया गया है। इसी प्रकार निम्न पंक्तियों में विभिन्न शास्त्रों की ध्वनियों को सफलतापूर्वक शब्दबद्ध किया गया है :-

मेरी फररर - फरर, धमायें
घोर नकारों का है चोप
कड़ कड़ कड़ सन् सन् बंदूकें
अररर अररर अररर तोप।

धूम धूम है भीम रणस्थल
शत शत ज्वालामुखियां घोर
आग उगलती दहक दहक दह,
कंपा रही भू नभ के छोर।।[१]

पंत ने भिन्न भिन्न प्रकार की ध्वनियों को मूर्त रूप देने के लिये अनेक अनुरणनात्मक शब्द गढ़ लिये हैं जैसे -

सर् सर् मर् मर्
रेशम के से स्वर भर
+ + + +
झूम झूम झुक झुककर
भीम भीम तरु निर्भर
सिहर सिहर थर थर थर
करता सर मर
चर मर।[२]

इसी प्रकार -

उड़ रहा ढोल धाधिन, धातिन
औ हुड़क घुड़कता ढिम ढिम ढिन
मंजीर खनकते खिन खिन खिन
मद मस्त रजक होली का दिन

१- सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला - अनामिका- नाचे उस पर श्यामा, पृष्ठ १०७।
२- सुमित्रानन्दन पन्त - आधुनिक कवि, झंझा में नीम, पृष्ठ ८०।

तो छन छन छन छन

छन छन छन छन

छन छन छन छन[१]

प्रसाद, महादेवी आदि अन्य छायावादी कवियों ने अनुरणनात्मक शब्दों द्वारा ध्वनियों को मूर्त करने के बदले ऐसे सस्वर शब्दों का प्रयोग बहुलता से किया है जो नाद सौन्दर्य की पुष्टि में सहायक होने के साथ साथ अर्थ व्यंजना में भी अधिक सक्षम है । जैसे -

"स्निग्ध सकेतों में सुकुमार

बिछल चल थक जाता तब हार ।"[२]

- ढलता निराशा में ढलमल[३]

इन पंक्तियों में "बिछल" और "ढलमल" शब्द केवल अनुरणनात्मक शब्द न होकर एक विशिष्ट अर्थ का भी ध्वनन करते हैं । भाषा की व्यंजकता में वृद्धि के लिये इन कवियों ने इसी प्रकार के सैकड़ों ध्वन्यर्थक शब्द खोज निकाले जैसे - स्तंभित चीत्कार, घहराना, अट्टहास, उल्लास, भूम भूम, रोर, निर्झर, झरझर, उच्छृंखल, कल कल, छलछल, मर्मर, सन् सन्, टलमल, गुंजन, सिसकना, तुतलाना, धूमिल, गुनगुन घहर, हहर हहर, चंचल, कोलाहल, कंपन, अधीर, बुद बुद, आह, चीत्कार, घहराना आदि । इन शब्दों के प्रयोग की बहुलता ने छायावादी काव्यभाषा को नवीन आकर्षण से भर दिया है साथ ही मानस- संसर्ग से विशिष्ट अर्थ की व्यंजना करनेवाले इन शब्दों के द्वारा भाषा की प्रेषणीयता भी बढ़ी है ।[४] यह शब्द शब्दकोष में

२- जयशंकर प्रसाद - लहर, पृष्ठ २३ । १- सुमित्रानन्दन पन्त - आधुनिक कवि, पृष्ठ ६१ ।

३- जयशंकर प्रसाद - लहर, पृष्ठ ३० ।

४-"पपीहों की वह पीन पुकार -" "पत्तों के आनत अधरों पर सो गया निखिल वन का मर्मर" - सुमित्रानन्दन पन्त- गुंजन, पृष्ठ ८४ ।

निर्झरों का भारी झरझर -" "शतयुग के शत बुदबुद विलीन---।" सुमित्रानन्दन पन्त- गुंजन, पृष्ठ ७७ ।

झींगुरों की झीनी झनकार
घनों की गुरु गंभीर घहर
बिन्दुओं की छनती छनकार
दादुरों के वे दुहरे स्वर" - सुमित्रानन्दन पन्त - आधुनिक कवि, पृष्ठ १६ ।

"वह सत्ता सजीव कंपन द्रुत, सुरभि समीर अधीर वितान ।" - सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला- परिमल - पृष्ठ ५४ ।

"वह सत्ता स्तंभित वक्षस्थल-टलमल पद प्रदीप निर्वाण ।।" सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला, यमुना के प्रति, पृ०५४

भले ही वर्तमान रहे हों किन्तु खड़ीबोली हिन्दी के काव्य में छायावाद से पूर्व इनका प्रचलन नहीं था ।

अनुप्रासगत वर्ण मैत्री :

भाषा में संगीत की झंकार उत्पन्न करने के लिये छायावादी कवियों ने बहुधा अनुप्रासगत वर्णावृत्तियों का आश्रय लिया है । "अनुप्रास भावावेग के वेग से नृत्य का छंद जोड़ता है जब एक ही ध्वनि बार बार दुहराई जाती है तो श्रोता आवेग की वक्रिमता से सहज ही प्रभावित हो जाता है ।"[1] इस क्षेत्र में निराला ने अभूतपूर्व कौशल का परिचय दिया है । उनकी रचनाओं में प्राप्त व्यंजन संगीत अनुप्रास के साधारण परंपरागत प्रयोग से उत्पन्न होनेवाले संगीत से भिन्न है क्योंकि उनकी वर्ण मैत्री सर्वथा मौलिक और वैचित्र्य पूर्ण है ।

> आज का तीक्ष्ण शर विधृत क्षिप्र कर, वेग प्रखर
> शतशेल संवरणशील , नील नभ गर्जित स्वर
> प्रतिपल परिवर्तित व्यूह - भेद कौशल समूह -
> + + + +
> राक्षस विरुद्ध प्रत्यूह, क्रुद्ध कपि विषम हूह
> लोहित लोचन रावण , मद मोचन महीयान
> राघव लाघव - रावण- वारण - गत युग्म प्रहर [2]

उपर्युक्त उद्धरण में कहीं तो दो पंक्तियों के अंतिम शब्दों में व्यंजनों की आवृत्ति द्वारा नियोजित अन्त्यानुप्रास ने पद योजना को संतुलन और विशेष अनुक्रम प्रदान किया है, कहीं एक पंक्ति के दो समस्त पदों के अन्तिम वर्ण समान है (तीसरी पंक्ति के पदों में " व्यूह " और " समूह " में " ह " की आवृत्ति) कहीं एक ही समस्त पद का निर्माण करनेवाले दो शब्दों में वर्णावृत्ति की गई है ।(जैसे राघव लाघव में " घ " और " व " वर्ण) इस प्रकार के विषम क्रम से की गई वर्ण मैत्री निस्संदेह नवीन और हिंदी काव्य में अन्यत्र दुर्लभ है ।

१- हजारी प्रसाद द्विवेदी - साहित्य का मर्म , पृष्ठ ४१ ।

२- सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला - अनामिका - राम की शक्ति पूजा,पृष्ठ १७८ ।

शब्दावृत्ति :

छायावादी के मेधावी कवि भाषा की आन्तरिक सूक्ष्मातिसूक्ष्म प्रवृत्तियों से पूर्णतः अवगत थे इसी कारण भाषा अधिकांशतः उनके इंगित पर चलती हुई मनोनुकूल अर्थ की अभिव्यक्ति करने में सफल रही है । भाषा की अर्थ-सामर्थ्य बढ़ाने के लिए उन्होंने कुछ विशेष युक्तियाँ अपनाई हैं, जिनमें शब्दों की आवृत्ति भी महत्वपूर्ण है ।

शब्दों का दुहरा प्रयोग छायावादी भाषा की निजी विशेषता कही जा सकती है । ऐसे प्रयोगों का उद्देश्य अधिकांशतः प्रभावान्विति ही है ।उदाहरणार्थ

" तुम्हारी आँखों का आकाश
सरल आँखों का नीला काश ।
खो गया मेरा खग अनजान
मृगेक्षिणि इनमें खग अनजान ।।[१]

इन पंक्तियों में " आकाश " के बाद " नीलाकाश " लिख देने से आकाश का महत्व बढ़ गया है । इसी प्रकार -

पुलक पुलक उर, सिहर सिहर तन
आज नयन क्यों आते, भर भर ?
सकुच सकुच खिलती शेफाली
अलस मौलश्री डाली डाली ,

\+ \+ \+ \+

शिथिल मधु पवन, गिन गिन मधु कण
हर सिंगार झरते हैं झर झर ।[२]

यहाँ शब्दों की आवृत्ति द्वारा मधुर भाव को मार्मिक रूप देने की सफल चेष्टा हुई है । यह आवृत्तियाँ ऐसे सविष अनुभूतियों को रेखांकित कर उनके प्रभाव को उभार कर सुस्पष्ट कर देती है ।

१- सुमित्रानन्दन पन्त - गुंजन, पृष्ठ ४८ ।
२- महादेवी वर्मा - यामा, नीरजा, पृष्ठ १३१ ।

शब्दों की आवृत्ति ने छायावादी भाषा में कहीं कहीं नाटकीयता और रोचकता की भी सृष्टि की है । जैसे निराला की निम्नलिखित पंक्तियों में -

" आई याद बिछुड़न से मिलन की वह मधुर बात
आई याद चांदनी की धुली हुई आधी रात
आई याद कान्ता की कंपित कमनीय गात ।" -

" आई याद " की तीन बार आवृत्ति के द्वारा पवन पर याद के प्रभाव की सुन्दर और सफल व्यंजना हुई है ।" आई याद बिछुड़न से मिलन की मधुर रात" और " आई याद चांदनी की धुली हुई आधी रात" तक पर भी विरही पवन" अपने को नियंत्रित किये रहा । किन्तु अंततः" आई याद कान्ता की कंपित कमनीय गात" । यादों का यह क्रम पवन को विरहाकुल कर देता है और -

" फिर क्या ? पवन ------
उपवन सर सरिता गहन गिरि कानन
कुंज लता पुंजों को पार कर पहुंचा ।।[१]

यहां आवृत्तियों के कारण पवन की विरहानुभूति की तीव्रता का सहज ही अनुमान हो जाता है, साथ ही कथन का ढंग कुछ कुछ नाटकीय तथा अधिक प्रभावशाली बन गया है ।

कहीं कहीं शब्दावृत्तियां भाषा में संगीतमय झंकार उत्पन्न करती हुई एक विशिष्ट गत्यात्मकता का भी संचार करती हैं जैसे -

" बैठि ही फैल फैल नवजात
चपल, लघु पद लचलच सुकुमार
लिपट लगती मलयानिल गात
झूम झुक झुक सौरभ के भार ।।[२]

कहीं कहीं शब्द ही नहीं संपूर्ण पंक्ति की आवृत्ति भी की गई है जैसे -

नवल प्रसूनों में फूटा है
केवल भौं दारण का अभिमान

१- सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला - परिमल, पृष्ठ १६२ ।
२- सुमित्रानन्दन पन्त - गुंजन, गीत सं० ३,पृष्ठ ५६ ।

(लघुतम दो क्षण का अभिमान)
दो क्षण में ही छू आई है
सुरभि विश्व के अगणित प्राण ।
(सुरभि विश्व के अगणित प्राण)[१]

उपर्युक्त पद्यांश में पूरी पंक्तियों की आवृत्ति शास्त्र वर्णित लाटानुप्रास के अन्तर्गत होनेवाली पदावृत्तियों के समान प्रतीत होती है, किन्तु वास्तव में यह उससे भिन्न है क्योंकि लाटानुप्रास के अन्तर्गत शब्दावृत्ति तात्पर्य मात्र के भिन्न होने पर होती है[२] किन्तु इन पंक्तियों का अन्वय करने पर भी इनका अर्थ पूर्ववत ही रहता है उसमें किसी प्रकार का अंतर नहीं आता । स्पष्टत: यह आवृत्ति कथन को अधिक प्रभावशाली बनाने के लिये की गई है ।

भाषा में वेग उत्पन्न करने के लिये यदा-कदा वीप्सागत आवृत्तियों का आश्रय भी छायावादी कवियों ने लिया है जैसे -

इस शिथिल आह से खिंचकर
तुम आओगे ---- आओगे ।
इस बढ़ी व्यथा को मेरी
रो रोकर अपनाओगे ।।[३]

यहाँ " आओगे " की आवृत्ति द्वारा अभिलाषा के उत्कट रूप की सफल व्यंजना की गई है साथ ही विरही हृदय के भावावेग को भी प्रखरता प्राप्त हुई है ।

चित्रभाषा :

चित्रात्मक व्यंजना छायावादी काव्यभाषा का विशिष्ट गुण है । अंगरेजी का रोमांटिक काव्य भी अपनी चित्रात्मक शक्ति के कारण विशिष्ट है । छायावादी कवियों ने भी भिन्न भिन्न प्रकार के शब्दों का प्रयोग करते समय उनमें निहित अर्थ छायाओं तथा पर्यायवाची शब्दों की अर्थ छायाओं के

१- रामकुमार वर्मा - चित्ररेखा, पृष्ठ १५ ।
२- शाब्दस्तु लाटानुप्रासो भेदे तात्पर्य मात्रत: " -
मम्मट - काव्य प्रकाश -
व्याख्याकार आचार्य विश्वेश्वर, नवम उल्लास, पृष्ठ ४०७, सूत्र ११२
३- जयशंकर प्रसाद- आँसू, पृष्ठ ५२ ।

पारस्परिक सूक्ष्म अन्तर के परिज्ञान का अद्भुत परिचय दिया है । पंत ने पल्लव की भूमिका में कविता के अन्तर्गत चित्रभाषा के महत्व पर सविस्तार प्रकाश डाला है । साथ ही विभिन्न पर्यायवाची शब्दों के अर्थ छायागत सूक्ष्म अन्तर को स्पष्ट करते हुए शब्दों के अन्तर्बोध का सबल प्रमाण दिया है ।[१]

शब्दों की गुप्त शक्ति को पहचानने के फलस्वरूप ही छायावादी कवियों ने शब्दों के द्वारा दृश्य , गति क्रिया सभी के सजीव चित्र अपनी कविताओं में उतारे हैं । शब्दों के विशिष्ट और चमत्कारपूर्ण प्रयोगों के द्वारा छायावादी भाषा में अर्थ व्यंजना की शक्ति बढ़ी है ।

निराला की निम्न पंक्तियों में -

" है अमा निशा उगलता गगन घन अंधकार,
खो रहा दिशा का ज्ञान स्तब्ध है पवन चार ।
अप्रतिहत गरज रहा पीछे अंबुधि विशाल,
भूधर ज्यों ध्यान मग्न केवल जलती मशाल ।।[२]

रात्रि के भयानक रूप को शब्दों में मूर्त कर दिया गया है । " उगलता "," घन "," स्तब्ध " आदि शब्द अंधेरी काली रात और उसमें व्याप्त भीषण सन्नाटे को प्रखरतम रूप में प्रस्तुत करते हैं ।

इसी भाँति -

चल चक्र वरुण का ज्योति भरा,
व्याकुल तू क्यों देता फेरी ।।[३]

यहाँ पर प्रत्येक शब्द का अपना महत्व है, शब्दों का किंचित हेर फेर भी इन पंक्तियों के आकर्षण को नष्ट कर देगा ।" चक्र " शब्द यहाँ दुहरे अर्थ का बोधक है (चक्र- पहिया, आकाश) व्याकुल " शब्द गतिशीलता और चित्त की अस्थिरता की समर्थ व्यंजना करता है ।

१- सुमित्रानन्दन पन्त - पल्लव , भूमिका, पृष्ठ २० ।
२- सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला - अनामिका- राम की शक्ति पूजा ,पृष्ठ १५० ।
३- जयशंकर प्रसाद - कामायनी - कामसर्ग, पृष्ठ ७३ ।

पंत ने -" मैं व्याकुल रे उन्मन उन्मन "[१] लिखकर केवल एक" उन्मन" शब्द के द्वारा मन की उदासी , नीरसता, सूनापन, आदि अनेक भावों को चित्रबद्ध कर दिया है । केवल एक शब्द के माध्यम से संपूर्ण दृश्य को अंकित कर देने की अपूर्व कला पंत में लक्षित होती है । जैसे -

सो गई स्वर्ग की अमर किरण ।
कुसुमित कर जग का अंधकार ।[२]

यहां पर" कुसुमित" के स्थान पर ज्योतित" शब्द रख दिया जाए तो भाव में किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं आएगा, किन्तु तारों से खिले हुए जिस आकाश का चित्र कवि दर्शाना चाह रहा है, वह हमारी दृष्टि से ओझल हो जाएगा । इस प्रकार के प्रयोगों का छायावादी काव्य में बाहुल्य है। इनके द्वारा इस युग के कवियों का अपूर्व अर्थ विवेक प्रकट होता है । शब्द इनके लिये मणियों की भांति है जिन्हें अत्यंत सावधानी और सूफ बूफ के साथ इन्होंने अपनी कविताओं में जड़ा है ।

कहीं कहीं छायावादी कवियों ने अपनी कल्पनाओं के अनंत विस्तार को चित्रात्मक विशेषणों के माध्यम से कम से कम शब्दों में बांधने का प्रयत्न किया है। वर्ण्य वस्तु अथवा दृश्य की चित्रात्मक व्यंजना में सदाम विशेषणों के प्रयोग के प्रति पंत ने विशेष मोह दिखाया है। उदाहरणार्थ उनकी" बादल" शीर्षक रचना में बादल को" सागर का धवल हास", मुग्ध शिखी के नृत्य मनोहर," अनिल फेन" जल के धूम", आदि कहा गया है। यह सचित्र विशेषण अपनी व्यंजकता में अपूर्व है । प्रसाद निराला आदि कवियों ने ऐसे प्रयोगों के प्रति पंत जैसी आसक्ति न रखते हुए भी इस प्रकार के विशेषणमय शब्द चित्रों का कुशल संयोजन किया है यथा" ऐ निर्बन्ध"," सिन्धु के अश्रु", ऐ अनंत के चंचल शिशु सुकुमार," दिगन्त के अनिमेष नयन"[३] आदि शब्द चित्र पंत की ही भांति निराला के बादलों के उदात्त विराट रूप को भी चित्रांकित करने में पूर्ण समर्थ हैं । प्रसाद ने" चिन्ता" सदृश मन की अमूर्त सूक्ष्म वृत्ति को अभाव की चपल बालिके" ललाट की खल रेखा , व्याधि की सूत्रधारिणी आदि कहकर चित्रबद्ध किया है ।[४]

१- सुमित्रानन्दन पन्त - गुंजन, पृष्ठ २६ ।

२- सुमित्रानन्दन पन्त - युगान्त -गीत १८, पृष्ठ ३३ ।
३- सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला - परिमल - बादल राग , पृष्ठ १५०-१५२ ।
४- जयशंकर प्रसाद - कामायनी - चिन्तासर्ग, पृष्ठ १३ ।

इस प्रकार के सचित्र शब्दों तथा सचित्र विशेषणों का प्रयोग छायावाद की निजी विशेषता है । छायावाद से पूर्व हिंदी काव्य में इस प्रकार के प्रयोग दुर्लभ हैं । इनके द्वारा छायावादी भाषा में अर्थ गर्भत्व और समृद्धि की वृद्धि हुई है ।

नगेन्द्र के मतानुसार प्राचीन भारतीय साहित्य शास्त्र के आचार्य कुंतक के वक्रोक्ति सिद्धान्त" से इस प्रकार के प्रयोगों का संबंध जोड़ा जा सकता है । विशेषणों के चमत्कारपूर्ण प्रयोगों पर आधृत होने के कारण इन्हें" विशेषण वक्रता"[1] के अन्तर्गत रक्खा जा सकता है ।

वर्ण बोध :-

भाषा में चित्रात्मक व्यंजना की शक्ति उत्पन्न करने में इन कवियों का वर्ण बोध विशेष सहायक हुआ है जो अत्यंत गहन और सूक्ष्म है । विविध पदार्थों के विभिन्न वर्णों का गहरा ज्ञान अर्जित करके छायावादी कवियों ने उनके तरल-कोमल ,छाया, प्रकाशमय मिश्रण द्वारा अपनी कविताओं में वैचित्र्य एवं वैशिष्ट्य उत्पन्न किया है । उदाहरणार्थ -

" गंगा के चल जल में निर्मल, कुम्हला किरणों का रक्तोत्पल
है मूंद चुका अपने मृदु दल ।
लहरों पर स्वर्ण रेख सुंदर, पड़ गई नील ज्यों अधरों पर
अरुणाई प्रखर शिशिर से डर ।।[2]

उपर्युक्त पंक्तियों में पंत संध्या और निशा की संधि वेला का जो सजीव चित्र प्रस्तुत कर सके हैं, उसका मूलाधार उनका अद्भुत वर्ण-बोध ही है । इसी प्रकार -

रुपहले सुनहले आम्र बौर
नीले पीले औ ताम्र भौंर
रे गंध अंध हो ठौर ठौर
उड़ पांति पांति में चिर उन्मन
करते मधु के बन में गुंजन"[3]

यहां भी दृश्य चित्रण में कवि का वर्ण बोध ही सहायक हुआ है ।

१- नगेन्द्र- भारतीय काव्यशास्त्र की भूमिका,पृष्ठ २३६ ।
२- सुमित्रानन्दन पन्त- आधुनिक कवि - एक तारा,पृष्ठ ५३ ।
३- सुमित्रानन्दन पन्त- गुंजन,पृष्ठ १०।

महादेवी का वर्णों का ज्ञान और भी प्रखर है क्योंकि वे कवयित्री के साथ साथ चित्रकार की प्रतिभा से भी संपन्न है । शुभ्र वर्णों के प्रति महादेवी की विशेष आसक्ति लक्षित होती है । जैसे -

" नव क्षीर निधि की ऊर्मियाँ से
रजत झीने मेघ सित ।
मृदु फेनमय मुक्तावली से
तैरते तारक अमित ।।[१]

यहाँ क्षीर निधि, रजत, सित, फेनमय, मुक्तावली तारक आदि सभी शब्द श्वेत रंग को उभारने वाले हैं जिससे चित्र में सात्विकता के भाव को बल मिला है ।

मुहावरे तथा लोकोक्तियाँ -

किसी भी भाषा में मुहावरों तथा लोकोक्तियों का प्रयोग उसकी जीवन्तता और जनजीवन के साथ उसके सम्बन्ध को प्रमाणित करते हैं । भाषा को सजीव और व्यवहारिक रूप देने हेतु मुहावरे एवं लोकोक्तियाँ परंपरा से प्रचलित प्रमुख साधन रहे हैं । यह भाषा में उक्ति वैचित्र्य अर्थ गाम्भीर्य और प्रभविष्णुता के सर्जक होते हैं ।

मुहावरे तथा लोकोक्तियाँ जनजीवन की देन होते हैं । जो कवि लोक-जीवन के स्पंदन से परिचित और जन-संस्कृति के निकट संपर्क में रहनेवाला होगा, उसकी भाषा में लोक प्रचलित मुहावरे तथा लोकोक्तियाँ स्वाभाविक रूप से घुल मिलकर उसकी भाषा की सहज अंग बन जाती है । किन्तु छायावाद के कवियों में एक निराला को छोड़कर शेष किसी का भी सामान्य लोकजीवन से सीधा संपर्क नहीं रहा । इसी कारण इस युग की काव्यभाषा भी असामान्य एवं लोक जीवन के संस्पर्शों से विहीन है । वह चिन्तन के धरातल पर सायास विकसित और पल्लवित होनेवाली शिक्षित और सुसंस्कृत वर्ग की शुद्ध साहित्यिक भाषा है, इसी कारण उसमें सर्वसाधारण के चलते हुए भाषा प्रयोगों के लिये स्थान कम रहा है ।

१- महादेवी वर्मा - यामा - नीरजा, पृष्ठ १३४ ।

छायावादी भाषा में मुहावरों एवं लोकोक्तियों के प्रयोगों की न्यूनता का एक कारण इन कवियों का नवीनता प्रेम भी कहा जा सकता है। सामान्यतः मुहावरों और लोकोक्तियों के मूल में रूढ़ा लक्षणा कार्य करती है। मुहावरे अत्यधिक प्रचलित होकर विशिष्ट अर्थों में रूढ़ हो जाते हैं तथा लोकोक्तियों में निहित अंतर्कथायें भी निरंतर प्रयोगों द्वारा किसी विशेष अर्थ की व्यंजना-शक्ति प्राप्त कर लेती है। किन्तु छायावादी कवि स्वभावतः ही रूढ़ियों के प्रति विद्रोही थे। उन्होंने अन्य क्षेत्रों की भांति ही भाषा के क्षेत्र में भी रूढ़ प्रयोगों का आश्रय न लेकर विविध मौलिक उपायों द्वारा भाषा को नवीन भंगिमा युक्त और कान्तिमयी बनाने का प्रयास किया। किन्तु कोई भी भाषा लोक जीवन से सर्वथा संबंध विच्छेद कर सकने में असमर्थ होती है। इसी कारण छायावादी कविताओं में भी अत्यंत परिमित होते हुए भी कहीं कहीं लोक जीवन का संस्पर्श अपनी झलक दिखा जाता है।

छायावादी कवि निराला का जन-संस्कृति से घनिष्ठ संबंध रहा है, परिणामतः उनकी रचनाओं में मुहावरों एवं लोकोक्तियों का प्रयोग सब से अधिक हुआ है। वे उनकी भाषा के सहज अंग बन गए हैं और उनके द्वारा अभीष्ट अर्थ को और अधिक मार्मिकता प्राप्त हुई है। जिस पत्तल में खाना उसी में छेद करना[1] हाथ मलना[2] कलेजा धड़कना[3] घाट उतरना[4], दाल गलना[5] फूलों की सेज पर सोना[6] आदि लोक प्रचलित मुहावरों का अत्यंत सफल निर्वाह निराला ने किया है। प्रसाद ने भी खटका बीत जाना[7], लाल पीला होना[8], तिल का ताड़ बनना[9] आदि

१- ये कान्य कुब्ज कुल- कुलांगार
   खा कर पत्तल में करें छेद ---- सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला -अपरा-सरोज स्मृति, पृ०१५५
२-३ हाथ मलते भोगी ------
   धड़कते कलेजे उन कायरों के। - सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला- परिमल- पंचवटी प्रसंग,पृष्ठ २३८।
४- सोचा कब के किस घाट उतारे इनको - सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला - तुलसीदास, पृ०३७
५- समझ लिया खूब जब,दाल है गली नहीं --सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला - परिमल, शिवाजी का पत्र,पृष्ठ २२१।
६- फूलों की सेज पर सोए हो ------ सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला - परिमल, शिवाजी का पत्र,पृष्ठ २२३।
७- जैसे बीत गया खटका - जयशंकर प्रसाद , कामायनी, आशा सर्ग,पृष्ठ ३२।
८- भ्रान्त अर्थ बन आगे आए,
↕ बने ताड़ थे तिल के। - जयशंकर प्रसाद , कामायनी, दर्शन सर्ग, पृष्ठ ११८।
९- लाल पीला होता था दिनांत निज क्षोभ से -- जयशंकर प्रसाद - लहर - प्रलय की छाया, पृष्ठ ७२।

मुहावरों का समुचित प्रयोग करके अभिव्यक्त भाव को और भी मुखरता प्रदान की है ।

मुहावरे निस्संदेह भाषा में जीवन्तता का संचार करते हैं, किन्तु यदि वे भाषा में पूरी तरह घुल मिल न पाएं अथवा उनमें शब्दों का हेर फेर करके उनका असाधु प्रयोग किया जाए तो बहुधा उनके द्वारा भाषा में विरसता भी उत्पन्न हो जाती है और भावों की मार्मिकता को भी क्षति पहुंचती है । उदाहरणार्थ " पानी पीकर घर पूछना " एक मुहावरा है । " पानी " लोकभाषा का प्रचलित शब्द है, इस मुहावरे में पानी के स्थान पर यदि उसका कोई अन्य पर्यायवाची रख दिया जाए, तो भाव परिवर्तन न होने पर भी उसमें से लोक जीवन का संस्पर्श विलीन हो जाएगा और उसका सहज आकर्षण नष्ट हो जाएगा । छायावादी कवियों में पंत ने मुहावरों के प्रयोग में प्राय: ऐसी ही असावधानी दिखाई है । जैसे -

" यह अनोखी रीति है क्या प्रेम की
जो अभागों से अधिक है देखता ।
दूर होकर और बढ़ता है तथा
वारि पीकर पूछता है घर सदा ।।[१]
(पानी पीकर घर पूछना)

इसी प्रकार -

" अरे वे अपलक चार नयन
आठ आंसू रोते निरुपाय ।[2]
(आठ आठ आंसू रोना)

श्री - सुख सौरभ का नभचारिणी
गूंथ दिया ताना बाना ।[3]
(ताना बाना फैलाना)

१- सुमित्रानन्दन पन्त - आधुनिक कवि , पृष्ठ २२ ।
२- सुमित्रानन्दन पन्त - आधुनिक कवि, पृष्ठ ३४ ।
३- सुमित्रानन्दन पन्त - आधुनिक कवि, पृष्ठ ४ ।

कुछ मुहावरे अँगरेजी भाषा से अनूदित होकर भी छायावादी कविताओं में प्रयुक्त हुए हैं जैसे " नया पृष्ठ पलटना "[1] (To turn a new leaf) स्वर्णयुग (Golden age) भग्न हृदय (Broken Heart)[2] समय रेत[3] (Sands of time) स्वर्गीय प्रकाश (Heavenly light)[4] आदि । विदेशी होने पर भी यह मुहावरे छायावादी भाषा में कुछ इस प्रकार घुल मिल गए हैं कि चिर परिचित से लगते हैं ।

अनुवाद की प्रवृत्ति पंत में सब से अधिक लक्षित होती है किन्तु अनुवाद करते समय भाषा की प्रकृति का उन्होंने विशेष ध्यान नहीं रक्खा है अतएव उनके इस प्रकार के प्रयोग बहुधा असफल ही रहे हैं क्योंकि भाषा के नैसर्गिक क्रम के प्रतिकूल होने के फलस्वरूप वह उसमें एकाकार न होकर असंपृक्त से रहते हैं । जैसे अँगरेजी का मुहावरा है " To play the role " इसका शब्दशः अनुवाद होगा अभिनय खेलना (जैसा पंत ने किया है)[5] किन्तु अपने यहाँ अभिनय खेला नहीं जाता, अभिनय किया जाता है । " To exchange kisses " अँगरेजी संस्कृति के अनुकूल है किन्तु अपने देश और अपने सामाजिक वातावरण के साथ " चुम्बन बदलना "[6] मुहावरा मेल नहीं खाता ।

१- नव जीवन का पहला पृष्ठ
देवि तुमने उलटा है आज । -- भगवती चरण वर्मा - मुरझाए की कब्र पर - माधुरी , अगस्त-सितंबर,१९२८ पृष्ठ १९१ ।

२- तेरे उज्ज्वल आँसू सुमनों में सदा बास करेंगे,
भग्न हृदय उनकी व्यथा अनिल पोंछेगी -- सुमित्रानन्दन पन्त - आधुनिक कवि, पृ० १२

३- इस स्वरूप पर गर्व न करना ओ स्वरूप की रानी ,
समय रेत पर उतर गया कितने मोती का पानी ।
- रामधारी सिंह " दिनकर " - हुंकार, पृष्ठ ४५ ।

४- तुमको पहना जगत देख ले -
यह स्वर्गीय प्रकाश । - सुमित्रानन्दन पन्त, पल्लव,उच्छ्वास,पृ०३ ।

५- सजनि अलस से मायावी शिशु,
खेल रहे हैं कैसा अभिनय । - सुमित्रानंदन पंत - पल्लव,पृष्ठ ४४ ।

६- बदले विपुल चपल लहरों ने
सारी से फेनिल चुम्बन । - सुमित्रानंदन पंत - पल्लव, पृष्ठ ३६ ।

कुछ उर्दू मुहावरों " दौर चलना " , " हौसला पस्त होना " ,[१] के भी यदा-कदा प्रयोग छायावादी कविताओं में प्राप्य है ।

प्रसाद और निराला ने प्रचलित मुहावरों के साम्य पर कुछ सर्वथा नए मुहावरे गढ़कर उनको मौलिक रूप में प्रस्तुत किया है । जैसे " अपना दुखड़ा रोना " के साम्य पर निराला ने " उत्तर रोना " मुहावरा बना लिया है -

" पर संपादकगण निरानंद
वापस कर देते पढ़ सत्वर
रो एक पंक्ति दो में उत्तर ।[२]

इसी भाँति " चैन की वंशी " के साम्य पर प्रसाद ने " सुख की बीन बजाऊँ " मुहावरा बना लिया है -

" बहुत दिनों पर एक बार तो सुख की बीन बजाऊँ ।"[३]

समग्रत: मुहावरों का प्रयोग छायावादी भाषा की प्रकृति से मेल नहीं खाता तथापि निराला और प्रसाद ने अन्य कवियों की अपेक्षा मुहावरों का प्रयोग अधिक और सफलतापूर्वक किया है और उनके द्वारा अपनी भाषा के अर्थ-आयामों को नवीन विस्तार दिया है । लोकोक्तियों का प्रयोग छायावादी काव्य में प्राय: अप्राप्य है, केवल निराला के काव्य में कहीं कहीं उनका उदाहरण मिल जाता है ।[४]

<u>शब्द शक्तियाँ :</u>

भाषा में अर्थ व्यंजना की अभूतपूर्व क्षमता उत्पन्न करने का श्रेय निर्विवाद रूप से छायावादी कवियों को प्राप्त है । इस लक्ष्य-पूर्ति में लक्षणा और

१- पस्त हौसला होगा
ध्वस्त होगा साम्राज्य - सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला - अपरा - महाराज शिवाजी का पत्र , पृष्ठ ६१ ।

२- सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला - अनामिका, सरोज स्मृति, पृष्ठ १२२ ।

३- जयशंकर प्रसाद - कामायनी, पृष्ठ ११२ ।

४- ऐसे शिव से गिरिजा विवाह,
करने की मुझको नहीं चाह - सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला - अपरा, सरोज स्मृति , पृष्ठ १५५ ।

व्यंजना शब्द शक्तियों से उन्होंने भरपूर लाभ उठाया है ।

शब्दों में अर्थ संकोच और अर्थ विस्तार का नियमन करने हेतु ही शब्द शक्तियों का विकास हुआ । एक ही मूल अनुभूति को हल्का अथवा गहरा रंग देकर व्यक्त करना शब्दों के सामान्य संयोजन द्वारा संभव नहीं है । ऐसी स्थिति में शब्द की शक्ति ही कवि की सहायिका होती है, जिसके माध्यम से वह अपने अभीष्ट अर्थ की पूर्णतः अवगति कराने में सक्षम होता है ।

काव्यशास्त्र के अनुसार - अभिधा, लक्षणा और व्यंजना तीन प्रकार की शब्द शक्तियां मानी गई हैं ।

द्विवेदीयुग की काव्यभाषा मुख्यतः अभिधात्मक ही थी, किन्तु अंतर्मुखी प्रवृत्ति, सूक्ष्म चित्रण के प्रति आग्रह असाधारण प्रेम तथा भाषा में अर्थ-समृद्धि के विकास की चेष्टा आदि विविध कारणों के फलस्वरूप छायावादी कवियों को पूर्वयुगीन भाषा का स्वरूप अरुचिकर प्रतीत हुआ और उन्होंने लक्षणा और व्यंजना के अधिकाधिक प्रयोग द्वारा अपनी काव्यभाषा को वैशिष्ट्य प्रदान किया तथा अपनी रचनाओं में अर्थ वैचित्र्य की पुष्टि करके उसे अधिक प्रभावशाली बनाया ।

साहित्य शास्त्र के अन्तर्गत लक्षणा के अनेक भेद प्रभेदों का उल्लेख हुआ है । मुख्यार्थ में बाधा उपस्थित होने पर ही " लक्ष्यार्थ" अपना चमत्कार दिखाता है ।" लक्ष्यार्थ" के उत्पन्न होने के दो कारण होते हैं - रूढ़ि और प्रयोजन । इनके आधार पर लक्षणा के दो भेद किये गए हैं - रूढ़ा और प्रयोजनवती । इसी प्रकार उपादान और उपलक्षण के आधार पर" उपादान लक्षणा" और" लक्षण-लक्षणा" उपमान और उपमेय के आरोप या अध्यवसान के आधार पर" सारोपा" और" साध्यवसाना" सादृश्य और सादृश्येतर आधार की दृष्टि से" गौणी" और " शुद्धा" भेद किये गए हैं । इनके अतिरिक्त इन सब भेदों के परस्पर मिश्रित रूप भी बहुत से हैं । छायावादी काव्य में भी लक्षणा के अनेक परंपरागत रूप उपलब्ध हैं । जैसे -

<u>रूढ़ा लक्षणा</u> - (रूढ़ि के आधार पर लक्ष्यार्थ का ग्रहण)

" है ऊँचा आज मगध शिर
नत मस्तक आज हुआ कलिंग ।[१]

१- जयशंकर प्रसाद - लहर, अशोक की चिन्ता, पृष्ठ ४६ ।

मगधाश्रित और कलिंग यहां मगध और कलिंग यहां मगध और कलिंग के निवासियों के द्योतक है और इस लक्ष्यार्थ को ग्रहण करने का कारण " रूढ़ि " है ।

प्रयोजनवती लक्षणा - (किसी विशेष प्रयोजन से जब लक्षणा का प्रयोग हो)-

" शीतल ज्वाला जलती है, ईंधन होता दृग जल का ।
यह व्यर्थ सांस चल चलकर करती है काम अनिल का ।"[१]

इन पंक्तियों का मुख्यार्थ ग्रहण करने में बाधा यह है कि ज्वाला कभी शीतल नहीं होती, और जल ज्वाला को बुझाने का काम करता है, वह ईंधन नहीं हो सकता । परन्तु लक्षणा से यहां " ज्वाला " का अर्थ " विरहजन्य पीड़ा " है । " प्रिय " के प्रति गहन प्रेम का प्रतिफल होने के कारण वह पीड़ा भी कवि को अप्रिय नहीं है, इसी दृष्टि से ज्वाला को " शीतल " कहा गया है । अर्थात् प्रेम के समान ही प्रेम की पीड़ा भी आनंददायी है । वियोग पीड़ा के फलस्वरूप नेत्रों से प्रवाहित होनेवाले अश्रु उस विरहाग्नि को प्रदीप्त करते हैं अतएव वे ईंधन हुए ।

उपादान लक्षणा - (मुख्यार्थ अपने स्वरूप को बनाए रखकर लक्ष्यार्थ का सहायक हो)

" खुली उसी रमणीय दृश्य में
अलस चेतना की आंखें ।"[२]

अलस चेतना की आंखें खुलना अर्थात् चेतना का प्रबुद्ध होना । इसमें वाच्यार्थ भी सुरक्षित है क्योंकि आंख खुलना भी सचेत होने का लक्षण है, इसलिए यहां उपादान लक्षणा कार्यरत है ।

लक्षण- लक्षणा - (मुख्यार्थ अपने स्वरूप को छोड़कर लक्ष्यार्थ का उपलक्षण मात्र रह जाये ।)-

" अश्रु से मधुकण लुटाता आ यहां मधुमास ।"[३]

- अश्रु से मधुकण लुटाना यहां पर पीड़ा का आनंद प्रदान करने के अर्थ का व्यंजक है ।

१- जयशंकर प्रसाद - आंसू, पृष्ठ १० ।
२- जयशंकर प्रसाद - लहर, प्रलय की छाया " पृष्ठ ७६ ।
३- महादेवी वर्मा - आधुनिक कवि ,पृष्ठ ५३ ।

सारोपा लक्षणा - (उपमान और उपमेय में अभेद भाव होते हुए भी उपमेय शेष रहता है)-

" इस हृदय कमल का घिरना अलि अलकों की उलझन में
आँसू मरंद का गिरना, मिलना निश्वास पवन में ।।[१]

यहाँ हृदय और उसके उपमान कमल में पूर्ण साम्य होते हुए भी विश्वास के पवन में मिलने की क्रिया द्वारा हृदय का पृथक अस्तित्व झलक जाता है।

साध्यवसाना लक्षणा - (उपमान और उपमेय में ऐसा एकीकरण हो जाए कि उपमेय आच्छादित हो जाये और केवल उपमान द्वारा ही उपमेय का बोध हो ।)

" कौन हो तुम वसंत के दूत
विरस पतझड़ में अति सुकुमार ।
घन तिमिर में चपला की रेख
तपन में शीतल मंद बयार ।।[२]

यहाँ " वसंत के दूत " से अभिप्राय वसंतागम का संदेश देनेवाली कोयल के समान मधुरवाणी वाले से है। इसी प्रकार चपला की रेख चपला की रेखा सदृश उज्ज्वल एवं कान्तिमान" तथा " शीतल मंद बयार" का प्रयोग " शीतल मंद बयार के समान सुखानुभूति करानेवाले" के अर्थ में हुआ है ।

गौणी लक्षणा - (सादृश्य के आधार पर लक्ष्यार्थ का बोध कराया जाये)

" किंजल्क जाल है बिखरे
उड़ता पराग है रूखा ।
है स्नेह सरोज हमारा,
विकसा मानस में सूखा ।।[३]

१- जयशंकर प्रसाद - आँसू , पृष्ठ १२ ।

२- जयशंकर प्रसाद - कामायनी - श्रद्धासर्ग , पृष्ठ ४५ ।

३- जयशंकर प्रसाद - आँसू, पृष्ठ २८ ।

शुद्धा लक्षणा - (सादृश्य के अतिरिक्त अन्य संबंधों कार्य,कारण, कौंगिक भाव पर आधारित लक्षणा)

" बीन भी हूं मैं तुम्हारी रागिनी भी हूं ।"[१]

यहां बीन और रागिनी के कार्यकारण संबंध का आधार ग्रहण करके लक्षणा का प्रयोग हुआ है ।

इसी प्रकार लक्षणा के मिश्रित रूपों के भी अनेक उदाहरण छायावादी कविताओं में मिलते हैं जैसे -

प्रयोजनवती गौणी साध्यवसाना गौणी लक्षणा -

" विद्रुम सीपी संपुट में मोती के दाने कैसे
है हंस न शुक यह फिर क्यों चुगने को मुक्ता ऐसे ?"[२]

इस छंद में उपमेय का उपमान में लोप हो गया है, विद्रुम सीपी संपुट , रक्तिम अधरों , मोती के दाने , सुंदर दांतों तथा " शुक " नासिका के उपमान रूप में प्रयुक्त हुए हैं : मुख्यार्थ बाधित होने से लक्ष्यार्थ का बोध यहां सादृश्य संबंध के आधार पर कराया गया है, अतएव यहां प्रयोजनवती गौणी साध्यवसाना लक्षणा हुई ।

इसी प्रकार - प्रयोजनवती शुद्धा साध्यवसाना लक्षण लक्षणा -

" झंझा झकोर गर्जन था
बिजली थी नीरद माला ।
पाकर इस शून्य हृदय को
सब ने आ डेरा डाला ।।"[३]

यहां अप्रस्तुत योजना साभिप्राय है, उपमान और उपमेय में अभेद भाव है, मुख्यार्थ को बाधित करके लक्ष्यार्थ सादृश्येतर संबंध के आधार पर उत्पन्न हुआ है तथा मुख्यार्थ लक्ष्यार्थ का उपलक्षण मात्र रह गया है, इसलिए यहां प्रयोजनवती शुद्धा साध्यवसाना -लक्षण-लक्षणा है ।

१- महादेवी वर्मा - आधुनिक कवि, पृष्ठ ३३ ।
२- जयशंकर प्रसाद - आंसू, पृष्ठ २३ ।
३ - जयशंकर प्रसाद - आँसू , पृष्ठ १५ ।

वास्तव में छायावादी कवियों की विशेषता लाक्षणिक प्रयोगों में नहीं वरन् लाक्षणिक प्रयोगों में नया चमत्कार उत्पन्न करने में है और यह चमत्कार उत्पन्न किया गया है अप्रस्तुत योजना के माध्यम से । सूर, बिहारी, घनानंद पद्माकर आदि कवियों की रचनाओं में लाक्षणिक वैचित्र्य के अनेक श्रेष्ठ उदाहरण प्राप्य हैं, किन्तु वे अधिकांश उदाहरण सारोपा के हैं साध्यवसाना प्राय: उपादान-मूला है और रूढ़ि या उपलक्षण मात्र पर आधारित है । उपादान-लक्षणा मध्ययुगीन कवियों को विशेष प्रिय रही है, जैसे " निसदिन बरसत नैन हमारे " में नैन अपने वाच्यार्थ को बनाए रखकर भी अश्रु वर्षण का भाव व्यक्त करते हैं । श्याम रंग उस समय के कवियों द्वारा अत्यधिक प्रयोग के कारण कृष्ण के लिए रूढ़ि बन गया । बहुत से मुहावरे चित का चोरना, मन लेना आदि भी प्रयोगाधिक्य से परंपरामुक्त होकर वाच्यार्थ जैसे हो गए किन्तु छायावादी कवियों ने परंपरागत प्रयोगों का आश्रय नहीं लिया । छायावादी कवियों जैसी अप्रस्तुत योजना पूर्व युगों में प्राय: दुर्लभ है । इसी कारण उपर्युक्त उदाहरणों को ध्यानपूर्वक देखा जाए तो वे लक्षणा के परंपरागत रूपों को प्रकट करते हुए भी परंपरागत नहीं हैं । उनमें नई आभा और नया आकर्षण है ।

लक्षणा के बहुधा दूसरे प्रयोग भी छायावादी कविताओं में दिखाई देते हैं, यद्यपि इनसे भावों में दुर्बोधता आ गई है जैसे -

> " कृषियों के गंभीर हृदय सी,
> बच्चों के तुतले भय सी ।"[1]

इन पंक्तियों में " भय " का लक्ष्यार्थ है - भय का कारण " और तुतलेभय का लक्ष्यार्थ है -" तुतलाते हुए व्यक्ति द्वारा व्यंजित भय " ।

<u>व्यंजना -</u>

कविता की किसी पंक्ति में मुख्यार्थ और लक्ष्यार्थ के समाप्त हो जाने के बाद भी यदि किसी अन्य अर्थ का बोध होता है, उसे व्यंग्यार्थ कहा गया है, और शब्द की जिस शक्ति के द्वारा व्यंग्यार्थ को प्रकट किया जाता है उसे ही " व्यंजना " कहते हैं ।

१- सुमित्रानन्दन पन्त - पल्लव, पृष्ठ ६८ ।

'अभिधा' और 'लक्षणा' केवल शब्द के सहारे चमत्कार उत्पन्न करती है किन्तु व्यंजना अर्थ के द्वारा भी अन्यार्थ व्यंजित करके कविता में चमत्कार लाती है। लक्षणा अभिधा के बिना पंगु रहती है, किन्तु व्यंजना उससे आगे की वस्तु है वह वाच्यार्थ से आगे प्रतीयमान अर्थ प्रकट करके पाठकों को आनंदित करती है। व्यंजनापूर्ण काव्य इसी कारण सर्वश्रेष्ठ माना गया है।

व्यंजना के भी अनेक सूक्ष्म भेद प्रभेदों का निरूपण काव्यशास्त्र में हुआ है, किन्तु मुख्यत: व्यंजना दो प्रकार की होती हैं; शब्दों द्वारा चमत्कार उत्पन्न करनेवाली - शाब्दी व्यंजना' और अर्थ के द्वारा चमत्कार उत्पन्न करनेवाली आर्थी' व्यंजना।

छायावादी काव्य में व्यंजना का बाहुल्य है। मध्ययुग के सूर, घनानन्द, बिहारी आदि की रचनाओं में व्यंजना की कान्ति से दीप्त प्रचुर उदाहरण उपलब्ध है। छायावादी कवियों ने खड़ी बोली को भी व्यंजना शक्ति से संपन्न और प्रभावशालिनी बनाकर पूर्ववर्ती ब्रजभाषा के सिद्ध कवियों से प्रत्यक्षत: होड़ ली है।

छायावादी काव्य में अभिधा के आश्रित व्यंजनाओं की संख्या अत्यंत परिमित है, इनकी अपेक्षा लक्षणामूला शाब्दी व्यंजनाएं बड़े परिमाण में उपलब्ध हैं जैसे -

' जल उठा स्नेह दीपक सा नवनीत हृदय था मेरा।
अब शेष धूम रेखा से चित्रित कर रहा अंधेरा ।।'[१]

यहां प्रथम पंक्ति में प्रयोजनवती सारोपा लक्षण लक्षणा है और द्वितीय पंक्ति में प्रयोजनवती साध्यवसाना लक्षण लक्षणा। इनमें विरह जन्य निराशा की अतिशयता व्यंग्य है। इसी प्रकार -

' झंझा है दिग्भ्रान्त, रात की मूर्च्छा गहरी
आज पुजारी बने ज्योति का यह लघु प्रहरी
जब तक लौटे दिन की हलचल
तब तक यह जागेगा प्रतिपल

१- जयशंकर प्रसाद - आंसू, पृष्ठ ३० ।

रेखाओं में भर आभाजल
दूत सांझ का इसे प्रभाती तक चलने दो ।"[१]

इन पंक्तियों में महादेवी ने व्यंजना के माध्यम से अपनी काव्य साधना का परिचय दिया है । युग की संध्या में उनका यह काव्य रूपी दीपक तब तक उनके संदेशों का प्रकाश बिखेरता रहेगा, जब तक प्रभात अर्थात् नवयुग का प्रारंभ नहीं हो जाता । इस व्यंग्यार्थ को प्रकट करने के लिये साध्यवसाना लक्षणा माध्यम रूप है ।

आर्थी व्यंजना -

छायावाद में ऐसे उदाहरण भी पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध हैं जहां व्यंजना शब्द के आश्रित न होकर अर्थ में केन्द्रित है । जैसे -

" आज वन में पिक पिक में गान
विटप में कलि कलि में सुविकास
कुसुम में रज रज में मधुकण
सलिल में लहर, लहर में लास ।[२]

इन पंक्तियों में " आज " शब्द महत्वपूर्ण है । " आज " से व्यंजना है कि वसंत आ गया है क्योंकि वन में कोयल अपना गान सुना रही है । " कलि " में सुविकास और रज में मधुकण यौवनागम और यौवन की मादकता की ओर इंगित करते हैं । " सलिल " में लहर " और " लहर में लास " का व्यंग्य है - जीवन की तरंगित कामनायें और उनका नर्तन । इस प्रकार व्यंजना से इन पंक्तियों का यह अर्थ निकलता है कि मधुर मिलन की मादक ऋतु आ गई है, ऐसे में संकोच त्याग देना ही उचित है । व्यंजित अर्थ का आधार यहां पर प्रकरण विशेष है, इस कारण यहां प्रकरण वैशिष्ट्योत्पन्न आर्थी व्यंजना है । इसी प्रकार -

" ऐसे क्षण आगी अंधकार घन में जैसे विद्युत
जागी पृथ्वी तनया कुमारिका छवि, अच्युत ।
देखते हुए निष्पलक याद आया उपवन।
विदेह का, प्रथम स्नेह का लतान्तराल मिलन ।।

१- महादेवी वर्मा - दीपशिखा, गीत सं० १३, पृष्ठ ६० ।
२- सुमित्रानन्दन पन्त - गुंजन, पृष्ठ ६० ।

नयनों का नयनों से गोपन-प्रिय संभाषण
पलकों का नव पलकों पर प्रथमोत्थान पतन ।
कापते हुए किसलय, फरते पराग समुदय
ज्योति प्रपात स्वर्गीय-ज्ञात छवि प्रथम स्वीय
जानकी नयन कमनीय प्रथम कंपन तुरीय ।[१]

यहाँ देशकाल को शब्दों में उभार कर नव जाग्रत मधुर एवं शृंगारिक भावों की व्यंजना ही कवि का अभीष्ट है अतएव यहाँ पर देशकाल वैशिष्ट्योत्पन्न आर्थी व्यंजना है । रामकथा के जनक-वाटिका प्रसंग में राम और सीता के प्रथम मिलन की स्मृति को वाटिका के तत्कालीन रमणीक वातावरण के साथ यहाँ चित्रित किया गया है । कांपते हुए किसलय' फरते पराग समुदय' आदि पद प्राकृतिक वातावरण को साकार करने के साथ साथ नव जाग्रत मधुर भावों के आवेग से ' कापते अधरों तथा राम-सीता के पारस्परिक स्नेहयुक्त भावों के वर्णण के भी सूचक हैं ।

व्यंजना शक्ति के बाहुल्य के फलस्वरूप ही छायावादी कविताओं में ध्वनि का चमत्कार बहुत अधिक दिखाई देता है ।

ध्वनि का चमत्कार रीतिकालीन कवियों-बिहारी आदि में बहुत अधिक दिखायी देता है किन्तु उनके व्यंग्यार्थ को कामशास्त्र, नायिका भेद आदि से पूर्व परिचित हुए बिना समझ पाना कठिन है ; जबकि छायावादी कविताओं में बहुधा दुहरी तिहरी व्यंजनाएं होते हुए भी उन्हें समझने के लिये बुद्धि की आवश्यकता अवश्य होती है, किन्तु शास्त्रीय ज्ञान की नहीं । उदाहरणार्थ बिहारी का एक प्रसिद्ध दोहा है -

' लिखन बैठि जाकी सबिहि, गहि गहि गरब गरुर ।
भये न केते जगत के चतुर चितेरे चौर ।।[२]

इसमें वाच्यार्थ यह है कि नायिका की सखी नायक से

१- सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला - अनामिका - राम की शक्ति पूजा, पृष्ठ २५१।
२- लाला भगवानदीन - बिहारी बोधिनी, पृष्ठ ६२ ।

कहती है, मैं आपको उस नायिका से मिलवाना चाहती हूँ जिसका चित्र बड़े अहंकार पूर्वक बनाने बैठने वाले संसार के जाने कितने चतुर चित्रकार मूर्ख बन गए हैं किन्तु इन पंक्तियों में छिपी " व्यंजना " को समझ पाना साधारण पाठक के वश की बात नहीं है । " चतुर " होकर भी चितेरे उस नायिका का चित्र क्यों नहीं बना पा रहे हैं -- इसके दो कारण हो सकते हैं, एक तो वह नायिका वय: संधि की अवस्था में है, उसके क्षण क्षण बदलने वाले रूप को जब तक चित्रकार अंकित करने की चेष्टा करे, वह पुराना पड़ जाता है । दूसरे वह नायिका इतनी सुन्दर है कि उसे देखकर किसी चित्रकार को " स्तंभ " हो जाता है, अतएव हाथ रुक जाता है, किसी को " कंप " होता है, तो रेखाएं विकृत हो जाती हैं, और किसी को " स्वेद " होने से चित्र पर जल कण टपक कर उसके रंगों को धूमिल कर देते हैं । इस प्रकार योग्य चित्रकार भी अपना घमण्ड भूलकर उसका चित्र बनाने में असमर्थ हो बैठे हैं ।

इस दोहे की तुलना में छायावादी कवि निराला की " संध्या सुन्दरी " कविता को रखकर देखें तो सामान्य पाठकों के अंकुरित यौवना अभिसारिका के अनुभावों आदि से अपरिचित होने पर भी " अम्बर पथ (पांवड़े बिछा हुआ मार्ग) से " धीरे धीरे " (कोमलतापूर्वक चरण नि:क्षेप करनेवाली) आनेवाली रूपसी की सुकुमारता और सुन्दरता की सफल व्यंजना हो जाती है । '

" दिवसावसान का समय
मेघमय आसमान से उतर रही है
वह संध्या सुंदरी परी सी
धीरे धीरे धीरे ---- ।[१]

तात्पर्य यह कि छायावादी काव्य में व्यंजना बाहुल्य होते हुए भी इन कवियों ने अपनी मौलिकता को अक्षुण्ण रखा है ।

प्रतीक विधान -

प्रतीकों की बहुलता छायावादी काव्य की अभिव्यंजना प्रणाली की एक प्रमुख विशेषता है । जयशंकर प्रसाद ने छायावाद की विशेषताओं

१- सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला - परिमल, पृष्ठ १३५ ।

का उल्लेख करते हुए इसको भी छायावादी कविता का महत्वपूर्ण लक्षण बताया है।[१]
आधुनिक काव्य के अन्तर्गत " प्रतीक " अंग्रेजी काव्य के सिम्बल का पर्याय है ।
रामचन्द्र शुक्ल ने प्रतीक को भारतीय काव्यशास्त्र के " उपलक्षण " का समानार्थी
मानते हुए इन दोनों का प्रयोग एक साथ किया है ।[२]

प्रतीक विधान का मूल प्रयोजन भाषा में अर्थ गौरव की
सृष्टि करना होता है । " प्रतीक " में भाव गोपन और भाव प्रकाशन की दुहरी
सामर्थ्य है फलस्वरूप भाषा के अन्तर्गत उसका महत्व द्विगुणित हो जाता है ।[३]

सामान्यतः " प्रतीक " शब्द " की व्यंजनाशक्ति का विस्तार है,
जिसका ध्येय इन्द्रियातीत, सूक्ष्म अगोचर भाव की इन्द्रियगोचर किन्तु सांकेतिक
अभिव्यक्ति करना है । इसे अप्रस्तुत विधान का ही एक विशिष्ट अंग कहा जा
सकता है किन्तु दोनों एक दूसरे के पर्याय नहीं हैं ।

प्रत्येक युग की कविता में कुछ उपमान इतने अधिक प्रचलित हो
जाते हैं कि किसी स्थान पर उनका प्रयोग देखते ही बिना उपमेय का नाम लिये ही
अभीष्ट अर्थ व्यक्त हो जाता है । उदाहरणार्थ जब तुलसीदास लिखते हैं -"

" अरुन पराग जलज भरि नीके ।
ससिहि भूष अहि लोभ अमी के ।।[४]

१- जयशंकर प्रसाद - काव्य कला तथा अन्य निबन्ध (यथार्थवाद और छायावाद)
पृष्ठ १२६ -" ध्वन्यात्मकता ,लाक्षणिकता, सौन्दर्यमय प्रतीक
विधान तथा उपचार वक्रता के साथ स्वानुभूति की विवृत्ति
छायावाद की विशेषतायें हैं ।"

२- रामचन्द्र शुक्ल - हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ ६७० -
" ऐसे अप्रस्तुत अधिकतर उपलक्षण के रूप या प्रतीकवत
(Symbolic) होते हैं ---- ।"

३- Arthour Symons - The symbolist movement in Literature(1958)
page 2. - In a symbol there is concealment and
yet revelation hense therefore by silence and
by speech acting together, comes a double
significance ?

४- तुलसीदास - रामचरितमानस, बालकाण्ड ५।३२५

तो कुछ तो प्रसंगवश और कुछ रूढ़ उपमानों के प्रयोग के कारण अभीष्ट अर्थ स्पष्ट हो जाता है कि राम द्वारा सीता को सिन्दूर दान की क्रिया का वर्णन किया जा रहा है । "हाथ" के लिए "जलज", मुख के लिए "चन्द्रमा" मुख के लावण्य के लिए "अमृत" आदि उपमान हमारे अत्यधिक परिचित हैं ।

प्रयोगाधिक्य से रूढ़ हो जानेवाले उपमान ही कालान्तर में प्रतीक बन जाते हैं किन्तु साधारण उपमानों और प्रतीकों में एक सूक्ष्म अन्तर यह कहा जा सकता है कि उपमान का चयन करते समय कवि की दृष्टि साधारणतया रूप साम्य तक ही सीमित रहती है, किन्तु प्रतीक में रूप और धर्म दोनों की समानता पर । बल्कि छायावादी कवियों ने रूप और धर्म दोनों से आगे, प्रभाव साम्य को प्रतीकों के चयन का मुख्य आधार बनाया है । उपमा, रूपक आदि के द्वारा प्राय: प्रतीक का भ्रम हो जाता है किन्तु वास्तव में प्रतीक की अपनी पृथक सत्ता है और उसकी अर्थशक्ति समस्त साम्यमूलक अलंकारों से कहीं अधिक व्यापक है । "प्रतीक" विशिष्ट अर्थ की सांकेतिक व्यंजना करते हैं तथापि वे संकेत भी नहीं हैं । संकेत पदार्थ के बोधक मात्र होते हैं और उनके मूल में अभिधा कार्य करती है, जबकि प्रतीक का आधार लक्षणा व्यंजना है तथा उनका लक्ष्य केवल इंगित करना नहीं है । वे संप्रेष्य भाव के प्रति रूप या स्थानापन्न होते हैं ।

कला के स्थूल परंपरागत उपकरणों के प्रति विद्रोह, अभिनव अभिव्यंजना प्रणाली के आविष्कार की आकांक्षा तथा शृंगार के अमांसल अतीन्द्रिय रूप के प्रति झुकाव आदि अनेक कारणों वश छायावादी कवियों ने प्रतीक-पद्धति का आश्रय लिया । भावाभिव्यक्ति का यह साधन जिसमें स्थूल वर्णन के बिना ही संप्रेष्य भाव को चमत्कारपूर्ण संस्पर्शों से युक्त करके व्यंजित किया जा सकता है, छायावादी कवियों को अत्यंत रुचिकर प्रतीत हुआ क्योंकि यह उनके कलागत आदर्शों के अनुकूल था ।

हिन्दी कविता के भक्तियुग और रीतियुग - दोनों में ही प्रतीक पद्धति का प्रचलन रहा है । भक्तियुग के कबीर जायसी आदि ने ईश्वर और जीवात्मा के रहस्यात्मक संबंधों के प्रकटीकरण के लिए और रीतियुगीन कवियों ने नायिका-नायक के मिलन स्थल का संकेत देने अथवा सौन्दर्य और विरह वर्णन के अन्तर्गत प्रतीकों का पर्याप्त सहारा लिया है । किन्तु पिछले युगों के - कमल,सूर्य,

खंजन, मीन आदि बहुप्रचलित प्रतीक केवल अर्थ ग्रहण कराते थे, रीतिकाल के प्रतीक तो प्राय: संकेत ही थे, लेकिन छायावादी प्रतीक केवल अर्थ ग्रहण ही नहीं कराते, प्रभाव ग्रहण भी कराते हैं । वे रहस्य अथवा अध्यात्म से ही संबंधित न होकर विभिन्न भावों के मूर्तिकरण हेतु श्रेष्ठ कलागत उपकरण हैं । धर्मात्मक और प्रभाव साम्य पर आधारित होने के फलस्वरूप छायावादी प्रतीक विधान का पूर्ववर्ती युगों से वैशिष्ट्य प्रकट होता है ।

पाश्चात्य विद्वानों तथा हिन्दी समीक्षकों के द्वारा प्रतीक के अनेक भेद-प्रभेद किये गए हैं, किन्तु उनमें से किसी के भी वर्गीकरण का आधार पूर्णत: वैज्ञानिक नहीं कहा जा सकता । विवेचन में सुविधार्थ, स्थूल रूप से प्रतीकों का निम्न दो वर्गों - स्थूल एवं मूर्त प्रतीक तथा - सूक्ष्म ,अमूर्त,वैचारिक या प्रत्यय मूलक प्रतीक - में विभाजन[1] मान्य हो सकता है । यह विभाजन सरल और बोध गम्य होने के साथ साथ अपेक्षाकृत तर्कसंगत भी है क्योंकि इसमें प्रतीक के मूलवर्ती भाव के स्वरूप को आधार माना गया है ।

छायावादी कवियों ने स्थूल और मूर्त प्रतीक ही अधिक अपनाए हैं । वैचारिक प्रतीकों का छायावादी काव्य में सर्वथा अभाव न होते हुए भी उनकी संख्या अत्यंत परिमित है ।

रूढ़ि विरोधी और कलागत नव मूल्यों के अन्वेषी होने के फलस्वरूप छायावादी कवियों ने परंपरागत, चिर प्रचलित प्रतीक से ही संतुष्ट न रहकर नए उपमानों को प्रयोग की पुनरावृत्ति और प्रसंगानुकूलता से रूढ़ बनाकर अपनी कविताओं में नए नए प्रतीकों की योजना की । उनके द्वारा प्रतीक रूप में अपनाई जानेवाली वस्तुओं के रूप-गुण से हमारा चिर परिचय रहने पर भी पिछले युगों की कविताओं में प्रतीक रूप में उनका प्रचलन नहीं था, अथवा कम था । अर्थात् छायावादी कवियों ने सामान्य अर्थों में पूर्व परिचित वस्तुओं को विशेष अर्थों के लिये रूढ़ बनाकर एक नई परिपाटी चलाई ।

१- प्रतिमाकृष्णाबल - छायावाद का काव्य शिल्प, पृष्ठ १६६ ।

प्रतीकों के अर्थवत्व और उनके पाठकों द्वारा अर्थग्रहण की प्रक्रिया में हमारे विश्वास आधार रूप में रहते हैं । कवि जब सर्वविदित और सर्वानुभूत गुणों से युक्त वस्तुओं को अपने मनोवेगों की अभिव्यक्ति का साधन बनाकर प्रतीक रूप में प्रयोग करता है तो ऐसी रचनाएँ दूसरों के मन को सीधे स्पर्श करती हैं । प्रसाद के आँसू काव्य की मर्मस्पर्शिता और प्रभविष्णुता का यही रहस्य है । झंझा, सरिता, समुद्र, नीरदमाला, वसंत, पतझड़, लहर, चंद्र आदि को अपनी मनोदशाओं का प्रतीक बनाकर कवि ने अपनी विरहानुभूति को हृदयग्राही रूप में अभिव्यक्त किया है ।

प्रतीक योजना में प्रसाद की पटुता के कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं :-

" विस्मृति है मादकता है, मूर्च्छना भरी है मन में ।
कल्पना रही सपना था, मुरली बजती निर्जन में ।।[१]

यहाँ मुरली मधुर भावनाओं की प्रतीक है, जिससे नीचे की पंक्ति का अर्थ इस प्रकार होगा कि उस अतीत के मधुमय जीवन की आज कल्पना मात्र शेष रह गई है, वह अतीत आज स्वप्नवत हो गया है । उस जीवन की मधुर स्मृतियाँ आज भी मुरली के स्वरों की भाँति हृदय के शून्य प्रदेश में गूँज रही हैं । मन के सूनेपन में स्मृतियों की गूँज का निर्जन में मुरली बजने के साथ सादृश्य दिखाकर विरह की अनुभूति की व्यंजना करना वस्तुत: अप्रस्तुत विधान का ही अंग है किन्तु " मुरली " उन स्मृतियों की मिठास और उनके प्रति कवि मन के मोह के सूक्ष्म सांकेतिक अर्थों की भी व्यंजना करती है, इस कारण संदर्भ सापेक्ष व्यापक अर्थ व्यंजना की शक्ति अर्जित करके वह यहाँ पर साधारण उपमान न रहकर प्रतीक बन गई है । इसी प्रकार -

" झंझा झकोर गर्जन था, बिजली थी नीरद माला ।
पाकर इस शून्य हृदय को सब ने आ डेरा डाला ।।[२]

इन पंक्तियों में " झंझा " का प्रतीकार्थ भावों का संघर्ष है । " बिजली " वेदना की अनुभूति और " नीरदमाला " अश्रुओं की धारा का अर्थ बोध कराती है ।

१- जयशंकर प्रसाद - आँसू, पृष्ठ २६ ।
२- जयशंकर प्रसाद - आँसू, पृष्ठ १५ ।

तथा -

" किंजल्क जाल है बिखरे
उड़ता पराग है रूखा ।"[1]

यहाँ भी लक्षणा शक्ति के आधार पर " किंजल्क जाल " मधुर स्वप्निल क्षणों के प्रतीक रूप में प्रयुक्त हुआ है और " पराग " हृदय-रस का प्रतीक है तथा इन दोनों के माध्यम से मन की गहन निराशा और सूनेपन की सूक्ष्म व्यंजना हुई है । इस प्रकार के प्रतीक छायावाद से पूर्व हिन्दी कविता में अप्राप्य है ।

निराला की निम्न पंक्तियों में -

" जहाँ नयनों में केवल प्रात, कि ज्योत्स्ना ही केवल गात ।
रेणु छाये ही रहते पात, मंद ही बहती सदा बयार ।।"[2]

प्रात, ज्योत्स्ना रेणु - स्फूर्ति, शान्ति और शीतलता के प्रतीक है ।

निराला सुकोमल और मधुर ही नहीं ध्वंसमूलक और विराट प्रतीकों के कुशल संयोजन में भी समर्थ है -

" है अमा निशा, उगलता गगन घन अंधकार
खो रहा दिशा का ज्ञान, स्तब्ध है पवन चार ,
अप्रतिहत गरज रहा पीछे अंबुधि विशाल,
भूधर ज्यों ध्यान मग्न ; केवल जलती मशाल ।[3]

यहाँ " अमानिशा " गगन विशाल अंबुधि, भूधर आदि महानाश के विराट प्रतीक है । इनके द्वारा राम के अंतर्मन की गहनतम निराशा को अनुभूतिगम्य बनाने का सफल प्रयास हुआ है । " अमानिशा " और " गगन " मन के नैराश्य की सघनता और विस्तार के व्यंजक हैं । भावनाओं के भीषण उद्वेलन का धर्म-साम्य " अंबुधि के गर्जन से है अतएव अंबुधि विशाल मानसिक संघर्ष का प्रतीक बन गया है । भूधर " निराशा से उद्भूत मन की जड़ता का प्रतीकात्मक रूप है ।

१- जयशंकर प्रसाद - आँसू, पृष्ठ ३४ ।
२- सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला - परिमल, पृष्ठ १०६ ।
३- सूर्यकान्त त्रिपाठी " निराला " अनामिका (राम की शक्ति पूजा) पृष्ठ १५० ।

नवीन प्रतीकान्वेषण में छायावादी कवियों में पंत का नाम अग्रगण्य है । गंगाजल और मदिरा को पवित्रता और कलुष के प्रतीक बनाकर उन्होंने अत्यंत सुंदर ढंग से प्रयोग किया है :-

" कभी तो अब तक पावन प्रेम
नहीं कहलाया पापाचार
हुई मुझको ही मदिरा आज
हाय क्या गंगाजल की धार ? [1]

नायिका की प्रफुल्लता और पावनता , मन का भोलापन और स्वभाव की मधुरता मृदुता आदि की व्यंजना के लिए पंत ने सर्वथा मौलिक प्रतीकों का चयन किया है -

" उषा का था उर में आवास
मुकुल का मुख में मृदुल विकास ।
चांदनी का स्वभाव में भास,
विचारों में बच्चों के सांस ।। [2]

कहीं कहीं एक प्रतीक में एक के स्थान पर दो, तीन या चार चार धर्मों का समावेश करके पंत ने छायावाद के काव्य शिल्प को ऐसा वैशिष्ट्य प्रदान किया है जो उसे पिछले युगों के शिल्प से सर्वथा अलग कर देता है। उदाहरणार्थ-

" तुम्हारे छूने में था प्राण,
संग में पावन गंगा स्नान ।
तुम्हारी वाणी में कल्याणि
त्रिवेणी की लहरों का गान । [3]

त्रिवेणी की लहरों के गान" में संगीत लहरी के साथ साथ मधुरता पावनता और शीतलता का भाव भी निहित है ।

१- सुमित्रानन्दन पन्त" पल्लव" आंसू, पृष्ठ १७ ।

२- सुमित्रानन्दन पन्त, आधुनिक कवि , पृष्ठ ११ ।

३- सुमित्रानन्दन पन्त, पल्लव, आंसू, पृष्ठ २७ ।

आत्मा और परमात्मा के रहस्यात्मक संबंध को अनुभूतिगम्य बनाने के लिये प्रयुक्त होनेवाले लहर और सागर के प्रतीक हमारे चिर परिचित हैं, किन्तु महादेवी ने इसके लिए "बीन" और "रागिनी" के नए प्रतीक चुने हैं -

"बीन भी हूँ मैं तुम्हारी रागिनी भी हूँ।"[१]

अन्यत्र उन्होंने "लहर" को मायाविष्ट जीव का प्रतीक मानते हुए परमात्मा के लिए "तुंग अचल" और मायाजन्य सृष्टि के लिये "सिन्धु" के प्रतीकों की योजना की है -

" मैं ऊर्म्मि विरल
तू तुंग अचल, वह सिन्धु अतल
बांधे दोनों को मैं चल चल
धो रही द्वैत के सौ कैतव।[२]

इन प्रतीकों के मूल में शब्द की व्यंजना शक्ति आधार रूप है तथा इनके द्वारा ब्रह्म और माया संवलित संसार के मध्य जीवात्मा की स्थिति के व्यंग्यार्थ की प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति हुई है।

महादेवी दर्शन के क्षेत्र में सूफीमत से प्रभावित रही हैं। सूफीमत के अनुसार समाधि की अवस्था में ही परमात्मा का साक्षात्कार संभव है। अतएव महादेवी समाधि अवस्था के लिये "तम" को प्रतीक रूप में लेकर लिखती हैं -

" करुणामय को भाता है तम के परदों में आना ।
हे नभ की दीपावलियों तुम पल भर को बुझ जाना ।।[३]

सूफीमत के प्रभाववश ही महादेवी भी बाह्य चेतना के विस्मरण में ही प्रियमिलन संभव मानती हैं अतएव "स्वप्न" और "निद्रा" को उन्होंने मिलनावस्था के प्रतीक रूप में उपयोग किया है -

" नींद में वह पास आया स्वप्न सा छिप पास आया" [४]

१- महादेवी वर्मा - नीरजा, पृष्ठ १६।
२- महादेवी वर्मा - दीपशिखा - गीत संख्या ३, पृष्ठ ७२।
३- महादेवी वर्मा - आधुनिक कवि, पृष्ठ १६।
४- महादेवी वर्मा - आधुनिक कवि, पृष्ठ ७७।

व्यक्तिवादी तथा भिन्न भिन्न सिद्धान्तानुगामी होने के फलस्वरूप एक ही प्रतीक का अलग अलग कवियों द्वारा भिन्न अर्थों में प्रयोग भी बहुधा छायावादी कविताओं में दृष्टिगत होता है। जैसे "आलोक" या "प्रकाश" महादेवी के लिए प्रिय वियोग का कारण है अतएव वे नम की दीपावलियों से बुझ जाने की प्रार्थना करती है, किन्तु निराला के लिए वही "आलोक" प्रसन्नता और ज्ञान का प्रतीक है -

" विश्व नम पलकों का आलोक
अतुल यह आ हर लेता शोक।"[१]

अथवा -

गई निशा वह हँसी दिशायें, खुले सरोरुह, जो अचेतन।
वही समीरण, जुड़ा नवल मन, उड़ा तुम्हारा प्रकाश केतन।।[२]

रामकुमार वर्मा ने "दीपक" को परमात्मा का प्रतीक माना है, और महादेवी ने आत्मा का -

" एक दीपक - किरण - कण हूँ।[३]

तथा -

शलभ मैं शापमय वर हूँ,
किसी का दीप निष्ठुर हूँ।[४]

प्रभाव साम्य को आधार मानकर प्रतीक योजना के फलस्वरूप, व्यक्ति भेद से एक ही वस्तु का भिन्न भिन्न भावों के प्रतीक रूप में उपयोग हुआ है। जैसे धूलि को देखकर एक कवि पर उसकी तुच्छता अंकित हुई तथा दूसरे पर उसकी निश्चेष्टता। अतएव महादेवी ने "धूलि के कण" का प्रयोग मानवहृदय के प्रतीक रूप में किया और निराला ने "शान्ति" के प्रतीक रूप में -

---

१- सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला - गीतिका, पृष्ठ ७७।
२- सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला - गीतिका, पृष्ठ ५६।
३- रामकुमार वर्मा - आधुनिक, पृष्ठ २३२।
४- महादेवी वर्मा - आधुनिक कवि, पृष्ठ ८८।

" धूलि के कण में नभ सी चाह ।
बिन्दु में दुख का जलधि अथाह ।।[१]

तथा -

वहां नयनों में केवल प्रात,
चंद्र ज्योत्सना ही केवल गात ।
रेणु छाए ही रहते पात,
मंद ही बहती सदा बयार ।।[२]

कभी कभी एक ही कवि द्वारा एक वस्तु को भिन्न भिन्न अर्थों का वाहक बनाया गया है । जैसे आकाश में उच्चता और विस्तार के गुणों को लेकर पंत एक स्थान पर लिखते हैं -" करुण भौंहों में था आकाश"[३] तो अन्यत्र उसकी शून्यता के गुण को आधार रूप में ग्रहण करके उसे शून्यता के प्रतीक रूप में प्रयोग करते हैं - " पुन: उच्छवासों का आकाश" ।[४]

प्रतीकों का बाहुल्य और पहले से चली आती उनकी कोई परंपरा न होने के कारण तथा एक ही वस्तु को अलग-अलग भावों की प्रतीक बनाने के कारण ही छायावादी काव्य प्रारंभ में अस्पष्ट और दुरुह प्रतीत हुआ, परन्तु निरंतर प्रयोग से युग की सामान्य भावधारा में घुल मिलकर वे प्रतीक बुद्धिग्राह्य बन गए । कम से कम इतना तो अविवादित है कि नए नए प्रतीकों की योजना ने छायावादी शैली को एक नई भंगिमा दी है जो उसे परंपरा विहित काव्य शिल्प से अलग करती है । इसके अतिरिक्त अधिकांशत: यह प्रतीक मात्र नए ही नहीं प्रभावशाली भी हैं तथा इनके द्वारा छायावादी काव्यभाषा की क्षमता विवर्धित हुई है ।

गुण :-

प्राचीन भारतीय साहित्याचार्यों वामन, दण्डी आदि ने गुणों को सामान्य अलंकारों से भिन्न शब्दार्थगत सौन्दर्य विधायक तत्व के रूप में स्वीकार किया है । इसी कारण छायावादी काव्य के भाषागत सौन्दर्य एवं सौन्दर्य विधायक

१- महादेवी वर्मा - रश्मि , पृष्ठ १६ ।
२- सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला - परिमल, पृष्ठ १०६ ।
३- सुमित्रानन्दन पन्त - आधुनिक कवि ,पृष्ठ ११ ।
४- सुमित्रानन्दन पन्त - पल्लव , आंसू , पृष्ठ १६ ।

तत्वों का विवेचन करते समय गुणों की दृष्टि से भी उसका विश्लेषण समीचीन होगा ।

'वामन' पहले आचार्य थे, जिन्होंने काव्य-गुणों का विस्तृत और सांगोपांग विश्लेषण प्रस्तुत किया । उनके अनुसार पद रचना के दस गुण होते हैं - ओज, प्रसाद, श्लेष, समता, समाधि, माधुर्य, सौकुमार्य, उदारता, अर्थव्यक्ति और कान्ति । ये दस गुण ही अर्थगुण भी होते हैं । दोनों में अन्तर केवल वाच्य-वाचक का होता है ।[1] आगे चलकर आचार्य मम्मट ने वामन के द्वारा निर्दिष्ट गुणों में अनेक का परस्पर अंतर्भाव संभव देखकर तथा शब्द और अर्थ के आधार पर उनका विभाजन अवैज्ञानिक प्रतीत होने के कारण केवल तीन ही गुणों प्रसाद, माधुर्य और ओज की प्रतिष्ठा की ।

छायावादी कवियों में कलात्मक प्रतिभा उच्च कोटि की थी। कला के प्रति उनकी विशेष सजगता से परिचित होने के कारण यह मानना असंगत न होगा कि छायावादी काव्य में उपलब्ध होनेवाले गुण आकस्मिक नहीं हैं वरन् उनकी सायास योजना की गई है । यद्यपि शास्त्रीयता का पालन छायावादी कवियों का लक्ष्य कभी नहीं रहा, तथापि भावानुभूति को अधिकाधिक आकर्षक, प्रभावशाली और संवेद्य बनाकर प्रस्तुत करने हेतु कौन कौन से उपाय अथवा साधन उपयोगी हो सकते हैं, इस विषय का प्रातिभज्ञान उनमें पर्याप्त रूप में था ।गुण-योजना भी इसी प्रवृत्ति का परिणाम है । अनुभूति की प्रगाढ़ता और वचनवक्रता, दोनों का सह अस्तित्व छायावादी काव्य में होने के फलस्वरूप यह गुण एक ओर उसमें शब्दगत चमत्कारोत्पादन में सहायक हुए हैं, दूसरी ओर उनसे अर्थगौरव की भी वृद्धि हुई है । छायावाद से पूर्व द्विवेदीयुगीन काव्य में प्रसाद गुण का प्राधान्य था । प्रसाद गुण उन शब्दों में होता है जो अर्थ की तुरन्त और स्पष्ट प्रतीति कराने में सक्षम होते हैं । अर्थ गुण के रूप में भी प्रसाद गुण वस्तु के रूप और स्वभाव का स्पष्ट बोध

१- वामन - काव्यालंकार सूत्र वृत्ति-

"ओज : प्रसाद - श्लेष, समता , समाधि, माधुर्य सौकुमार्य उदारता अर्थव्यक्ति , कान्तयो बन्धु गुणा: "- ।३,१,४।

शब्दार्थ गुणानां वाच्य वाचक द्वारेण भेद दर्शयति ।" ।३,२,१।

करानेवाला होता है । परन्तु छायावादी कवि द्विवेदी युग से सर्वथा भिन्न, सूक्ष्म सांकेतिकता और प्रतीकात्मकता से युक्त अभिव्यंजना की नवीन प्रणाली के विकास के लिये प्रयत्नशील थे, अतएव प्रसाद गुण उनकी रुचि और स्वभाव के अनुकूल नहीं था । छायावाद की प्रारंभिक कृतियों में कहीं कहीं इसके उदाहरण प्राप्य है जैसे -

" माँ अल्मोड़े में आए थे
जब राजर्षि विवेकानन्द
तब मग में मखमल बिछवाया
दीपावलि की विपुल अमंद ।
बिना पाँवड़े पथ में क्या वे
जननि नहीं चल सकते हैं ?
दीपावलि क्यों की क्या वे माँ
मंद दृष्टि कुछ रखते हैं ?[१]

मन की तरल कोमल अनुभूतियों को छाया प्रतीकों के माध्यम से प्रच्छन्न रूप में व्यक्त करने की आकांक्षा ही छायावादी काव्य में प्रसाद गुण के विकास में बाधक हुई ; किन्तु छाया-प्रतीकों की भरमार से क्लिष्ट दुरूह और वर्ग विशेष की भाषा बन जानेवाली छायावादी काव्यभाषा को सरल और सहज रूप देने हेतु छायावाद के उत्तरार्द्ध के कवियों बच्चन, नरेन्द्र ,नेपाली आदि ने विशेष प्रयत्न किया, अतएव इनकी रचनाओं में प्रसाद गुण पूर्वार्द्ध के कवियों की अपेक्षा अधिक है । जैसे -

बच्चे प्रत्याशा में होंगे
नीड़ों से झाँक रहे होंगे
यह ध्यान परों में चिड़ियों के भरता कितनी चंचलता है
दिन जल्दी जल्दी ढलता है ।
मुझसे मिलने को कौन विकल
मैं होऊँ किसके हित चंचल ?
यह प्रश्न शिथिल करता पद को भरता उर में विह्वलता ।[२]

१- सुमित्रानन्दन पन्त - आधुनिक कवि , बाल प्रश्न , पृष्ठ २ ।
२- हरिवंश राय 'बच्चन' - निशा निमंत्रण , पृष्ठ १ ।

तथा -

मैं सब दिन पाषाण नहीं था ।
किसी शापवश हो निर्वासित
लीन हुई चेतनता मेरी ।
मन मंदिर का दीप बुझ गया
मेरी दुनिया हुई अंधेरी ।।

पर यह उजड़ा उपवन सब दिन बियाबान सुनसान नहीं था ।[1]

छायावादी काव्य में मुख्यत: माधुर्य गुण का सन्निवेश हुआ है क्योंकि छायावाद मुख्य रूप से प्रेम और सौन्दर्य जैसी कोमल अनुभूतियों का काव्य है । छायावादी कवियों में सर्वाधिक सुकुमार और कोमल भावनाओं के कवि होने के नाते पंत और महादेवी के काव्य का तो माधुर्य प्राणभूत गुण है । प्रसाद , निराला, रामकुमार वर्मा आदि अन्य कवियों ने भी कोमल प्रसंगों के अन्तर्गत अनुभूतियों की तरलता और सौकुमार्य की अभिव्यक्ति देने हेतु इसका कुशल संयोजन किया है ।

शब्द गुण के रूप में " माधुर्य " का आधार पृथक पदत्व अर्थात् पृथक पृथक छोटे और असमस्त पदों की योजना से है तथा अर्थ गुण के रूप में इसका संबंध उक्ति वैचित्र्य से है । उदाहरणार्थ निम्न पंक्तियों में -

जिनका चुंबन
चौंकाता मन
बेसुधपन में भरता जीवन
भूलों के शूलों बिन नूतन
उर का कुसुमित उपवन सूना ।
तेरी सुधि बिन दाण दाण सूना ।।[2]

तेरी सुधि बिन दाण दाण सूना - इस संप्रेष्य भाव की व्यंजना में छोटे छोटे पदों और कोमल मसृण, समासहीन शब्द गुंफन के आधार पर उक्ति वैचित्र्य की भी सृष्टि हुई है । इसी प्रकार -

मुकुल मधुपों का मृदु मधुमास
स्वर्ण सुख श्री , सौरभ का सार,

१- नरेन्द्र शर्मा - प्रवासी के गीत , संख्या ३७ , पृष्ठ ६५ ।
२- महादेवी वर्मा - नीरजा,पृष्ठ ६३ ।

मनोभावों का मधुर विलास
विश्व सुषमा ही का संसार ।
दृगों में छा जाता सोल्लास
व्योम बाला का शरदाकाश
तुम्हारा आता जब प्रिय ध्यान
प्रिये प्राणों की प्राण ।[1]

यहाँ लघु असमस्त पदों की योजना प्रिया की स्मृति सदृश मन के कोमलतम भाव की कोमल व्यंजना में सहायक हुई है । अर्थ व्यंजकता की दृष्टि से भी पदगत पार्थक्य यहाँ पर संप्रेष्य अर्थ की व्यंजना में उक्ति वैचित्र्य की सृष्टि करता है ।

एक अन्य उदाहरण द्रष्टव्य है -

कैवल स्मितमय चाँदनी रात,।
तारा किरनों के पुलक गात ।।
मधुपों मुकुलों के चले घात ।
आता है चुपके मलय वात ।।
सपनों के बादल का दुलार ।
तब दे जाता है बूँद चार ।।[2]

प्रकृति क्षेत्र में घटित होनेवाले विभिन्न क्रिया व्यापार एवं सुन्दर दृश्य वैयक्तिक जीवन में भी सुन्दर स्वप्नों को जगाकर जीवन को थोड़ी देर के लिए रस सिक्त कर देते हैं - इस अभीष्ट अर्थ का लघु और पृथक-पृथक पदों के द्वारा संप्रेषण निस्संदेह उक्ति को वैचित्र्य मयी और आकर्षक बनाता है ।

छायावादी काव्य में माधुर्य गुण की प्रधानता है, किन्तु ओज गुण का भी सर्वथा अभाव नहीं है । ओज गुण के अंतर्गत वर्णों के संश्लिष्ट विन्यास रेफ युक्त अक्षर तथा संयुक्ताक्षरों का प्रयोग करके पदावली में शब्दगत चमत्कार की सृष्टि की जाती है क्योंकि गुण के रूप में " ओज " अर्थ प्रौढ़ि का द्योतक है ।[3]

१- सुमित्रानन्दन पन्त - गुंजन, पृष्ठ ४१ ।
२- जयशंकर प्रसाद - लहर, पृष्ठ ३७ ।
३- ~~सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला - अनामिका - राम की शक्ति पूजा, पृष्ठ १५१~~ ।
वामन - काव्यालंकार सूत्रवृत्ति - अर्थस्य प्रौढ़िरोजः ॥ ३,२,२ ॥

छायावादी कवियों में निराला को ओजपूर्ण भाषा के प्रयोग में सर्वाधिक सफलता मिली है जैसे -

"शत घूर्णावर्त, तरंग भंग, उठते पहाड़ ।
जल राशि राशि जल पर चढ़ता खाता पछाड़ ।।
तोड़ता बंध, प्रति संध धरा, हो स्फीत वक्ष ।
दिग्विजय अर्थ प्रतिपल समर्थ बढ़ता समक्ष ।।"[1]

यहां वर्णों का संश्लिष्ट प्रयोग और संयुक्ताक्षर तथा रेफ युक्त अक्षरों का विन्यास पद समूह में प्रगाढ़ता का उत्पादक है । प्रलय के भीषण दृश्य और हनुमान के उत्तेजित रूप की व्यंजना के फलस्वरूप इन पंक्तियों में अर्थ प्रौढ़ि भी पर्याप्त मात्रा में है ।

ओजगुण

ओजगुण की पुष्टि के लिये पदों का विन्यास माधुर्य के सर्वथा विरोधी रूप में होता है । माधुर्य गुण के लिए पृथक पदत्व का आधार लिया जाता है, उसमें दीर्घ समासयुक्त पदावली का निषेध रहता है, इसके विपरीत ओज गुण के लिये दीर्घ समास युक्त पदावली विशेष उपयोगी होती है । निराला ने इस प्रकार की पदावली के प्रयोग में विशेष सिद्धि प्राप्त की है, जैसे -

"राघव-लाघव-रावण-वारण-गत-युग्म-प्रहर ।
उद्धत-लंकापति-मर्दित -कपि-दल-बल-विस्तर ।।
अनिमेष राम विश्व जिद दिव्य -शर-भंग-भाव,
विद्धांग बद्ध कोदंड-मुष्टि-खर-रुधिर स्राव ।।"[2]

यहां शब्दों से पूरे पूरे वाक्य का काम लिया गया है तथा समस्त पद द्वारा अर्थ सम्प्रेषण हुआ है, अतएव इन पंक्तियों का अर्थ गर्भत्व स्वत: सिद्ध है ।

पंत ने भी अपनी परिवर्तन शीर्षक कविता में ओज गुण का कुशल सन्निवेश किया है :-

लदा अलक्षित चरण तुम्हारे चिन्ह निरंतर,
छोड़ रहे हैं जग के विक्षत वक्षस्थल पर ।

सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला - अनामिका - राम की शक्ति पूजा , पृष्ठ १५३ ।
१- ~~वामन - काव्यालंकार सूत्र वृत्ति - काव्य प्रौढ़िरोज: ।। ३,२,२ ।।~~
२- सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला - अपरा, राम की शक्ति पूजा , पृष्ठ ४३ ।

शत शत फेनोच्छ्वसित स्फीत फुत्कार भयंकर,
घुमा रहे हैं घनाकार जगती का अम्बर ।
मृत्यु तुम्हारा गरल दंत कंचुक कल्पान्तर
अखिल विश्व ही विवर वक्र कुंडल दिङ्मण्डल ।।[१]

संयुक्ताक्षरों के प्रयोग द्वारा यहाँ पद-रचना में गाढ़त्व और अर्थ गर्भत्व दोनों का प्रादुर्भाव हुआ है। पंत ने कहीं कहीं संधि के आधार पर विशिष्ट शब्दों की योजना द्वारा भावों के सूक्ष्म उतार-चढ़ाव की अभिव्यक्ति देकर आन्तरिक ओज गुण की सफल सृष्टि की है । जैसे -

आलोड़ित अंबुधि फेनोन्नत कर शत शत फन,
मुग्ध भुजंगम-सा इंगित पर करता नर्तन ।
दिक् पिंजर में बद्ध गजाधिप सा विनतानत,
वाताहत हो गगन, आर्त करता गुरु गर्जन ।।[२]

यहाँ आलोड़ित, अंबुधि, फेनोन्नत, गजाधिप, विनतानत, वाताहत आदि संधि युक्त शब्द शाब्दिक और आर्थिक दोनों प्रकार के ओज गुण की उत्पत्ति में सहायक हुए हैं । इसी प्रकार निराला ने भी संधि युक्त शब्दों की योजना द्वारा अर्थप्रौढ़ि की सिद्धि करके ओज गुण की सफल सृष्टि की है, उदाहरणार्थ -

" गर्जित प्रलयाब्धि क्षुब्ध हनुमत केवल प्रबोध,

\+ \+ \+ \+ \+

विध महोल्लास से बार बार आकाश विकल ।[३]

इन पंक्तियों में " आ " तथा " औ " की संधि पर आधृत प्रलयाब्धि और " महोल्लास " शब्द विस्तार एवं भावों के आरोह की सूक्ष्म व्यंजना करते हैं ।

संधि के आधार पर अर्थप्रौढ़ि की सिद्धि का यह प्रयोग

छायावादी कवियों का मौलिक प्रयोग ही कहा जाएगा, क्योंकि इस हेतु वामन द्वारा बताई गई पाँच रीतियाँ - (१) शब्द के स्थान पर वाक्य विस्तार (२) वाक्य की

१- सुमित्रानन्दन पन्त - आधुनिक कवि, पृष्ठ ३६ ।
२- सुमित्रानन्दन पन्त - आधुनिक कवि, पृष्ठ ३८ ।
३- सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला - अनामिका - राम की शक्ति पूजा, पृष्ठ १५३ ।

अपेक्षा शब्द का न्यास (३) अन्य प्रकार से कथन विस्तार (४) समास आदि के द्वारा संक्षेपण तथा (५) साभिप्रायत्व - से यह सर्वथा पृथक रीति है ।[१]

छायावादी काव्य की भाषा के उपर्युक्त विवेचन के आधार पर निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि द्विवेदीयुग से प्राप्त खड़ीबोली के भण्डार को छायावादी कवियों ने तत्सम , तद्भव, देशज और कुछ विदेशी शब्दों के मिश्रण द्वारा विस्तृत और समृद्ध बनाया, किन्तु छायावादी कवियों का वैशिष्ट्य शब्द भण्डार के विस्तार में न होकर उसकी अलंकृति और सौन्दर्य वृद्धि हेतु किये गए प्रयोगों में है । कलाकार जैसी सजगता के साथ वर्णों एवं शब्दों का गुंफन और उनका मौलिक ढंग से नवीन क्रम में संयोजन करके छायावादी कवियों ने अपनी अपूर्व क्षमता एवं भाषा- संबंधी अपने विस्तृत ज्ञान का परिचय दिया है शब्द संयोजन के वैशिष्ट्य ने छायावादी काव्य की पद रचना को अपूर्व आकर्षण प्रदान किया है, साथ ही उसके द्वारा भाषा की अर्थ शक्ति भी विवर्धित हुई है ।

शास्त्रीयता और व्याकरण के नियम-निर्वाह की चिन्ता से बढ़कर भाषा को भावाभिव्यंजन में समर्थ बनाना छायावादी कवियों का प्रधान लक्ष्य रहा है । भाषा के परंपरागत प्रयोग जहां कहीं भाव-वहन में अक्षम प्रतीत हुए, वहां उनके स्वरूप में निस्संकोच परिवर्तन कर लिया गया है । भाषा की अर्थ व्यंजना वृद्धि के लिए लक्षणा- व्यंजना और प्रतीकों से विशेष सहायता ली गई है । छायावादी कवियों का ध्वनि , वर्ण, गंध आदि का सूक्ष्म परिज्ञान उनकी रचनाओं में अर्थ-गौरव की सृष्टि में अत्यंत सहायक हुआ है, साथ ही उससे द्वारा भाषा में ऐन्द्रिय बोध को जगाने की क्षमता भी स्वत: आ गई है।छायावादी काव्यभाषा का नाद-सौन्दर्य अभूतपूर्व है जो वर्ण मैत्रियों के विविध मौलिक प्रयोगों पर आधृत है। भाषा के सौन्दर्य वर्धन हेतु अनेक प्रचलित साधनों का उपयोग भी छायावादी कवियों ने किया है, किन्तु उनकी मौलिकता सर्वत्र अक्षुण्ण रही है ।

१- वामन - काव्य काव्यालंकार सूत्र वृत्ति :

- " अर्थस्य प्रौढ़िरोज : ।
  अर्थस्याभिधेयस्य प्रौढ़ि: प्रौढत्वमोज ।
  पदार्थे वाक्यवचनम वाक्यार्थे च पदाभिधा ।
  प्रौढ़िर्व्याससमासौ च साभिप्रायत्वमेव च ।।" ३,२,२ ।

छायावादी काव्य की भाषा प्रतिभा संपन्न शब्द-शिल्पी कवियों के हाथों एक ओर तो अपनी अर्थ- क्षमता के विकास द्वारा गरिमामयी बनी, दूसरे, विभिन्न सौन्दर्योत्पादक तत्वों के सन्निवेश द्वारा उसमें नवीन कान्ति, अद्भुत आकर्षण और अभूतपूर्व भंगिमाएं भी प्रकट हुईं तथा अर्थ गरिमा और श्री संपन्नता से युक्त होकर वह अपने विकास के उच्चतम शिखर पर पहुंच सकी ।

अध्याय - ६

छायावादी काव्य की शैली

छायावादी काव्य शैली की भूमिका :

शैली शब्द का प्रयोग जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में भिन्न भिन्न अर्थों में होता है । साहित्य में शैली से तात्पर्य अभिव्यंजना की प्रणाली से है । अभिव्यंजना की प्रक्रिया बाह्य तत्वों तक ही सीमित नहीं होती, कवि अथवा साहित्यकार का अभ्यंतर भी उसमें सम्मिलित रहता है । कवि का संपूर्ण व्यक्तित्व उसकी भावनायें विचार, संवेदनायें और अनुभूतियां, सभी शैली के माध्यम से मुखर होती हैं । शैली कवि के व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति है ।

जीवन परिवर्तनशील है, जीवन के परिवेशों में परिवर्तन के साथ साथ व्यक्ति के व्यक्तित्व और व्यक्तित्व का निर्माण करनेवाले संवेगों, अनुभूतियों विचारों आदि में भी परिवर्तन होता है । सामान्य मनुष्य के रूप में साहित्यकार अथवा कवि भी इस परिवर्तन की प्रक्रिया से मुक्त नहीं रह पाता । अतएव उसकी शैली में समय-समय पर परिवर्तन की संभावनायें निहित रहती हैं । समान परिस्थितियों में रहते हुए भी मानसिक गठन के अंतर के फलस्वरूप दो व्यक्तियों का व्यक्तित्व एक जैसा नहीं होता । इसी कारण समयुगीन कवियों में भी प्राय: शैलीगत असमानता लक्षित होती है । तात्पर्य यह कि प्रत्येक युग के काव्य में शैलीगत परिवर्तन और एक ही युग में शैलीगत वैविध्य दिखाई देना एक स्वाभाविक बात है। व्यक्तित्व भेद से शैलियां अनन्त हो सकती हैं, किन्तु किसी युग विशेष के कवियों की रचनाओं में प्राप्त होनेवाले शैलीगत सामान्य लक्षणों के आधार पर उस युग की काव्य-शैली की समीक्षा की जाती है । कविता में भाव-पक्ष की आन्तरिक कान्ति अथवा सौन्दर्य को रचना प्रक्रिया के माध्यम से ही अभिव्यक्ति मिलती है । काव्य की विषय-वस्तु और कवि के विचार एवं अनुभूतियां जिस प्रकार की होंगी, अभि-व्यंजना की शैली भी उन्हीं के अनुरूप स्वाभाविक रूप में गठित हो जाती है ।

छायावाद के पूर्व, द्विवेदी युग सुधारवाद और नैतिक उच्चादर्शों का युग था। उसकी सुधारवादी नीतियों का प्रभाव तत्कालीन काव्य में स्पष्टत: दिखाई देता है। आदर्श कथन और नैतिक उपदेशों की भरमार के कारण द्विवेदीयुगीन काव्य में भावमयता की कमी और बौद्धिकता का आधिक्य हो गया। बौद्धिकता से बोफिल विचारों, अनुभूतियों की अभिव्यक्ति भी उसी के अनुरुप नीरस, फीकी और आकर्षण विहीन रूप में हुई। द्विवेदी युग की अभिधामूलक वैचारिकता प्रधान नीति और उपदेशों से पूर्ण शैली के मूल में रीतिकालीन अतिशय शृंगारी, कृत्रिम और भावहीन काव्य के विरुद्ध प्रतिक्रिया थी। छायावाद में द्विवेदी युग के विरुद्ध प्रतिक्रिया हुई। छायावादी कवि अपने साथ भाव, विषय और विचार गत नवीनता लेकर आविर्भूत हुए। इस नवीनता की जड़े उनके तत्कालीन परिवेश में निहित है। बाह्य जीवन की परिस्थितियां उनके अंतर्जगत से सर्वथा भिन्न थी ; सामाजिक सांस्कृतिक, राजनैतिक रुढ़ियां उनके स्वच्छंद विकास में बाधक सिद्ध हो रही थी , अतएव उन रुढ़ियों से जूफने और मुक्ति पाने की प्रबल कामना ने उनके द्वारा काव्य क्षेत्र में भाव और विषय गत नवीन सामग्री का चयन कराया और उसी स्वाभाविक प्रक्रिया में काव्य के कलेवर को भी नवीन प्रसाधनों से सुसज्जित किया। छायावादी कवियों के नवीन सौन्दर्य बोध, प्रेम और सौन्दर्य विषयक कोमल अनुभूतियों, परोक्ष संबंधी सूक्ष्म रहस्यात्मक चिन्तन और अमूर्त अतीन्द्रिय को मूर्त रूप देने की प्रवृत्ति के साथ द्विवेदीयुग की गद्यात्मक शैली का किसी प्रकार ताल-मेल नहीं था। इसीलिए इन कवियों ने भावाभिव्यंजन हेतु अपने मनोनुकूल नवीन अभिव्यंजना प्रणाली की खोज की और इस क्षेत्र में नए नए प्रयोग करके अपनी स्वच्छन्द प्रकृति और मौलिक प्रतिभा का परिचय दिया।

व्यापक रूप में, भाषा, शब्द-योजना , छंद, अलंकार, शब्द शक्तियां, कल्पना तत्व , बिम्ब-विधान आदि अभिव्यंजना के समस्त साधन शैली के अवयव कहे जा सकते हैं। प्रत्येक कवि अपनी प्रतिभा और प्रकृति के अनुरूप इन तत्वों के सहयोग द्वारा अपनी भावानुभूति अथवा काव्यगत सत्य की व्यंजना करता है, किन्तु श्रेष्ठ कवि वही समफा जाता है जिसकी शैली काव्यगत सत्य की औचित्यपूर्ण व्यंजना में समर्थ हो। औचित्यपूर्ण अभिव्यक्ति के कारण ही काव्य शैली में उत्कृष्टता उत्पन्न होती है और औचित्यपूर्ण अभिव्यक्ति की मात्रा के अनुसार विभिन्न कवियों की

शैलियां परस्पर भिन्न रूप ग्रहण करती हैं । इसी कारण भारतीय साहित्य शास्त्र में शैली के अन्तर्गत औचित्य को अत्यन्त महत्वपूर्ण माना गया है, काव्य के अन्य समस्त तत्व उसी में समाहित है ।

भावानुभूति को प्रकट करने का मुख्य माध्यम भाषा है । छायावादी काव्यभाषा के विवेचन के अन्तर्गत यह स्पष्ट किया जा चुका है कि छायावादी कवियों ने चित्रमयी , प्रतीक बहुला और लक्षणा व्यंजना शब्द शक्तियों से युक्त भाषा का प्रयोग किया है । इन भाषागत तत्वों से काव्य-जगत पहले भी अपरिचित नहीं था, छायावादी कवियों की सिद्धि इसी में है कि उन्होंने चिर-परिचित काव्यावयवों में नवीन प्राण प्रतिष्ठा करके उनकी औचित्यपूर्ण योजना द्वारा अपनी अभिव्यंजना प्रणाली को नया और आकर्षक रूप विन्यास दिया । लाक्षणिक प्रयोगों के बाहुल्यवश छायावादी शैली में एक विशेष प्रकार की वक्रता का समावेश हो गया है। कथ्य को सवेद्य बनाकर प्रस्तुत करने के लिये सूक्ष्म ,संश्लिष्ट बिम्बों की योजना छायावादी शैली की महत्वपूर्ण विशेषता है । छायावाद के प्रारंभिक कवियों में अपनी बात को सीधे और सरल ढंग से न कहकर अलंकारिक रूप में व्यक्त करने की विशेष प्रवृत्ति लक्षित होती है । अलंकारों के विधान में, विशेषकर अप्रस्तुत योजना के अन्तर्गत कवि को उसकी कल्पना शक्ति से बहुत अधिक सहायता मिलती है । कल्पना शक्ति की उर्वरता के आधार पर ही कवि नए-नए और अनूठे अप्रस्तुतों का विधान करके अपनी अभिव्यंजना को वैचित्र्य एवं विलक्षणता प्रदान करता है । लक्षणा, व्यंजना, प्रतीक आदि से संबंधित छायावादी नए प्रयोगों और उनसे उत्पन्न पद-विन्यास के वैशिष्ट्य पर भाषा प्रकरण के अन्तर्गत विचार किया जा चुका है । छायावादी कवियों ने प्रबन्ध रचनाओं की अपेक्षा गीत और प्रगीत ही अधिक लिखे हैं । प्रबन्ध-रचना में विस्तार रहता है और गीत का आकार छोटा होता है, तदनुरूप प्रबन्ध काव्य की शैली में वर्णन क्षमता अपेक्षित होती है और गीति काव्य की शैली में संक्षिप्तता के गुण की । अपनी रचनाओं में संक्षिप्तता गुण का प्रवेश कराने के लिए छायावादी कवियों ने सांकेतिक शैली का आश्रय लिया है । इस सांकेतिक शैली में लाक्षणिकता, प्रतीकात्मकता, व्यंजकता, चित्रात्मकता आदि सभी विशेषतायें अंतर्भुक्त हो जाती हैं । अस्तु यहां पर छायावादी शैली को वैशिष्ट्य प्रदान करनेवाले अवशिष्ट महत्वपूर्ण

तत्वों बिम्ब विधान और चित्रण कला तथा उक्ति वक्रता का विवेचन तथा काव्य रीतियों के संदर्भ में छायावादी शैली का विश्लेषण ही अभीष्ट है ।

बिम्ब विधान और चित्रण कला -

काव्य शैली के अन्तर्गत चित्रण कला का अत्यधिक महत्व है । काव्य में अर्थ ग्रहण मात्र से काम नहीं चलता । बिम्ब ग्रहण भी अपेक्षित होता है ।[१] यह बिम्ब ग्रहण कराने की सामर्थ्य ही काव्य शैली की चित्रात्मकता है, जिसके माध्यम से कवि वर्ण्यवस्तु का पूर्ण चित्र पाठक के हृदय में सजीव साकार कर देता है ।

सामान्य जीवन में हम अनेक बार यह अनुभव करते हैं कि किसी के कोई बात कह देने से अथवा उपदेश देने से बुद्धि अभिभूत हो जाती है किन्तु हृदय प्राय: अप्रभावित ही रहता है । हृदय प्रभावित तभी होता है जब वस्तु , दृश्य अथवा परिस्थिति को किसी प्रकार शब्दों द्वारा साकार कर दिया जाए ।यह शब्द चित्र-जितना ही जीवन्त होगा, उतना ही अधिक इन्द्रिय संवेद्य होगा और इंद्रिय संवेद्यता के गुण के कारण वह उतना ही अधिक प्रभावशाली भी होगा । जो कवि इस कला में कुशल है, वही सफल और रससिद्ध कवि कहलाने का अधिकारी है तथा उसी की रचनायें पाठक हृदय को रस-मग्न कर सकने में सक्षम होंगी । क्योंकि "रस विधायक कवि का काम श्रोता या पाठक में भाव संचार करना नहीं, उसके समक्ष भाव का रूप प्रदर्शित करना है, जिसके दर्शन से श्रोता के हृदय में भी उक्त भाव की अनुभूति होती है, जो प्रत्येक दशा में आनंद स्वरूप ही रहता है ।"[२]

तात्पर्य यह कि काव्य में चित्रण ही महत्वपूर्ण है । कवि शब्दों के द्वारा वर्ण्यवस्तु को मूर्तिमान करता है और पाठक उसका बिम्ब ग्रहण करता है । इस बिम्ब ग्रहण की प्रक्रिया में पाठक हृदय की इच्छाओं अथवा भावनाओं का योग स्वत: कवि-हृदय की भावनाओं से हो जाता है । भावनाओं का यह पारस्परिक योग अथवा तादात्म्य ही काव्य का लक्ष्य है ।

उपर्युक्त विवेचन को संक्षेप में हम इस प्रकार प्रस्तुत कर सकते हैं - (क) बिम्बात्मक होना कविता का मूल भूत गुण है (ख) बिम्ब विधान कवि

१- रामचन्द्र शुक्ल - चिन्तामणि भाग १ "कविता क्या है ?" पृष्ठ १४५ ।
२- रामचन्द्र शुक्ल - रस मीमांसा, पृष्ठ ८६ ।

की शैल्पिक प्रक्रिया का वह महत्वपूर्ण अंग है जो उसके भाव-बोध को संवेद्य और प्रभावशाली बनाकर कवि और श्रोता या पाठक के हृदय का एकीकरण कराता है तथा (ग) संवेदनशीलता को जाग्रत करने का निहित लक्ष्य रखने के कारण बिम्ब का घनिष्ठ संबंध हमारे इन्द्रिय -बोध से रहता है ।

'भाव' को मूर्त करनेवाला कहने से बिम्ब को साधारण चित्र अथवा विचार चित्र समझ लेना भ्रममूलक है। प्रतिबिम्ब अथवा प्रतिच्छाया केवल दृश्य अथवा मूर्त वस्तु की ही हो सकती है, लेकिन बिम्ब अत्यन्त सूक्ष्म एवं अमूर्त विषयों के सार भूत प्रभाव को भी पूर्णतः इन्द्रिय ग्राह्य बना देने में समर्थ होने के फलस्वरूप स्थूल और मूर्त वस्तुओं अथवा दृश्यों को शब्दों में साकार करनेवाले चित्रों से कुछ विशिष्ट होते हैं। चित्र केवल चाक्षुक होते हैं लेकिन बिम्बों का प्रभाव नेत्र-बोध तक ही सीमित नहीं रहता । उनका संबंध पंच ज्ञानेन्द्रियों के अतिरिक्त छठीं सूक्ष्मेन्द्रिय मन से भी रहता है । विचार चित्र भावात्मकता रहित और धारणात्मक होते हैं, जबकि बिम्ब हमारे इन्द्रिय बोध से संबंधित होने के कारण अनुभूतिपरक और भावोत्तेजक होते हैं ।

'बिम्ब' का स्थूल दृष्टि से उपमा, रूपक आदि सादृश्यमूलक अलंकारों से साम्य अवश्य लक्षित होता है किन्तु बिम्ब उनका पर्याय नहीं है । उपमा, रूपक आदि का लक्ष्य केवल सादृश्य कथन मात्र होता है, किन्तु बिम्ब अप्रस्तुत विषय को मूर्तिमन्त करने के सर्वाधिक प्रभावशाली साधन होने के नाते प्रायः सादृश्य का आधार ग्रहण करते हैं लेकिन इतने में ही उनके ध्येय की पूर्ति नहीं हो जाती । वे वर्ण्य वस्तु का भावात्मक प्रत्यक्षीकरण भी कराते हैं । अतः बिम्ब में अर्थ-व्यंजना की सामर्थ्य अपेक्षाकृत अधिक होती है। उपमा रूपक आदि सादृश्य गर्भ अलंकार उसके सहयोगी उपकरण मात्र कहे जा सकते हैं ।

इस प्रकार बिम्ब केवल भाषा का आलंकारिक प्रयोग ही नहीं है, वर्ण्य का सजीव और इन्द्रिय ग्राह्य रूप प्रस्तुत करने के कारण उसमें अभिव्यक्तिमूलक विविध आयाम होते हैं । वस्तुतः बिम्ब सर्जना के माध्यम से कवि अपनी विविध प्रकार की शिल्पविधियों को उपयोग में लाकर कविता को उसके अन्तिम लक्ष्य की प्राप्ति कराता है । शब्द संस्कार युक्त भाषा से लेकर लक्षणा उपचार, रूपक, उपमा , ध्वनि चित्र अलंकार आदि अनेक प्रकार की शिल्प विधियां

संयुक्त होकर समग्र बिम्ब को पूर्ण बनाने में सहायता करती हैं । इस रूप में काव्य के शिल्प-पक्ष से संबंधित अन्यान्य महत्वपूर्ण तत्व बिम्ब को पूर्णता तक पहुंचाने वाले साधन मात्र हैं ।[१]

छायावादी कवियों ने अपनी रचनाओं को चित्रमयी और इन्द्रिय ग्राह्य बनाने के लिये बिम्बों से भरपूर सहायता ली है । बिम्ब विधान छायावादी काव्य-शिल्प का सर्वाधिक महत्वपूर्ण उपकरण है जिसने छायावादी अभिव्यंजना को समृद्धि प्रदान की है। अंग्रेजी के रोमांटिक कवियों से प्रभावित होने के फलस्वरूप पाश्चात्य बिम्बवाद ने भी बिम्बों के प्रति उनकी रुझान में अभिवृद्धि की । लेकिन अंग्रेजी के " इमेज " के पर्याय रूप में छायावादी काव्य में " बिम्ब " के स्थान पर " चित्र " शब्द का प्रयोग हुआ है । पंत ने पल्लव की भूमिका में काव्य के अन्तर्गत चित्रभाषा के प्रयोग के विषय में जो कुछ भी लिखा है वह वस्तुत: बिम्बमयी अभिव्यंजना के महत्व का ही प्रतिपादन प्रतीत होता है, क्योंकि उनके शब्दों में बिम्ब के अनिवार्य तत्व - ऐन्द्रिय बोध की स्पष्ट व्याख्या मिलती है -" कविता के लिये चित्र भाषा की आवश्यकता पड़ती है ---- जिसका भाव-संगीत विद्युत्धारा की तरह रोम रोम में प्रवाहित हो सके ; जिसका सौरभ सूंघते ही सांसों द्वारा अन्दर पैठकर हृदयाकाश में समा जाये । जिसका रस मदिरा की फेन राशि की तरह अपने प्याले से बाहर छलक उसके चारों ओर मोतियों की झालर की तरह झूलने लगे, छवे में न समाकर मधु की तरह टपकने लगे --- आदि ।"[२]

चित्र सदैव किसी " विशेष " का ही होता है, सामान्य का नहीं । वह " विशेष " कोई व्यक्ति हो, अथवा वस्तु या दृश्य । इस प्रकार चित्रात्मक शैली का अर्थ है सामान्य के आगे विशेष के महत्व की प्रतिष्ठा । छायावादी कवि

---

1. James R. Kreuzer - Elements of Poetry -Chap.VII, P.221.
   - It is clear that the poet brings to the creation of imegery all the poetic techniques discussed throughout this book from connotative diction to metaphor,from simile to onomatopoeia from metony-my to alliteration. Most frequently the poet uses a number of techniques in combination, each contributing its share to the total image.

२- सुमित्रानन्दन पन्त - पल्लव (प्रवेश) पृष्ठ २६ ।

जिस 'व्यक्तिवाद' के उपासक थे, उसकी नींव में भी 'सामान्य' में विशेष की महत्ता ही है। अतएव सिद्धान्ततः भी चित्रात्मक शैली छायावादी कवियों के अनुकूल थी। इस चित्रात्मकता ने छायावादी अभिव्यंजना को अभिनव आकर्षण प्रदान किया है।

चित्र किसी भी 'वस्तु' अथवा व्यक्ति का हो उसका लक्ष्य सदैव सौन्दर्य को मूर्तिमान करना ही होता है। सौन्दर्य तीन प्रकार का हो सकता है - रूपगत, भावगत और कर्मगत। रूप-सौन्दर्य में कवि का ध्यान बाह्य आकृति पर रहता है। भाव-सौन्दर्य में कवि का अपना हृदय प्रतिबिम्बित होता है आलंबन की आकृति पर उसकी दृष्टि बिलकुल नहीं जाती अथवा कम जाती है,और कर्म- सौन्दर्य में कार्य व्यापारों की श्रृंखला में संबंधित व्यक्ति, वस्तु, दृश्य आदि देखकर कवि के मन में जो प्रतिक्रियाएं होती हैं, उनका प्रत्यक्षीकरण होता है। इस प्रकार कर्म- सौन्दर्य चित्रण में बाह्य आकृति और मानसिक भाव सौन्दर्य, दोनों का सम्मिलन हो जाता है।

रूप सौन्दर्य चित्रण की हिन्दी काव्य में सुदीर्घ परंपरा रही है। सूरदास की -

" शोभित कर नवनीत लिये।
घुटुरनि चलत रेनु तन मंडित मुख दधि लेप किये ।।[१]

अथवा -

किलकत कान्ह घुटुरुवनि आवत।
मनिमय कनक नन्द के आंगन बिम्ब पकरिबे धावत ।।
कबहुं निरखि हरि आप छांह कों कर सों पकरनि चाहत।
किलकि हंसत राजत द्वै दतियां पुनि पुनि तिहिं अवगाहत ।।[२]

आदि पंक्तियां पढ़ते ही एक छोटे से क्रीड़ा शील बालक का चित्र हमारी कल्पना में साकार हो जाता है। तुलसीदास ने भी चित्र-चित्रण की कला में कहीं कहीं अद्भुत कौशल दिखाया है। वन में जाते हुए राम-लक्ष्मण सीता को

१- सूरदास - सूरसागर - दशम स्कंध पूर्वार्द्ध
२- सूरदास - सूरसागर - दशम स्कंध पूर्वार्द्ध

देखकर ग्राम वधुएँ उनके चलने के ढंग से सहज अनुमान कर लेने पर भी परिहासवश सीता से राम का परिचय पूछती हैं। ऐसी स्थिति में लज्जालु और संकोच शीला सीता का जो शब्द चित्र तुलसी ने प्रस्तुत किया है, वह दर्शनीय है -

" बहुरि वदन विधु अंचल ढाँकी
पिय तन चितै भौंह करि बाँकी ।
खंजन मंजु तिरीछे नैननि
निज पति कहेउ तिन्हहिं सिय सैननि ।।[1]

रीतिकाल के कवि रूप-सौन्दर्य के परम उपासक रहे हैं और उसके चित्रण में उन्होंने विशेष कौशल का परिचय दिया है। बिहारी की सतसई सौन्दर्यमयी नायिका के अनेकानेक गतिशील चित्रों से पूर्ण है जैसे -

" भौंह उचै आँचरु उलटि, मौर मोरि मुंह मोरि ।
नीठि नीठि भीतर गई, डीठि डीठि सों जोरि ।।[2]

यहाँ पर नायिका की एक एक मुद्रा, एक-एक अनुभाव स्पष्ट है। मतिराम, पद्माकर आदि की रचनाओं में भी चित्रात्मकता के कहीं कहीं अत्यंत सुन्दर उदाहरण उपलब्ध हैं।

द्विवेदीयुग में वर्णनात्मक शैली ही प्रधान रही किन्तु कहीं कहीं चित्रात्मक शैली के भी सुंदर उदाहरण प्राप्य हैं। उदाहरणार्थ मैथिलीशरण गुप्त के 'साकेत' में चरणों में अवनत उर्मिला को अभयदान देते हुए लक्ष्मण का यह चित्र दर्शनीय है -

चूमता था भूमितल को अर्द्ध विधु सा भाल,
बिछ रहे थे प्रेम के दृग जाल बनकर बाल ।
छत्र सा सिर पर उठा था प्राण पति का हाथ,
हो रही थी प्रकृति अपने आप पूर्ण सनाथ ।।[3]

१- तुलसीदास - रामचरितमानस - अयोध्याकाण्ड, ३,४। ११७ ।
२- लाला भगवानदीन - बिहारी बोधिनी - दोहा नं० ७०, पृष्ठ २७ ।
३- मैथिलीशरण गुप्त - साकेत - प्रथम सर्ग, पृष्ठ ४१ ।

इस प्रकार अभिव्यंजना की यह पद्धति जिसमें "वर्णन" की अपेक्षा चित्रण प्रमुख हो गई नहीं थी, किन्तु छायावादी काव्य में चित्रात्मकता शैली का अभिन्न अंग बन गई। पहले के कवियों ने रूप सौन्दर्य के चित्रण में कहीं कहीं अत्यधिक कौशल दिखाया है। छायावादी काव्य में भी रूप-सौन्दर्य के अनेक आकर्षक चित्र उपलब्ध हैं, किन्तु छायावादी काव्य का वैशिष्ट्य रूप सौन्दर्य के चित्रण में न होकर मूलतः भाव-सौन्दर्य के चित्रण में है। इन्हीं स्थलों पर विशेष रूप से बिम्ब योजना की सहायता द्वारा छायावादी कवियों ने अपनी नवीन और उच्चकोटि की चित्रणकला का परिचय दिया है। भावों का सीधा संबंध हमारे हृदय से है, अतएव भावों के समग्र प्रभाव को मूर्तिमन्त करने के लिये सामान्य शब्द चित्रों की नहीं, बिम्बों की ही आवश्यकता होती है, जो हमारे ऐन्द्रिय बोध को जगाकर कथ्य की सार्थक और प्रभावपूर्ण अभिव्यक्ति में सहायक हो सके।

पाश्चात्य समालोचना में विविध दृष्टिकोणों से बिम्बों के अनेक भेद, प्रभेद किये गए हैं जिनमें तीन मुख्य हैं - अभिव्यंजना पद्धति की दृष्टि से, स्वरूपगत विशेषताओं की दृष्टि से, तथा ऐन्द्रिय बोध की दृष्टि से। ऐन्द्रियबोध को अनेक प्रसिद्ध विद्वानों ने बिम्ब का अविच्छिन्न अंग स्वीकार किया है।[1] अतएव बिम्बों का ऐन्द्रियबोध पर आधारित वर्गीकरण ही सर्वाधिक वैज्ञानिक प्रतीत होता है। ऐन्द्रियबोध के आधार पर स्थूल रूप से बिम्बों का दो वर्गों में विभाजन किया जा सकता है - पंचज्ञानेन्द्रियों से संबंधित स्थूल संवेदनात्मक बिम्ब तथा छठी-सूक्ष्मेन्द्रिय मन से संबंधित सूक्ष्म संवेदनात्मक बिम्ब।

स्थूल संवेदनात्मक बिम्ब -

छायावादी कवियों ने रूप, रस, स्पर्श, ध्वनि और गंध को रूपायित करनेवाले, पंच ज्ञानेन्द्रियों के प्रति संवेदनशील बिम्बों की योजना करके अपनी रचनाओं को अपूर्व प्रभाव क्षमता प्रदान की है। नेत्रों के प्रति संवेदनवाले अर्थात्

---

1. James R.Kreuzer - Elements of Poetry Chap.VII . P. 120.
 - " To avoid complications, however, the word imagery is being used here in ~~in~~ its historical sense of pertaining to imaginatively perceived sensory experience ."

चाक्षुक बिम्बों में चित्रात्मकता का गुण स्पष्ट रूप से दिखाई देता है । छायावादी कवियों ने अपनी शैली में चित्रात्मकता के समावेश हेतु इस प्रकार के बिम्बों का बड़े परिमाण में और अत्यधिक कुशलतापूर्ण संयोजन किया है । जैसे -

" गिर रही पलकें, फुकी थी नासिका की नोक,
भ्रू लता थी कान तक चढ़ती रही बेरोक ।
स्पर्श करने लगी लज्जा ललित कर्ण कपोल,
खिला पुलक कदंब सा था भरा गद गद बोल ।।"[1]

यहाँ प्रसाद ने कामायनी के लज्जा एवं मधुरिमा से युक्त सौन्दर्य को सजीव साकारकर दिया है। इसी प्रकार महादेवी की निम्न उद्धृत पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं :-

यह मंदिर का दीप इसे नीरव जलने दो ।
चरणों से चिन्हित अलिन्द की भूमि सुनहली ।
प्रणत शिरों के अंक लिये चंदन की दहली ।।
फरे सुमन, बिखरे अक्षत सित,
धूप अर्घ्य नैवेद्य अपरिमित ।
तम में सब होंगे अंतर्हित ।।
सब की अर्चित कथा इसी लौ में पलने दो ।।[2]

इनमें उदासी और शून्यता से पूर्ण मंदिर को शब्दों में मूर्तिमंत करने के लिये ~~स्तोत्य प्रयत्न किये हैं~~ । संश्लिष्ट बिम्ब प्रस्तुत हुआ है, जो उस वातावरण के संपूर्ण प्रभाव को उभारकर सुस्पष्ट बनाता है । संश्लिष्ट बिम्बों की योजना द्वारा वर्ण्य को इन्द्रिय संवेद्य रूप में प्रस्तुत करने की चेष्टा महादेवी की शैली की मूल विशेषता है । एक अन्य उदाहरण द्रष्टव्य है :-

" सौरभ भीना फीना गीला,
लिपटा मृदु अंजन सा दुकूल ।

१- जयशंकर प्रसाद - कामायनी - वासनासर्ग , पृष्ठ १०२ ।
२- महादेवी वर्मा - दीपशिखा , पृष्ठ ८६ ।

चल अंचल से झर झर झरते,
पथ में जुगनू के स्वर्ण फूल ।।
दीपक से देता बार बार,
तेरा उज्ज्वल चितवन विलास ।
रुपसि तेरा घन केश पाश ।।[१]

यहाँ जुगनुओं और तारावों के प्रकाश से जगमग करती रात्रि के समग्र प्रभाव को झीने सौरभमय परिधान में आवेष्ठित रुपसी नारी का संश्लिष्ट चित्र अंकित करके मूर्तिमन्त किया गया है ।

निराला द्वारा प्रयोजित बिम्बों में एक और महत्वपूर्ण विशेषता लक्षित होती है । वे नेत्र संवेदन मात्र न करके गति को भी व्यापित करते हैं, जैसे -

" दिवसावसान का समय,
मेघमय आसमान से उतर रही है,
वह सन्ध्या सुन्दरी - परी सी
धीरे धीरे धीरे ।
तिमिरांचल में चंचलता का नहीं कहीं आभास
मधुर मधुर है दोनों उसके अधर
किन्तु ज़रा गंभीर, नहीं है उनमें हास-विलास "।[२]

इन पंक्तियों द्वारा संध्या सुंदरी के रूप और आकृति का ही नहीं, उसके प्रत्येक सूक्ष्म स्पंदन का भी स्पष्ट आभास होता है ।

गतिशील बिम्बों की योजना में पंत भी सिद्ध हस्त हैं । उन्होंने अपनी " बादल " शीर्षक रचना में बादलों के क्षण क्षण बदलते रूप को अंकित किया है -

" कभी चौकड़ी भरते मृग से, भू पर चरण नहीं धरते ।
मत्त मतंगज कभी झूमते, सजग शशक नभ को चरते ।।

१- महादेवी वर्मा - नीरजा, पृष्ठ १४० ।
२- सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला - परिमल- संध्यासुंदरी, पृष्ठ १३५ ।

कभी कोश से अनिल डाल में नीरवता से मुँह भरते ।
वृहद गृद्ध से विहग छंदों को बिखराते नभ में तरते ।।
कभी अचानक भूतों का सा प्रकटा विकट महा आकार।
कड़क कड़क जब हँसते हम सब थर्रा उठता है संसार ।।[१]

इन पंक्तियों द्वारा बादलों की आकृति के साथ साथ उनकी गति भी साकार होकर संपूर्ण चित्र को इन्द्रिय ग्राह्य बनाती है । छायावादी काव्य के इन चाक्षुक बिम्बों की यही विशेषता उन्हें रूप चित्रण की परंपरागत शैली के सामान्य चित्रों से विशिष्ट बनाती हैं । अंग्रेज़ी साहित्य समीक्षक जेम्स क्रूज़र के अनुसार तो इस प्रकार के गतिबोधक बिम्ब एक अलग कोटि में रखने योग्य है, क्योंकि वे पंच ज्ञानेन्द्रियों के अतिरिक्त ताप का बोध करानेवाली और गति का बोध करानेवाली दो अन्य इन्द्रियां भी मानते हैं ।[२] किन्तु इन दो अतिरिक्त इन्द्रियों की कल्पना तर्क संगत नहीं लगती । "ताप" का अनुभव त्वचा द्वारा होता है, जिसका गुण "स्पर्श" है, अन्य कोई इन्द्रिय ताप का बोध नहीं कराती ? इसी प्रकार गति का अनुभव भी भारतीय दर्शन में उल्लिखित छठी सूक्ष्मेन्द्रिय मन द्वारा ही होता है । अत: गति का बोध करानेवाले बिम्ब वस्तुत: सूक्ष्मेन्द्रिय मन के प्रति संवेदनशील होते हैं । किन्तु छायावादी काव्य में ऐसे बिम्बों का भी प्राचुर्य है जो एक ही समय में एकाधिक इन्द्रियों के प्रति संवेदन शील है । पंत की उपर्युक्त पंक्तियां बादलों की आकृति को रूपायित करने के फलस्वरूप चाक्षुक बिम्ब का उदाहरण हैं, किन्तु बादलों की गति को साकार करके उनके समग्र सारभूत प्रभाव का मानस प्रत्यक्षीकरण कराने के कारण वे सूक्ष्मेन्द्रिय मन से भी सम्बद्ध हैं ।

चाक्षुक बिम्बों के अतिरिक्त श्रावणिक, स्पर्श विषयी और घ्राण विषयी बिम्बों का भी कुशल विधान छायावादी काव्य में हुआ है जैसे -

" बांसों का झुरमुट
सन्ध्या का झुटपुट

१- सुमित्रानन्दन पन्त - आधुनिक कवि - पृष्ठ २४ ।
२- James R. Kreuzer - Elements of Poetry -Chap.VII. P. 116.
- " In addition to the five basic senses two more are important in the study of poetry, namely the thermal sense which enables us to distinguish between heat and cold and kinesthetic sense , which is stimulated by muscular tensions."

है चहक रही चिड़ियाँ
टी-वी-टी-टुट - टुट -[1]

चिड़ियों की चहचहाहट से युक्त संपूर्ण वातावरण को यहाँ शब्दों द्वारा मूर्तिमंत कर दिया गया है । इसी प्रकार -

उड़ गया अचानक लो भू धर
फड़का अपार पारद के पर ।
रव शेष रह गए हैं निर्झर,
है टूट पड़ा भू पर अम्बर ।।
धँस गए धरा में समय शाल ।
उड़ रहा धुँआँ जल गया ताल ।।[2]

यहाँ परों का `फड़कना` निर्झर का रव शेष` हो जाना, भू पर अम्बर का टूट पड़ना` शाल का धरा में धँस जाना` आदि ध्वन्यात्मक शब्दों के प्रयोग द्वारा घनघोर वर्षा के दृश्य का संपूर्ण प्रभाव साकार और इन्द्रिय संवेद्य बनाया गया है । ध्वनियों का संबंध हमारी श्रवणेन्द्रिय से है, अतएव उपर्युक्त दोनों पद्यांश श्रावणिक बिम्बों के अन्तर्गत स्थान रखते हैं । इनकी अर्थ व्यंजकता चाक्षुक बिम्बों से अधिक ही होती है, क्योंकि ये वर्ण्य के चाक्षुक बिम्बों की अपेक्षा सूक्ष्मतर प्रभाव को संवेद्य बनाते हैं ।

पंत ने `हिम परिमल की रेशमी वायु -[3] कहकर एक ही पंक्ति द्वारा पवन की `शीतलता` और `स्निग्धता` को शब्दों में साकार कर दिया है ।` हिम` शब्द पवन की शीतलता का बोधक है और `रेशमी` विशेषण पवन की कोमलता की अनुभूति कराता है । परिमल से उसके सौरभमय होने का भी संकेत मिलता है । इस प्रकार शीतल मंद सुगन्ध वायु के लिये यह एक सर्वथा नवीन बिम्ब है । इसी प्रकार -

प्रणय श्वास के मलय स्पर्श से,
खिल खिल हँसती चपल हर्ष से ।[4]

१- सुमित्रानन्दन पन्त - युगान्त, पृष्ठ १६ ।
२- सुमित्रानन्दन पन्त - आधुनिक कवि - पर्वत प्रदेश में पावस , पृष्ठ १३ ।
३- सुमित्रानन्दन पन्त - युगान्त , पृष्ठ ६ ।
४- सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला - गीतिका, गीत १७ ।

यहाँ मलय स्पर्श के द्वारा नायिका पर पड़नेवाले प्रणय के स्निग्ध-कोमल प्रभाव को स्पर्शेन्द्रिय द्वारा संवेद्य बनाया गया है।

कहीं कहीं घ्राण विषयक अनुभूति को जगाकर वर्ण्य विषय के वास्तविक प्रभाव को तीव्रतर रूप देने वाले बिम्ब भी छायावादी काव्य में प्राप्य है, जैसे-

" रस शतदलों की
मुद्रित मधुर गंध भीनी-भीनी रोम में
बहाती लावण्य-धारा।"[१]

शतदलों की "मधुर" और "भीनी" गंध यहाँ गुर्जर प्रदेश की रानी कमला की शारीरिक सुगन्ध के साथ-साथ उसके अनुपम सौन्दर्य के समग्र प्रभाव को भी इन्द्रिय गम्य बना देती है। इसी प्रकार निराला ने -

" उषा- मुकुल-धार, गंध भार भर, बही पवन बंद मंदमंदतर।"[२]

लिखकर शीतल मंद-सुगंध पवन को रूपायित करनेवाला सुंदर बिम्ब प्रस्तुत किया है।

सूक्ष्म संवेदनात्मक बिम्ब -

छायावादी काव्य में ऐसे बिम्बों का बाहुल्य है जिनका संवेदन ज्ञानेन्द्रियों के प्रति न होकर सूक्ष्मेन्द्रिय-मन के प्रति होता है। प्रत्यक्षत: वे किसी न किसी ज्ञानेन्द्रिय से ही सम्बद्ध प्रतीत होते हैं किन्तु अन्तत: वे मानस संवेदनों को जगाते हैं अथवा वे इन्द्रियातीत अमूर्त और सूक्ष्म विषयों के प्रभाव को उभारकर सुस्पष्ट बनाते हैं। वस्तुत: इस प्रकार के बिम्ब ही छायावादी अभिव्यंजना की समृद्धि और गौरव के मूलाधार हैं।

छायावादी कवि प्राय: स्पष्ट रेखायें न खींचकर कुछ हल्के गहरे रंगों से "वर्ण्य" का छाया -चित्र प्रस्तुत कर देता है, पाठक जिसमें स्वयं अपनी कल्पना द्वारा रंग भरता है। जैसे "कामायनी" की श्रद्धा" के रूप वर्णन से संबंधित यह चित्र द्रष्टव्य है :-

" हृदय की अनुकृति बाह्य उदार, एक लम्बी काया उन्मुक्त",
मधुपवन क्रीड़ित ज्यों शिशु साल, सुशोभित हो सौरभ संयुक्त

१- जयशंकर प्रसाद - लहर, प्रलय की छाया, पृष्ठ ६२।
२- सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला - गीतिका, पृष्ठ ५।

मसृण गान्धार देश के नील रोम वाले मेषों के चर्म
ढंक रहे थे उसका वपु कान्त, बन रहा था वह कोमल वर्म
नील परिधान बीच सुकुमार खुल रहा मृदुल अधखुला अंग
खिला हो ज्यों बिजली का फूल मेघ वन बीच गुलाबी रंग
आह वह मुख पश्चिम के व्योम बीच जब घिरते हों घनश्याम ।
अरुण रवि मंडल उनको भेद दिखाई देता हो छविधाम ।।

\+ + + + + +

घिर रहे थे घुंघराले बाल अंस अवलंबित मुख के पास,
नील घन शावक से सुकुमार सुधा भरने को विधु के पास ।
और उस मुख पर वह मुस्क्यान, रक्त किसलय पर ले विश्राम
अरुण की एक किरण अम्लान अधिक अलसाई हो अभिराम । [१]

यहाँ रेखायें अस्पष्ट हैं, कोमल रंगों की धूमिल छाया है और कुछ संकेत है । एक लम्बी काया वाली नारी, जिसके शरीर पर नीला परिधान है, गान्धार देश के नीले रंग के मेष चर्म से बना हुआ । उस नीले परिधान में उसके सुकुमार शरीर का अधखुला अंग ऐसा लग रहा है, जैसे मेघों के वन में गुलाबी रंग का बिजली का फूल खिला हो।मुख पर बिखरी घुंघराली काली लटें ऐसी लगती हैं जैसे नीलवर्णी मेघ-खण्ड अमृत की आशा में चंद्रमा के आस-पास मंडरा रहे हों और उस मुख पर खिली हुई वह मुस्कान, जैसे सूर्य की एक अलसाई हुई किरण लाल रंग की कलिका पर विश्राम कर रही हो ।

इस चित्रण में सूक्ष्म संकेतों के द्वारा धूमिल पृष्ठभूमि में जो छाया चित्र उभरता है वह सहृदय के मन में श्रद्धा के अनुपम सौन्दर्य की मानस-प्रतिमा अंकित कर सकने में पूर्ण सक्षम है । इसी प्रकार -

" कोमल किसलय के अंचल में नन्हीं कलिका ज्यों छिपती सी ।
गौधूली के धूमिल पट में दीपक के स्वर में दिपती सी ।।
मंजुल स्वप्नों की विस्मृति में मन का उन्माद निखरता ज्यों ।
सुरभित लहरों की छाया में बुल्ले का विभव बिखरता ज्यों ।।

\+ + + + + +

१- जयशंकर प्रसाद - कामायनी - श्रद्धा सर्ग, पृष्ठ ५४-५५ ।

माधव के सरस कुतूहल का आँखों में पानी भरे हुए
नीरव निशीथ में लतिका सी तुम कौन आ रही हो बढ़ती "[1]

इन पंक्तियों में जो बिम्ब प्रस्तुत हुए हैं वे अत्यंत सूक्ष्म हैं इसी कारण वे स्थूल इंद्रियों द्वारा ग्राह्य नहीं हो पाते केवल अनुभूति द्वारा इनका ग्रहण संभव है किन्तु सूक्ष्म होते हुए भी वे अपनी सशक्तता और प्रभाव में किसी प्रकार कम नहीं है । इनके द्वारा सौन्दर्य की सूक्ष्म और अमूर्त चेतना हृदय में मूर्तिमंत हो जाती है ।

इस प्रकार के सूक्ष्म संवेदनात्मक संश्लिष्ट बिम्बों के कुशल विधान में छायावादी कवियों में प्रसाद अग्रगण्य है किन्तु निराला, पंत और महादेवी की रचनाओं में भी इनका प्राचुर्य है । उदाहरणार्थ -

" धर कनक थाल में मेघ सुनहला पाटल सा
कर बालारुण का कलश विहग रव मंगल सा -[2]

" नव इंद्र धनुष का चीर महावर अंजन है
अलि गुंजित मीलित पंकज नूपुर रुनझुन है - [3]

इन पंक्तियों में महादेवी ने उषा और संध्याकालीन सौन्दर्य के सूक्ष्म और मर्मस्पर्शी बिम्ब प्रस्तुत किये हैं ।

दिवस के अवसान और संध्या के आगमन की संधि बेला का एक अत्यंत सुन्दर, सूक्ष्म और सफल बिम्ब पंत की निम्न पंक्तियों में अवलोकनीय है-

गंगा के चल जल में निर्मल
कुम्हला किरणों का रक्तोत्पल
है मूंद चुका अपने मृदु दल ।[4]

निराला की निम्न पंक्तियों में -

नयनों का नयनों से गोपन प्रिय संभाषण
पलकों का नव पलकों पर प्रथमोत्थान पतन

१- जयशंकर प्रसाद - कामायनी - लज्जा सर्ग , पृष्ठ ७६ ।
२- महादेवी वर्मा - नीरजा, पृष्ठ ४ ।
३- महादेवी वर्मा - नीरजा, पृष्ठ ३१ ।
४- सुमित्रानन्दन पन्त - गुंजन, एक तारा, पृष्ठ ८४ ।

कांपते हुए किसलय, झरते पराग समुदय
गाते खग नव जीवन परिचय, तरु मलय-वलय---[१]

प्रकट रूप से विदेह की वाटिका का चित्रण हुआ है किन्तु वास्तव में कांपते हुए किसलय, झरते पराग समुदय आदि बिम्बों के द्वारा कवि ने राम : सीता के प्रथम व्यांतराल-मिलन और उन क्षणों में उनकी हृदयगत सूक्ष्म रसानुभूति को चित्रित करने का सफल प्रयास किया है। उनके द्वारा जो गूढ़ अर्थ प्रकट हुआ है - (राम और सीता प्रथम साक्षात्कार के क्षणों में जब एक दूसरे पर दृष्टि- विक्षेप करते हैं तो सीता के नेत्र स्त्री सुलभ संकोच से मुंदकर आत्मगोपन करने लगते हैं, किन्तु इस क्रिया द्वारा मौन भाव से वे अपना अनुराग प्रकट कर देते हैं। सीता की पलकें कुतूहलवश राम की ओर बार-बार उठती हैं, दृष्टि परस्पर टकराती और फिर झुक जाती है। इस मधुर अनुभूति के कारण उनके किसलय सदृश कोमल अधर कांप उठते हैं, मधुर भावनाओं का प्रवाह उमड़ पड़ता है। शब्द रूपी खग प्रत्यक्षत: कुछ कहने में असमर्थ हो अपने अंत: कलरव द्वारा नवजीवन का संगीत छेड़ देते हैं तथा नव प्रणयी युगम मृदु मंद पवन द्वारा आन्दोलित तरु-लता के समान मन ही मन आनंदित हो झूम उठते हैं।) - उसकी मात्र अंत: प्रतीति ही संभव है। इस प्रकार के सूक्ष्म संवेदनात्मक बिम्ब अपनी व्यंजनातिशयता के कारण श्लाघ्य हैं।

सारांशत: छायावादी अभिव्यंजना मुख्यत: बिम्बमूलक है। इन बिम्बों की विशेषता यह है कि अधिकतर वे स्थूल इन्द्रियों तक ही सीमित न रहकर वर्ण्य के सारभूत प्रभाव को हृदय में मूर्तिमन्त करते हैं।

रुचियों की भिन्नतावश छायावादी कवियों द्वारा नियोजित बिम्ब विविधतामय हैं। प्रसाद और निराला के बिम्ब अंत: स्फूर्त हैं, पंत और महादेवी में उनका सायास संयोजन हुआ है। अंत: प्रेरणा के अभाववश महादेवी के बिम्बों में कहीं कहीं विश्रृंखलता सी दिखाई देती है। संश्लिष्ट बिम्ब योजना में सर्वाधिक सफलता निराला को मिली है। निराला ने बिम्बों द्वारा गति को रूपायित करने में विशेष सिद्धि प्राप्त की है। उदात्त और विराट बिम्बों की सफल योजना भी केवल निराला ही कर सके, अन्य छायावादी कवियों ने कोमल और मधुर बिम्बों की ही सृष्टि की है।

१- सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला - अनामिका, पृष्ठ १५१।

अभिव्यंजना शिल्प के समस्त परंपरागत उपकरण अप्रस्तुत विधान, प्रतीक, लाक्षणिक और व्यंजनागर्भित भाषा प्रयोग आदि छायावादी काव्य में बिम्ब विधान के ही उपकर्मी रूप में प्रयुक्त हुए हैं तथा इनकी सहायता द्वारा छायावादी कवियों ने अपनी रचनाओं में विविध और बहुवर्णी बिम्बों को उभारकर पूर्णता दी है। बिम्ब- बाहुल्य छायावादी शैली को विशेष रूप से चित्रात्मक गुण-संपन्न बनाता है। चित्रांकन की परंपरागत शैली से छायावादी शैली कुछ भिन्न है क्योंकि छायावादी कवियों ने स्थूल और मूर्त चित्रों की सृष्टि की अपेक्षा छाया-चित्र अधिक संख्या में प्रस्तुत किये हैं। अतएव छायावादी शैली चित्रांकन नहीं, छायांकन प्रधान है।

उक्ति-वक्रता :-

उक्ति वक्रता छायावादी अभिव्यंजना शिल्प का अभिन्न तत्व है। द्विवेदी युग की अभिधामूलक काव्य शैली से सर्वथा भिन्न, कथन की वक्र भंगिमा छायावादी कवियों को विशेष रुचिकर हुई। इस क्षेत्र में छायावादी कवि भारतीय काव्य-शास्त्र के "वक्रोक्तिवाद" से अत्यधिक प्रभावित दिखाई देते हैं। छायावाद के प्रवर्तक जयशंकर प्रसाद ने "काव्य कला तथा अन्य निबंध" शीर्षक अपनी पुस्तक में छायावाद का स्वरूप विश्लेषण करते हुए उसके आधारभूत छाया" शब्द का सम्बंध" कुन्तक" के "वक्रोक्तिवाद" से जोड़ा है। प्रसाद के शब्दों में - "अभिव्यक्ति का यह निराला ढंग अपना स्वतंत्र लावण्य रखता है। ------ मोती के भीतर छाया की जैसी तरलता होती है, वैसी ही कान्ति की तरलता अंग में लावण्य कही जाती है। इस लावण्य को संस्कृत साहित्य में छाया और विच्छित्ति के द्वारा कुछ लोगों ने निरूपित किया था। कुन्तक ने वक्रोक्ति जीवित में कहा है - शब्द और अर्थ की यह स्वाभाविक वक्रता विच्छित्ति छाया और कान्ति का सृजन करती है। इस वैचित्र्य का सृजन करना विदग्ध कवि का ही काम है।" वैदग्ध्य भंगी भणिति " में शब्द की वक्रता और अर्थ की वक्रता लोकोत्तीर्ण रूप से अवस्थित होती है। कुन्तक के मत में ऐसी भणिति शास्त्रादि प्रसिद्ध शब्दार्थोपनिबन्धव्यतिरेकी होती है। यह रम्य छायान्तरस्पर्शी वक्रता वर्ण से लेकर प्रबन्ध तक में होती है। कुन्तक के शब्दों में यह उज्ज्वला छायातिशय रमणीयता वक्रता की उद्भासिनी है।"[१]

१- जयशंकर प्रसाद - काव्य कला तथा अन्य निबन्ध, पृष्ठ १२२-२३।

अन्यत्र छायावाद की मूलभूत विशेषताओं की चर्चा करते हुए प्रसाद ने 'उपचार वक्रता' को छायावाद के मुख्य लक्षण के रूप में स्वीकार किया है -" छाया भारतीय दृष्टि से अनुभूति और अभिव्यक्ति की भंगिमा पर अधिक निर्भर करती है। ध्वन्यात्मकता, लाक्षणिकता, सौन्दर्यमय प्रतीक विधान तथा उपचार वक्रता के साथ स्वानुभूति की विवृति छायावाद की विशेषतायें हैं।[1]

प्रसाद के उपर्युक्त कथन छायावादी काव्य के वक्रोक्तिवाद के साथ घनिष्ठ संबंध को सिद्ध करते हैं।

वक्रोक्तिवाद' के प्रमुख आचार्य कुन्तक' ने प्रसिद्ध कथन से भिन्न विचित्र वर्णन शैली को वक्रोक्ति' की संज्ञा दी है।[2] 'विचित्र' शब्द का प्रयोग कुन्तक ने' असाधारण' के अर्थ में किया है, अर्थात् साधारण, प्रचलित शैली से भिन्न वैदग्ध्यपूर्ण कथन भंगिमा ही' वक्रोक्ति' है।[3] कुन्तक वक्रोक्ति को अलंकार्य मानते हैं, तथा उनके अनुसार काव्य अलंकृत शब्द और अर्थ के अतिरिक्त कुछ नहीं है और उसका एकमात्र अलंकार वक्रोक्ति है।[4] यह वक्रत्व कवि व्यापार की देन बताते हुए कुन्तक ने उसके प्रमुख छः भेदों का उल्लेख किया है - वर्ण वक्रता, पद पूर्वार्द्ध वक्रता, पदपरार्द्धवक्रता वाक्यवक्रता, प्रकरणवक्रता और प्रबन्धवक्रता।[5]

आधुनिक समीक्षक नगेन्द्र ने कुन्तक की वक्रोक्ति' की व्याख्या करते हुए (उसे) कवि-कौशल' एवं काव्य-सौन्दर्य का समानार्थी बताया है। नगेन्द्र के शब्दों में -"काव्य में जो कुछ सुन्दर, चमत्कारपूर्ण अथवा अलंकृत है, वह सब वक्रता का ही चमत्कार है। + + + + + कवि प्रतिभा के बल पर अपनी कृति में चमत्कार उत्पन्न करने के लिए सहज अथवा सचेष्ट रूप में जिन साधनों- प्रसाधनों का उपयोग करता है वे सभी वक्रोक्ति के भेद हैं। अतएव कुंतक की वक्रोक्ति का साम्राज्य वर्ण विन्यास से लेकर प्रबंध कल्पना तक और उधर उपसर्ग प्रत्यय आदि पदावयवों से लेकर महाकाव्य तक विस्तृत है।"[6]

१- जयशंकर प्रसाद - काव्यकला तथा अन्य निबन्ध, पृष्ठ १२६।
२- कुन्तक - हिन्दी वक्रोक्तिजीवित - पृष्ठ ५१ -
"वक्रोक्ति : प्रसिद्धाभिधानव्यतिरेकिणी विचित्रैवाभिधा।" १।।१०।।
३- कुन्तक - हिन्दी वक्रोक्तिजीवित, पृष्ठ ५१ १।।१०।।
"वक्रोक्तिरेव वैदग्ध्यभंगीभणितिरुच्यते"।
४-" उभावेतावलंकार्यौ :--। वक्रोक्तिरेव वैदग्ध्य भंगीभणितिरुच्यते ।।-" कुंतक- हिन्दी - वक्रोक्तिजीवित, १।।१०।।
५- कुन्तक - हिन्दी वक्रोक्ति जीवित - १ ।।१८-२१।।
६- नगेन्द्र - हिन्दी वक्रोक्ति जीवित - भूमिका भाग, पृष्ठ ५४।

उपर्युक्त मत के आलोक में छायावादी काव्य के परीक्षण-विश्लेषण से कुंतक के वक्रोक्तिवाद से उसका संबंध और भी स्पष्ट हो जाता है। छायावादी कवियों की मूल चेतना सौन्दर्यवादी रही है, जिसके परिणामस्वरूप अपनी अभिव्यक्तियों को सुन्दर और आकर्षक रूप देने हेतु उन्होंने सर्वत्र अतिरिक्त सजगता से काम लिया है और कथन का सीधा सादा प्रचलित ढंग न अपनाकर उन्होंने अभिव्यक्ति के विविध माध्यमों से काव्य में अपेक्षित वैचित्र्य की चेष्टायें की हैं।

छायावादी कवियों की अभिव्यक्तिमूलक सजगता को देखकर कुछ लोग उसका सम्बन्ध पाश्चात्य अभिव्यंजनावाद" से भी जोड़ते रहे हैं। "अभिव्यंजनावाद" के अन्तर्गत चमत्कारपूर्ण अभिव्यक्ति ही सब कुछ है, अभिव्यंग्य वस्तु अथवा कविता का अर्थ नगण्य होता है। इस सिद्धान्त के प्रतिपादक क्रोचे ने अपनी पुस्तक सौन्दर्यशास्त्र (Asthetics) में अपने मत की विस्तृत व्याख्या की है। क्रोचे ने दो महत्वपूर्ण बातों का उल्लेख किया है एक तो वे मानसिक अभिव्यक्ति को ही कला मानते हैं, दूसरे उन्होंने प्रातिभ ज्ञान को अभिव्यक्ति का आधार बताया है। इस प्रकार अभिव्यंजनावाद के अन्तर्गत बाह्य वस्तुओं और जीवनानुभूतियों का विशेष महत्व नहीं है, किसी वस्तु को देखकर कवि मन पर होने वाली प्रतिक्रिया या प्रभाव ही मुख्य है। वस्तु-दर्शन द्वारा कवि-मन में जब उसकी स्पष्ट आकृति उभर आती है तभी प्रातिभ ज्ञान का उदय होता है, जिसकी सहायता से कवि अपनी मानसिक अभिव्यक्ति को चमत्कारिक ढंग से शब्दबद्ध करता है।

अभिव्यक्ति के महत्व की समान रूप से स्वीकृति के फलस्वरूप कुंतक का वक्रोक्तिवाद" और क्रोचे का अभिव्यंजनावाद एक दूसरे के बहुत निकट जान पड़ते हैं, किन्तु दोनों में पर्याप्त अन्तर है। "वक्रोक्तिवाद" के अन्तर्गत उक्ति चमत्कार को सर्वाधिक महत्वपूर्ण माना गया है, किन्तु उसका क्षेत्र आन्तरिक होने के साथ साथ बाह्य भी है जबकि" अभिव्यंजनावाद" में बाह्य अभिव्यक्ति का कोई मूल्य नहीं है। "वक्रोक्तिवाद" में उक्ति की वक्रता पर बल देते हुए भी अभिव्यंजनावाद की तुलना में वर्ण्य वस्तु को अधिक स्वीकृति मिली है। कुन्तक निरूपित पदार्थ वक्रता इसका प्रमाण है। किन्तु अभिव्यंजनावादी" वस्तु" को कोई महत्व न देकर शब्दगत प्रभाव को ही प्रमुखता देते हैं।

उपर्युक्त दोनों प्रकार के अभिव्यक्तिमूलक सिद्धान्तों की कसौटी पर छायावादी काव्य को विश्लेषित करने पर वह पाश्चात्य अभिव्यंजनावाद की अपेक्षा भारतीय वक्रोक्तिवाद के अधिक निकट दिखाई देता है । क्योंकि कथन की वैचित्र्यपूर्ण भंगिमायें अपना कर भी छायावादी काव्य अनुभूति शून्य नहीं है और न उसमें वर्ण्य वस्तु को सर्वथा महत्वहीन मानकर असंगत और अर्थहीन रचनायें की गई हैं । इस संदर्भ में "वस्तु व्यंजना" प्रकरण के अन्तर्गत किया गया विवेचन द्रष्टव्य है। छायावाद की कुछ प्रारंभिक कवितायें (जैसे पंत की "स्याही की बूंद" छाया आदि) अवश्य ऐसी हैं जिनमें वाग्विलास और कल्पनातिरेक्य लक्षित होता है, किन्तु इनकी संख्या परिमित है । अधिकांश छायावादी रचनाओं में कल्पना प्रवणता और वाग्वैदग्ध्य रहते हुए भी वाच्यार्थ या व्यंग्यार्थ उपेक्षित नहीं हुआ है । अस्तु छायावादी काव्य की उक्तिवक्रता को भारतीय वक्रोक्तिवाद की परंपरा के अन्तर्गत मानना ही उपयुक्त प्रतीत होता है ।

कुंतक निरूपित वक्रताएं और छायावादी काव्य :-

छायावादी काव्य में कुंतक निरूपित प्राय: सभी प्रकार की वक्रताओं के उदाहरण प्राप्य हैं । वर्ण-विन्यास वक्रता की दृष्टि से छायावादी काव्य अत्यंत समृद्ध है । छायावादी काव्य में कुशल, सुन्दर और नादसौन्दर्य युक्त अनेकानेक नूतन वर्ण योजनाओं के द्वारा "एक एक शब्द बंधा ध्वनिमय साकार" की उक्ति चरितार्थ हुई है ।[१] छायावादी कवियों में निराला ने इस क्षेत्र में विशेष सिद्धि प्राप्त की है । भाषा-विवेचन के अन्तर्गत छायावादी काव्य की इस विशेषता का उल्लेख हो चुका है, अत: यहां विषय का पुनरावर्तन अनावश्यक होगा ।

वर्णों के उपरान्त काव्य का दूसरा महत्वपूर्ण अवयव "पद" है । पदों में वैचित्र्य की सृष्टि कवि-कौशल का महत्वपूर्ण प्रमाण है । पदों के दो भाग होते हैं - प्रकृति और प्रत्यय । इन्हीं के आधार पर कुन्तक ने पद में दो प्रकार की वक्रताओं का उल्लेख किया है - पद के पूर्वार्द्ध में रहनेवाली - पद पूर्वार्द्ध वक्रता तथा पद के उत्तर भाग में निवास करनेवाली पद परार्द्धवक्रता ।

१- सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला - गीतिका - गीत संख्या ८७ ।
"वर्ण चमत्कार ।
एक एक शब्द बंधा ध्वनिमय साकार ।।"

पदपूर्वार्द्ध वक्रता के कुन्तक ने दस उपभेद बताए हैं - रूढ़िवैचित्र्यवक्रता, पर्यायवक्रता , उपचार वक्रता, विशेषणवक्रता, संवृत्ति वक्रता, प्रत्ययवक्रता, आगमवक्रता, वृत्तिवक्रता, लिंगवक्रता और क्रिया वैचित्र्यवक्रता । इनमें से द्वितीय ,तृतीय और चतुर्थ प्रकार की वक्रताएं अर्थात् पर्याय वक्रता , उपचारवक्रता और विशेषण वक्रता, छायावादी कवियों को विशेष प्रिय रही है ।

पर्यायवक्रता :-

पर्यायवक्रता पर्यायवाची शब्दों के आश्रित होती है ।[१] अर्थात् वर्ण्यवस्तु के कथन हेतु अनेक शब्द संभव होने पर भी जहां प्रकरण के अनुरुप किसी विशेष शब्द का प्रयोग करके उक्ति में चमत्कार उत्पन्न किया जाए, वहां कुंतक के अनुसार पर्याय वक्रता होगी ।

शब्द चयन का कौशल कवि-प्रतिभा की महत्वपूर्ण कसौटी माना जा सकता है । प्रकटत: समानार्थक शब्दों में से भी प्रत्येक शब्द में निहित सूक्ष्म अर्थ की परख करना प्रतिभाशाली कवि का ही कार्य है । भाषा- विवेचन के संदर्भ में छायावादी कवियों की इस विशेषता पर भी प्रकाश डाला जा चुका है । छायावादी कवियों में पंत इस क्षेत्र में अग्रगण्य रहे हैं । उन्होंने 'पल्लव' की भूमिका में इस प्रसंग में विचार व्यक्त किये हैं । अन्य छायावादी कवियों को भी शब्दों की अन्तरात्मा का गहरा ज्ञान प्राप्त था, जिसके फलस्वरूप इन्होंने विशिष्ट प्रसंगों में विशिष्ट पर्यायवाची शब्दों का प्रयोग करके अपनी अभिव्यंजना में वैचित्र्य के समावेश के साथ साथ अर्थगर्भत्व की भी पुष्टि की है । जैसे

' रो रोकर सिसक सिसककर
  कहता मैं करुण कहानी ।
तुम सुमन नोचते सुनते
  करते जानी अनजानी ।।[२]

यहां सुमन शब्द का प्रयोग साभिप्राय और वैदग्ध्यपूर्ण है । कवि ने कुसुम ,पुष्प आदि न लिखकर 'सुमन' का ही प्रयोग किया है जिसका एक अर्थ सुन्दर

१- कुन्तक - हिन्दी वक्रोक्तिजीवित - व्याख्या भाग, द्वितीयोन्मेष,पृष्ठ २०३ ।
   पर्यायस्तेन वैचित्र्यं परा पर्यायवक्रता ।'
२- जयशंकर प्रसाद - आंसू, पृष्ठ १५ ।

मनवाला" है। इसके द्वारा इन पंक्तियों के अभिधेयार्थ -" प्रिय की निष्ठुरता " में विशेष चमत्कार उत्पन्न हो गया है। इसी प्रकार -

" मातृत्व बोझ से झुके हुए,
बंध रहे पयोधर पीन आज।"[1]

यहाँ गर्भवती नारी - श्रद्धा का वर्णन प्रसाद कर रहे हैं अतएव उरोज या स्तन न लिखकर उन्होंने पयोधर शब्द का ही प्रयोग किया है।

पंत लिखते हैं -
" सो गई स्वर्ग की अमर किरण,
कुसुमित कर जग का अंधकार।"[2]

इन पंक्तियों का संपूर्ण सौन्दर्य कुसुमित" शब्द में निहित है, जिसके द्वारा सूक्ष्म अर्थ की अभिव्यक्ति करके कवि ने अभिव्यंजना में चमत्कार की पुष्टि की है।

" हनुमान" के अनेक नाम प्रचलित है किन्तु हनुमान के पराक्रम वर्णन का प्रसंग होने के कारण निराला ने अन्य कोई नाम न लिखकर" महावीर" का ही वैदग्ध्यपूर्ण प्रयोग किया है -

" बोले ---" सम्बरो देवि, निज तेज, नहीं वानर
यह, -- नहीं हुआ श्रृंगार युग्मगत, महावीर।[3]

इसी प्रकार पर्यायवक्रता के अनेकानेक उदाहरण छायावादी काव्य में उपलब्ध है जिनके द्वारा छायावादी शैली समृद्ध और अभिनव आकर्षणमयी बनी है।

उपचारवक्रता -

कुन्तक के अनुसार" उप" अर्थात् सादृश्यवश गौण चरण को " उपचार" कहते हैं।[4] उपचार वक्रता के अन्तर्गत प्रस्तुत और अप्रस्तुत के मध्य स्वभावगत

१- जयशंकर प्रसाद - कामायनी - ईर्ष्यासर्ग, पृष्ठ १५०।
२- सुमित्रानन्दन पन्त - युगान्त, गीत १८, पृष्ठ ३३।
३- सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला - अनामिका- राम की शक्ति पूजा, पृ० १६०-६१।
४- राजानक कुन्तक - हिन्दी वक्रोक्तिजीवित, पृष्ठ २२३ -
" उपचरणमुपचार ?"

वैषम्य होते हुए भी उस भिन्नता की प्रतीति को स्थगित कर, प्रस्तुत पर अप्रस्तुत का थोड़े से संबंध में भी आरोप कर लिया जाता है ।[1] इस प्रकार उपचारवक्रता, असदृश वस्तुओं में सादृश्य स्थापित करती है । इस क्रम में साम्याश्रित रूपकादि अलंकार और लक्षणा शक्ति का संपूर्ण चमत्कार उपचार वक्रता के आश्रित माना जा सकता है।

रूपक अलंकार छायावादी कवियों को अत्यंत प्रिय रहा है तथा छायावादी भाषा के प्रसंग में उनके लाक्षणिक प्रयोग बाहुल्य का भी उल्लेख हो चुका है । इनके द्वारा छायावादी अभिव्यंजना में जिस वक्रता का समावेश हुआ है उस सब का अंतर्भाव उपचारवक्रता में हो जाता है ।

साम्य-ग्रहण की प्रवृत्ति कविता की सार्वजनिक प्रवृत्ति कही जा सकती है, किन्तु छायावादी काव्य में साम्य-भावना का यह ग्रहण बहुत अधिक मात्रा में तथा पूर्वयुगीन कविता की तुलना में कुछ विशिष्ट ढंग से हुआ । छायावादी काव्य की इस विशेषता को बहुत पहले ही लक्ष्य कर रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा था - "छायावाद बड़ी सहृदयता के साथ प्रभाव साम्य पर ही विशेष लक्ष्य रखकर चला है । कहीं-कहीं तो बाहरी सादृश्य अथवा साधर्म्य अत्यंत अल्प या न रहने पर भी आभ्यंतर प्रभाव साम्य लेकर ही अप्रस्तुतों का सन्निवेश कर दिया जाता है । + + + + + + आभ्यंतर प्रभाव साम्य के आधार पर लाक्षणिक और व्यंजनात्मक पद्धति का प्रगल्भ और प्रचुर विकास छायावाद की काव्यशैली की असली विशेषता है ।"[2]

कुन्तक की उपचार वक्रता लक्षणा मूला अत्यंत तिरस्कृत वाच्यध्वनि की भी समानार्थी है क्योंकि उसमें भी वस्तुतः "उपचार" का ही चमत्कार रहता है, जो भिन्नता में भी अभिन्नता की प्रतीति कराती है, तथा इस अभिन्नता का आधार प्रायः प्रभावसाम्य होता है ।

प्रभाव साम्य के आधार पर उपचार वक्रता के प्रयोगों द्वारा छायावादी कवियों ने अपनी अत्यंत सूक्ष्म दृष्टि एवं अपूर्व कवि-कौशल का परिचय दिया है । उन्होंने औपम्य विधान की एक नवीन परिपाटी का समारंभ किया । औपम्य

१- राजानक कुन्तक - हिन्दी वक्रोक्तिजीवित - २।।१३।। -
"यत्र दूरान्तरेऽन्यस्मात् सामान्य मपुचयति ।
लेशेनापि भवत् काञ्चित् वक्तुमुद्रिक्तवृत्तिता ।।

२- रामचन्द्र शुक्ल - हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ ६३६ ।

विधान की इस परिपाटी अथवा प्रभाव साम्य पर आधारित लाक्षणिक चमत्कार युक्त छायावादी कविताओं के द्वारा कुन्तक के "दूरान्तर" शब्द का वास्तविक अर्थ स्पष्ट हो जाता है। सूक्ष्म कल्पनाशक्ति के सहारे भिन्न भिन्न वस्तुओं में प्रभाव साम्य द्वारा एकता-स्थापन के अनेकानेक सुन्दर प्रयोग छायावादी काव्य में उपलब्ध है।

कुन्तक के अनुसार उपचार "दूरान्तर" में ही निखरता है और "दूरान्तर" के आधार पर "उपचारवक्रता" के अन्तर्गत तीन प्रकार के वैधर्म्यों का "उपचार" किया जाता है - अमूर्त पदार्थ पर मूर्त पदार्थ का आरोप करके, ठोस पदार्थ पर द्रव पदार्थ का आरोप करके तथा अचेतन पर चेतन के धर्म का आरोप करके।

अमूर्त का मूर्तीकरण और अचेतन पर चेतना का आरोप करना छायावाद की मुख्य प्रवृत्तियां रही हैं तथा इनसे संबंधित अनेकानेक उदाहरण छायावादी कविताओं में अनायास प्राप्य है। इन्हीं प्रवृत्तियों के फलस्वरूप विशेषण-विपर्यय और मानवीकरण जैसे पाश्चात्य अलंकार छायावादी कवियों को विशेष प्रिय हुए हैं। कुन्तक की उपचार-वक्रता में इन सब का समाहार हो जाता है, अत: वे समस्त स्थल जहां पर इन अलंकारों के प्रयोग द्वारा छायावादी अभिव्यंजना में चमत्कार उत्पन्न किया गया है, छायावादी काव्य को कुंतक निरूपित उपचार वक्रता से सम्बद्ध करते हैं। छायावादी-काव्य में ऐसे प्रयोगों का बाहुल्य देखते हुए उपचार-वक्रता को छायावादी शैली का प्रमुख उपकरण माना जा सकता है। उपचार-वक्रता के आधार-रूप छायावादी लाक्षणिक प्रयोगों, रूपक, मानवीकरण, विशेषण विपर्यय आदि का अन्यत्र विवेचन हो चुका है अत: यहां पर कुछ उदाहरण ही पर्याप्त होंगे। प्रसाद रचित निम्न उद्धृत पंक्तियों में -

> कौन हो तुम वसंत के दूत
> विरस पतझड़ में अति सुकुमार।
> घन तिमिर में चपला की रेख,
> तपन में शीतल मंद बयार।।[१]

१- जयशंकर प्रसाद - कामायनी श्रद्धासर्ग, पृष्ठ ५८।

उपचार-वक्रता का समावेश " वसंत के दूत " , " चपला की रेख " शीतल मंद बयार आदि पदों के लाक्षणिक प्रयोगों द्वारा हुआ है जिनका अर्थ क्रमश: कोकिल के समान मधुर स्वर वाली, चपला की रेख सदृश उज्ज्वल और कान्तिमयी तथा " शीतल मंद बयार " के समान सुखदायिनी है । इसी प्रकार -

" अभिलाषाओं की करवट,
फिर सुप्त व्यथा का जगना ।
सुख का सपना हो जाना
भीगी पलकों का लगना ।।[1]

करवट लेना और जागना चेतन प्राणी के गुण हैं किन्तु यहां अभिलाषा और " व्यथा " जैसे सूक्ष्म भावों पर उनका आरोप कर लिया गया है । विविध प्रकार की अभिलाषाओं के कारण चित्त की जो अव्यवस्थित दशा है, उसकी व्यंजना कवि ने " अभिलाषाओं की करवट " कहकर की है और उन अभिलाषाओं की पूर्ति का कोई उपाय न होने के कारण मन में होनेवाली पीड़ा की हलचल की अभिव्यक्ति " व्यथा " का जगना " कहकर की है। इस प्रकार यहां अमूर्त के मूर्तीकरण और अचेतन पर चेतन के गुणों के आरोप द्वारा अभिव्यंजना में सौन्दर्य और चमत्कार की सृष्टि हुई है ।

उपचारवक्रता का एक अत्यंत सुंदर उदाहरण पंत की इन पंक्तियों में द्रष्टव्य है :-

" धीरे धीरे उठ संशय से
बढ़ उपचय से शीघ्र अछोर ।
नभ के उर में उमड़ मोह से
फैल लालसा से निशि-भोर ।।[2]

यहां कवि ने आकाश का मानवीकरण किया है, साथ ही " बादल " और मानव हृदय की भावनाओं में असमानता होने पर भी जोड़े से साम्य का संधान कर लिया है । मनुष्य के मन में जिस प्रकार संशय उत्पन्न होकर धीरे धीरे बढ़ता है

१- जयशंकर प्रसाद - आंसू, पृष्ठ ११ ।
२- सुमित्रानन्दन पन्त - आधुनिक कवि - बादल, पृष्ठ २६ ।

उसी प्रकार आकाश में धीरे धीरे बादल घिरते हैं और फिर पूरे आकाश में फैल जाते हैं उसी प्रकार जैसे किसी व्यक्ति का अपयश बहुत शीघ्र चारों ओर फैल जाता है। आकाश में बादलों के इस प्रकार उमड़ने का साम्य कवि मनुष्य के मन में उमड़ने वाले मोह से स्थापित करता है । बादलों का आकाश में फैलना कवि को वैसा ही लगता है जैसे मनुष्य की लालसायें एक बार जन्म ले लेने के बाद अधिकाधिक बढ़ती ही जाती हैं ।

विशेषणवक्रता :-

वैसा कि नाम से ही स्पष्ट है, विशेषणवक्रता विशेषणों के वैदग्ध्यपूर्ण प्रयोगों के आश्रित होती है । उचित विशेषणों का प्रयोग कवि-प्रतिभा का परिचायक है, क्योंकि छोटे से विशेषण द्वारा बहुधा एक लम्बे वाक्य में कही जानेवाली बात की अभिव्यक्ति हो जाती है ।

कुन्तक के अनुसार जहाँ पर विशेषण के महात्म्य से क्रिया अथवा कारक का सौन्दर्य निखरता है, वहाँ विशेषणवक्रता होती है ।[१] इस प्रकार विशेषण कभी कारक के महत्व को प्रकट करता है और कभी क्रिया के वैशिष्ट्य को उभारता है । उसका लक्ष्य काव्य के वस्तु तत्व एवं रूप तत्व- दोनों को उत्कर्ष देना है । विशेषण के वैचित्र्यमय प्रयोगों के द्वारा जब काव्य में सौन्दर्योत्पादन किया जाए वही विशेषणवक्रता है ।

कुन्तक निरूपित विशेषणवक्रता में परिकर अलंकार का भी अंतर्भाव संभव है क्योंकि अलंकारवादियों के अनुसार वाच्यार्थ में सौन्दर्य एवं चमत्कार उत्पन्न करने हेतु साभिप्राय विशेषणों का प्रयोग जहाँ पर किया जाए उसे ही परिकर अलंकार कहते हैं ।[२]

छायावादी कवियों के सामने एक ओर तो संस्कृत कवियों की परंपरा थी, जिसमें साभिप्राय विशेषणों से युक्त परिकर-अलंकार अत्यंत प्रचलित

१- राजानक कुन्तक - हिन्दी वक्रोक्तिजीवित, २।।१५।।
" विशेषणस्य माहात्म्यात् क्रियायाः कारकस्य वा ।
यत्रोल्लसति लावण्यं सा विशेषणवक्रता ।।"

२- विश्वनाथ- साहित्य दर्पण - १०।।५७।।
" उक्तैर्विशेषणैः साभिप्रायैः परिकरो मतः" ।

रहा है, दूसरी ओर उन्होंने पाश्चात्य अलंकार " विशेषण- विपर्यय " (Transfered Epithet) का भी प्रभाव ग्रहण किया और इन दोनों के आधार पर अनेकानेक भावमय उदात्तीकृत विशेषणों को अपनी रचनाओं में नियोजित करके अपने काव्य की शिल्पगत समृद्धि में वृद्धि की है। विशेषणों के वक्र प्रयोग छायावादी अभिव्यंजना के महत्वपूर्ण उपकरण हैं। कुछ उदाहरण द्रष्टव्य है :-

" जलदागम मारुत से कंपित
पल्लव सदृश हथेली ।
श्रद्धा की धीरे से मनु ने
अपने कर में ले ली ।।[१]

श्रद्धा की हथेली मनु द्वारा थामे जाने के कथ्य में सौन्दर्योत्पादन हेतु कवि ने हथेली को पल्लव सदृश बताया, पुन: उसे और अधिक आकर्षक रूप देने के अभिप्राय से " जलदागम मारुत से कंपित " विशेषण की योजना की है। इस प्रकार यहां परिकर अलंकार के माध्यम से विशेषणवक्रता का समावेश हुआ है।

" बता कहां अब वह वंशीवट
कहां गए नटनागर श्याम ?
चल चरणों का व्याकुल पनघट
कहां आज वह वृन्दाधाम ? [२]

वस्तुत: पनघट व्याकुल नहीं होता, यहां विशेषण विपर्यय के द्वारा उक्ति में वक्रता उत्पन्न की गई है। पनघट के लिये " व्याकुल " विशेषण अतीत में गोपिकाओं के निरंतर आवागमन से अशान्त अथवा कोलाहलमय रहनेवाले पनघट का अभिप्राय व्यक्त कर रहा है।

विशेषण का वक्र प्रयोग करके अभिव्यक्ति में चारुता और चमत्कार की पुष्टि करने में सर्वाधिक सफलता प्रसाद को मिली है। उन्होंने कहीं कहीं विरोधमूलक विशेषणों का अत्यंत रम्य प्रयोग किया है, जैसे -

" अरी व्याधि की सूत्रधारिणी,
अरी आधि मधुमय अभिशाप ।[३]

१- जयशंकर प्रसाद - कामायनी - कर्म सर्ग, पृष्ठ १३५ ।
२- सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला - परिमल- यमुना के प्रति, पृष्ठ ४६ ।
३- जयशंकर प्रसाद - कामायनी - चिन्तासर्ग, पृष्ठ १३ ।

यहाँ " चिन्ता " के लिये दो विरोधी विशेषण एक साथ प्रयुक्त हुए हैं जिनके द्वारा कथन में वक्रता का समावेश हुआ है । " चिन्ता " मनुष्य के समस्त मानसिक रोगों का मूल है अत: उसके लिए अभिशाप " विशेषण सटीक है, किन्तु कवि " अभिशाप " को " मधुमय " बता रहा है । इस प्रकार का विरोधी कथन साभिप्राय है । यह " चिन्ता " ही मनुष्य की संपूर्ण प्रगति की जन्मदायिनी है । चिन्ता से मुक्त होकर मनुष्य निश्चेष्ट अथवा निष्क्रिय हो जाता है, इस कारण " चिन्ता " का बना रहना उचित है । इस दृष्टि से चिन्ता मनुष्य जीवन की शान्ति एवं सुख के लिये अभिशाप अवश्य है, किन्तु वह " मधुमय अभिशाप " है ।

इसी प्रकार पद परार्द्धवक्रता , वस्तुवक्रता, प्रकरणवक्रता और प्रबंध वक्रता एवं उनके उप भेदों के भी विभिन्न स्थल छायावादी काव्य में खोजे जा सकते हैं क्योंकि गीत प्रगीत से लेकर महाकाव्य तक सर्वत्र कथन की वक्र भंगिमा छायावादी कवियों को विशेष प्रिय रही है । कुन्तक निरूपित अन्तिम दो प्रकार की वक्रताओं- प्रकरण वक्रता और प्रबन्ध वक्रता का संबंध प्रबंध काव्यों से है छायावाद में प्रबन्ध रचनाएं कम हुई, किन्तु जो हुई हैं उनमें इन वक्रताओं के उत्कृष्ट रूप प्राप्य हैं जैसे कामायनीकार प्रसाद ने " कामायनी " की कथा के अन्तर्गत विभिन्न मार्मिक स्थलों (प्रलय के दृश्य का वर्णन, मनु श्रद्धा का प्रथम मिलन, मनु का गृह त्याग आदि) का जिस कुशलता से निर्वाह किया है, वे सब प्रकरण वक्रता के उदाहरण कहे जा सकते हैं । " प्रबंधवक्रता " के उपभेद - " प्रबन्ध रस परिवर्तन-वक्रता " की दृष्टि से कामायनी अन्यतम कृति कही जा सकती है क्योंकि उसमें शास्त्र वर्णित शृंगार रस की उपेक्षा करके कथा की परिसमाप्ति " आनन्दवाद " के आनन्दरस में हुई है । छायावादयुगीन अन्य प्रबंध काव्यों - तुलसीदास , राम की शक्ति पूजा, पंचवटी-प्रसंग आदि में मार्मिक प्रसंगों को लेकर उनकी समाप्ति भी अत्यंत मनोहारी और चमत्कारपूर्ण ढंग से हुई है । जैसे तुलसीदास में निराला ने महाकवि तुलसीदास का जीवन वृत्त अपना कथ्य बनाकर भी अपना लक्ष्य कुछ विशिष्ट रखा है । तुलसी के जीवन की सामान्य घटनाओं का उल्लेख करते हुए भी कवि वस्तुत: तुलसी के ज्ञानोदय की मनोभूमि प्रस्तुत करना चाहता था । रत्नावली की फटकार के कारण मोहान्ध तुलसीदास के ज्ञान चक्षु सहसा खुल जाते हैं, निराला ने यहीं पर अनायास कथा का अंत कर दिया है । तुलसीदास से संबंधित विभिन्न प्रचलित कथाओं से भिन्न रूप में और नए संदर्भों के साथ अपनी रचना की

परिसमाप्ति करके निराला पाठकों पर अपनी प्रबन्ध प्रतिभा और कवि-कौशल की गहरी छाप छोड़ते हैं । वास्तव में प्रबन्ध वक्रता' प्रबंध रचना के क्षेत्र में प्रदर्शित किये गए संपूर्ण कवि कौशल का ही दूसरा नाम है ।

सारांशत: छायावादी कवियों द्वारा किये गए वे प्रयोग जो उन्होंने अपनी अभिव्यंजना को वैशिष्ट्य मय और चमत्कारपूर्ण बनाने के लिये किये हैं जैसे वर्णों की विभिन्न नादपूर्ण योजनाएं वर्णावृत्ति शब्दों की आवृत्ति, सामासिक भाषा लक्षणाव्यापार , साम्याश्रित अलंकारों की योजना' सांकेतिक कथन, प्रतीकात्मकता लिंग, क्रिया, कारक आदि के असाधारण प्रयोग नवीन प्रसंगों की उद्भावना कथारंभ , कथा-निर्वाह और कथा की परिसमाप्ति हेतु अपनाई गई वैदग्ध्यपूर्ण पद्धतियां आदि - कुन्तक निरुपित वक्रोक्ति के किसी न किसी भेद-उपभेद से सम्बद्ध किये जा सकते हैं । नगेन्द्र ने कुन्तक की' वक्रोक्ति' को व्याख्यायित करते हुए उसे और भी व्यापक रुप दे दिया है ।[1] उस अर्थ में तो छायावादी काव्य में जो कुछ भी सुन्दर, आकर्षणमय और श्लाघ्य है, वह सब वक्रोक्ति का ही रुप है । इस प्रकार छायावादी कवियों की उक्ति-वक्रता अभिनव प्रतीत होती हुई भी भारतीय काव्य-परंपरा से जुड़ी हुई है । छायावादी कवियों में जयशंकर प्रसाद ने प्राचीन भारतीय साहित्य एवं काव्य सिद्धान्तों का गहरा अध्ययन किया था, जिसका प्रमाण उनकी' काव्यकला तथा अन्य निबंध' नाम्नी पुस्तक है । अन्य कवियों के संबंध में यह संभावना की जा सकती है कि शास्त्रीयता के प्रति विराग के फलस्वरुप उन्होंने विधिवत् वक्रोक्ति सिद्धान्त का अध्ययन करके काव्य रचना नहीं की, तथापि उनमें विशिष्ट कवि प्रतिभा थी जिसके फलस्वरुप उन्होंने विभिन्न साधन अपनाकर अपनी अभिव्यंजना को प्रभाव शाली तथा आकर्षक रुप दिया, और कुंतक का सिद्धान्त इतना व्यापक है कि वह सभी को अपने में समाहित कर लेता है । भारतीय काव्यशास्त्र में काव्य रीतियों को अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त रहा है ।

काव्य-रीति -

' वामन' ने विशिष्ट पद रचना को' रीति की संज्ञा दी है[2]

१- नगेन्द्र - हिन्दी वक्रोक्तिजीवित - भूमिका,पृष्ठ ५४ -
' काव्य में जो कुछ सुन्दर चमत्कारपूर्ण अथवा अलंकृत है वह सब वक्रता का ही चमत्कार है ।'

२- वामन - काव्यालंकार १।।२।।७
' विशिष्टपद - रचना रीति :'

इसी को" पंथ" और" मार्ग" भी कहा गया है । आनंदवर्धन ने" रीति" को
" संघटना" कहा है, अर्थात् काव्य के अन्तर्गत रीति का संबंध उत्कृष्ट संघटना से है ।
सम्यक् पद रचना ही" संघटना" या" रीति" है जो गुणों के आश्रित होकर रसादि
की अभिव्यक्ति करती है ।[1] यद्यपि प्रारंभ में काव्य रीतियों का विभाजन भौगोलिक
आधार पर किया गया था और उनके गौड़ी मागधी, पांचाली वैदर्भी आदि नाम
दिये गये थे ; किन्तु भामह और उनके बाद के आचार्यों ने भौगोलिक आधार पर
किये गए इस विभाजन को अवैज्ञानिक ठहराया । कालान्तर में कुन्तक ने कवि स्वभाव
को रीतियों का स्वरूप -निर्धारक मूल तत्व ठहराया और उसके मुख्य दो मार्ग-
सुकुमार और" विचित्र" बतलाए तथा इन दोनों के मध्य उभयात्मक गुणों से युक्त
एक और मार्ग मध्यम मार्ग" बतलाया ।

कुन्तक के द्वारा काव्य रीतियों का मूलाधार" कवि स्वभाव" को
ठहराए जाने के फलस्वरूप काव्य रीतियों का संबंध शैली पक्ष से स्वतः जुड़ जाता है,
क्योंकि प्रत्येक कवि अपने स्वभाव के अनुरूप ही अपनी रचनाओं में शब्द अथवा पद
संघटना करता है । कवि के स्वभाव, अथवा उसके आन्तरिक घात-प्रतिघात के
परिणाम स्वरूप ही उसकी भाषा एक निश्चित सांचे में ढलती है जिसके माध्यम से
वह विशिष्ट प्रकार की पद रचनायें करता है । यद्यपि छायावादी कवि सैद्धान्तिक रूप
से रीतिवाद के प्रति आस्थावान नहीं थे,तथापि काव्य रीतियों का काव्य के
अभिव्यंजना- पक्ष से स्पष्ट संबंध रहने के कारण छायावादी काव्य-शैली के इस
विवेचन के अन्तर्गत काव्य-रीतियों की दृष्टि से भी उसका मूल्यांकन प्रासंगिक होगा ।

<u>सुकुमार मार्ग :</u>

सुकुमार मार्ग" वैदर्भी रीति तथा" मम्मट" द्वारा बताई गई
" उपनागरिका-वृत्ति" का समानार्थी है ।" सुकुमार मार्ग" मुख्यतः माधुर्य गुणाश्रित
है, अर्थात् मनोहर , मसृण समास रहित पद-विन्यास सुकुमार मार्ग का मूलाधार है।
इसकी शब्दावली में तुरन्त अर्थ- प्रतिपादन की क्षमता के साथ साथ लावण्य,

---

१- आनंदवर्धन - ध्वन्यालोक - ३।।५।।

" सा संघटना रसादीन् व्यनक्ति गुणानाश्रित्य तिष्ठतीति ।"

आभिजात्य, अतिपेलवता आदि गुण भी अपेक्षित रहते हैं ।[१] छायावादी काव्य की पद रचनागत विशेषताओं को दृष्टि में रखते हुए उसे सुकुमार मार्ग के बहुत निकट कहा जा सकता है । भाषा-विवेचन के संदर्भ में छायावादी काव्यभाषा में माधुर्यगुण की प्रमुखता की चर्चा हो चुकी है । माधुर्य-गुण की प्रधानता ही छायावादी काव्य को कुन्तक निरूपित सुकुमार मार्ग से सम्बद्ध करती है । यहाँ कुछ उदाहरण ही पर्याप्त होंगे -

आह रे, वह अधीर यौवन
अधर में वह अधरों की प्यास
नयन में दर्शन का विश्वास ,
धमनियों में आलिंगनमयी
वेदना लिये व्यथायें नयी
टूटते जिससे सब बन्धन
सरस सीकर से जीवन कन
बिखर भर देते अखिल भुवन
वही पागल अधीर यौवन ।[२]

यहाँ छोटे छोटे , असमस्त पदों और प्रसाद गुण युक्त भाषा के संयोजन द्वारा माधुर्य की पुष्टि हुई है । इसी प्रकार -

सौरभ भीना, भीना गीला
लिपटा मृदु अंजन सा दुकूल ।
चल अंचल से भर भर भरते ,
पथ में जुगनू के स्वर्ण फूल ।
दीपक से देता बार बार
तेरा उज्ज्वल चितवन -विलास
रूपसि तेरा घन केश- पाश ।[३]

नादमयी वर्ण-योजना और कोमल सगुण आभिजात्यपूर्ण शब्द-गुम्फन यहाँ बाह्य और आन्तरिक दोनों प्रकार के माधुर्य की उत्पत्ति में सहायक

१- कुन्तक- हिन्दी वक्रोक्ति जीवित, प्रथमोन्मेष,कारिका,३०,३२-३३ ।
२- जयशंकर प्रसाद , लहर, पृष्ठ २१ ।
३- महादेवी वर्मा - यामा - नीरजा , पृष्ठ १४० ।

हुआ है ।

लघु मृदुल वर्णों और समास रहित पदों की योजना द्वारा अपनी रचनाओं में अपूर्व माधुर्य की सृष्टि करने में पंत को विशेष सिद्धि प्राप्त है । उदाहरणार्थ

" अधर मर्मरयुत , पुलकित अंग
चूमती चलपद चपल तरंग
चटकतीं कलियाँ पा भ्रू भंग
थिरकते तृण तरु पात । "[1]

सारांशत: " सुकुमार मार्ग " की अपेक्षित प्राय: सभी मुख्य तत्व जैसे मनोहर वर्ण विन्यास , श्रुतिपेशलता, ललित, कोमल, सुकुमार शब्दावली, अभिजात भाषा तथा लघु असमस्त पद योजना आदि, छायावादी काव्य में प्रचुर परिमाण में प्राप्य है । अत: शास्त्रीय दृष्टि से छायावादी काव्य शैली मुख्यत: वैदर्भी है, किन्तु छायावादी कवियों की रूढ़ि विरोधी प्रवृत्ति को दृष्टि में रखते हुए उनके पद रचनागत सौन्दर्य एवं सौकुमार्य को शास्त्रीयता का प्रतिफलन न मानकर उनकी विशिष्ट काव्य प्रतिभा का उन्मेष मानना अधिक उपयुक्त होगा ।

शास्त्रीय दृष्टि से " विचित्र मार्ग " अथवा " गौडीया " रीति " और " मध्यम मार्ग " अथवा पांचाली रीति " के अन्तर्गत आनेवाली रचनाएँ भी छायावादी काव्य में उपलब्ध हो सकती हैं, किन्तु वे अपेक्षाकृत नगण्य ही हैं ।

सारांशत: छायावादी काव्य की शैली सरल, अभिधात्मक और निरायास न होकर वैचित्र्यमयी आयास-गठित और कवि कौशल से संवलित विविध प्रयोगों से पूर्ण है । उसकी वक्र भंगिमाओं का मूल रूप " कुंतक " द्वारा प्रतिपादित भारतीय साहित्य शास्त्र के वक्रोक्तिवाद " में प्राप्य है । अपनी कलागत जागरूकता का परिचय देते हुए छायावादी कवियों ने अभिव्यंजना में नवीन चमत्कारोत्पादन हेतु विविध साधनों का आश्रय लिया है । नाद सौन्दर्य युक्त नूतन वर्ण योजनायें समास भाषा, शब्दों के कलात्मक प्रयोग, शब्दावृत्ति, सांकेतिकता, प्रतीक पद्धति, बिम्ब योजना, लक्षणा और व्यंजना के चमत्कारी प्रयोग, व्याकरण संबंधी अनेक प्रकार की नवीनतायें अपनाकर इन्होंने अपनी पद-योजना को अपूर्व क्रम-विन्यास प्रदान किया है,

१- सुमित्रानन्दन पन्त - आधुनिक कवि " वायु के प्रति " पृष्ठ ४६ ।

तथा पूर्ववर्ती युगों से सर्वथा भिन्न एक नवीन अभिव्यंजना प्रणाली को जन्म दिया है। जिन प्रसाधनों अथवा उपकरणों के द्वारा छायावादी अभिव्यंजना में नवाकर्षण का समावेश हुआ है, उनमें से अधिकांश के मूल रूप हिन्दी काव्य परंपरा में खोजे जा सकते हैं। छायावादी कवियों की सिद्धि उन बिखरे हुए तत्वों के संकलन और अपनी प्रतिभा के संस्पर्श द्वारा उन्हें पुनर्जीवित करके उनके नव-संयोजन में है।

छायावादी काव्य शैली मुख्यतः चित्रात्मक तथा बिम्बमयी है किन्तु स्थूल रूप रेखाओंवाले चित्रों की अपेक्षा छायांकन छायावादी काव्य की विशेषता है। व्यक्तित्व-भेद से एक ही युग एवं प्रवाह के विभिन्न कवियों की शैलियों में अन्तर आ जाना स्वाभाविक है, अतएव छायावादी शैली की विवेचित सामान्य विशेषताओं के अतिरिक्त, छायावादी कवियों की कुछ व्यक्तिगत विशेषतायें भी रही हैं जैसे निराला की शैली ओजमयी है और उसमें पौरुष की दीप्ति झलकती है। प्रसाद की शैली में सरसता विशेष रूप से है, और महादेवी तथा पंत की शैलियों में मधुरता स्निग्धता और सुकुमारता के गुणों का प्राधान्य है।

शैली का स्वरूप कवि के व्यक्तित्व द्वारा निर्मित होता है और व्यक्तित्व के नियामक तत्व कवि विशेष के विचार तथा आदर्श होते हैं। इसका पहले भी संकेत किया जा चुका है। छायावाद के प्रारंभिक कवियों में विचारों का जैसा औदात्य दिखाई देता है वह बाद के कवियों में अप्राप्य है। बाद के कवि "व्यक्तिवाद" से आगे बढ़कर अहंवाद के उपासक बन गए थे। इसीलिए छायावाद युग के पूर्वार्द्ध में शैलीगत विशदता और औदात्य अपेक्षाकृत अधिक है।

छायावादी काव्य शैली अन-साध्य और प्रायोगिक प्रवृत्ति से पूर्ण होने के परिणामस्वरूप कहीं कहीं क्लिष्ट और दुरूह भी बन गई है। कालान्तर में इसकी पुनर्प्रतिक्रिया हुई। छायावादी-शैली को नया मोड़ देनेवालों में हरिवंशराय बच्चन का नाम विशेष उल्लेखनीय है। कथन में वैचित्र्य उत्पन्न करने के बदले "बच्चन" ने अपनी अनुभूति को सहृदय तक पहुंचाने के लिये सरल और सुबोध भाषा को अपनाया है।

आगे चलकर नरेन्द्र, नेपाली, भगवती चरण वर्मा प्रभृति कवियों ने भी बच्चन का ही अनुसरण किया। इनकी शैली में विराटता न होते हुए भी यथार्थ का तीखापन और प्रभाव क्षमता विशेष रूप से है। निराला की बाद की रचनाओं में

भी शैली का सरल रूप ही ग्राह्य हुआ है । इस प्रकार उत्तर छायावादी कवियों ने प्रसाद, पंत आदि की परंपरा से हटकर काव्य शैली का पुनर्गठन किया, जिसमें उक्ति कला के स्थान पर मन पर सीधी चोट करने की शक्ति अधिक है ।

स्वच्छंदतावादी और रूढ़ि विरोधी होने के कारण छायावादी कवियों का अनुकरण की इच्छा वश किसी पूर्व निर्धारित पद्धति से बंधकर चलना संभव नहीं था, अपनी विशिष्ट काव्य प्रतिभा के आधार पर उन्होंने अपने मनोनुकूल नवीन रचना-शैली का निर्माण किया, जो उनके स्वच्छंदतावादी नवीन विचारों और अनुभूतियों को प्रभावशाली रूप में अभिव्यक्ति दे सके ; तथापि छायावादी शैली की आन्तरिक गठन का शास्त्रीय सिद्धान्तों के आलोक में अध्ययन करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि छायावादी- काव्य भारतीय काव्य-परंपरा से विच्छिन्न नहीं है ।

अध्याय - ७

छायावादी काव्य में कल्पना तत्व और अलंकार - विधान

(क) छायावादी काव्य में कल्पना का स्वरूप

मानव- आत्मा के शिल्पी कवि के पास उसकी सब से महत्वपूर्ण शक्ति कल्पना- शक्ति होती है जिसके सहारे वह अपनी अनुभूति को शब्दों के माध्यम से सहृदय तक पहुंचाता है। वस्तुत: कवि की प्रखर और क्रियाशील कल्पना शक्ति ही उसे सामान्य मानव से विशिष्ट बनाती है। कविता के अनुभूति पक्ष तथा अभिव्यक्ति पक्ष दोनों में ही कल्पना शक्ति का योग रहता है।

अंग्रेजी-कवि वर्ड्सवर्थ के अनुसार कविता सशक्त अनुभूतियों का अनायास प्रवाह है जो शान्ति के क्षणों में स्मृति के द्वारा उद्भूत होता है।[1] अर्थात् उत्तेजना को स्थिति में कविता नहीं लिखी जा सकती। कवि के मानस में देखी हुई वस्तुओं अथवा दृश्यों से संबंधित अनेक बिम्ब पड़े रहते हैं - (भारतीय काव्यशास्त्र की दृष्टि से इन्हें ही हम स्थायी भाव कह सकते हैं) कवि शान्ति और एकान्त के क्षणों में मस्तिष्क में पड़े हुए उन विभिन्न बिम्बों में से भावयित्री कल्पना और स्मृति के द्वारा उचित बिम्बों का चुनाव करके धारणा (Attitude) और भावना (Emotion) को जन्म देता है, और कारयित्री प्रतिभा की सहायता से इनको अभिव्यक्त करता है। भाव के अनुरूप भाषा, शब्द,छंद, लय आदि उसे कारयित्री कल्पना के द्वारा स्वत्व ही प्राप्त हो जाते हैं और इस भांति रचनाकार की

1. "All good poetry is spontanious overflow of powerful feelings. It takes its origine from emotions recollected in tranquility."

   - Wordsworth - Preface of Lyrical Ballads.

हृदयगत भावना कल्पना की सहायता से शब्दों में मूर्त होकर अन्य जनों के हृदय को प्रभावित करती है। पाठक या श्रोता भी कवि द्वारा संप्रेषित भाव को कल्पना द्वारा ही ग्रहण करता है क्योंकि कविता में वर्णित भावों,दृश्य आदि उसके सामने प्रत्यक्ष नहीं होते, वह अपने हृदय में उनकी कल्पना करके ही कवि की अनुभूतियों से अपना तादात्म्य स्थापित करता है।

कल्पना के सहारे कवि अपने मानसिक चित्रों में अन्य विविध अनदेखे चित्रों का मिश्रण करके नए नए चित्रों का निर्माण करता है,चित्र को सशक्त बनाने हेतु उचित भाषा का चयन करता है, आकर्षण और प्रभाव वृद्धि के लिए छंदों में काट-छांट और लय में परिवर्तन करता है। इस प्रकार कवि के संपूर्ण कार्य व्यापार में कल्पना शक्ति उसकी सहयोगिनी निर्देशिका और सहचरी रहती है। कल्पना के बगैर कवि की भावना भी पंगु रहती है। भावना कल्पना को नव निर्माण के लिए प्रेरित करती है और कल्पना भावना के अनुरूप अभिव्यक्ति के साधन, काव्यरूप (Pattern) आदि का चयन करती है। जिस कवि की कल्पना शक्ति जितनी तीव्र होती ,उसका भाषा भण्डार भी उतना ही विस्तृत होता है और शब्द उसके अनुगामी होते हैं। भाषा को प्रभाव शक्ति और आकर्षण में वृद्धि के लिए उचित अलंकार भी ऐसे कवि को स्वत: प्राप्त हो जाते हैं। इस प्रकार काव्य के समस्त तत्वों का समावेश कल्पना तत्व के अन्तर्गत हो जाता है। कल्पना काव्य का सर्वाधिक महत्वपूर्ण और अनिवार्य तत्व है। योरोपीय साहित्य मीमांसा और संस्कृत साहित्य शास्त्र दोनों में ही कल्पनातत्व को अत्यंत महत्वपूर्ण माना गया है।

काव्य का अनिवार्य तत्व होने के नाते हिन्दी कविता के प्रत्येक युग में कल्पना का समादृत रूप, अभिव्यक्ति की नवीन प्रणालियों,भाषा, छन्द,अलंकारादि के आकार-प्रकार के माध्यम से प्रकट होता रहा है। किन्तु छायावाद युग में कल्पना को जितना अधिक महत्व मिला, उतना संभवत: किसी अन्य युग में नहीं। इस युग के कवियों के लिये कल्पना अनुभूति से भी अधिक सत्य हो गई। छायावादी काव्य की शिल्प गत समृद्धि बहुत कुछ इन कवियों की उर्वर कल्पना शक्ति के ही आश्रित है। कल्पना से अतिशय प्रेम के फलस्वरूप निराला ने कविता को "कल्पना के कानन की रानी" कहकर संबोधित किया तथा पंत ने अपनी रचनाओं (पल्लव) को "कल्पना के ये विह्वल बाल" कहा। छायावादी कविता के कल्पनातिशय्य के परिणाम स्वरूप आलोचक वर्ग ने भी छायावादी कविता और कल्पना को एक दूसरे का पर्याय मान

लिया तथा आगे चलकर यह कल्पना मोह ही शब्द मोह, चित्र-मोह आदि के रूप में प्रकट होकर छायावादी काव्य की प्रगति के लिए क्षति कारक सिद्ध हुआ ।

छायावादी कवि ने कल्पना के पंखों पर आरूढ़ होकर वर्तमान में ही भूत और भविष्य दोनों की भावात्मक यात्रा की है । अतीत के लोक में पहुंचकर वहां की सुख-दुख पूर्ण झांकियों में वह अपने आपको खो देता है, दूसरी ओर, भविष्य के सुख स्वप्नों को अपने काव्य में संजोकर वर्तमान की परिस्थितियों से ऊपर उठने के लिए भी सचेष्ट दिखाई देता है । कल्पना शक्ति के सहारे ही वह अनंत आकाश में उड़ता हुआ आनंद लोक की सृष्टि करता है तथा सृष्टि की नाना वस्तुओं के अन्तर में प्रविष्ट होकर उनके सूक्ष्म रहस्यों का उद्घाटन करता है । `यमुना` को देखकर उसके सौन्दर्य से विमोहित रीतिकालीन कवि बिहारी केवल इतना ही कह सके-

> "सघन कुंज छाया सुखद, शीतल मंद समीर ।
> मन है जात अजौं वहै, वा जमुना के तीर ।।"[1]

किन्तु छायावादी कवि निराला जब यमुना को देखते हैं तो उनके हृदय में अतीत के असंख्य मधुर स्मृति चित्र सहसा उभर आते हैं, अत: वे पूछ बैठते हैं - कहां है आज वह वंशीवट, कहां है वे करील कुंज , जहां कभी नटनागर श्याम की वंशी का मादक संगीत गूंजता था ? वह रास लीलायें कहां गईं ? वह हास-विलास क्या हुआ ? वह पनघट आज कहां है जो कभी सुन्दरी ब्रजांगनाओं के चरणों की सुमधुर नूपुर ध्वनि से नित्य मुखरित होता था ?

> " बता कहां अब वह वंशीवट
> कहां गए नटनागर श्याम ?
> चल चरणों का व्याकुल पनघट
> कहां आज वह वृन्दाधाम ?"[2]

1- लाला भगवानदीन - बिहारी बोधिनी, दो० नं० ५ पृष्ठ 2 ।

2- सूर्यकान्त त्रिपाठी `निराला` - परिमल, यमुना के प्रति , पृष्ठ ९६ ।

कवि की कल्पना-तूलिका द्वारा इन पंक्तियों में " यमुना " का सर्वथा रूप निखर उठा है । स्पष्टत: निराला द्वारा चित्रित यह यमुना वास्तविक न होकर कल्पना कल्पित है और उसका स्रोत हिमालय पर्वत नहीं, कल्पना का अतीत -शिखर है । यमुना की ओर स्नेह मुग्ध दृष्टि से देखते हुए उसके अतीत दिवसों को लौटा लाने की जो आकुल आकांक्षा इस कविता में झलकती है वह कल्पना का ही एक व्यापार है ।

कल्पना की नव्यता :-

महादेवी की " यामा " इन्द्रधनुषी मनोरम कल्पनाओं का विस्तृत कोष कही जा सकती है । रश्मियों की रजतधारा, धुनहले अश्रुओं के हार, संध्या के शुभ्र मुख पर किरणों की फुलझड़ियां, चन्द्रमा की चाँदी की थाली , मरकत का सिंहासन नभ की दीवालियाँ, चाँदनी का मधुर-श्रृंगार , नीलम रज भरे चुनरी के रंग , अरुण सजल पाटल, मृदु पराग की रोली , रजत श्याम तारों की शुभ्र जाली, मंद मलयानिल के उच्छ्वास, तारकमय नव वेणी बंधन, शशि का नूतन शीशफूल अलिगुंजित पद्मों की किंकिणी, नीलम मंदिर की हीरक प्रतिमा सी चपला और छिन्न मुक्तावलियों के अभिराम वंदनवार । एक से बढ़कर एक रंगीली और अनूठी कल्पनायें अनायास हृदय को मोह लेती हैं ।

छायावाद के अन्य कवियों की तुलना में पंत के काव्य में कल्पना वैभव सब से अधिक है । पंत का " बादल " अपनी कल्पना बहुलता में कालिदास के " मेघदूत " को समकक्षता करता है । मेघदूत में मनोरम उपमाओं, उत्प्रेक्षाओं की प्रचुरता है फिर भी महाकवि वास्तविकता को भूल नहीं पाते । रामगिरि से कैलाश तक मेघ से सैर कराने के बहाने भारत के प्राकृतिक वैभव और सांस्कृतिक गौरव का दिग्दर्शन कराना उनका लक्ष्य रहा है, किन्तु पंत का " बादल " धरती से सर्वथा अनजान , अपने ही क्रीड़ा कौतुक में मग्न दिखाई देता है -

" कभी चौकड़ी भरते मृग से, भू पर चरण नहीं धरते ।
मत्त मतंगज कभी झूमते, सजग शशक नभ में चरते ।।
कभी क्रोध से अनिल डाल में नीरवता से मुंह भरते ।
वृहद गृद्ध से विहग छंदों को बिखराते नभ में तरते ।।

\+ \+ \+ \+

हम सागर के धवल हास है, जल के धूम, गगन की धूल ।
अनिल फेन, ऊषा के पल्लव, वारि-वसन, वसुधा के मूल ।।

\+ + + +

व्योम बेलि, ताराओं की गति, चलते अचल, गगन के गान ।
हम अपलक तारों की तन्द्रा, ज्योत्स्ना के हिम, शशि के यान
पवन धेनु, रवि के पांशुल श्रम, सलिल अनल के विरल वितान
व्योम पलक जल खग बहते थल, अंबुधि की कल्पना महान ।।" [1]

पंत से पूर्व " बादल " के इतने नए नए रूपों का उद्घाटन शायद ही किसी अन्य कवि ने किया हो । कल्पना शक्ति के ही सहारे निराला ने भी बादल को सर्वथा नवीन दृष्टि से देखा है -

" सिन्धु के अश्रु
धरा के खिन्न दिवस के दाह
विदाई के अनिमेष नयन ।" [2]

छायावादी कवियों की कल्पना की नव्यता ही नहीं कल्पना की सूक्ष्मता, सुकुमारता और सुंदरता भी अवलोकनीय है, जैसे -

" ऊषा की पहली लेखा कान्त, माधुरी से भीगी भर मोद ।
मद भरी जैसे उठे सलज्ज, भोर की तारक द्युति की गोद ।।
कुसुम कानन अंचल में मंद पवन प्रेरित सौरभ साकार ।
रचित परमाणु पराग शरीर, खड़ा हो ले मधु का आधार ।।
और पड़ती हो उस पर शुभ्र नवल मधु राका मन की साध ।
हंसी का मद विह्वल प्रतिबिम्ब, मधुरिमा खेला सदृश अबाध ।।" [3]

केवल मधुर वस्तुओं और मधुर दृश्यों के चित्रण में ही नहीं, अन्य प्रकार के चित्रणों में भी छायावादी कवियों की कल्पना शक्ति की अपूर्व उर्वरता लक्षित होती है । प्रसाद ने " कामायनी " में ऐतिहासिक तथ्यों में कल्पना

1- सुमित्रानन्दन पन्त - आधुनिक कवि, पृष्ठ २५-२७ ।

2- सूर्यकान्त त्रिपाठी " निराला " - परिमल, बादलराग (3) पृष्ठ १७९ ।

3- जयशंकर प्रसाद - कामायनी, श्रद्धासर्ग, पृष्ठ ५५-५६ ।

के रंगो का मिश्रण करके मानवता के विकास का जो रूपक प्रस्तुत किया है, वह अपनी भावमयता और कलात्मकता दोनों में ही अनुपम है। कामायनी में प्रलय के दृश्य का जो प्रभावशाली वर्णन प्रसाद ने किया है, वह सर्वथा मौलिक तथा प्रसाद की कल्पना-शक्ति का सशक्त प्रमाण है।

छायावाद से पूर्व हिन्दी के मध्ययुगीन कवियों ने कल्पना के माध्यम से असंख्य मार्मिक उपमायें एवं अप्रस्तुत, प्रस्तुत करके अपनी प्रतिभा का परिचय दिया है, तथापि छायावादी काव्य में उपलब्ध होनेवाली उपमायें तथा अप्रस्तुत कहीं कहीं सर्वथा नूतन, अभूतपूर्व और मनोमुग्धकारी हैं। छायावादी अप्रस्तुत विधान का आगामी पृष्ठों में विस्तृत विश्लेषण किया जाएगा अत: यहां पर एक ही उदाहरण पर्याप्त होगा -

" नील परिधान बीच सुकुमार
खुल रहा मृदुल अधखुला अंग।
खिला हो ज्यों बिजली का फूल
मेघ वन बीच गुलाबी रंग।।"[1]

मेघों का वन, उसमें बिजली का फूल खिलना, कितनी अनूठी कल्पना है तत्पश्चात उस फूल के गुलाबीपन का संकेत करके कवि ने अपनी सूक्ष्म दृष्टि का परिचय दिया है।

रीतिकाल के कवि केशवदास की रचनाओं में अत्यंत सूक्ष्म कल्पनायें उपलब्ध होती हैं किन्तु उनमें क्लिष्टता बहुत अधिक है। उनसे बुद्धि ही चमत्कृत होती है हृदय प्रभावित नहीं होता। केशव ने जैसे पांडित्य प्रदर्शन का लक्ष्य लेकर ही सायास चमत्कारपूर्ण उक्तियां की हैं। दूसरी ओर बिहारी सदृश कवियों ने कल्पना वैचित्र्य के उत्साह में बहुधा संपूर्ण वर्णन प्रसंग को ही हास्यास्पद बना दिया है जैसे बिहारी की एक नायिका के रूप का प्रकाश इतना तीव्र है कि उसके मोहल्ले में पूर्णिमा और अमावस्या का कुछ भेद ही नहीं मिलता, केवल 'पत्रा' के द्वारा ही वहां तिथि का ज्ञान संभव है।[2]

1- जयशंकर प्रसाद - कामायनी, श्रद्धासर्ग, पृष्ठ ५४।

2- पत्रा ही तिथि पाइये वा धर कै चहुं पास।
निसदिन पून्यौई रहत आनन ओप उजास।।
लाला भगवानदीन- बिहारी बोधिनी, दोहा 102।

छायावादी कवियों की सिद्धि इसी में है कि अपवादों को छोड़कर अधिकांश स्थलों पर उनकी रचनायें कल्पना बहुला होती हुई भी भावना से अपना संबंध बनाए रखती है, अतएव उनमें प्रभाव क्षमता बनी रहती है। प्रसाद की कल्पनाओं की सरसता, पंत की कल्पनाओं की सूक्ष्मता-सुकुमारता, महादेवी की कल्पनाओं की रंगीनी और निराला की कल्पनाओं की सशक्तता (बिम्ब विधान के रूप में) छायावादी काव्य का सौन्दर्य वर्धन करने के साथ साथ हमारे हृदय को भी स्पर्श करती है तथा वर्ण्य-विषय के रूप को मानस-प्रत्यक्ष करती है।

इस सन्दर्भ में नामवर सिंह के यह विचार उपयुक्त प्रतीत होते हैं कि " कविता में भावाभिव्यंजन और कल्पना-कलन पहले भी हुआ है परन्तु भाव प्रबलता से प्रेरित कल्पना शक्ति का जो वैभव छायावादी कविता में दिखाई पड़ा, वह अभूतपूर्व है।[1]

कल्पना और भावना के एकीकरण का एक उदाहरण द्रष्टव्य है

" अरुण अधरों की पल्लव प्रात,
मोतियों सा हिलता हिम हास।
इन्द्रधनुषी पट से ढंक गात
बाल विद्युत का पावस-लास;
हृदय में खिल उठता तत्काल
अध खिले अंगों का मधुमास,
तुम्हारी छवि का कर अनुमान
प्रिये, प्राणों की प्राण ! "[2]

छायावाद युग की रचनाओं को देखने से ऐसा आभास होता है कि इस काल में कवियों को सृष्टि के जो पदार्थ अथवा उपकरण सौन्दर्य, माधुर्य, उदात्तता आदि किसी भी गुण में श्रेष्ठ प्रतीत हुए, उन्हीं को उन्होंने कल्पना की संज्ञा दे दी अथवा कल्पना शक्ति द्वारा नवीन उपमा उत्प्रेक्षादि द्वारा उन्हें सजाया। जैसे पंत बादल को " अंबुधि की कल्पना महान"[3] विपुल कल्पना से त्रिभुवन की[4] छाया "

1- नामवर सिंह - आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियां - छायावाद, पृष्ठ ९४ ।

2- सुमित्रानन्दन पन्त - गुंजन, पृष्ठ ४१-४२ ।

3- सुमित्रानन्दन पन्त - पल्लव, बादल, पृष्ठ ८१ ।

4- सुमित्रानन्दन पन्त - पल्लव, बादल, पृष्ठ ७७ ।

को गूढ़ कल्पना सी कवियों की [1], अनंग को प्रथम कल्पना कवि के मन में [2] तथा अप्सरा को निखिल कल्पनामयि अयि अप्सरि, [3] कहकर संबोधित करते हैं। प्रसाद भी हिमालय के उदात्त स्वरूप को चित्रित करने हेतु विश्व कल्पना सा ऊँचा ---- [4] उपमान चुनते हैं।

वस्तुतः कल्पना ने ही छायावादी कवियों को रहस्यदर्शी बनाया, उन्हें सूक्ष्म अंतर्दृष्टि देकर साधारण और चिरपरिचित वस्तुओं में छिपे सौंदर्य को उद्घाटित करने की क्षमता दी तथा नवीन अप्रस्तुतों, नवीन उपमानों और नवीन प्रतीकादि की योजना द्वारा काव्य के संपूर्ण स्वरूप को आकर्षक बनाने की सामर्थ्य दी।

कल्पना-मोह ने ही छायावादी कवियों को अतीत प्रेमी और बहुत कुछ स्वप्नजीवी भी बना दिया। यही नहीं इन कवियों द्वारा जिन पात्रों की सृष्टि हुई वे भी अत्यंत भावुक, कल्पनाप्रिय और स्वप्न जीवी प्रतीत होते हैं। निराला कृत " राम की शक्ति पूजा " के " राम " तथा गोस्वामी तुलसीदास के " मानस " के " राम " की तुलना द्वारा इस कथन की सार्थकता सिद्ध हो सकती है। प्रसाद की " कामायनी " के नायक " मनु " भी आह भरते हुए -

" आह कल्पना का सुन्दर यह
जगत मधुर कितना होता।
सुख स्वप्नों का दल छाया में
पुलकित हो जगता सोता।" [5]

कहकर किसी कल्पनालोक की ओर ही संकेत करते हैं।

१- सुमित्रानन्दन पन्त - पल्लव, छाया, पृष्ठ ५५।
२- सुमित्रानन्दन पन्त - पल्लव, अनंग, पृष्ठ ३०।
३- सुमित्रानन्दन पन्त - गुंजन, अप्सरा, पृष्ठ ६२।
४- जयशंकर प्रसाद - कामायनी, आशासर्ग, पृष्ठ ३७।
५- जयशंकर प्रसाद - कामायनी, आशासर्ग, पृष्ठ ४५।

अनेक स्थलों पर छायावादी कविताएं कल्पनातिरेक से ग्रसित दिखाई देती है। कवियों की कल्पना प्रवण दृष्टि कहीं-कहीं अत्यंत गूढ़ रहस्यमयी और दुर्बोध हो उठी है जिसके द्वारा बहुत से निरर्थक और अस्पष्ट भाव चित्रों की भी सृष्टि छायावादी काव्य में हुई है। उदाहरणार्थ पंत की स्याही की बूंद कविता को निम्न उद्धृत पंक्तियां द्रष्टव्य है :-

" गीत लिखती थी मैं उनके
अचानक यह स्याही की बूंद
लेखनी से गिरकर सुकुमार
गोल तारा सा नभ से कूद
खोजने को क्या स्वर का तार
सजनि आया है मेरे पास ?
+ + +
योग का सा यह नील तार
ब्रह्म माया का सा संसार
सिन्धु सा घट में यह उपहार
कल्पना ने क्या दिया अपार
कली में छिपा वसंत विकास।"[1]

यह स्याही की छोटी सी बूंद 'बिन्दु में सिन्धु' की उक्ति को चरितार्थ करती है। इससे कवि की कल्पना शक्ति की उर्वरता अवश्य प्रमाणित होती है तथापि इसे श्रेष्ठ कविता का उदाहरण नहीं माना जा सकता। इसमें मर्म-स्पर्शिता कम और वाग्विलास ही अधिक दिखाई देता है। परन्तु आंसू, लहर, कामायनी, तुलसीदास, गीतिका, गुंजन प्रभृति रचनाओं को देखते हुए यह असंदिग्ध है कि छायावादी काव्य में कल्पना के अनौचित्यपूर्ण क्षतिकारक प्रयोगों की तुलना में उसके गौरव और प्रभाव में वृद्धि करनेवाले औचित्यपूर्ण और अनूठे कल्पना प्रयोगों का प्राचुर्य है।

कल्पना ने छायावादी कविताओं में 'वस्तु' को नया निखार दिया है, साथ ही अलंकारों, प्रतीकों आदि के माध्यम से उसके शिल्पगत सौन्दर्य में भी वृद्धि की है।

1- सुमित्रानन्दन पन्त - पल्लव, पृष्ठ ७५-७६।

(स) अलंकार विधान का स्वरूप :-

प्राचीन भारतीय काव्यशास्त्र में वर्णित काव्य की आत्मा से संबंधित पाँच प्रमुख संप्रदायों में से एक अलंकार संप्रदाय भी है । इस संप्रदाय के मुख्य प्रतिपादक दण्डी भामह, मम्मट आदि ने काव्य के अन्तर्गत अलंकार को ही सर्वाधिक महत्वपूर्ण माना क्योंकि वे काव्य की शोभा में वृद्धि करते हैं । अलंकार ` से इन आचार्यों का तात्पर्य उस वैचित्र्य अथवा वचन वक्रता से है जो लोकोत्तर अतिशयोक्ति के कारण उत्पन्न होती है । ` भामह ` के अनुसार केवल नितान्त आदि शब्दों के प्रयोग से वाणी में सौन्दर्य नहीं आता, शब्द और अर्थ में वक्रता होनी चाहिये । यही वक्रता वाणी का अलंकार है ।[1] काव्य के अन्तर्गत इस उक्ति की विचित्रता और अतिशयतापूर्ण कथन को भामह तथा अन्य प्रारंभिक आचार्यों ने अनिवार्य माना क्योंकि इनसे ही काव्य में रमणीयता उत्पन्न होती है । उनके अनुसार कवि के द्वारा इनकी सायास योजना होनी चाहिये ।[2] किन्तु कालान्तर में परवर्ती साहित्य शास्त्रियों ने काव्य में अलंकारों की अनिवार्यता को अस्वीकार करते हुए उन्हें ऐच्छिक तथा रस, भाव आदि के उपकारक रूप में स्वीकार किया ।[3] सुन्दर शरीर को सुन्दर वस्त्रालंकारों से सजा देने पर उसका आकर्षण बढ़ जाता है, किन्तु केवल सुन्दर शरीर होना ही पर्याप्त नहीं है, उसके भीतर आत्मा का होना भी अनिवार्य है । वस्त्राभूषणों के बिना शरीर जीवित रह सकता है, किन्तु आत्मा के अभाव में शरीर निर्जीव हो जाता है । काव्य की आत्मा भाव है और भाषा अथवा शब्द उसका शरीर । जिस प्रकार मानव आत्मा

1- ` न नितान्तादिमात्रेण जायते चारुता गिराम ।
वक्राभिधेयशब्दोक्तिरिष्टा वाचामलंकृति: ।। `
भामह - काव्यालंकार ।। १ ।। ३६ ।।

2- सैषा सर्वैव वक्रोक्तिरनयार्थो विभाव्यते ।
यत्नोऽस्यां कविना कार्य: कोऽलंकारोऽनया विना ।। `
भामह - काव्यालंकार - 2 ।। ८५ ।।

3- शब्दार्थयोरस्थिरा ये धर्मा: शोभातिशायिन: ।
रसादीनुप कुर्वन्तोऽलंकारास्तेऽङ्गदादिवत् ।।
आचार्य विश्वनाथ - साहित्यदर्पण १०।१

और शरीर का अन्योन्याश्रित संबंध होता है, उसी प्रकार काव्य में भाव और भाषा एक दूसरे से सम्बद्ध रहते हैं। यह संबद्धता काव्य की सफलता के लिये अनिवार्य है। कवि भावों की सफल और सशक्त व्यंजना के लिये तथा भाषा को भावानुरूप उत्कर्ष देने के लिये अपनी आवश्यकतानुसार अलंकारों का प्रयोग करता है। अर्थात् अलंकार कवि की लक्ष्यसिद्धि में साधन है, साध्य नहीं। काव्य में महत्व वर्ण्यवस्तु अथवा प्रस्तुत का ही होता है, अलंकार अथवा अप्रस्तुत प्रस्तुत के सौन्दर्य प्रसाधन मात्र हैं।

हिन्दी के आधुनिकयुगीन साहित्याचार्यों ने भी अलंकारों के संबंध में इसी प्रकार का मत प्रकट किया है। रामचन्द्र शुक्ल लिखते हैं - कविता में भाषा की सब शक्तियों से काम लेना पड़ता है। वस्तु या व्यापार की भावना चटकीली करने और भाव को अधिक उत्कर्ष पर पहुंचाने के लिए कभी कभी किसी वस्तु का आकार या गुण बहुत बढ़ाकर दिखाना पड़ता है, कभी उसके रूप रंग मिलाकर तीव्र करने के लिये समान रूप और धर्मवाली और वस्तुओं को सामने लाकर रखना पड़ता है। कभी कभी बात को भी घुमा फिराकर कहना पड़ता है। इस तरह के भिन्न भिन्न विधान और कथन के ढंग अलंकार कहलाते हैं। इनके सहारे से कविता अपना प्रभाव बहुत कुछ बढ़ाती है। कहीं कहीं तो इनके बिना काम ही नहीं चल सकता। पर साथ ही यह भी स्पष्ट है कि ये साधन है, साध्य नहीं। साध्य को भुलाकर इन्हीं को साध्य मान लेने से कविता का रूप कभी कभी इतना विकृत हो जाता है कि वह कविता ही नहीं रह जाती।[1]

अलंकारों के काव्यगत महत्व और उनकी रचनात्मकता पर प्रकाश डालने हेतु शुक्ल जी से बढ़कर सरल और सुस्पष्ट व्याख्या संभवत: किसी अन्य समीक्षक ने नहीं की। शुक्ल जी के मत को आधार मानकर कहा जा सकता है कि वर्ण्य वस्तु अथवा मूल भाव को अधिक आकर्षक और प्रभाव शाली रूप में व्यक्त करने के लिए प्रयोग किये जानेवाले कथन के विविध ढंग अथवा भाषा की सौन्दर्य-वृद्धि के साधन ही अलंकार है।

हिन्दी काव्य परंपरा में अलंकार :

सौन्दर्य प्रियता मानव स्वभाव का मूलभूत गुण है और अलंकार सौन्दर्य के वर्धक होते हैं। अतएव अलंकरण की प्रवृत्ति मनुष्य में न्यूनाधिक

१- रामचन्द्र शुक्ल - चिन्तामणि, भाग १, पृष्ठ १८१

परिणाम में चिरकाल से रही है। जीवन की भाँति साहित्य अथवा काव्य में भी अलंकारों का प्रयोग किसी न किसी अंश में प्रत्येक युग में होता रहा है हिन्दी कविता का रीतियुग विशेष रूप से अलंकृति का प्रेमी रहा है। रीतिकालीन आचार्य केशवदास के अनुसार

" जदपि सुजाति सुलच्छनी, सुबरन, सरस, सुवित्त ।
भूषण बिना न राजई, कविता बनिता मित्त ।।[1]

आधुनिक युग के प्रारंभिक काल भारतेन्दु युग तक प्रेम और शृंगार संबंधी रचनाओं में ब्रजभाषा की अलंकारिकता की परिपाटी पूर्ववत चलती रही। किन्तु इसके पश्चात द्विवेदी युग में साहित्य और काव्य के क्षेत्र में सुधारवाद की लहर के फलस्वरूप पूर्ववर्ती युगों की अतिशय अलंकारिकता से भी मुक्ति पाने का प्रयास किया गया। विचारों की उच्चता, सादगी और अनलंकृति ही इस युग के आदर्श माने गए, अतएव कथन का सीधा सादा ढंग ही अपनाया गया। अलंकारों का प्रयोग यदि किया गया तो उतना ही जितना आवश्यक जान पड़ा, उपमायें चुनी गई तो वे ही जो पूर्व परिचित थी। कहीं भी बतबढ़ाव नहीं, जो बात कहना हुई उसे ज्यों की त्यों प्रस्तुत कर दिया गया। यदि प्रकृति चित्रण करना हुआ तो -

" जंबू अंब कदंब निंब फलसा जंबीर औ आमला,
लीची, दाड़िम, नारिकेल इमिली और शिंशपा इंगुदी
नारंगी अमरूद बिल्व बदरी सागौन शालादि भी
श्रेणी बद्ध तमाल ताल कदली औ शाल्मली खड़े थे।"[2]

— लिख देना ही पर्याप्त समझा गया और यदि कोई गंभीर मार्मिक बात कहनी है तो -

" हम कौन थे क्या हो गए हैं और क्या होंगे अभी ।
आओ विचारें आज मिलकर यह समस्यायें सभी"।।[3]

1- (संपादक) लाला भगवान दीन - प्रिया प्रकाश, 1।५५ ।।
2- अयोध्या सिंह उपाध्याय हरिऔध - प्रियप्रवास, नवम सर्ग, पृ0 100
3- मैथिली शरण गुप्त - भारत भारती, पृष्ठ ५ ।

छायावाद काव्य में अलंकार प्रयोग -

छायावाद युग तक आते आते कविता के मापदण्ड बदल गए तथा पुराने काव्यादर्शों के स्थान पर नूतन काव्यादर्श निर्मित हुए । द्विवेदी युग के कवियों की भांति छायावादी कवियों में न तो आत्मगोपन की प्रवृत्ति थी और न सादगी उनका आदर्श था । उनके हृदय में प्रेम और सौन्दर्य का सागर लहरा रहा था, उनमें यौवन सुलभ शृंगार-प्रियता और साज-सज्जा की उमंग थी । इसके अतिरिक्त उपयोगिता की संकुचित सीमा को छोड़कर काव्य कला के क्षेत्र में नए नए प्रयोग करने की ऐसी अदम्य इच्छा उनमें थी, जिसने कविता के सभी अंगों को प्रभावित किया

द्विवेदीयुग की तुलना में छायावाद युग की कविताओं में अलंकारों का प्रयोग बहुलता से हुआ, संभवत: रीतियुग के ही समान । छायावादी कवियों की अलंकार प्रियता इस बात से ही प्रमाणित हो जाती है कि जहां मात्र एक उपमा से काम चल सकता है वहां बहुधा वे अनेक उपमाओं का प्रयोग करते हैं । इस प्रवृत्ति के फलस्वरूप कहीं कहीं वर्ण्य वस्तु उपमाओं से इतनी आच्छादित हो उठती है कि " कविता " और " उपमा " एक दूसरे की पर्याय बन जाती है, जैसे :-

" तरुवर के छायानुवाद सी उपमा सी, भावुकता सी ।
अविदित भावाकुल भाषा सी,कटी छंटी नव कविता सी ।।"[1]

किन्तु ऐसे स्थल छायावादी काव्य में कम ही है जहां अलंकारों के प्रयोग के कारण मूल भावना को क्षति पहुंची हो । अधिकांशत: छायावादी कविताओं में प्रयुक्त होनेवाले अलंकार भावों की प्रेषणीयता और भाषागत सौन्दर्य के वर्धक ही सिद्ध हुए हैं । अतएव अलंकारों का बाहुल्य होते हुए भी छायावादी काव्य-युग को रीति काल का प्रत्यावर्तन नहीं कहा जा सकता । रीतिकाल की स्थूल अलंकार-प्रियता और एक ही प्रकार की उपमाओं अप्रस्तुतों की आवृत्ति के प्रति इन नए कवियों में कितनी विरक्ति थी, इसका अनुमान पंत के प्रस्तुत वक्तव्य से लगाया जा सकता है -

" और इनकी भाषालंकारिता ? जिनकी रंगीन डोरियों में जड़ कविता का हैंगिंग गार्डेन - वह विश्व वैचित्र्य झूलता है जिसके हृदपट पर वह चित्रित है । + + + इन साहित्य मालियों में से जिसकी विलास

1- सुमित्रानन्दन पन्त - पल्लव, छाया, पृष्ठ ४५ ।

वाटिका में आप प्रवेश करें, सब में अधिकतर वही कदली के स्तंभ कमलनाल दाड़िम के बीज, शुक, पिक, खंजन, शंख, सर्प, सिंह, मृग, चंद्र चार आँखें होना, कटाक्ष करना आह छोड़ना रोमांचित होना, दूत भेजना, कराहना, मूर्च्छित होना स्वप्न देखना, अभिसार करना, बस इसके सिवा और कुछ नहीं। + + + +

+ + + भाव और भाषा का ऐसा शुष्क प्रयोग, राग और छंदों की ऐसी एक स्वर रिमझिम, उपमा तथा उत्प्रेक्षाओं की ऐसी दादुरावृत्ति, अनुप्रास एवं तुकों की ऐसी अश्रान्त उपल वृष्टि क्या संसार के और किसी साहित्य में मिल सकती है?[1] + + + + + + + + स्वस्थ वाणी में जो एक सौन्दर्य मिलता है उसका कहीं पता ही नहीं। उस " भूषे पाँय न धरि सकै शोभा ही के भार " वाली ब्रज की बालक सज्जा का सुकुमार शरीर अलंकारों के अस्वाभाविक बोझ से ऐसा दबा दिया गया, उसके कोमल अंगों में कलम की नोक से असंस्कृत रुचि की स्याही का ऐसा गोदना भर दिया गया कि उसका प्राकृतिक रूप रंग कहीं दीख ही नहीं पड़ता है।[2]

अलंकारों के अनावश्यक बोझ से छायावादी काव्य भी बचा नहीं रह सका, इस सत्य की आत्म स्वीकृति स्वयं छायावादी कवि : पंत ने की है - " छायावाद काव्य न रहकर अलंकृत संगीत बन गया।"[3] किन्तु छायावादी कविता और रीतिकालीन कविता के रूप विन्यास में पर्याप्त अन्तर है। जैसा कि नामवर सिंह का कथन है, यह अन्तर " अलंकारों की बहुलता और न्यूनता का नहीं बल्कि उन अलंकारों के पीछे काम करनेवाली रुचि अथवा सौन्दर्य भावना का है। एक के पीछे मध्ययुगीन रुचि है तो दूसरी के पीछे आधुनिक रुचि।"[4]

नवीनता का आधार -

जीवन के बदले हुए परिवेश ने भारतीय समाज का सौन्दर्य विषयक दृष्टिकोण भी बदल दिया था, इस बात का संकेत पूर्व पृष्ठों में किया जा चुका है। नए युग में सौन्दर्य की आन्तरिक और भावात्मक सत्ता मान लेने के कारण कृत्रिमता और अतिरिक्त प्रसाधनों के द्वारा " वस्तु " के बाह्य रूप को सज्जित करने की

1- सुमित्रानन्दन पन्त - पल्लव, भूमिका, पृष्ठ ९-१०।
2- सुमित्रानन्दन पन्त - पल्लव, भूमिका, पृष्ठ २१।
3- सुमित्रानन्दन पन्त - आधुनिक कवि, पर्यालोचन, पृष्ठ १७।
४ - नामवर सिंह - छायावाद, पृष्ठ ८६।

रुचि कवियों में नहीं रह गई। इसीलिए छायावादी कवियों ने अतिशय सौन्दर्य प्रेमी होते हुए भी स्थूलता को नहीं अपनाया। उनकी कविताओं में अलंकार ऊपर से लादे नहीं गए हैं, वरन कथन को प्रभावशाली और भावों को प्रेषणीय बनाने के लिए प्रयुक्त हुए हैं। भावों की प्रेषणीयता तभी संभव है जब उनकी स्वाभाविकता और सहजता रक्षित रहे। छायावादी कवियों ने इस ओर पूरा ध्यान रखने का प्रयत्न किया है। इसी दृष्टिकोण को लेकर पंत का कथन है :-

"तुम वहन कर सको जन-मन में मेरे विचार।
वाणी मेरी चाहिये तुम्हे क्या अलंकार"?[1]

रीतिकाल में संस्कृत कवियों- कालिदास आदि की सामन्ती सौन्दर्य भावना को उसके परंपरागत रूप में ही अपना लिया गया। किन्तु कालिदास और केशव का युग एक नहीं था। अतएव दोनों युगों की प्रवृत्तियों में समता होना भी असंभव था। एक युग की स्वाभाविक प्रवृत्तियां दूसरे युग में यथा रूप अपना लेने पर परिस्थितियों की भिन्नता के कारण सदैव थोपी हुई ही लगेंगी।

रीतिकाल के अधिकांश कवि दरबारी थे। आश्रयदाताओं की प्रशंसा हेतु उनके साधारण ऐश्वर्य को भी खूब बढ़ा चढ़ाकर पूर्वयुगीन सामन्ती वैभव को काल्पनिक चित्रों के रूप में प्रस्तुत करना उनका कर्तव्य-कर्म बन गया था। राजाओं की मनस्तुष्टि के लिये उन्होंने सौन्दर्य और विलास का जो रूप अपने काव्य में अंकित किया, वह बहुत कुछ परिपाटी विहित था, अतएव काव्य के बाह्य उपकरणों में भी नवोन्मेष कम, रूढ़ि पालन अधिक लक्षित होता है। पराधीन हृदय से विकसित होने के फलस्वरूप रीतिकालीन कविता की भावधारा कुछ दब सी गई है और उसमें बुद्धि पक्ष अधिक प्रबल हो गया है। हृदय पक्ष क्षीण होने के कारण उसने जो अलंकार धारण किये वे हृदय की सहज उमंग से नहीं मात्र रीति-निर्वाह के लिये। अतएव शरीर पर होते हुए भी वे उसके अपने नहीं जान पड़ते। सौन्दर्य वर्धन के बदले वे काव्य शरीर और काव्यात्मा - दोनों के लिये भार स्वरूप हो गए हैं। युवतियों का हृदय अंकित करते हुए केशवदास लिखते हैं :-

---

1- सुमित्रानन्दन पन्त - ग्राम्या - 'वाणी', पृष्ठ 103।

"चढ़्यो गगन तरु धाय
दिनकर बानर अरुन मुख।
कीन्हों झुकि झहराय,
सकल तारिका कुसुम बिन।।"[1]

इन पंक्तियों में बुद्धि का बलात्कार ही दिखाई देता है, पाठक मन में संवेदना जाग्रत करने की क्षमता इनमें नहीं है।

रीतिकाल से लेकर छायावाद युग तक की अलंकारिकता पर प्रकाश डालते हुए शान्तिप्रिय द्विवेदी का कथन है - " ब्रजभाषा में कलाकारिता का आतिशय्य हो गया था, कविता अति अलंकृता हो गई थी। जो शोभा के ही भार से दबी हुई थी, वह आभरणों का भार कैसे वहन कर पाती ? कविता को शक्ति देने के लिये द्विवेदी युग खड़ीबोली का पौरुष लेकर आया। छायावाद ने उस पौरुष में अर्द्ध नारीश्वर के नारी अंश की स्नेह स्निग्ध सहृदयता का रसोद्रेक कर काव्य में ब्रजभाषा की रमणीयता बनाए रक्खी। उसने कृत्रिम अलंकारिकता के भार से मुक्त कर तन्वंगी कविता को उसी के अनुरूप कला की सूक्ष्म व्यंजना दे दी।"[2] तात्पर्य यह कि छायावाद के स्वच्छंदता प्रेमी और नवीन सौन्दर्य चेतना से अनुप्राणित कवियों ने अलंकारों की पुरानी परिपाटी को त्यागकर नवीनता का आश्रय लिया। परन्तु नवीनता का यह अर्थ नहीं है कि परंपरागत अलंकारों का सर्वथा बहिष्कार हो गया। हिन्दी काव्य के अनेक चिरपरिचित अलंकार छायावादी काव्य में भी गृहीत हुए हैं किन्तु एक तो उनके प्रयोग के ढंग में नयापन है दूसरे उनकी योजना जानबूझकर, पांडित्य प्रदर्शन के लिये नहीं अर्थोत्कर्ष के लिये हुई है।

अलंकार भेद :

अलंकारों के मुख्य दो भेद माने गए हैं, शब्दों में चमत्कार उत्पन्न करनेवाले अप्रस्तुत विधान को शब्दालंकार और अर्थ में चमत्कार-वृद्धि करनेवाले अप्रस्तुत विधान को "अर्थालंकार" कहा गया है। सूक्ष्म अथवा अंत: सौन्दर्य के उपासक होने के फलस्वरूप छायावादी काव्य में अर्थालंकार ही अधिक उपलब्ध होते हैं, किन्तु भावों को सशक्त अभिव्यक्ति के लिये उन्होंने शब्द-शिल्पी के रूप में प्रत्येक शब्द का पूरी

1- केशवदास - रामचंद्रिका - पांचवां प्रकाश, पृष्ठ ७२।

2- शान्तिप्रिय द्विवेदी - ज्योति विहग, पृष्ठ २६।

सूक्ष्म-बूझ के साथ प्रयोग किया है । उनकी शब्द-योजना में ध्वनि प्रवाह के साथ अनजाने ही कुछ अलंकार आ गए हैं, जिनमें अनुप्रास , यमक और श्लेष मुख्य है । कुछ उदाहरण द्रष्टव्य है -

अनुप्रास -

- मकरंद मेघ माला सी, वह स्मृति मदमाती आती [1]
- मुकुल मधुपों का मृदु मधुमास । [2]
- सिकता की सस्मित सीपी पर
  मोती की ज्योत्स्ना रही विचर । [3]

यमक -

- पास ही रे हीरे की खान
  खोजता कहां और नादान ?[4]
- इन्दु पर उस इन्दु मुख पर साथ ही
  थे पड़े मेरे नयन जो उदय से,
  लाज से रक्तिम हुए थे, पूर्व को
  पूर्व था, पर वह द्वितीय अपूर्व था ।। [5]

श्लेष -

प्रेम की बंसी लगी न प्राण ।
तू इस जीवन के पट भीतर
कौन छिपी मोहित निज छवि पर ।
चंचल री नवयौवन के पर
प्रखर प्रेम के बाण ।[6]

1- जयशंकर प्रसाद - आंसू(नं0 सं0), पृष्ठ ३५ ।
2- सुमित्रानन्दन पन्त - गुंजन, पृष्ठ ४१ ।
3- सुमित्रानन्दन पन्त - आधुनिक कवि, नौकाविहार, पृष्ठ ५६ ।
४ - सूर्यकान्त त्रिपाठी "निराला" - गीतिका, पृष्ठ २७ ।
५ - सुमित्रानन्दन पन्त - आधुनिक कवि , पृष्ठ 20 ।
६ - सुमित्रानन्दन पन्त - आधुनिक कवि , पृष्ठ ४४ ।

– ओ री मानस की गहराई ।"[1]

छायावादी कविताओं में वचन वक्रता के बहुत अधिक उदाहरण प्राप्य है किन्तु उन स्थलों पर वक्रोक्ति की योजना कवियों द्वारा नहीं की गई है, वरन उनका आधार लक्षणा शब्द शक्ति ही है ।

शब्दालंकारों की ही भांति अर्थालंकारों का प्रयोग भी छायावादी कविताओं में सप्रयास और चमत्कार प्रदर्शन हेतु अथवा परंपरा निर्वाह हेतु नहीं हुआ है । आत्माभिव्यंजक कवि की वाणी में एक ऐसा तीव्र आवेग होता है जो स्वत: अपने विकास का मार्ग खोज लेता है, उसको अभिव्यक्ति के लिये अलंकारों की खोज करने की आवश्यकता नहीं पड़ती । परन्तु इस प्रकार की अभिव्यक्ति के लिए भाषा अवश्य भावानुरूप तथा शक्तिशाली होनी चाहिये । भाषा प्रकरण के अन्तर्गत पहले भी कहा जा चुका है, छायावादी कवियों ने शब्द चयन में पूर्ण सतर्कता एवं अभूतपूर्व कौशल दिखाया है । उनकी भाषा भावानुगामिनी है तथा भाव सौन्दर्य के परिणामस्वरूप वह भी सौन्दर्यमयी तथा ~~भाव सौन्दर्य के परिणामस्वरूप वह भी सौन्दर्यमयी तथा~~ अनायास अलंकृता हो गई है और उसमें कवि के अनजाने ही अनेक अलंकार घुल मिल गए हैं ।

अर्थालंकारों में मुख्यत: उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा , रूपकातिशयोक्ति , दृष्टान्त आदि का प्रयोग हुआ है । वैषम्यमूलक अर्थालंकारों में "विरोधाभास" का प्रयोग बहुत अधिक हुआ है । सन्देह , अन्योक्ति , सहोक्ति", प्रतीप" और स्मरण अलंकारों की योजना भी कहीं-कहीं दिखाई पड़ती है । परन्तु "उपमा" अलंकार छायावादी कवियों को सर्वाधिक प्रिय रहा है । "उपमा" के छायावादी प्रयोगों की मुख्य विशेषता यह है कि इन कवियों की दृष्टि रीतिकालीन तथा द्विवेदीयुगीन कवियों की भांति साम्य के सब से स्थूल रूप सादृश्य पर ही केन्द्रित नहीं रही, वरन प्रभाव साम्य को इन्होंने अधिक महत्त्व दिया है, दूसरे इनकी अप्रस्तुत योजना सर्वथा नवीन और मौलिक है ।

<u>अप्रस्तुत विधान –</u>

"अप्रस्तुत " शब्द आधुनिक युग की देन होते हुए भी अपने स्वरूप में नया नहीं है । अप्रस्तुत शब्द "उपमान का एक पर्याय ,उपमा के चार अंगों में से एक अंग है ।"[2] रामचन्द्र शुक्ल ने भी इसे उपमान के स्थानापन्न रूप में माना है ।

1- जयशंकर प्रसाद – लहर, पृ0 ४३ ।
2- धीरेन्द्र वर्मा – हिन्दी साहित्य कोश,पृष्ठ ४२।

उनके शब्दों में - " प्रस्तुत वस्तु और आलंकारिक वस्तु में बिम्ब - प्रतिबिम्ब भाव हो, अर्थात् अप्रस्तुत (कवि द्वारा लाई हुई) वस्तु प्रस्तुत वस्तु से रूप रंग में मिलती हो।"[1] स्पष्ट है कि शुक्ल जी ने अप्रस्तुत शब्द को काव्य की अलंकरण सामग्री के अर्थ में प्रयुक्त किया है। प्रस्तुत और अप्रस्तुत के मध्य बिम्ब प्रतिबिम्ब का कथन अप्रस्तुत के साम्यमूलक आधार की ओर इंगित करता है।

शुक्ल जी ने अप्रस्तुत योजना को केवल औपम्यगर्भ अलंकारों तक ही सीमित रक्खा है[2] परन्तु रामदहिन मिश्र ने अप्रस्तुत की सीमा में काव्य की संपूर्ण अलंकरण सामग्री को समाहित कर लिया है। उनके मतानुसार - "अप्रस्तुत योजना बाहर से लाई जानेवाली सारी वस्तुओं को ग्रहण करती है, चाहे अप्रस्तुत का कैसा ही रूप क्यों न हो। अप्रस्तुत विशेष्य हो विशेषण हो, क्रिया हो, मुहावरा हो, चाहे और कुछ हो इसके भीतर सब समा जाते हैं।"[3] अप्रस्तुत का इस व्यापक अर्थ में ग्रहण ही अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है, क्योंकि समस्त अलंकारों की योजना प्रस्तुत से भिन्न अप्रस्तुत रूप में ही होती है। सार रूप में कह सकते हैं कि काव्य के अन्तर्गत अतिरिक्त लावण्य की सृष्टि हेतु प्रयुक्त होनेवाली, वर्ण्य विषय से पृथक संपूर्ण अलंकरण सामग्री ही अप्रस्तुत विधान है।

काव्य के अन्तर्गत प्रतीक बिम्ब आदि का विधान भी अप्रस्तुत रूप में ही होता है। भाषा-विवेचन के प्रसंग में यह स्पष्ट किया जा चुका है कि बहुधा अनेक साम्यमूलक अप्रस्तुत प्रयोग से रूढ़ होकर प्रतीक का रूप ग्रहण कर लेते हैं, परन्तु

1- रामचन्द्र शुक्ल - रस मीमांसा- अप्रस्तुत रूप विधान, पृष्ठ ३६२।

2- रामचन्द्र शुक्ल - चिन्तामणि-भाग 1 कविता क्या है, पृष्ठ १८३।

-" अलंकार चाहे अप्रस्तुत वस्तु योजना के रूप में हों (जैसे उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा इत्यादि में) चाहे वाक्य वक्रता के रूप में (जैसे अप्रस्तुत प्रशंसा, परिसंख्या व्याज स्तुति, विरोध इत्यादि में) चाहे वर्ण विन्यास के रूप में (जैसे अनुप्रास में)"।

3- रामदहिन मिश्र - काव्य में अप्रस्तुत योजना, पृष्ठ ४।

सभी अप्रस्तुत " प्रतीक" नहीं होते । प्रतीक - योजना का आधार अपेक्षाकृत अधिक व्यापक होता है । प्रतीक और अप्रस्तुत के मध्य अंगांगीभाव का सम्बन्ध है । प्रतीक कवि की अप्रस्तुत योजना का विशिष्ट कलात्मक उपकरण माना जा सकता है । इसी प्रकार " बिम्ब" भी अप्रस्तुत विधान का महत्वपूर्ण अंग है, किन्तु सभी अप्रस्तुतों को बिम्ब की संज्ञा नहीं दी जा सकती है । केवल चित्रात्मक गुण संपन्न अप्रस्तुत ही, जो पाठक अथवा श्रोता के हृदय में साम्य के आधार पर वर्ण्य वस्तु अथवा प्रस्तुत का पूर्ण स्वरूप अंकित करने में सक्षम हो, बिम्ब कहलाने के अधिकारी होते हैं ।

छायावादी काव्य में कल्पनाधिक्य के परिणामस्वरूप बहुधा कल्पना और भावना मिलकर एकाकार हो गई है, अतएव उसमें प्रस्तुत कथन परिमाण में अत्यंत कम हुआ है, तथा अभीष्ट अर्थ की व्यंजना के लिये अप्रस्तुत विधान का ही आश्रय लिया गया है । छायावादी अप्रस्तुतों की मुख्य विशेषता उनकी बिम्ब सृष्टि की सामर्थ्य है । छायावादी रचनाओं में ऐसे स्थल अत्यंत अल्प है जहां अप्रस्तुत विधान द्वारा सहृदय के मानस में कोई चित्र न उभारा गया हो । कहीं कहीं एक के स्थान पर अनेक अप्रस्तुतओं के संयोजन द्वारा व्यंजना को अभूतपूर्व लावण्य और वैचित्र्य प्रदान किया गया है । जैसे आकाश में उमड़ते काले काले बादलों को देखकर मध्ययुगीन कवि सेनापति उनकी उपमा काजल के पहाड़ से देते हैं - " आने है पहाड़ मानो काजर के ढोइ के ।[1] परन्तु छायावादी कवि पंत अनेकानेक चित्रमय और नवीन अप्रस्तुतओं को जुटाकर बादल के लिये उपमाओं की माला सी गूंथ देते हैं । बादल कभी उन्हें यमुना के श्यामजल में तैरते हुए अम्बाल जाल सा प्रतीत होता है, कभी आकाश के मधुगृह में लटके स्वर्ण मृगों की तरह । कभी वह अनिल स्रोत में तमाल के पात की तरह बहता है, और कभी गगन की शाखाओं में मकड़ी के जाल की तरह फैल जाता है । इसके साथ ही पंत ने बादलों का " संशय की तरह धीरे धीरे उठना" अपयश के समान बढ़ना" मोह" के समान उमड़ना और " लालसा " के समान नभ के हृदय में फैलना चित्रित किया है ।[2]

नवीन अप्रस्तुतों से युक्त मालोपमा का एक अन्य उदाहरण निम्न पंक्तियों में द्रष्टव्य है -

---

1 - सेनापति - कवित्त रत्नाकर, पृष्ठ ६४ ।
2- सुमित्रानन्दन पन्त - आधुनिक कवि" बादल" - पृष्ठ २६-२७ ।

" नवल, मधुमय निकुंज में प्रात,
प्रथम कलिका सी अस्फुट गात ।
नील नभ अंत:पुर में तन्वि
दूज को कला सदृश नवजात ।
मधुरता मृदुता सी तुम प्राण
न जिसका स्वाद स्पर्श कुछ ज्ञात ।[1]

यहाँ पर नायिका के लिए " प्रथम कलिका " सी अस्फुट गात " और " दूज को कला सदृश नवजात " जैसे गुण साम्य पर आधारित नव्य अप्रस्तुतों के द्वारा कवि ने उसकी वय:संधि की अवस्था का आकर्षक चित्र प्रस्तुत किया है । बिना किसी प्रकार के साम्य का आश्रय लिये वर्ण्य को भावक के मानस-पटल पर चित्रबद्ध कर पाना असंभव है । यह साम्य ही अप्रस्तुत योजना का प्रमुख आधार है अर्थात् कवि वर्ण्य वस्तु तथा उससे भिन्न किसी अन्य वस्तु, दृश्य अथवा व्यक्ति के मध्य किसी सामान्य तत्व का उद्घाटन करके, उसी के आधार पर वर्ण्य वस्तु का चित्र अंकित करता है । रामचंद्र शुक्ल ने तीन प्रकार के साम्य की ओर इंगित किया है - रूप साम्य, धर्म साम्य तथा प्रभाव साम्य ।[2] भाषा की समस्त प्रकार की वक्र भंगिमायें इन साम्यों पर ही आश्रित है । शास्त्रवर्णित उपमा, (मालोपमा, उपमेयोपमा आदि) रूपक, उत्प्रेक्षा, भ्रम, संदेह, स्मरण, रूपकातिशयोक्ति आदि अलंकार तथा पाश्चात्य मानवीकरण (Personification) आदि साम्य पर आश्रित प्रमुख अलंकार है, जिनका छायावादी काव्य में प्रचुर प्रयोग हुआ है । रूप, धर्म एवं प्रभाव तीनों प्रकार के साम्यों में रूपसाम्य का आधार सब से स्थूल होता है । छायावादी काव्य और रीतिकालीन काव्य की अलंकृति की तुलना करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि रीतिकालीन कवियों की दृष्टि वस्तु की बाह्य रूपरेखाओं में अधिक उलझी है, उन्होंने अपनी कविताओं में अलंकृति के लिये मुख्यत: रूप साम्य का आश्रय लिया है । इसके विपरीत छायावादी कवियों की प्रवृत्ति स्थूल के बदले सूक्ष्म चित्रण की ओर रही है ।

1- सुमित्रानन्दन पन्त - गुंजन, भावी पत्नी के प्रति, पृष्ठ ४०।

2- रामचन्द्र शुक्ल - चिन्तामणि, भाग 2, पृष्ठ 220-221

सूक्ष्म की उपासना पर आधारित उनके नए सौन्दर्य बोध ने ही छायावादी काव्य की अलंकारिकता को पिछले युगों से भिन्न नया रूप प्रदान किया । छायावादी कवियों ने आकार की स्थूल रेखाओं का सामान्य रीति से उद्घाटन न करके " प्रस्तुत " और " अप्रस्तुत " के मध्य गुण अथवा प्रभाव साम्य को उभारने का अधिक प्रयत्न किया है । यह विशेषता छायावादी कवियों की श्रेष्ठ - कलात्मक शक्ति की परिचायिका है, क्योंकि स्थूल रंग रेखाओं से युक्त चित्रों की अपेक्षा मनोगत सूक्ष्म प्रभावों को उभारनेवाले चित्र कला की दृष्टि से अधिक श्रेष्ठ समझे जाते हैं । रामदहिन मिश्र के शब्दों में - " यदि सादृश्य और साधर्म्य प्रभाव - विस्तारक नहीं, तो वह उपमान निर्जीव है । अप्रस्तुत योजना में प्रभाव की क्षमता उपेक्षणीय नहीं है । "[१]

छायावादी कवियों ने जहां कहीं रूप साम्य का आधार ग्रहण भी किया है, वहां कथन की वैचित्र्यपूर्ण भंगिमा के द्वारा अभिव्यंजना में नवीन आकर्षण का समावेश कर दिया है । जैसे -

" मोती की लड़ियों से सुन्दर
झरते हैं झाग भरे निर्झर । "[२]

जल बिन्दु के लिये मोती " अप्रस्तुत में कोई विशेषता अथवा नयापन नहीं है, किन्तु मोती की लड़ियां " कह देने से अप्रस्तुत में बिम्ब सृष्टि की सामर्थ्य उत्पन्न हो गई है, जिससे इन पंक्तियों की अर्थ व्यंजना का भी विकास हुआ है । इसी प्रकार आंखों को कमलवत अनेक कवियों ने कहा है किन्तु पंत जब आंखों की तुलना नीलकमल से करते हुए लिखते हैं -

" नीलकमल सी हैं वे आंख ।
डूबे जिनके मधु में पांख ।।
मधु से मन मधुकर के पांख ।
नील जलज सी हैं वे आंख । "[३]

तो अभिव्यंजना में एक नई चमक लक्षित होती है ।

गुण साम्य पर आधारित नवीन अप्रस्तुतों का छायावादी काव्य में प्राचुर्य है ।

१- रामदहिन मिश्र - काव्य में अप्रस्तुत योजना, पृष्ठ ६४ ।
२- सुमित्रानन्दन पन्त - पल्लव, उच्छ्वास, पृष्ठ ८ ।
३- सुमित्रानन्दन पन्त - गुंजन, पृष्ठ ४७ ।

" रात सी नीरव व्यथा

तम सी अगम मेरी कहानी ।"[1]

– इन पंक्तियों में रात और तम के अप्रस्तुत "व्यथा" और "कहानी" की अनुभूति को संवेद्य बनाने के लिये संयोजित हुए हैं क्योंकि दोनों के मध्य "नीरवता" और अगमता के गुणों का साम्य है । इसी प्रकार –

" मेरा पावस ऋतु सा जीवन

मानस सा उमड़ा अपार मन ।

गहरे धुंधले धुले सांवले

मेघों से मेरे भरे नयन ।।"[2]

यहां भी जीवन के लिये पावस ऋतु का अप्रस्तुत गुणाश्रित ही है । पावस ऋतु में आकाश में काले काले मेघ उमड़ते हैं उसी प्रकार कवि के नयनों में सूनापन और निराशा का अंधकार व्याप्त है ।

प्रभाव साम्य के आश्रित अप्रस्तुत विधान छायावादी कवियों को अत्यधिक प्रिय रहा है । उनकी इस विशेषता को बहुत पहले ही रामचन्द्र शुक्ल ने लक्ष्य करके लिखा था –" छायावाद बड़ी सहृदयता के साथ प्रभाव साम्य पर ही विशेष लक्ष्य रखकर चला है । कहीं कहीं तो बाहरी सादृश्य या साधर्म्य अत्यंत अल्प या न रहने पर भी आभ्यंतर प्रभाव साम्य को लेकर ही अप्रस्तुतोंका सन्निवेश कर दिया जाता है ।"[3] इस विशेषता के फलस्वरूप ही जैसा कि पहले संकेत किया जा चुका है, छायावादी कवियों की अलंकार योजना पूर्ववर्ती युगों से सर्वथा भिन्न दिखाई देती है । वस्तुत: आकार साम्य के बदले प्रभाव साम्य पर अपनी दृष्टि केन्द्रित करके छायावादी कवियों ने अप्रस्तुत विधान की नई परिपाटी को जन्म दिया, साथ ही अपने सौन्दर्य चित्रों को अधिक सशक्त और संवेद्य बनाकर अपनी उच्चकोटि की काव्य प्रतिभा का परिचय दिया ।

प्रभाव साम्य वस्तुत: सादृश्य और साधर्म्य का ही सूक्ष्मतर रूप है इन दोनों के मध्य कोई स्पष्ट विभाजक रेखा खींचना कठिन कार्य है । प्रभाव साम्य के द्वारा कवि प्रस्तुत के रूप में और गुण की "अप्रस्तुत" से समानता प्रदर्शित करने के

१– महादेवी वर्मा – दीपशिखा – गीत ३६, पृष्ठ १२७ ।

2– सुमित्रानन्दन पन्त – आधुनिक कवि, पृष्ठ १५ ।

3– रामचन्द्र शुक्ल – हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ ६१७ ।

बदले उनके सम्मिलित समग्र प्रभाव की व्यंजना करके वर्ण्य विषय को सवेद्य बनाता है । जैसे -

> " चंचला स्नान कर आवे चंद्रिका पर्व में जैसी ।
> उस पावन तन की शोभा आलोक मधुर थी ऐसी ।।[1]

कवि ने अपनी उर्वर कल्पना शक्ति के माध्यम से चंद्रिका-स्नात बिजली का सर्वथा मौलिक अप्रस्तुत संयोजित करके नायिका के शीतलता, पवित्रता आदि गुणों से युक्त सौन्दर्य के सार भूत प्रभाव की ही चित्रात्मक व्यंजना की है । इसी प्रकार

> और निरुपाय मैं तो ऐंठ उठी डोरी सी
> अपमान ज्वाला में अधीर होके जलती ।[2]

गुर्जर प्रदेश की रानी कमला का अपमान ज्वाला में जलती हुई डोरी के समान ऐंठ उठना " प्रस्तुत " और अप्रस्तुत के मध्य प्रभाव साम्य को ही भास्वर करता है । " वर्ण्य " के सारभूत प्रभाव को साकार करनेवाले इस प्रकार के बिम्बात्मक अप्रस्तुत छायावादी काव्य के अतिरिक्त अन्यत्र दुर्लभ है ।

नए अप्रस्तुत :

छायावादी कविताओं में अनेक स्थलों पर " स्थूल " के लिए " सूक्ष्म " और सूक्ष्म के लिए स्थूल अप्रस्तुतों का संयोजन हुआ है, जैसे पर्वत पर उगे हुए ऊँचे ऊँचे वृक्ष पंत को मानव हृदय की उच्चाकांक्षाओं के समान जान पड़ते हैं -

> गिरिवर के उर से उठ उठकर उच्चाकांक्षाओं से तरुवर ।
> हैं झांक रहे नीरव नभ पर अनिमेष अटल कुछ चिन्ता पर ।।[3]

इस प्रकार के अप्रस्तुतों का लक्ष्य भी रूपाकृति को उभारने के बदले वर्ण्य के समग्र प्रभाव को सवेद्य बनाना होता है । निराला की निम्न पंक्तियों में

> " कल्पना से कोमल
> ऋजु कुटिल प्रसार कामी केशगुच्छ ।[4]

१- जयशंकर प्रसाद - आँसू, पृष्ठ २४ ।

२- जयशंकर प्रसाद - लहर, प्रलय की छाया, पृष्ठ ४६ ।

३- सुमित्रानन्दन पन्त - पल्लव, उच्छ्वास, पृष्ठ ५ ।

४- सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला - परिमल, जागो फिर एक बार, पृष्ठ १७२ ।

केशों को " कल्पना " से कोमल और प्रसार का भी " विशेषण " से युक्त करने में प्रभाव साम्य ही आधार बना है । कल्पना भी अपना प्रसार चाहती है तथा मृदु कुटिल केशों की प्रवृत्ति भी प्रसार की होती है । " कल्पना " और " केश " में रूपाकार संबंधी कोई मेल न होने पर भी कवि ने यहां पर दोनों की समकक्षता दिखाकर इधर-उधर उड़ते हुए आड़े तिरछे केशों में आभ्यंतर प्रभाव को सविष बनाने की सफल चेष्टा की है ।

निराला " विधवा " को " इष्टदेव " के मन्दिर की पूजा सी " कहकर सर्वथा नवीन और सूक्ष्म उपमा खोज लाए हैं ।[१] इसमें भी " विधवा " के शान्ति और पवित्रतामय जीवन के समग्र प्रभाव को को ही उपर्युक्त सूक्ष्म अप्रस्तुत के माध्यम से साकार किया है गया है ।

प्रसाद ने लज्जा की अमूर्त भावना के लिए मूर्त अप्रस्तुतों का सुन्दर विधान किया है -

" कोमल किसलय के अंचल में नन्हीं कलिका ज्यों छिपती सी ।
गोधूली के धूमिल पट में दीपक के स्वर में दिपती सी ।।[२]

चिन्ता के अमूर्त भाव को चेतना में साकार करने हेतु प्रसाद लिखते हैं -

" ओ चिन्ता की पहली रेखा, अरी विश्व वन की व्याली ,
ज्वालामुखी स्फोट के भीषण प्रथम कंप सी मतवाली ।[३]

इसी प्रकार महादेवी " याद " के लिये " मधुर आसव " का स्थूल अप्रस्तुत चुनती है :-

" मधुर आसव सी तेरी याद "[४]

सूक्ष्म के लिये इन स्थूल अप्रस्तुतवों के विधान द्वारा छायावादी कवियों ने अमूर्त अनुभूतियों को भी साकार एवं चित्रमय रूप प्रदान किया है ।

१- सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला - परिमल, विधवा, पृष्ठ १२६ ।
२- जयशंकर प्रसाद - कामायनी, लज्जा सर्ग, पृष्ठ १०५ ।
३- जयशंकर प्रसाद - कामायनी , चिन्ता सर्ग, पृष्ठ १० ।
४- महादेवी वर्मा - यामा (नीहार) पृष्ठ ५४ ।

अमूर्त और वायवी के प्रति विशेष मोहवश बहुधा सूक्ष्म के लिये सूक्ष्म अप्रस्तुत भी चुने गए हैं । इनके द्वारा वर्ण्य- विषय की आन्तरिक सूक्ष्मताओं को उभार कर सविध बनाने का प्रयत्न किया गया है, जैसे लज्जा के लिये प्रसाद लिखते हैं-

" मंगल कुमकुम की श्री जिसमें निखरी हो ऊषा की लाली ।
भोला सुहाग इठलाता हो ऐसी हो जिसमें हरियाली ।।

+ + + + + +

जो गूंज उठे फिर नस-नस में मूर्च्छना समान मचलता सा
आंखों के साँचे में आकर रमणीय रूप बन ढलता सा ।।
नयनों की नीलम की घाटी जिस रसघन से छा जाती हो
वह कौंध कि जिससे अन्तर की शीतलता ठंडक पाती हो
हिल्लोल भरा हो ऋतुपति का गोधूली की सी ममता हो,
जागरण प्रात सा हंसता हो जिसमें मध्याह्न निखरता हो ।।"[1]

इसी प्रकार -

व्याकुलता सी व्यंजत हो रही
आशा बन कर प्राण समीर ।"[2]

इस प्रकार के कल्पना-प्रसूत सूक्ष्म और वायवी अप्रस्तुत छायावाद की निजी संपत्ति है । इन रम्याद्भुत अप्रस्तुतों के द्वारा छायावादी काव्य को विशेष श्री प्राप्त हुई है, साथ ही उसकी अर्थ व्यंजना की क्षमता में भी वृद्धि हुई है । यह असंदिग्ध रूप से कहा जा सकता है कि अप्रस्तुत विधान के क्षेत्र में छायावादी कवियों ने अपनी उच्चतम प्रतिभा का परिचय दिया है ।

अप्रस्तुतों की नव्यता ने परिपाटी विहित अलंकारों को भी नई शोभा और नवीन आकर्षण से भर दिया है । कुछ उदाहरण द्रष्टव्य है :-

" नील परिधान बीच सुकुमार, खुल रहा मृदुल अधखुला अंग ।
खिला हो ज्यों बिजली का फूल, मेघवन बीच गुलाबी रंग ।।"[3]

१- जयशंकर प्रसाद - कामायनी- लज्जासर्ग, पृष्ठ १०८-१०६ ।
२- जयशंकर प्रसाद - कामायनी- आशा सर्ग, पृष्ठ २८ ।
३- जयशंकर प्रसाद - कामायनी - श्रद्धासर्ग,पृष्ठ ५४ ।

" चंचला स्नान कर आवे चंद्रिका पर्व में जैसी ।
उस पावन तन की शोभा, आलोक मधुर थी ऐसी ।।"[1]

" विकसित सरसिज वन वैभव, मधु ऊषा के अंचल में ।
उपहास करावे अपना जो हंसी देख ले पल में ।।"[2]

प्रथम और द्वितीय उदाहरणों में उत्प्रेक्षा तथा तृतीय में प्रतीप अलंकार है । दोनों ही अलंकार हिन्दी कविता के सुपरिचित अलंकार हैं । परंतु नीले वस्त्रों में सज्जित गौर वर्ण शरीर की तुलना मेघों के वन में खिले गुलाबी रंग के बिजली के फूल से करना, अथवा नायिका के सौन्दर्य का संकेत देने के लिए चांदनी में नहाई बिजली का अप्रस्तुत खोज लाना और उसकी मुस्कान के सामने ऊषा कालीन विकसित कमल वन की शोभा को फीका बताना, यह इतनी सूक्ष्म और नवीन कल्पनायें हैं जिन्होंने ऊपर से पुराने लगनेवाले अलंकारों के अंतरंग में ऐसा नयापन भर दिया है कि पूर्ववर्ती काव्य में इनकी समता खोज पाना कठिन है ।

पुराने उपमानों का नवीनीकरण -

छायावादी कवियों ने नवीन अप्रस्तुतों के अतिरिक्त पुराने और चिर प्रचलित उपमानों को भी पुनर्जीवित कर उनमें वचन की भंगिमा द्वारा नवीन कान्ति उत्पन्न कर दी है, जिससे पुराने अलंकार नए होकर काव्य की शोभा वृद्धि में सहायक हुए हैं । जैसे -

" घिर रहे थे घुंघराले बाल अंस अवलंबित मुख के पास
नील घन शावक से सुकुमार, सुधा भरने को विधु के पास " ।[3]

" मुख " के लिये चंद्रमा परंपरागत उपमान है किन्तु उसको प्रस्तुत करने का ढंग प्रसाद का अपना है, अत: यहाँ उपमा अलंकार होते हुए भी उसका रूप परंपरागत नहीं है । इसी प्रकार -

---

१- जयशंकर प्रसाद - आंसू, पृष्ठ २४ ।
२- जयशंकर प्रसाद - आंसू, पृष्ठ २३ ।
३- जयशंकर प्रसाद - कामायनी- श्रद्धा सर्ग, पृष्ठ ५५ ।

'कौन हो तुम बसंत के दूत
विरस पतझड़ में अति सुकुमार ।
घन तिमिर में चपला की रेख
तपन में शीतल मंद बयार ।।[1]

इन पंक्तियों में प्रयुक्त उपमान भी हमारे चिरपरिचित हैं, किन्तु प्रयोग की मौलिकता ने यहाँ परंपरागत रुपक योजना से भिन्न नई आभा उत्पन्न कर दी है । रुपक के कुछ अन्य उदाहरण द्रष्टव्य है -

' कामना सिन्धु लहराता, छवि पूरनिमा थी छाई ।
रत्नाकर बनी चमकती मेरे शशि की परछाई ।।[2]

मुख को चंद्रमा कहना, सौन्दर्य को पूर्णिमा की चांदनी सदृश बताना और आकांक्षा - चंचल हृदय को समुद्र सा दिखाना - इसमें कुछ भी नया नहीं है, फिर भी इन पंक्तियों में एक अनूठापन है । निराला की निम्न उद्धृत पंक्तियों में नैनों के लिये कलियां और मुख के लिये चंद्रमा जैसे रूढ़ उपमानों का ही संयोजन हुआ है, लेकिन कथन-भंगिमा के नए पन ने नायिका के सौन्दर्य को नया निखार दे दिया है -

' दृगों की कलियां नवल खुली ।
रुप इन्दु से सुधा बिन्दु लह ,
रह रह और खुली ।।[3]

नायिका के मोती जैसे उज्जवल दाँतों और शुक जैसी नासिका की शोभा का दिग्दर्शन पहले भी अनेक कवियों द्वारा कराया गया है, परन्तु प्रसाद ने कथन की वक्रता द्वारा इनमें कुछ नवीनता भरकर रुपकातिशयोक्ति अलंकार के माध्यम से प्रस्तुत किया है ।

१- जयशंकर प्रसाद - कामायनी - श्रद्धा सर्ग, पृष्ठ ५८ ।

२- जयशंकर प्रसाद - आँसू, पृष्ठ ३३ ।

३- सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला - गीतिका, पृष्ठ १६ ।

" विद्रुम सीपी संपुट में मोती के दाने कैसे ।

है हंस न, शुक यह, फिर क्यों चुगने को मुक्ता ऐसे "[१]

इस प्रकार ऊपर से पुराने लगनेवाले अलंकारों के अंतरंग में नयापन भरकर उनके द्वारा हिन्दी काव्य की श्रीवृद्धि करना छायावादी कवियों की महत्वपूर्ण उपलब्धि कही जा सकती है ।

औपम्य गर्भ अलंकारों के अतिरिक्त वैषम्यमूलक अलंकारों में ' विरोधाभास ' छायावादी कवियों को विशेष प्रिय रहा है । इस अलंकार में विरोध वास्तविक नहीं होता वरन् उसका आभास मात्र होता है, किन्तु परस्पर विपरीत कथनों के द्वारा भाव में उत्कर्ष और उक्ति में चमत्कार उत्पन्न होता है । विरोधाभास ' का अंगरेजी के ' पैराडाक्स ' (Paradox) तथा आक्सीमारन (Oxymoron) अलंकारों से पर्याप्त साम्य है । यह दोनों अलंकार भी प्रतीयमान विरोध के आश्रित होते हैं, इन दोनों के स्वरूप में कोई मौलिक अन्तर नहीं होता ।[२] परस्पर विरोधी शब्दों का सह प्रयोग ' आक्सीमारन ' के अन्तर्गत आएगा और प्रचलित सत्यों के मध्य विरोध को उभारनेवाली कथन ' भंगिमायें पैराडाक्स कही जाएंगी । छायावादी काव्य में इन दोनों के ही प्रचुर उदाहरण प्राप्य हैं, जैसे -

अरी व्याधि की सूत्रधारिणी
अरी आधि मधुमय अभिशाप ।

हृदय-गगन में धूमकेतु सी
पुण्य सृष्टि में सुंदर पाप ।।[३]

उपर्युक्त पंक्तियों में मधुमय और अभिशाप में परस्पर भावनात्मक विरोध होते हुए भी दोनों का एक साथ प्रयोग हुआ है तथा सदैव गर्हित समझे जानेवाले

१- जयशंकर प्रसाद - आंसू, पृष्ठ २३ ।

२- G.C.Resser - English Literary Appreciation(Appendix, Figures of speech) page 158.

Oxymoron - Two words or phrases with contradictory significance,in other words- a compressed paradox,e.g. bitter sweet.

Paradox - Arrests attention by seeming to contradict an accepted truth or a platitude.Yet the contradiction is more apparent then real.When a paradox is analysed the meaning may reveal a subtle and penetrating observation.

३- जयशंकर प्रसाद - कामायनी - चिन्तासर्ग, पृष्ठ १३।

" पाप " को सुन्दर कहा गया है। प्रकटत: विरोध का आभास देने पर भी इन शब्दों की सूक्ष्म अर्थ-व्यंजना असंदिग्ध है। हिन्दी अलंकार शास्त्र के अनुसार इसे विरोधाभास का ही उदाहरण माना जाएगा, अँग्रेज़ी के अनुसार यहाँ " आक्सीमारन " का प्रयोग हुआ है। इसी प्रकार -

" शीतल ज्वाला जलती है
ईंधन होता दृग-जल का।"[१]

" ज्वाला " को शीतल कहना तथा दृगजल को ईंधन बताना बाह्य रूप से विचित्र सा लगता है, किन्तु इनमें निहित गूढार्थ महत्वपूर्ण है।

अँग्रेज़ी के " पैराडाक्स " से साम्य रखनेवाले विरोधाभास के दूसरे रूप का उदाहरण निम्न उद्धृत पंक्तियों में द्रष्टव्य है -

" हीरे सा हृदय हमारा, कुचला शिरीष कोमल ने।"[२]

" हीरा " कठोर होता है, उसका शिरीष के कोमल पुष्प से कुचला जाना साधारण दृष्टि से असंभव है। अत: यहाँ प्रचलित सत्य का विरोधी कथन हुआ है किन्तु " हीरे " शब्द में व्यंजना है, हीरे की उज्जवलता के गुण से कवि ने अपने हृदय की उज्जवलता (पवित्रता) का साम्य दिखाया है। अतएव भावार्थ यह हुआ - मेरे निष्कलुष, पवित्र हृदय को पुष्प सी सुन्दर और कोमल नायिका की उपेक्षा ने चूर चूर कर दिया। इसी प्रकार -

" सौरभ की शीतल ज्वाला से
फैला उर उर में मधुर दाह।"[३]

" ज्वाला " शीतल नहीं होती और शीतल वस्तु दाह नहीं फैला सकती तथा " दाह " को " मधुर " कहना भी विचित्र लगता है। किन्तु यहाँ पर सौरभ साधारण ज्वाला नहीं, कामाग्नि को उद्दीप्त करनेवाला है।

" है पीड़ा की सीमा यह
दुख का चिर सुख हो जाना।"[४]

१- जयशंकर प्रसाद- आँसू, पृष्ठ १०।
२- जयशंकर प्रसाद - आँसू, पृष्ठ ३०।
३- सुमित्रानन्दन पन्त - आधुनिक कवि, पृष्ठ ६३।
४- जयशंकर प्रसाद - आँसू, पृष्ठ ७६।

" दुख के चिर सुख बन जाने " के मूल में स्थित प्रतीयमान विरोध इन पंक्तियों में गूढ़ अर्थ गर्भत्व का समावेश करता है ।

छायावाद युग से पूर्व रीतिकालीन कविताओं में भी विरोधाभास अलंकार का बहुल प्रचलन रहा है । घनानंद ने इस क्षेत्र में विशेष कौशल दिखाया है । एक उदाहरण द्रष्टव्य है -

" महा अन मिलन मिलेहुँ मिलौ कब मिलौ
ऐसे अनमिल कै मिलाए ही हमैं दई ।
हमैं तौ मिलौ, जौ कहूँ आप हू सौं मिलै होहु,
मिलौ तौ कहा ज्यू ये मिलाप रीति है नई ।
इतै पै सुजान घन आनंद मिलौ न हाय
कौन धौं अमिलता की लागी जिय मै जई ।
तुम हूँ तै अधिक अमिल मन हमैं मिल्यौ
तऊ मिल्यौ चाहै, दाहै जऊ ,बरियो गई ।।[१]

छायावादी काव्य का वैशिष्ट्य इतने में है कि इन कवियों ने चमत्कार प्रदर्शन अथवा शब्दक्रीड़ा को अपना लक्ष्य नहीं माना । विरोधाश्रित वैचित्र्यपूर्ण अभिव्यंजना की भंगिमाओं द्वारा प्रत्येक स्थल पर इन्होंने किसी न किसी सूक्ष्म, गहन और गंभीर अर्थ की ही व्यंजना की है, जिसके फलस्वरूप काव्य में प्रभावोत्पादकता के गुण की वृद्धि हुई है ।

पहले कहा जा चुका है कि लाक्षणिक प्रयोगों और प्रतीक पद्धति को छायावादी काव्य शैली के अन्तर्गत अत्यधिक महत्व प्राप्त है और इनमें आकार साम्य की अपेक्षा प्रभाव साम्य पर कवियों की दृष्टि मुख्यत: केन्द्रित रही है । इस कारण " अन्योक्ति अलंकार " का भी प्रचुर प्रयोग छायावादी कविताओं में मिलता है, क्योंकि अन्योक्ति में लाक्षणिक प्रयोगों और प्रतीकों के विधान के लिये विशेष अवसर रहता है । रहस्यवादी रचनाओं में सर्वत्र अन्योक्ति के दर्शन होते हैं । पंत की " मधुप का गीत ", " घंटा " आदि कविताएँ इसकी उदाहरण हैं ।

१- घनानन्द - सुजान सागर, पृष्ठ ३७ ।

कुछ अन्य पुराने ढंग के अलंकार भी यत्र-तत्र छायावादी कविताओं में उपलब्ध होते हैं , जैसे -

स्मरण - " खैंच ऐंचीला भ्रू सुर चाप
शैल की सुधि यों बारंबार
हिला हरियाली का सुदुकूल
झुला झरनों का झलमल हार
जलद पट से दिखला मुख चंद्र
पलक पल-पल चपला के मार
भग्न उर पर भूधर सा हाय
सुमुखि धर देती है साकार ।"[१]

वक्रोक्ति - (सम्भाव)

" इन्दु पर उस इन्दु मुख पर साथ ही थे पड़े मेरे नयन ।"[२]

समासोक्ति - (प्रस्तुत के वर्णन से समान विशेषण प्रयोग द्वारा अप्रस्तुत का बोध)

" मैं जीर्ण साज बहु छिद्र आज,
तुम सुदल सुरंग सुवास सुमन ।"[३]

उल्लेख -

" स्म सागर के धवल हास हैं
जल के धूम, गगन की धूल ।
अनिल फेन ऊषा के पल्लव
वारि-वसन, वसुधा के मूल ।।[४]

संदेह - " मद भरे ये नलिन नयन मलीन है
अल्प जल में या विकल लघु मीन है ?

१- सुमित्रानन्दन पन्त - आधुनिक कवि ,पृष्ठ १६ ।
२- सुमित्रानन्दन पन्त - आधुनिक कवि, पृष्ठ २० ।
३- सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला - अनामिका - "हिंदी के सुमनों के प्रति",पृष्ठ ११४ ।
४- सुमित्रानन्दन पन्त - आधुनिक कवि, पृष्ठ २७ ।

याप्रतीक्षा में किसी की सवरी
बीत जाने पर हुए ये दीन हैं ?"[1]

<u>मुद्रालंकार</u> (प्रसंग गर्भता)

ललित कल्पना कोमल पद का
मैं हूं मनहर छंद ।[2]

<u>व्याज स्तुति</u> -

" चिल्लाया किया दूर दानव ।
बोला मैं - धन्य श्रेष्ठ मानव ।।[3]

<u>परिसंख्या</u> - (किसी वस्तु , धर्म, गुण व जाति का उनके उपयुक्त स्थानों से
हटाकर किसी एक विशिष्ट स्थान पर न्यास)

" देह में पुलक, उरों में भार
भ्रुवों में भंग, दृगों में बाण
अधर में अमृत हृदय में प्यार,
गिरा में लाज, प्रणय में मान ।"[4]

<u>पर्यायोक्ति</u> - (प्रकारान्तर से कथन)

" हो गया उदधि जीवन का
सिकता कण में निर्वासित ।"[5]

इस प्रकार के शास्त्र विहित परंपरागत अलंकारों का प्रयोग भी छायावादी कवियों ने इतने कौशल से किया है कि सर्वत्र उनसे वैदग्ध्य की ही पुष्टि हुई है, कहीं भी वे रूढ़ चमत्कार विहीन अथवा अनावश्यक लादे गए नहीं प्रतीत होते ।

१- सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला - परिमल- नयन, पृष्ठ ७१ ।
२- सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला - परिमल, पृष्ठ १५७ ।
३- सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला , अपरा, दान,पृष्ठ - १३१ ।
४- सुमित्रानन्दन पन्त - गुंजन, पृष्ठ ६० ।
५- महादेवी वर्मा - यामा (रश्मि) पृष्ठ ८६ ।

नवीन अलंकार : -

इनके अतिरिक्त कुछ नए ढंग के अलंकारों का प्रयोग भी छायावाद के साथ ही हिन्दी कविता में प्रारंभ हुआ । इनमें मानवीकरण, विशेषण विपर्यय और ध्वन्यर्थ व्यंजना मुख्य है ।

मानवीकरण -

मानवीकरण छायावादी कवियों का प्रिय अलंकार रहा है । निर्जीव अचेतन पदार्थों तथा अमूर्त विषयों पर मानवीय क्रिया-व्यापारों का आरोप ही " मानवीकरण " है । पूर्ववर्ती हिन्दी कवियों की रचनाओं में यदा-कदा अमूर्त भावनाओं को मानवोचित रूप देने के उदाहरण उपलब्ध हो सकते हैं, किन्तु छायावाद के पूर्व हिन्दी काव्य में न तो मानवीकरण कोई अलंकार था और न उसका इतना अधिक प्रचलन ही था । छायावादी कवियों ने ही पहले पहल अंग्रेजी के " परसानिफ़िकेशन " - (Personification) के आधार पर अलंकारिक रूप में इसका प्रयोग अभिव्यंजना में वैचित्र्य की सिद्धि हेतु किया । मानवीकरण के प्रति इतनी अधिक रुचि प्रदर्शित करने के मूल में छायावादी कवियों पर पड़नेवाला सर्वात्म दर्शन का प्रभाव भी हो सकता है, जिसके अन्तर्गत जड़-चेतन सभी में एक ही आत्मा की स्थिति स्वीकार की जाती है ।

छायावादी कवियों को बिम्ब सृष्टि के प्रति विशेष मोह रहा है, मानवीकरण द्वारा उन्हें बिम्बोत्पादन में सहायता मिली है अथवा यह कहा जा सकता है, कि छायावादी काव्य में जहां कहीं मानवीकरण का प्रयोग किया गया है, वहां बिम्बोत्पादन के प्रति भी विशेष आग्रह लक्षित होता है । पाश्चात्य आलोचकों ने भी " परसानिफ़िकेशन " के लिए बिम्ब सृष्टि की अनिवार्यता पर बल दिया है ।[1] बिम्ब सृष्टि की क्षमता के फलस्वरूप ही छायावादी काव्य में " मानवीकरण " अलंकार है, क्योंकि उसमें लक्ष्यार्थ की अपेक्षा वाच्यार्थ अधिक उत्कर्षक और प्रभावशाली होता है । इसके विपरीत पूर्ववर्ती काव्य में प्राप्य मानवीकरण ध्वनि है, क्योंकि उसमें कवि लक्ष्यार्थ को अधिक महत्त्व देते थे ।

---

1. G.C.Rosser : English Literary Appreciation, Appendix, page 158.
   " If a congrous and vivid image is not present in the context, the figure is invalid ."

मानवीकरण के दो रूप संभव है, निर्जीव पदार्थों का मानवीकरण तथा अमूर्त भावनाओं का मूर्तीकरण और उन पर मानवीय चेतना का आरोप। छायावादी काव्य में दोनों प्रकार के उदाहरण प्रचुर मात्रा में सुलभ है। प्रसाद ने रात्रि और उषा पर मानवीय क्रियाकलापों को घटित करते हुए प्रकृति के सुन्दर बिम्ब से युक्त मानवीकरण का एक श्रेष्ठ उदाहरण निम्न उद्धृत पंक्तियों में प्रस्तुत किया है -

" रजनी के रंजक उपकरण बिखर गए,
घूंघट खोल उषा ने फांका और फिर,
अरुण अपांगों से देखा, कुछ हंस पड़ी,
लगी टहलने प्राची प्रांगण में तभी ।।[१]

महादेवी " वसंत - रजनी " को नारी रूप में प्रस्तुत करती हुई लिखती हैं :-

" धीरे धीरे उतर क्षितिज से आ वसंत रजनी
तारकमय नव वेणी बंधन
शीशफूल कर शशि का नूतन
रश्मि वलय सित धन अवगुंठन
मुक्ताहल अभिराम बिछा दे चितवन से अपनी ।।[२]

" निराला " ने मानवीकरण द्वारा जड़ " यमुना " में चेतनता भर दी है :-

" किस अतीत का दुर्जय जीवन अपनी पलकों में सुकुमार,
कनक पुष्प सा गूंथ लिया है, किसका है यह रूप अपार ।
निर्निमेष नयनों में छाया किस विस्मृत मदिरा का राग ।
जो अब तक पुलकित पलकों से छलक रहा यह मृदुल सुहाग ।"[३]

पंत ने भी प्राकृतिक उपकरणों को सामान्य मानव सदृश क्रिया-व्यापार करते हुए चित्रित किया है :-

" सिहर उठे पुलकित हो द्रुम दल
सुप्त समीरण हुआ अधीर

१- जयशंकर प्रसाद - झरना, पृष्ठ ८ ।
२- महादेवी वर्मा - नीरजा, पृष्ठ ४ ।
३- सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला - परिमल, यमुना के प्रति, पृष्ठ ४७ ।

झलका हास कुसुम अधरों पर
हिल मोती का सा दाना ।"[1]

निराला की " जुही की कली " और " शेफालिका " तथा पंत की " चांदनी " को प्रकृति के मानवीकरण की प्रवृत्ति के कारण ही विशेष प्रसिद्धि मिली है ।

वस्तुओं के अतिरिक्त भावनाओं को भी मानवीय रूप देने हेतु छायावादी कवियों ने मानवीकरण अलंकार का बहुत अधिक आश्रय लिया है । प्रसाद की " कामायनी " के सभी पात्र मनोवृत्तियों के मानवीकृत रूप है । " लज्जा " का मानवोचित व्यापार करते हुए प्रसाद लिखते हैं :-

" कोमल किसलय के अंचल में
नन्हीं कलिका ज्यों छिपती सी,
गोधूली के धूमिल पट में
दीपक के स्वर में दिपती सी ,

\+ \+ \+

नीरव निशीथ में लतिका सी
तुम कौन आ रही हो बढ़ती ?
कोमल बाहें फैलाए सी
आलिंगन का जादू पढ़ती ।"[2]

इसी प्रकार प्रसाद ने निम्न पंक्तियों में " पीड़ा " की अमूर्त भावना को साकार करते हुए उस पर मानवीय चेतना का आरोप किया है -

" है पड़ी हुई मुंह ढंककर
मन की जितनी पीड़ाएं ।
वे हंसने लगे सुमन सी
करती कोमल क्रीड़ाएं ।।[3]

सारांशत: छायावादी काव्य में मानवीकरण अलंकार का प्रयोगाधिक्य लक्षित होता है, तथापि वह साध्य न होकर साधन मात्र है, उसका

१- सुमित्रानन्दन पन्त - आधुनिक कवि, पृष्ठ ४ ।
२- जयशंकर प्रसाद - कामायनी - लज्जा सर्ग, पृष्ठ १०५ ।
३- जयशंकर प्रसाद - आंसू, पृष्ठ ७२ ।

प्रयोग बिम्ब सृष्टि के साधक रूप में तथा अमूर्त , अरूप, भावों को मूर्त रूप देने हेतु हुआ है । मानवीकरण द्वारा छायावादी कविताओं की चित्रात्मकता और प्रभाव में वृद्धि हुई है ।

विशेषण विपर्यय :-

" मानवीकरण " की ही भाँति पाश्चात्य काव्य में प्रयुक्त अलंकारों में से " विशेषण विपर्यय " भी छायावादी कवियों को विशेष प्रिय रहा है । इसे अँगरेज़ी के ट्रान्सफर्ड एपीथेट) का हिंदी संस्करण माना गया है । विशेषण-विपर्यय में विशेषण का न्यास उसके विशेष्य से हटाकर उसी से संबद्ध किसी अन्य संज्ञा पर कर दिया जाता है ।" धर्म " तथा " गुण " के इस स्थानान्तरण के फलस्वरूप शब्दों के अर्थ में विशेष चमत्कार उत्पन्न हो जाता है । जैसे पंत लिखते हैं -" आह यह मेरा गीला गान " ।[१] यहाँ विशेषण का उसके उचित स्थान से विपर्यय हो गया है वस्तुत: गान गीला नहीं होता, कवि ने इन दो शब्दों के माध्यम से आँसू बहाते सिसकते मनुष्य का चित्र अंकित करना चाहा है ।

निराला की निम्न पंक्तियों में -

" बता कहाँ अब वह वंशीवट, कहाँ गए नट नागर श्याम,
चल चरणों का व्याकुल पनघट, कहाँ आज वह वृन्दाधाम । "[२]

पनघट व्याकुल नहीं है वरन् उसके द्वारा कृष्ण के दर्शन की प्यासी ब्रजबालाओं की व्याकुलता की ओर संकेत किया गया है । इसी प्रकार सूने आलिंगन , पुलकित प्रणय, कसकती वेदना, तरल आकांक्षा, पिघलती आँखें, आतुर अनुराग ,चंचल आँसू, सजल गान, भीगी तान आदि प्रयोगों की छायावादी कविताओं में भरमार है ।

विशेषण के इन चमत्कारपूर्ण प्रयोगों का संबंध परंपरा से जोड़नेवाले उसका मूल रूप " साध्यवसाना लक्षणा " में देखते हैं [३-] कुन्तक के वक्रोक्ति सिद्धान्त के अनुसार इस प्रकार के प्रयोग विशेषणवक्रता " के अन्तर्गत आते हैं ।

१- सुमित्रानन्दन पन्त - पल्लव ,पृष्ठ १७ ।
२- सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला - परिमल, यमुना के प्रति, पृष्ठ ४६ ।
३- शंभूनाथ सिंह - छायावाद युग, पृष्ठ २७४ ।
   दीप - छायावाद की काव्य साधना, पृष्ठ २४५ ।

काव्य शैली प्रकरण में इनकी चर्चा हो चुकी है । परन्तु विशेषण विपर्यय की छायावाद से पूर्व न यह नाम प्राप्त था और न इतनी लोकप्रियता, अतएव हिन्दी कविता के लिये यह अलंकार भी नया ही कहा जाएगा । हिन्दी कविता में इसका प्रचलन भारतीय साहित्य शास्त्र की प्रेरणावश नहीं वरन् पाश्चात्य प्रभावश हुआ । वैसे उर्दू काव्य में इस प्रकार के प्रयोग बहुधा दिखाई देते हैं ।

ध्वन्यर्थ व्यंजना -

अंग्रेज़ी काव्य में 'आनोमैटोपोइया (Onomatopoeia) अलंकार का अत्यधिक प्रचलन है । इसमें ध्वनि द्वारा अर्थ की व्यंजना होती है । ध्वनि से अर्थ व्यंजित करना अंग्रेज़ी काव्य में प्रशंसनीय माना जाता है ।[1] छायावादी काव्य में इसी आनोमैटोपोइया के आधार पर 'ध्वन्यर्थ व्यंजना' का प्रचलन हुआ ।

आनोमैटोपोइया के अन्तर्गत नैसर्गिक ध्वनियों के अनुकरण द्वारा गढ़े गए शब्दों द्वारा अर्थ का ध्वनन होता है[2] तथा साथ ही ऐसे ध्वन्यात्मक शब्दों का भी प्रयोग होते हैं जिनके द्वारा किसी विशिष्ट अर्थ की व्यंजना होती है । अर्थात् आनोमैटोपोइया अथवा 'ध्वन्यर्थ व्यंजना' में शब्द ध्वनि नहीं अर्थ ध्वनि महत्वपूर्ण होती है फलत: ऐसे प्रयोगों द्वारा न केवल कविता के नाद सौन्दर्य की वृद्धि होती है वरन् भाषा की अर्थ व्यंजकता का भी विकास होता है ।

भाषा विवेचन के प्रसंग में उल्लेख किया जा चुका है कि छायावादी कवियों ने ध्वनिबोध को भाषा की श्रेष्ठता की मुख्य कसौटी माना है । पंत ने भाषा को संसार का नादमय चित्र और ध्वनिमय स्वरूप कहा है ।[3] अपनी इसी धारणा के अनुसार इन कवियों ने ध्वन्यात्मक वर्ण संगतियों के अनेकानेक श्रेष्ठ उदाहरण प्रस्तुत किये हैं । इस क्षेत्र में निराला का नाम सर्वोपरि है । कोमल और कठोर दोनों प्रकार की ध्वनियों को शब्दबद्ध करने में निराला ने अपूर्व सिद्धि प्राप्त की है, जैसे -

---

1. Is not enough no harshness gives offence
   The sound must be an echo to the sense ".
   - Pope -English Verse, 1949, p. 161.
2. Onomatopoeia, a term used in philology to demote the formation of words by imitation of natural sounds,.... Onomatopoeia means literally the making or formation of words . - Encyclopaedia Britaunica, Vol 16. p. 794.

3- सुमित्रानन्दन पन्त -- पल्लव (प्रवेश) पृष्ठ १६।

कण कण कर कंकण ,प्रिय
किण किण रव किंकिणी
रणन रणन नूपुर उर लाज
लौट रंकिणी ।[१]

यहाँ आभूषणों की झंकार को शब्दबद्ध करके ध्वनियों के पुनरोत्पादन द्वारा मात्र संगीत सृष्टि ही लक्ष्य नहीं है, वरन् अलंकृता नायिका की लाज युक्त मंद मंथर गति का चित्र भी साकार होता है । इसी प्रकार

" भेरी भररर - भररर दमामें
घोर नकारों की है चोप ।
कड़ कड़ कड़ सन् सन् बंदूकें
अररर अररर अररर तोप ।।[२]

इन पंक्तियों में कड़ कड़ , सन् सन् , अररर भररर आदि अनुकरणमूलक शब्द युद्ध क्षेत्र की विकरालता और भीषण रव का अर्थ व्यंजित करते हैं ।

पंत ने भी पदार्थगत ध्वनियों के अनुकरण द्वारा अनुरणनमूलक शब्द गढ़कर भाषा को एक विशिष्ट अर्थ व्यंजकता प्रदान करने में विशेष कौशल का परिचय दिया है जैसे -

झूम झूम झुकझुक कर
भीम नीम तरु निर्भर
सिहर सिहर थर् थर् थर्
करता सर् मर्
चर् मर् ।[३]

उपर्युक्त उदाहरण में झूमते हुए नीम से उत्पन्न ध्वनियों को शब्दबद्ध करके उनके द्वारा पवन के वेग को व्यंजित किया गया है ।

इसके अतिरिक्त प्रत्येक भाषा में कुछ ऐसे शब्द प्रचलित होते हैं जो अनुरणनात्मक न होते हुए भी मानव संसर्ग से किसी विशिष्ट अर्थ का ध्वनन करते हैं । ऐसे सस्वर शब्दों के विषय में सुमित्रानन्दन पन्त ने पल्लव की भूमिका में

१- सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला - गीतिका, पृष्ठ ६ ।
२- सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला - अनामिका - नाचे उस पर श्यामा,पृष्ठ १०७ ।
३- सुमित्रानन्दन पन्त - आधुनिक कवि , झंझा में नीम, पृष्ठ ८० ।

विस्तारपूर्वक लिखा है । छायावादी कवियों ने अपने व्यक्तिगत मानसिक बोध के आधार पर इस प्रकार के असंख्य अर्थव्यंजक सस्वर शब्दों का कुशल प्रयोग किया है जैसे -

" मुझे स्नेह क्या मिल न सकेगा ?
स्तब्ध , दग्ध मेरे मरु का तरु
क्या करुणाकर खिल न सकेगा ?"[१]

इन पंक्तियों में " स्तब्ध " और " दग्ध " शब्द अपने सामान्य अर्थ से कुछ अधिक गहरा अर्थ ध्वनित करते हैं । उनसे सशंकित हृदय का प्रश्न " कुछ अधिक स्पष्ट हो जाता है, और मन का निविड़ सूनापन कुछ अधिक मुखर हो जाता है । इसी प्रकार -

" फिर क्या ? पवन
उपवन सर सरिता गहन गिरि कानन
कुंजलता पुंजों को पार कर
पहुंचा ।"[२]

यहां पवन की सरसर, मरमर आदि ध्वनियों का उल्लेख नहीं है किन्तु मानस संसर्ग से यह शब्द विशिष्ट अर्थ का बोध कराते हुए पवन की तीव्र गति उसका कुंजलता पुंजों में घुसकर जल्दी जल्दी बाहर निकलना और लक्ष्य की ओर दौड़ते हुए पहुंचना आदि क्रियाओं को मूर्त कर देते हैं । शब्दों द्वारा वर्ण्य वस्तु की ध्वनि नहीं, ध्वनि द्वारा विशेष अर्थ का बोध कराने के कारण ही यहां ध्वन्यर्थ व्यंजना अलंकार है ।

निराला ने ध्वन्यर्थ व्यंजना के सर्वाधिक सफल प्रयोग किये हैं किन्तु पंत के काव्य में भी उसके अनेक श्रेष्ठ उदाहरण प्राप्य हैं, जैसे -

" उड़ गया अचानक लो भूधर
फड़का अपार पारद के पर ।
रव शेष रह गए हैं निर्झर ,
है टूट पड़ा भू पर अम्बर ।

१- सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला - गीतिका, पृष्ठ १४५ ।
२- सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला - परिमल, पृष्ठ १६२ ।

धंस गए धरा में सभय शाल ।
उठ रहा धुआँ जल गया ताल ।।[1]

यहाँ भी भूधर का उड़ना, पारद के पर फड़काना, भू पर अम्बर का टूट पड़ना, निर्झर का रव शेष होना आदि शब्द समूह अनुकरण मूलक न होते हुए भी अपनी अर्थध्वनि द्वारा मूसलाधार वर्षा का चित्र सजीव करते हैं ।

" ध्वन्यात्मकता " के गुण से हिन्दी कविता पहले भी अपरिचित नहीं थी किन्तु ध्वन्यात्मक शब्दों के द्वारा सूक्ष्म अर्थ कथन की यह प्रणाली पूर्व युगों में प्रचलित नहीं थी । भारतीय काव्यशास्त्र में ध्वन्यर्थ व्यंजना नामक किसी अलंकार का उल्लेख भी अप्राप्य है, अतएव मानवीकरण और विशेषण विपर्यय की भाँति ही हिन्दी कविता के लिए ध्वन्यर्थ - व्यंजना अलंकार भी छायावाद की नई देन ही कहा जाएगा ।

सारांशत: छायावादी कवियों ने अपनी मौलिक एवं उच्चकोटि की अप्रस्तुत योजना द्वारा काव्य में श्री , समृद्धि कलता एवं अर्थ गौरव की पुष्टि की । अलंकारों का प्रचुर प्रयोग करते हुए भी इन कवियों का लक्ष्य परिपाटी का पालन न होकर बिम्ब सृष्टि के द्वारा काव्य में अर्थ-संवेदन की शक्ति का विस्तार करना रहा है । बिम्बमूलकता छायावादी कवियों की अलंकार- योजना का अनिवार्य तत्व है । छायावाद के प्रथमोत्थान की कविताओं में अलंकरण की प्रवृत्ति अधिक लक्षित होती है । उत्तरकालीन छायावादी काव्य में सुख-दुख की सीधी अभिव्यक्ति करना ही कवियों को अधिक रुचिकर हुआ है ।

0000

१- सुमित्रानन्दन पन्त - आधुनिक कवि , पृष्ठ १३-१४ ।

अध्याय - ८

छायावादी काव्य में छंद योजना

छायावादी कवियों की छंद प्रयोग की दृष्टि

छायावाद ने काव्य के भाव और अभिव्यक्ति संबंधी समस्त क्षेत्रों में नवीनता का आवाहन किया, किन्तु उसके द्वारा सब से बड़ी क्रान्ति छंद के क्षेत्र में हुई। प्राचीन मान्यताओं की अवहेलना करते हुए "निराला" अपनी कविता कामिनी से प्रगल्भ होकर कह उठे -

> "आज नहीं है मुझे और कुछ चाह
> अर्द्ध विकच इस हृदय कमल में आ तू
> प्रिये। छोड़कर बंधनमय छंदों की छोटी राह।"[१]

"छंदों की छोटी राह" में कवि हृदय की छंदोबद्धता के प्रति तिरस्कार भावना स्पष्ट है। निराला ने मनुष्य की मुक्ति की भाँति कविता की मुक्ति की भी आकांक्षा की। परिमल" की भूमिका में वे लिखते हैं - "मनुष्यों की मुक्ति कर्मों के बंधन से छुटकारा पाना है और कविता की मुक्ति छंदों के शासन से अलग हो जाना है"।[२]

निराला के इन क्रान्तिकारी विचारों ने हिन्दी काव्य में एक नवीन परंपरा को जन्म दिया और कविता की मुक्ति के लिये नई पीढ़ी के कवियों ने विभिन्न प्रयोग प्रारंभ किये। परंतु क्या वास्तव में छायावादी कवि छंद के बंधन से कविता को मुक्त करा सके अथवा क्या छंद बंधन से परे कविता का अस्तित्व संभव है ? - यह एक विचारणीय प्रश्न है। इसके लिये छंद-बंधन से कविता की मुक्ति की बात कहनेवाले छायावादी कवियों का अभिप्राय समझ लेना अनिवार्य है।

१- सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला - अनामिका - प्रगल्भ प्रेम, पृष्ठ ३४।
२- सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला - परिमल - भूमिका, पृष्ठ १४।

भारतीय काव्यशास्त्र के अनुसार काव्य के लिये छंद अनिवार्य है। छंदोबद्धता काव्य का वह मूलभूत तत्व है जो गद्य से उसका व्यावर्तन करता है। प्राचीन साहित्याचार्यों ने अनेक प्रकार के छंदों का विधान कविता के विभिन्न भावों और रसों के लिये उनकी अनुकूलता का ध्यान रखते हुए किया है। प्राचीनकाल से लेकर अब तक के समस्त विद्वानों ने कविता के प्रवाह की रक्षा के लिये तथा उसकी प्रभविष्णुता बढ़ाने के लिये छंद की उपयोगिता को स्वीकार किया है।

भाषा प्रकरण में स्पष्ट किया जा चुका है कि प्रत्येक भाषा की अपनी एक लय होती है। वरन् यह कहना अधिक संगत होगा कि हमारे संपूर्ण जीवन और अखिल सृष्टि में एक लय, एक गति एक सूक्ष्म संगीत व्याप्त है जिसके द्वारा हमारे समस्त जीवन व्यापार संचालित होते हैं। कविता भाषा के माध्यम से वैयक्तिक स्तर पर हमारे सामाजिक जीवन और अनुभूतियों का चित्रांकन करती है, अतएव कविता की भी एक लय होती है। इस लय का ही विशिष्ट और मर्यादित रूप 'छंद' कहलाता है। नदी के अनियंत्रित वेग को उपयोगी बनाने के लिये जैसे बांध बनाए जाते हैं, उसी प्रकार कविता के प्रवाह को अधिक सशक्त और प्रभावशाली रूप देने के लिये छंद का विधान किया जाता है। काव्यभाषा की स्वाभाविक लय काल, स्वराघात के साम्य और अन्विति के द्वारा नियंत्रित होकर 'छंद' बनती है और इन छन्दों में ढलकर कविता अपने सौन्दर्य और भावनात्मक प्रवाह को सुरक्षित रखती है। इस प्रकार कविता और छंद का अत्यंत घनिष्ठ संबंध प्रकट होता है।

छंद और कविता का यह संबंध छायावादी कवियों को भी अमान्य नहीं था; इसकी पुष्टि 'पल्लव' की भूमिका से उद्धृत पंत के निम्नलिखित वक्तव्य से की जा सकती है -

"कविता तथा छंद के बीच बड़ा घनिष्ट संबंध है। कविता हमारे प्राणों का संगीत है, छंद हृत्कंपन। कविता का स्वभाव ही छंद में लयमान है। जिस प्रकार नदी के तट अपने बंधन से धारा की गति को सुरक्षित रखते हैं, जिनके बिना वह अपनी ही बंधन हीनता में अपना प्रवाह खो बैठती है, उसी प्रकार छंद भी अपने नियंत्रण से राग को स्पंदन, कंपन तथा वेग प्रदान कर निर्जीव शब्दों के रोड़ों में एक कोमल सजल कलरव भर उन्हें सजीव बना देते हैं।"[१]

स्पष्टतः पंत ने कविता में राग या संगीत तत्व को अत्यधिक

१- सुमित्रानन्दन पन्त - पल्लव, भूमिका, पृष्ठ १४।

महत्वपूर्ण माना है । यह राग या संगीत तत्व ही ,कोई भिन्न तत्व न होकर कविता की लय है जिसका आविर्भाव गति, यति, प्रवाह एवं विराम के पारस्परिक एवं क्रमिक संघात से होता है । कविता में केवल अर्थ प्रकट करनेवाली विधानिक भाषा ही पर्याप्त नहीं होती , उसमें स्वर मैत्री तथा भाव और अर्थ का योग भी अनिवार्य है । स्वर मैत्री से तात्पर्य यह है कि शब्द अपनी लय को कविता की भावलय में विलीन कर दें तभी उसमें एक प्रकार के आन्तरिक संगीत की पुष्टि होती है कविता के इस आन्तरिक संगीत की अभिव्यक्ति छंद द्वारा ही संभव है क्योंकि छंद और कुछ नहीं लय के इन्द्रिय संवेद्य किन्तु अमूर्त तत्व का शब्द-बद्ध रूप है, जिसका लक्ष्य स्वराघात (जो बलाघात, कालावधि या निपात, किसी भी रूप में हो सकता है) द्वारा ध्वनि अथवा गति की व्यवस्था है ।[1] राग अथवा लय के आबद्ध स्वर छंद की सहायता से एक वृत्त में बंधकर अपनी परिपूर्णता को प्राप्त करते हैं । किसी न किसी प्रकार का छंद बंधन स्वीकार किये बिना कविता का नैसर्गिक स्वर प्रवाह अपना प्रभाव खो देता है ।

वस्तुत: कविता और छन्द का परस्पर वही संबंध कहा जा सकता है जो मानवात्मा और उसके शरीर का होता है । आत्मा को शरीर से निकाल फेंकना मनुष्य के वश की बात नहीं, वह शरीर के प्रति अपनी आसक्ति को अवश्य कम कर सकता है अथवा त्याग सकता है।इसी प्रकार छंद का बंधन सर्वथा त्याग कर देने पर कविता "कविता" नहीं रह जायगी, भले ही वह अलंकृत गद्य बन जाए,जैसा की पश्चिम के मूर्तिमत्तावाद (Impressionism) में दिखाई देता है । पश्चिम के मूर्तिमत्तावादी साहित्यकार शैली, कालरिज आदि छंद को भी अलंकार की भाँति बाह्य वस्तु अथवा काव्य का आभूषण मानकर उसकी अनिवार्यता को अस्वीकार करते हैं । वर्ण्यवस्तु के लयतत्व का यथावत् चित्रण कर देना ही वे पर्याप्त समझते हैं । गद्य और पद्य में भेद मानना भी उन्हें असंगत लगता है ।

किन्तु इस संबंध में पंत के विचार अधिक महत्वपूर्ण प्रतीत होते हैं । गद्य और पद्य की लय सदा एक दूसरे से भिन्न होती है । यह और बात है

---

1. Chamber's Encyclopaedia- Vol.XI, P. 679.
" Thus the basis of all metre is organization of sound or movement by accent, which may be of stress, duration (agogic) or pitch ."

कि सभी छंदबद्ध रचनायें काव्य नहीं होतीं (क्योंकि अनेक ज्ञान संबंधी प्राचीन ग्रंथ छंद बंद्ध रूप में प्राप्त होते हैं) किन्तु कोई भी कविता छंद-बंधन से बिना नहीं हो सकती, यहां तक कि मुक्त छंद में रचित कविता भी छंद-विहीन नहीं होती । "छंद" कविता का परंपरागत तथा अतिरिक्त अलंकार मात्र नहीं है, वह वह अनिवार्य एवं महत्वपूर्ण तत्व है जिसके द्वारा काव्यात्मा अपनी पूर्णता को प्राप्त करती है । मुक्तिमंधावादियों के विचारों से इतना तथ्य अवश्य ग्रहण किया जा सकता है कि अलंकार विभावानुभाव, गुण, रीति आदि की भांति छंद का बंधन भी जब इतना कठोर हो उठे कि उसमें कविता की आत्मा मुरझाने लगे और कवि को अपने भावों के प्रकाशन में कठिनाई प्रतीत हो , तो ऐसे बंधनों को तोड़कर नए नियम बनाना प्रतिभा संपन्न और क्रान्तदर्शी कवियों का ही कार्य है ।

छायावादी कवियों ने भी इसी अर्थ में कविता की मुक्ति की मांग की । उनका विरोध वस्तुतः छंद-बंधन से नहीं छंद-शास्त्र के नियमों की जड़ता से था । भावों के उन्मुक्त प्रवाह को केवल इस विचार से बाधित होकर जबरदस्ती मोड़ना कि परंपरा से प्रचलित छंदों में उसे भरा जा सके, स्वभाव से ही स्वच्छंदता प्रेमी छायावादी कवियों को रुचिकर नहीं प्रतीत हुआ । उन्होंने अनुभव किया कि छंद के बने बनाए सांचों में भावों को उनकी इच्छा के प्रतिकूल ढालना, भावों के प्रति अन्याय है । अतएव उन्होंने काव्यात्मा को स्वतंत्र रखने के लिये एवं भाव-लय की रक्षा के लिये पुराने छंदों में आवश्यकतानुसार हेर फेर किये तथा छंदों के कुछ मौलिक और नवीन सांचे निर्मित किये । छंद के महत्व को छायावादी कवियों ने असंदिग्ध रूप से स्वीकार किया किन्तु छन्द-शास्त्र की दासता को नहीं । छंद लय का इन लोगों ने अधिकाधिक लाभ भी उठाया और आवश्यकता पड़ने पर उसे तोड़कर उस पर अपना अधिकार भी सिद्ध किया ।

<u>छंद प्रयोग क्षेत्र में क्रान्ति :</u>

छंद के क्षेत्र में क्रान्ति का श्री गणेश वास्तव में आधुनिक युग के प्रारंभ में भारतेन्दु के समय से ही हो गया था । रीतिकालीन घनाक्षरी दोहों और सवैयों की बाढ़ के सामने भारतेन्दुयुग छप्पय, रोला, और उर्दू छंदों - ग़ज़ल आदि

की विविधता लेकर आया । लावनी, ख्याल और कजली को भी इस युग में अत्यधिक लोकप्रियता मिली । स्वयं भारतेन्दु ने अनेक लावनियाँ एवं कजलियाँ की रचना की । भारतेन्दु के बाद महावीर प्रसाद द्विवेदी ने संस्कृत के वर्णवृत्तों का आदर्श उपस्थित किया । इस युग की कविताओं में वंशस्थ, द्रुत विलंबित, वसंत तिलका, शिखरिणी, मालिनी,मंदाक्रान्ता, उपेन्द्रवज्रा , आर्या, त्रोटक आदि वृत्तों की भरमार मिलती है। अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध की प्रियप्रवास और मैथिलीशरण गुप्त की पत्रावली इसके उदाहरण हैं । इस समय की काव्यभाषा संस्कृत से अत्यधिक प्रभावित थी, अतएव छंद प्रयोग में भी संस्कृत छंदों की ओर झुकाव स्वाभाविक ही था । वर्ण वृत्तों की प्रकृति समस्त एवं संधियुक्त पदों के अधिक अनुकूल है, किन्तु वर्ण वृत्तों की लय गणों पर आधारित होने के कारण असमस्त भाषा में उनका प्रयोग कठिन हो जाता है । लय को ठीक रखने के लिये बहुधा शब्दों की खींचा तानी करनी पड़ती है । कालान्तर में दीर्घ समास-बहुला शब्दावली के प्रति इस युग के कवियों की रुचि धीरे धीरे कम होने लगी, अतएव उसी के साथ साथ वर्ण वृत्तों का प्रयोग कम हो चुका । काव्य की भाषा को बोलचाल के निकट लाने के आकांक्षी कवियों, नाथूराम शंकर शर्मा, ठाकुर गोपाल शरण सिंह, गया प्रसाद शुक्ल सनेही, अनूप शर्मा आदि का ध्यान पुन: ब्रजभाषा के कवित्त सवैयों ने आकर्षित किया, और वर्णवृत्तों के साथ वर्णिक छंदों का प्रयोग भी द्विवेदीयुग में चलता रहा ।

किन्तु वर्णवृत्त अपने गुरु गंभीर शिथिल संगीत और वर्णिक छंद अपने लम्बे लम्बे चरणों और गति की एकानुरूपता के कारण लोकप्रियता के शिखर धीरे धीरे नीचे उतरने लगे और कुछ कवियों का ध्यान मात्रिक छंदों के प्रयोग की ओर भी गया । मैथिलीशरण गुप्त ने " भारत भारती " और " जयद्रथ वध " में हरिगीतिका" का प्रयोग किया । इसके अतिरिक्त गीतिका, ताटंक, पीयूषवर्षी, मधुमालती, शाकलि, सार आदि छंदों का प्रयोग भी बहुलता से हुआ । भारतेन्दु कालीन कजली तो इस युग में आदर न पा सकी, किन्तु लावनी का प्रयोग चलता रहा । " सनेही " मैथिली शरण गुप्त, रूपनारायण पाण्डेय आदि ने इसे अपनाया ।

मैथिलीशरण गुप्त और श्रीधर पाठक ने तुकान्त रहित मात्रिक छंदों का प्रयोग भी प्रारंभ किया । बंगला और अंगरेज़ी के छंदों की ओर भी इन कवियों का ध्यान गया, किन्तु अधिकांशत: यह कवि छंदों के प्रतिष्ठित नियमों और परंपराओं का पालन करते रहे ।

तात्पर्य यह कि द्विवेदीयुगीन काव्य में छंद वैविध्य के दर्शन होते हैं, किन्तु छंद के क्षेत्र में वास्तविक क्रान्ति आगे चलकर छायावाद युग में हुई । छायावादी कवियों को पूर्व प्रचलित नियम और विधान अपने स्वतंत्र भाव प्रकाशन में बाधक प्रतीत हुए, अतएव उन्होंने तुक, यति, लय आदि से संबंधित नए नियमों का निर्माण अपने काव्य हेतु किया ।

नवीन छान्दस योजनायें, तुक-परिवर्तन :

" तुक " कविता के भाव का मध्यकेन्द्र होता है उसमें कविता का स्वास्थ्य और संगीत निहित रहता है । तुक के महत्व को छायावादी कवियों ने भी अस्वीकार नहीं किया, इसकी पुष्टि पंत के निम्नलिखित वक्तव्य से होती है -

" तुक राग का हृदय है, जहां उसके प्राणों का स्पंदन विशेष रूप से सुनाई पड़ता है । राग की छोटी बड़ी नाड़ियां मानो अन्त्यानुप्रास के नाड़ी चक्र में केन्द्रित रहती है , जहां से नवीन बल तथा शुद्ध रक्त ग्रहणकर वे छंद के शरीर में स्फूर्ति का संचार करती है । जो स्थान ताल में " सम " का है, वही स्थान छंद में तुक का । वहां पर -------- राग शब्दों की सरल तरल कुंचित परनों में घूम फिरकर विराम ग्रहण करता उसका सिर जैसे अपनी ही स्पष्टता में हिल उठता है । जिस प्रकार अपने आरोह अवरोह में राग वादी स्वर पर बार-बार ठहर कर अपना रूप विशेष व्यक्त करता है उसी प्रकार वाणी का राग भी तुक की पुनरावृत्ति से स्पष्ट तथा परिपुष्ट होकर लय युक्त हो जाता है ।"[1]

प्रसाद, पंत, निराला महादेवी आदि छायावाद के शीर्षस्थ कवियों ने तुकान्तपूर्ण रचनायें की है, किन्तु द्विवेदीयुग के कवियों की भांति यह लोग तुक पर प्राण भी नहीं देते थे । द्विवेदीयुगीन कवियों का तुक मोह अपनी चरम सीमा पर पहुंच गया था । तुक मिलाने के लिये उन्होंने जी भर कर शब्दों की तोड़ मरोड़ की है । यद्यपि हिन्दी कविता में अन्त्यानुप्रास हीन रचनाओं का प्रयोग प्रारंभ करने वाले मैथिलीशरण गुप्त ही थे तथापि स्वयं उनकी कविताओं में इस प्रकार के दोषों का बाहुल्य है, जैसे :- हुई पता की हानी, करुणा भरी कहानी "[2]

१- सुमित्रानन्दन पन्त - पल्लव, भूमिका, पृष्ठ ३३, ३४ ।

२- मैथिलीशरण गुप्त - यशोधरा, पृष्ठ ६० ।

वहाँ " कहानी " की बराबरी के लिये हानि को " हानी " बनना पड़ा है । बहुधा जबरदस्ती तुक मिलाने के लिये कविता के भाव सौन्दर्य को भी उपेक्षित कर दिया गया है । जैसे मैथिलीशरण गुप्त का एक गीत है -" स्नेह जलाता है यह बत्ती " इस बत्ती से स्वर साम्य मिलाने के लिये कवि को रत्ती, पत्ती आदि शब्द खोजकर लाने पड़े हैं । गीत की अंतिम पंक्ति-" ठंडी न पड़ बनी रह तत्ती " में " तत्ती " शब्द का प्रयोग वियोग की कोमल अनुभूति को तो चौपट कर ही देता है, साथ ही कवि की नियमों के प्रति दासता का भी दिग्दर्शन कराता है ।

तुकान्तहीन रचनायें (Blank Verse)

छायावाद युग में कुछ तुकों की नीरसता को दूर करने का प्रयत्न किया गया और पर्याप्त मात्रा में तुकान्त रहित रचनाओं की सृष्टि हुई । उदाहरणार्थ प्रसाद की इन पंक्तियों में -

" वीणे पंचम स्वर में बजकर मधुर मधु ।
बरसा दे तू स्वयं विश्व में आज तो ।।
उस वर्षा में भीगे जाने से भला ।
लौट चला आवे प्रियतम इस भवन में ।।[१]

— अन्त्यानुप्रास का क्रम बिल्कुल नहीं मिलता । प्रत्येक पंक्ति का अंतिम स्वर दूसरे से भिन्न है । वस्तुतः इन कवियों के लिये कविता में मुख्य वस्तु संगीतात्मकता स्वर प्रवाह अथवा भावलय है । तुक के कारण जहाँ कहीं कविता का स्वर-प्रवाह बाधित होता हुआ प्रतीत हुआ, वहाँ इन्होंने निस्संकोच तुक की उपेक्षा करके तुकान्त रहित चरणों की योजना की । इस प्रकार के प्रयोगों में इन्हें सफलता भी प्राप्त हुई है । उदाहरणार्थ -

" शैवलिनि जाओ मिलो तुम सिन्धु से
अनिल आलिंगन करो तुम गगन को
चंद्रिके चूमो तरंगों के अधर,
उडुगणों गाओ पवन वीणा बजा ।

१- जयशंकर प्रसाद - झरना - अर्चना , पृष्ठ ३६।

पर हृदय सब भाँति तू कंगाल है ।
उठ किसी निर्जन विपिन में बैठकर
अश्रुओं की बाढ़ में अपनी बिकी
भग्न भावों को डुबा दे आँख सी ।।[१]

यहाँ पर भाव कल्पना की सघनता के फलस्वरूप अतुकान्तता का आभास तक नहीं होता तथा चरणान्त में किसी प्रकार का स्वर-साम्य न रहने पर भी कविता का आन्तरिक प्रवाह सुरक्षित रहता है । तथापि अंगरेज़ी कवि शेक्सपियर मिल्टन आदि अतुकान्त छंदों के द्वारा अपनी कविताओं में जैसा प्रभाव और निर्बाध प्रवाह उत्पन्न कर सके हैं वैसा प्रभाव एवं प्रवाह लाने में यह कवि सक्षम नहीं हुए । वस्तुत: संस्कृत वर्ण वृत्तों की भाँति ही अतुकान्त छंद भी खड़ी बोली हिन्दी-काव्य की प्रकृति के अनुकूल नहीं सिद्ध हुए, इसी कारण इनका अधिक प्रचलन नहीं हो सका । इनका महत्व केवल इतना है कि छायावादी नवीन छन्दस योजनाओं का समारंभ इनके द्वारा हुआ और इन्होंने शास्त्रीय छंदों और मुक्त छन्द के मध्यवर्ती सोपान का कार्य किया । भारतीय वैदिक साहित्य अतुकान्त छंदों में ही रचित है, अतएव इनका प्रयोग अनुपातन भी नहीं कहा जा सकता । संस्कृत साहित्य में भिन्न तुकान्त वर्णवृत्तों का प्रचलन था, जिनके अनुकरण पर द्विवेदीयुग के कुछ हिन्दी कवियों ने अपनी रचनाओं में इनकी सायास अवतारणा की । छायावादी कवियों ने अतुकान्त वृत्तों के स्थान पर प्लवंगम, ताटंक, पीयूषवर्षी आदि परंपरागत मात्रिक छंदों का तुकान्त रहित प्रयोग किया । यहीं पर पाश्चात्य ब्लैंक वर्स और हिन्दी के अतुकान्त छंद की पारस्परिक भिन्नता प्रकट होती है । पाश्चात्य साहित्य में ब्लैंक वर्स का प्रयोग "आयम्बिक पैन्टामीटर" (एक छंद विशेष) तक ही सीमित है जबकि हिन्दी काव्य में किसी भी शास्त्रीय छंद को अतुकान्त रूप दे देने की स्वतंत्रता उदित होती है । जैसे निम्न उद्धृत पंक्तियों में १६ मात्राओंवाले पीयूष वर्षी छंद की अतुकान्त रूप में योजना की गई है -

"सलिल शोभी जो पतित आहत भ्रमर
सदय हो तुमने लगाया हृदय से
एक तरल तरंग से उसको बचा,
दूसरी में क्यों डुबाती हो पुन: ?[२]

१- सुमित्रानन्दन पन्त - ग्रन्थि,पृष्ठ ३५ ।

इसी प्रकार -

" खेल खेलकर खुली हृदय की कली मधुर मकरंद हुआ
खिलता था नव प्रणयानिल से नंदन कानन का अरविन्द
विमल हृदय के छायापथ में अरुण किरण भी फैली
घेर रही थी नव जीवन को वसंत की सुखमय संध्या ।।[१]

यहाँ पर ३० मात्राओंवाले सुपरिचित "ताटंक" छंद को अन्त्यानुप्रास के बंधन से मुक्त करके अतुकान्त रूप दिया गया है ।

अभिनव छंद रचना -

तुकान्त रचनाओं में भी छायावादी कवियों ने चरणों एवं पदों का विन्यास तथा उनका क्रम स्थापन अपने मनोनुकूल भाव लय के अनुरोध पर किया है । कहीं दूसरे और चौथे चरण का तुकान्त मिलाया है ,कहीं पहले और दूसरे का तथा कहीं पहले और तीसरे का । तत्पश्चात् गीत की टेक रहती है ; उदाहरणार्थ -

(क) " सौरभ का फैला केश जाल
करती समीर परियाँ विहार ।
गीली केशर मद झूम झूम
पीते तितली के नव कुमार ।।
मर्मर का मधु संगीत छेड़
देते हैं हिल पल्लव अजान ।
फूलों की तेरा अरुण बान ।"[२]

(ख) अधरों में राग अमंद पिये
अलकों में मलयज बंद किये
तू अब तक सोई है आली
आँखों में भरे विहाग री ।
बीती विभावरी जाग री ।।[३]

१- जयशंकर प्रसाद - प्रेमपथिक , पृष्ठ १६ ।
२- जयशंकर प्रसाद - लहर, पृष्ठ १६ ।
३- महादेवी वर्मा - ~~नीरजा, पृष्ठ ४०~~ । यामा-रश्मि , पृष्ठ ६८ ।

(ग) तम में हो चल छाया का दाय,
सीमित की असीम में चिर लय ।
एक हार में हो शत शत जय ।।
सजनि विश्व का कण-कण मुझको
आज कहेगा चिर सुहागिनी
आ मेरी चिर मिलन यामिनी ।[१]

लय परिवर्तन -

बहुधा एक ही छंद में पदों की मात्राओं में भिन्नता लाकर छायावादी कवियों ने अपनी मौलिकता तथा स्वच्छंदता का परिचय दिया है ।जैसे :-

यह अमूल्य मोती का साज
इन सुवर्णमय सरस परों में
(शुचि स्वभाव से भरे सरों में)
तुमको पहना जगत देख ले - यह स्वर्गीय प्रकाश ।
मंद विद्युत सा हँसकर
वज्र सा उर में धँसकर
गरज गगन के गान गरज गंभीर स्वरों में ।
भर अपना संदेश उरों में औ अधरों में ।।[२]

इस एक छंद में पहला चरण १५ मात्रा का, दूसरा ,तीसरा १६-१६ मात्रा का, चौथा २७ मात्रा का, पाँचवें- छठे १३-१३ मात्रा के और अन्तिम दो चरण २४-२४ मात्राओं के हैं । इस प्रकार लय को तोड़कर अपनी इच्छानुसार नई लय का निर्माण किया गया है । इसी प्रकार -

" देखता हूँ जब उपवन
पियालों में फूलों के
प्रिये भर भर अपना यौवन
पिलाता है मधुकर को

१- ~~सुमित्रानन्दन पन्त - पल्लव उच्छ्वास , पृष्ठ ३ ।~~ महादेवी वर्मा - नीरजा, पृष्ठ ४० ।
२- सुमित्रानन्दन पन्त - पल्लव - उच्छ्वास", पृष्ठ ३ ।

नवोढ़ा बाल लहर
  अचानक उपकूलों के
प्रसूनों के ढिंग रुककर
  सरकती है सत्वर
अकेली आकुलता सी प्राण
  कहीं तब करती मृदु आघात
   सिहर उठता कृश गात
   ठहर जाते हैं पग अज्ञात ।"[१]

यहाँ भी चरणों की मात्राओं में संतुलन नहीं है । कोई चरण छोटा है, कोई बड़ा । चरणों की मात्राओं में काट छांट के फलस्वरूप उपर्युक्त छंदों की लय परंपरागत छंदों से सर्वथा भिन्न और नई है ।

शास्त्रीय छंदों में मात्राओं की संख्या तथा यति संबंधी निश्चित नियम रहते हैं । छायावादी कवियों ने चरणों को छोटा बड़ा करके छंदों की एक स्वरता (Monotony) दूर करने का प्रयत्न किया, साथ ही कभी किसी चरण को अधिक महत्त्व देने के लिये तथा कभी जिह्वा को विश्राम देने के लिये ऐसे प्रयोग किये हैं -

" रंगीले गीले फूलों से
   अधखिले भावों से प्रमुदित
 बाल्य सरिता के कूलों से
   खेलती थी तरंग सी नित
 ---- इसी में था असीम अवसित
मधुरिमा के मधुमास
   मेरा मधुकर का सा जीवन
   कठिन कर्म है कोमल है मन ।।[२]

उपर्युक्त पंक्तियों में दो अलग अलग छंदों को एक में जोड़ने का प्रयत्न किया गया है । १५ और १६ मात्राओं के चरणों के मध्य १२ मात्राओंवाला चरण-

---

१- सुमित्रानन्दन पन्त - पल्लव - आँसू, पृष्ठ १४ ।

२- सुमित्रानन्दन पन्त - पल्लव - उच्छ्वास ,पृष्ठ ४ ।

" मधुरिमा के मधुमास" एक पुल का काम करता है । इस चरण पर थोड़ा सा ठहर कर विश्राम ले लेने से वाणी को एक छन्द से दूसरा छन्द बदलने में कुछ सुविधा हो जाती है ।

छायावादी कवियों में निराला को विविध मात्राक्रम के विभिन्न चरणों को परस्पर संयोजित कर नूतन छंद सृष्टि में सर्वाधिक सफलता मिली है जैसे -

" स्पर्श से लाज लगी
अलक पलक में छिपी छलक
उर से नव राग जगी ।[१]

इसमें प्रथम चरण में ११ मात्रायें, द्वितीय में १४ मात्राएं तथा तृतीय में १२ मात्राएं हैं । मात्राओं की असमानता होते हुए भी प्रथम और तृतीय चरण का लय-निपात एक सा है । स्पष्टतः इस प्रकार के प्रयोग प्रतिष्ठित विधानों के प्रति विद्रोह के प्रमाण हैं ।

यति परिवर्तन -

शास्त्रीयता के आधार पर मात्राओं की गिनती करना या गण, यति आदि के नियमों के प्रति सजगता दिखाना छायावादी कवियों को रुचिकर नहीं हुआ । छंद-क्षेत्र की प्रचलित मान्यताओं का बंधन न मानकर उन्होंने भावों के अनुरूप नवीन छन्दों का निर्माण किया । अतः लय की भांति यति का विधान भी छायावादी कविताओं में परंपरानुसार न होकर मौलिक ढंग का दिखाई देता है । " यति" छन्द में वह स्थान है, जहां पर वाणी छंद-पाठ करते समय थोड़ा विश्राम लेती है । " यति" लय को एक निश्चित क्रम में बांधने का काम करती है किन्तु यदि " यति" का विधान अर्थ की अनुकूलता रखते हुए न हो, केवल मात्राओं की गणना में ही कवि उलझा रह जाए तो " लय" का प्रवाह भी भंग हो जाता है । छायावादी कवियों ने इस क्षेत्र में कुशलता दिखाई है । यति का स्थान उपयुक्त स्थान पर और भावानुकूल होने से अभीप्सित भाव और भी स्पष्ट हो जाता है । जैसे -

" नीचे जल था, ऊपर हिम था ।
एक तरल था, एक सघन ।।[२]

१- सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला - गीतिका, पृष्ठ ३१ ।
२- जयशंकर प्रसाद - कामायनी - चिन्तासर्ग, पृष्ठ ३ ।

यहाँ प्रत्येक " धा " क्रिया के बाद यति रखकर कवि जैसे अलग-अलग प्रत्येक वस्तु की ओर उँगली उठाकर उन्हें दिखा रहा हो । इसी प्रकार :-

" यही नील ज्योति वसन
पहन नील नयन हसन
आओ छवि, मृत्यु दहन
करो दंश जीवन फल ।"[१]

यहाँ प्रथम दो चरण चार त्रिकलों, तृतीय चरण एक चौकल, एक द्विकल, दो त्रिकल तथा चतुर्थ चरण दो त्रिकल एक चौकल और एक द्विकल से निर्मित है । इस प्रकार एक ओर तो चतुर्थ चरण तृतीय चरण के चौकल ,द्विकल एवं त्रिकल का क्रम विपर्यस्त हो गया है, दूसरे दोनों का अन्त्यक्रम भी असमान है । इसके अतिरिक्त प्रथम, द्वितीय, एवं चतुर्थ पंक्ति में चरणान्त में यति है, जबकि तृतीय चरण के मध्य में यति का विधान हुआ है । इस प्रकार की छंद रचना का शास्त्रीयता से कोई मेल नहीं है, यह छायावाद की मौलिक सृष्टि है । एक अन्य उदाहरण द्रष्टव्य है -

" आज तार मिला चुकी हूँ ।
सुमन में संकेत लिपि, चंचल विहग स्वर ग्राम जिसके
वात उलझा, किरण के निर्झर झुके, लय भार जिसके,
वह अनामा रागिनी अब साँस में ठहरा चुकी हूँ ।।[२]

इसमें भी यति का विधान भावानुकूल मौलिक ढंग से हुआ है । द्वितीय पंक्ति में कुल २८ मात्राएं हैं, जिसमें १२ मात्राओं के बाद यति है, तृतीय और चतुर्थ पंक्ति में मात्राएं २८ ही है किन्तु यति का विधान भिन्न भिन्न मात्राओं के अन्तर से हुआ है ।

निराला ने " राम की शक्ति पूजा " और " तुलसीदास " में दो नूतन छंदों का आविष्कार किया है । अतएव छायावाद की ही नहीं, आधुनिक युगीन हिन्दी काव्य की छन्द विषयक समृद्धि में इन काव्यों का महत्वपूर्ण योगदान है ।

१- सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला - गीतिका, गीत सं० ७३ ,पृष्ठ ७६ ।
२- महादेवी वर्मा - दीपशिखा, गीत सं० ७, पृष्ठ ७६ ।

"राम की शक्ति पूजा" में २४ मात्राओंवाले छंद का विधान हुआ है जिसे "शक्ति पूजा छंद" की संज्ञा दी जाती है।[१] भावानुरूप गति-यति एवं लय के विधान से युक्त इस नवीन छंद के द्वारा निराला ने युद्ध क्रिया की त्वरित गति, भीषण रव, राम की खिन्नता, सीता के भीरु हृदय के विचार आदि भिन्न भिन्न प्रकार की भावनाओं की सफल एवं समर्थ व्यंजना की है। प्रसंगानुकूल छंद की गति कहीं अत्यंत उद्दाम हो उठती है और कहीं अत्यंत कोमल और मंथर। भाव की अखण्डता को बनाए रखने हेतु कहीं कहीं पूरी पंक्ति में यति की योजना नहीं हुई है, और कहीं क्षणिक प्रभाव ही पर्याप्त मानकर एक ही पंक्ति में कई बार यति का विधान किया गया है जैसे :-

"दृढ़ जटा मुकुट हो विपर्यस्त प्रतिलट से खुल
फैला पृष्ठ पर, बाहुओं पर, वृक्ष पर विपुल,
उतरा ज्यों दुर्गम पर्वत पर नैशान्धकार,
चमकती दूर ताराएं, ज्यों हो कहीं पार।"[२]

यहां भाव प्रवाह में वेग उत्पन्न करने के लिए प्रथम पंक्ति में कहीं भी "यति" नहीं है, इसके विपरीत द्वितीय पंक्ति में तीन स्थानों पर यति के संयोजन द्वारा कवि जैसे राम की खुली हुई लटों का उनके विभिन्न अंगों पर फैलाव अलग अलग इंगित करके दिखाता है। तृतीय और चतुर्थ पंक्ति में पुनः भाव प्रवाह की निरंतरता को लक्ष्य कर केवल चरणान्त में यति की योजना हुई है।

कुछ लोगों ने इस "शक्ति पूजा" छन्द को शास्त्रीय रोला" छन्द का ही रूप बताया है किन्तु मात्राओं की संख्या को छोड़कर यति गण, अन्त्यक्रम आदि शेष सभी बातों में निराला ने पूर्ण स्वतंत्रता का आश्रय लिया है, अतएव इसे शास्त्रीयता से सम्बद्ध न करके निराला की मौलिक सृष्टि मानना ही समीचीन है।

"तुलसीदास" में निराला ने १६ और २२ मात्राओं के दो छंदों को मिलाकर एक नवीन छंद गढ़ा है।

"भारत के नभ का प्रभापूर्य
शीतलच्छाय सांस्कृतिक सूर्य
अस्तमित आज रे - तमस्तूर्य दिङ् मण्डल

१- पुत्तूलाल शुक्ल - आधुनिक हिन्दी काव्य में छन्द योजना, पृष्ठ २६० ।
२- सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला - अनामिका, "राम की शक्ति पूजा", पृष्ठ १४६ ।

भू की छाती पर शिरस्त्राण
शासन करते हैं मुसलमान
है उच्छल जल, निश्चलत्प्राण पर शतदल ।[१]

इसमें प्रथम और द्वितीय चरण समान अन्त्यक्रम वाले और १६-१६ मात्राओं के हैं। इनकी मात्रा-संख्या एवं प्रवाह सुप्रसिद्ध " चौपाई " छंद से मिलता है, किन्तु तृतीय चरण २२ मात्राओं का है तथा उसकी लय भी सर्वथा भिन्न है। तृतीय चरण के अन्त में यति का विधान करके कवि एक भाव खण्ड की समाप्ति की सूचना देता है। चतुर्थ पंक्ति से प्रारंभ होनेवाला द्वितीय भाव खण्ड छठी पंक्ति के चरणान्त की यति पर पूर्ण होता है। तीसरी और छठीं पंक्ति का स्वर प्रवाह एक जैसा है। इस भाँति इस छंद का स्वरूप, किसी भी प्रचलित शास्त्रीय छंद से भिन्न दिखाई देता है।

महादेवी ने अपने अनेक गीतों के लिये लोकगीतों का लयाधार ग्रहण किया है जिनमें गीत की पहली पंक्ति टेक के रूप में रहती है और अन्तरे के बाद की पंक्ति का स्वर साम्य प्रथम पंक्ति के साथ होता है। जैसे -'लाए कौन संदेश नए घन'[२], " मैं नीर भरी दुख की बदली"[३] कहाँ से आए बादल काले"[४] आदि गीत।

<u>बंगला प्रभाव :</u> इन कवियों ने हिन्दी के अतिरिक्त अन्य कुछ भाषाओं की छंद विधा को भी अपनाया। जैसे जयशंकर प्रसाद ने " बंगला के पयार " छंद की हिंदी में अवतारणा की। बंगला के सुप्रसिद्ध कवि माइकेल मधुसूदन दत्त ने अपने काव्य-ग्रंथ मेघनाद-वध में इसी पयार छंद का प्रयोग किया है। यह २० मात्रिक छंद है, प्रसाद ने भी इसके अनुकरण पर २० मात्रिक छंद की रचना की :-

" नील मनि माला माँहि सुंदर लसत-
हीरक उज्जवल खण्ड विकास सतत ।

१- सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला - तुलसीदास, पृष्ठ ३ ।
२- महादेवी वर्मा - यामा - नीरजा, पृष्ठ १८२।
३- महादेवी वर्मा - यामा - सान्ध्यगीत,पृष्ठ २२७ ।
४- महादेवी वर्मा - दीपशिखा,पृष्ठ ८१ ।

कामिनी चिकुर भार अति घन नील ।
तामे मणि सम तारा सोहत सलील ।।[१]

किन्तु बंगला औकार बहुला भाषा है, इसमें ह्रस्व अकार भी एक मात्रा से कुछ अधिक समय लेते हैं हिन्दी का उच्चारण उससे भिन्न है, अतएव मात्राओं के क्रम में अन्तर पड़ जाने से बंगला काव्य जैसा माधुर्य हिन्दी में इस छंद प्रयोग द्वारा नहीं उत्पन्न हो सका । 'लसत' को 'लसोत' और सतत को 'सतोत' किये बिना हिन्दी में 'पयार' की गति नहीं आ सकती । इसी के फलस्वरूप प्रसाद का यह प्रयोग बाद के छायावादी काव्य में प्रचलित नहीं हो सका ।

'अतुकान्त छंद' (जिसकी चर्चा पिछले पृष्ठों में हो चुकी है) का हिन्दी कविता में प्रयोग पाश्चात्य रोमांटिक कवियों की प्रेरणावश हुआ किन्तु इस प्रेरणा को छायावादी कवियों से पहले ही बंगला के कवि रवीन्द्रनाथ द्विजेन्द्रलाल राय आदि ग्रहण कर चुके थे । अतएव इस क्षेत्र में छायावादी कविता अंग्रेजी और बंगला से समान रूप से प्रभावित हुई, क्योंकि अंग्रेजी के रोमांटिक कवियों की भाँति ही बंगला भाषा के इन महान कवियों से छायावादी कवि गहरे प्रभावित रहे हैं ।

उर्दू प्रभाव :

कुछ कवियों ने उर्दू की 'गज़ल' और रुबाई को भी हिंदी में उतारने का प्रयत्न किया । माखनलाल चतुर्वेदी , प्रसाद और निराला के नाम इनमें मुख्य हैं । रुबाई बहुत कुछ हिन्दी के 'ताटंक' छंद जैसा है जिसका प्रयोग 'प्रसाद' ने कामायनी में किया है । किन्तु रुबाई में सब से अधिक सफलता बच्चन को मिली । बच्चन की मधुशाला उर्दू रुबाई के ढंग पर लिखी गई है और कवि के द्वारा अपने छंद को 'रुबाई' नाम भी दिया गया है । बच्चन ने वस्तुतः रुबाई को हिन्दी की प्रकृति के अनुरूप ढालने का महत्वपूर्ण कार्य किया ।

गज़ल ' से अभिप्राय उन प्रेम विषयक गीतों से होता है जिनमें ५ से लेकर १७ तक शेर होते हैं[२] तथा दो पंक्तियोंवाला प्रत्येक शेर एक

१- जयशंकर प्रसाद - संध्यातारा' - इन्दु - श्रावणशुक्ल २,१६६७ वि० कला दो, किरण १, पृष्ठ ४ ।

२- धीरेन्द्र वर्मा - हिन्दी साहित्य कोश, पृष्ठ २५२ ।

भिन्न भाव व्यक्त करता है ।[१] हिन्दी में दोहे और सोरठे में भी यह विशेषता मिलती है । गज़ल के प्रति आकर्षण का जन्म भारतेन्दु युग में हो चुका था । छायावाद युग में प्रसाद और निराला ने भी गज़ल की लय पर कुछ रचनायें की। जैसे -

" बराबर भूल करते हैं, उन्हें जो प्यार करते हैं ।
बुराई कर रहे हैं और अस्वीकार करते हैं ।।
उन्हें अवकाश ही इतना कहां है मुझसे मिलने का
किसी से पूछ लेते हैं यही उपकार करते हैं ।[२]

निराला ने अपने 'बेला' काव्य संग्रह में गज़ल शैली की अनेक रचनायें की हैं जैसे -

वह चलने से पैरों छूटा जा रहा है ।
इसी सोच से दम घुटा जा रहा है ।।
तेरे दिल की कीमत चुकाने से पहले ,
तरह पानी की वह फूटा जा रहा है ।"[३]

निराला ने इसमें उर्दू कवियों की तरह पांच शेर रखे हैं । इसका 'रदीफ़' 'जा रहा है' जिसे प्रत्येक शेर के दूसरे मिसरे (चरण) में दोहराया गया है । निराला ने विभिन्न छंदों की लयों के आधार पर गज़लें लिखी हैं । किन्तु गज़ल रुबाई आदि उर्दू छंदों का विशेष प्रचलन छायावादी काव्य में नहीं हुआ और न इनके द्वारा छायावादी काव्यगत वैशिष्ट्य को उभारने में ही सहायता मिली है । केवल उर्दू कवियों के प्रभाववश ही छायावादी कवियों ने इस प्रकार के स्फुट प्रयोग किये हैं ।

१- सरला शुक्ल - उर्दू काव्यधारा - मिर्जा गालिब, पृष्ठ २० ।
"किसी को दे के दिल कोई नवां सजे फुगां क्यों हो ।
न हो जब दिल ही सीने में तो फिर मुंह में जुबां क्यों हो ।
वो अपनी खू न छोड़ेंगे हम अपनी वज़अ क्यों बदले ।
सुबक सर बन के क्या पूछें कि हमसे सर गिरां क्यों हो ।।
वफ़ा कैसी कहां का इश्क ? जब सर फोड़ना ठहरा,
तो फिर ऐ संगे दिल तेरा ही संगे आस्तां क्यों हो ?"
२- जयशंकर प्रसाद - इन्दु, मई १९१३ ,पृष्ठ ४६६ ।
३- सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला - बेला, पृष्ठ ५६ ।

मुक्त छंद :

छायावाद का छंद संबंधी विद्रोह अपने तीव्रतम रूप में निराला के काव्य में प्रकट हुआ। निराला ने मुक्त छंद को जन्म दिया जो हिन्दी कविता के लिये निराला अथवा छायावाद की अत्यंत महत्वपूर्ण देन है। एक ही पद्य में भिन्न भिन्न छंदों का प्रयोग दो तीन छंदों को मिलाकर नया छंद तैयार करने के प्रयोग में तो फिर भी कुछ निश्चित नियम माने गए हैं, किन्तु मुक्त छंद निराला का सर्वथा नया प्रयोग है। मुक्त छंद छंद होकर भी मुक्त है, किन्तु छंद का अर्थ ही " बंधन " है अतएव प्रश्न उठता है कि " मुक्त छंद " छंद कैसे ? अथवा मुक्त छंद यदि वास्तव में समस्त बंधनों से मुक्त है, तो " छंद " कहना कहां तक युक्ति संगत है ? इस शंका का समाधान करते हुए निराला ने लिखा है -" उनमें नियम कोई नहीं, केवल प्रवाह कवित्त छंद का सा जान पड़ता है। मुक्त छंद का समर्थक उसका प्रवाह ही है। वही उसे छंद सिद्ध करता है और उसका नियम राहित्य उसकी मुक्ति।"[१]

इस प्रकार छंदशास्त्र के परंपरागत नियमों तथा प्राचीन गुरुजन के विरोधी होते हुए भी निराला उससे पूरी तरह मुक्त नहीं हो सके। मुक्त छंद में भी लय के बंधन से वे बंधे हैं और इसी आधार पर उनका मुक्त छंद भी छंद ही है, भले ही परंपरागत छंदों से उसका रूप भिन्न है। प्रकारान्तर से कहा जा सकता है कि पुराने बंधनों के स्थान पर नवीन बंधनों को स्वीकार करके छायावादी मुक्त छंद प्राचीन शास्त्रीय रूढ़ियों से कविता की मुक्ति का प्रमाण अवश्य बना, किन्तु उसकी बंधनहीनता का नहीं।

" मुक्त छंद " की प्रेरणा निराला को कहीं बाहर से प्राप्त हुई अथवा यह उनकी मौलिक प्रतिभा की उपज है, इस विषय में विद्वानों का मतैक्य नहीं है। अंगरेजी और फ्रेन्च भाषाओं के काव्य में भी इस प्रकार के छंद रूप प्रचलित रहे हैं और उनकी रूपगत विशेषतायें भी निराला के मुक्त छंद से साम्य रखती हैं।[2] किन्तु यह सर्वमान्य है कि " मुक्त छंद " हिन्दी कविता के लिये नई चीज थी और उसको

१- सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला - परिमल, भूमिका, पृष्ठ २१।

2- Karl Beckson and Arthur Ganz :- A Readers guide to literary terms, page 73-
" Free verse called 'Verslibre' by the French free verse lacks regular metre and line length, relying upon the natural speech rhymes of the language....".

प्रथम प्रयोगकर्ता होने का श्रेय निराला को है। निराला की "अधिवास", "जुही की कली", जागो फिर एक बार", शेफालिका आदि मुक्त छंद में रचित प्रसिद्धि प्राप्त कवितायें हैं। इस क्षेत्र में उन्होंने अभूतपूर्व कौशल दिखाया है तथा अपने समकालीन और परवर्ती कवियों का पथ प्रदर्शन भी किया है।

मुक्त छंद की पंक्तियों को सुगठित बनाने के लिये कवि ने ध्वनि-साम्य का आधार ग्रहण किया है तथा चरणों को छोटा या बड़ा करके भावोच्छ्वास या भावों के उत्थान पतन के अनुरूप उनकी योजना की है :-

"जागो फिर एक बार
प्यारे जगाते हुए हारे सब तारे, तुम्हें
अरुण पंख तरुण किरण
खड़ी खोलती है द्वार।
+ + + +
समर में अमर कर प्राण
गान गाये महासिन्धु से
सिन्धुनद तीर वासी
सैन्धव तुरंगों पर
चतुरंग चमू संग
सवा सवा लाख पर
एक को चढ़ाऊंगा
गोविन्द सिंह निज
नाम जब कहाऊंगा। [१]

मुक्त छंद की यह विशेषता है कि उसमें भावों के स्वच्छंद विकास के लिये कवि तुक और चरण आदि के बंधन ढीले करके केवल स्वर प्रवाह की रक्षा करता है। स्वर प्रवाह की दृष्टि से निराला की "जुही की कली" उनकी सर्वश्रेष्ठ रचना कही जा सकती है। इसमें कवि का मनोवेग इतनी तीव्रता से प्रकट

१- सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला - परिमल - जागो फिर एक बार, पृष्ठ १९८, २०२।

होता है कि चरणों की लम्बाई छोटाई, तुक आदि की ओर ध्यान ही नहीं जाता। कुछ पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं :-

"सोती थी सुहाग भरी स्नेह स्वप्न मग्न
अमल कोमल तनु तरुणी जुही की कली
दृग बंद किये शिथिल पत्रांक में।

+ + + +

निर्दय उस नायक ने
निपट निठुराई की
कि झोंकों की झड़ियों से
सुंदर सुकुमार देह सारी झकझोर डाली
मसल दिये गोरे कपोल गोल,
चौंक पड़ी युवती -
चकित चितवन निज चारों ओर फेर
हेर प्यारे को सेज पास
नम्र मुखी हँसी- खिली +
खेल रंग प्यारे संग।"[1]

निराला के अनुसार मुक्त छंद का प्रयोग ओज गुण के लिये अधिक उपयुक्त है[2] किन्तु स्वयं उन्होंने कोमलतम भावों को भी मुक्त छंद के माध्यम से सफल अभिव्यक्ति दी है -

"पिउ रव पपीहे प्रिय बोल रहे
सेज पर विरह विदग्धा वधू
याद कर बीती बातें रातें मन मिलन की
मूँद रही पलकें चारु
नयन जल ढल गए
लघुतर कर व्यथा भार
जागो फिर एक बार।"[3]

१- सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला - परिमल, पृष्ठ १६१-१६३।
२- सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला - परिमल, भूमिका, पृष्ठ २०-२१।
३- सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला - परिमल - जागो फिर एक बार", पृष्ठ १६६।

यहाँ प्रथम पंक्ति में 'प', 'र', वर्णों की आवृत्ति 'बातें', रातें का ध्वनि साम्य 'छल-छल' की सफल ध्वनि, 'पलकें चाह' का चित्र-सौष्ठव, सब ने मिलकर कविता में स्वाभाविकता और सौन्दर्य की वृद्धि की है।

निराला की मुक्त छंद में लिखी गई रचनायें दो प्रकार की हैं, एक में अन्त्यानुप्रास का क्रम निर्वाह है, दूसरी में वह भी नहीं। किन्तु अधिकतर अन्त्यानुप्रास उनकी कविताओं में स्वतः आ गया है। कारण यह है कि मुक्त छंद लय-प्रधान है और अनुरूपता लय का नित्य धर्म है। अतएव निपात आघात अथवा प्रास की अनुरूपता अनायास मिल जाती है। दोनों प्रकार के उदाहरण द्रष्टव्य हैं :-

वह आता
दो टूक कलेजे के करता, पछताता पथ पर आता
पेट पीठ दोनों मिलकर हैं एक
चल रहा लकुटिया टेक
मुट्ठी भर दाने को, भूख मिटाने को
मुँह फटी पुरानी झोली को फैलाता
दो टूक कलेजे के करता, पछताता पथ पर आता। [१]

और -

विजन वन वल्लरी पर
सोती थी सुहाग भरी- स्नेह स्वप्न मग्न
अमल कोमल तनु तरुणी- जुही की कली
दृग बंद किये शिथिल पत्रांक में।
वासंती निशा थी
विरह विधुर प्रिया संग छोड़
किसी दूर देश में था पवन
जिसे कहते हैं मलयानिल ------। [२]

द्वितीय उदाहरण में किसी भी पंक्ति का अन्त्यक्रम दूसरी से नहीं मिलता।

परिमल -

१- सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला - भिक्षुक, पृष्ठ १३३।

२- सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला - परिमल, पृष्ठ १६१-१६२।

मुक्त छंद के सफल प्रयोगकर्ताओं में प्रसाद का नाम भी उल्लेखनीय है। इस क्षेत्र में उनकी "प्रलय की छाया" सर्वोत्तम रचना है।-

थके हुए दिन के निराशा भरे जीवन की
संध्या है आज भी तो धूसर क्षितिज में
और उस दिन तो
निर्जन जलधि वेला रागमयी संध्या से
सीखती थी सौरभ से भरी रंगरलियां

\+ \+ \+ \+

आंखें खुलीं
देखा मैंने चरणों में लोटती थी विश्व की विभवराशि
और थे प्रणत वहीं गुर्जर महीप भी
वह एक संध्या थी।"[१]

कविता की गति मन को ऐसा बांध लेती है कि तुक या मात्रा की कमी का आभास तक नहीं होता।

पंत ने भी मुक्त छंद में अनेक सफल रचनायें की हैं जिनमें भाव और लय का अनूठा सामंजस्य मिलता है। उनकी "कंकाल में नीम, जीव प्रभु, नवदृष्टि, ओस के प्रति" आदि कविताओं में मुक्त छंद का प्रयोग हुआ है। छोटे छोटे चरणों की योजना पंत के मुक्त छंदों की अपनी विशेषता है।

निराला के मुक्त छंद वर्णिक छंद की गति पर लिखे गए हैं, उनमें बहुधा ३१ वर्णों वाले कवित्त छंद की लय स्पष्ट पकड़ में आ जाती है। कवित्त के लयाधार की बात उन्होंने स्वयं भी स्वीकार की है।[२]

प्रसाद की मुक्त छंद में रचित कविताओं का लयाधार भी वर्णिक ही है जैसे -

" थके हुए दिन के। निराशा भरे जीवन की। - ७+९ = १६ वर्ण
संध्या है आज भी तो। धूसर क्षितिज में। ७+७ = १४ वर्ण
और उस दिन तो। ७ वर्ण

१- जयशंकर प्रसाद - लहर, पृष्ठ ५९।

२- सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला - परिमल, भूमिका, पृष्ठ २१।

निर्जन जलधि वेला रागमयी संध्या से   १५ वर्ण
सीखती थी सौरभ से । भरी रंग रलियां ।   ८ +७ = १५ वर्ण [१]

इसमें प्राय: ७, ८ वर्णों के लय खण्डों में विभाजित पंक्तियां कवित्त के लयाधार पर निर्मित हैं ।

मुक्त छंद की रचना में जैसी सिद्धि निराला को प्राप्त हुई, वह छायावाद ही नहीं, हिन्दी की अन्य काव्यधाराओं के अन्य किसी कवि को भी दुर्लभ रही है । उनके मुक्त छंदों की लय के आरोह-अवरोह में भावों का उत्थान पतन सहज ही प्रतिबिम्बित होता है । भावानुरुप लय-विधान में ही निराला की चरम सिद्धि है । यह कहना भी अत्युक्ति न होगा कि निराला की मुक्त छंद में रचित कविताएं हिंदी काव्य में मुक्त छंद रचना की चरमोपलब्धि का स्वरुप प्रस्तुत करती हैं । निराला और उनके पश्चात प्रसाद पंत आदि छायावादी कवियों ने मुक्त छंद का प्रयोग अपनी सूक्ष्म कलात्मकता के आधार पर किया था । इन लोगों जैसी कला, संयम और लय पर अधिकार प्राप्त करना साधारण कवियों के लिये कठिन कार्य है किन्तु इनके अनुकरण पर तत्कालीन हिन्दी कविता में मुक्त छंद के नाम पर भावहीन , गतिहीन, नीरस और बेतुकी कविताओं की भरमार दिखाई देने लगी । इसी कारण छायावाद की इस महत्वपूर्ण देन को समीक्षकों के व्यंग और परिहास का लक्ष्य भी बनना पड़ा । किन्तु छायावाद के मूर्द्धन्य कवियों की रचनाओं के अध्ययन से यह स्पष्ट हो जाता है कि " नव-गति , नव-लय, ताल छंद नव " के आदर्श से प्रेरित होकर इन कवियों द्वारा किये गए विविध प्रयोग अधिकांशत: सफल रहे हैं । द्विवेदीयुग की रुढ़िवादिता से छायावादी कवियों ने हिन्दी कविता को मुक्त किया और उसे शास्त्र निरुपित छंदों के अनुरुप चलने को बाध्य न करके छंदों को ही उसका भावानुवर्ती बनाया । किन्तु रुढ़ियों का सर्वथा परित्याग अथवा परंपरा से पूर्ण मुक्ति संभवत: किसी भी कवि के लिये संभव नहीं है, क्योंकि परंपराओं का न्यूनाधिक आश्रय लिये बिना शून्य में कोई नवीन प्रगति नहीं पनप सकती । इसी अर्थ में छायावादी कवियों ने भी छंद क्षेत्र में किसी सीमा तक शास्त्रीयतानुगमन भी किया है ।

१- जयशंकर प्रसाद - लहर - प्रलय की छाया , पृष्ठ ५६ ।

छायावादी काव्य में परंपरानुगमन शास्त्रीय छंद :

पिंगल शास्त्रीय नियमों का यथावत् पालन करना यद्यपि छायावादी कवियों की प्रकृति के अनुकूल नहीं था तथापि यति, गति, गण आदि से संबंधित स्वल्प परिवर्तनों के साथ विभिन्न प्रचलित शास्त्रीय छंदों का विधान भी छायावादी काव्य में दिखाई देता है ।

वर्णिक छंद :

छायावादी कवियों ने मूलतः खड़ीबोली में काव्य रचना की । खड़ीबोली की प्रकृति संस्कृत से सर्वथा भिन्न है, इसीलिये उसमें संस्कृत कवियों की भांति वर्ण वृत्तों के सफल प्रयोग प्रतिभावान कवियों के लिये भी दुष्कर है इसके अतिरिक्त छायावादी कवि पंत के अनुसार 'व्यंजन की अपेक्षा स्वर काव्य संगीत के मूल तंतु' हैं ।[1] अतएव उन्होंने हिन्दी (खड़ीबोली) के संगीत की सुरक्षा की दृष्टि से मात्रिक छंदों के प्रयोग पर ही बल दिया ।[2] छायावादी कवियों ने मात्रिक छंदों के प्रति ही विशेष रुझान दिखाई है । केवल प्रसाद ने चित्राधार में संग्रहीत अपनी ब्रजभाषा की कुछ कविताओं में कवित्त, सवैया आदि वर्णिक छंदों के प्रयोग किये हैं, जैसे -

" गई डीठ फिरै चल चंचल सी, यह रीति नहीं इनकी है नई ।।
नई देखि मनोहरता कतहूं, थिरता इनमें नहिं पाई गई ।।
गई छाण सरूप सुधा चखि कै, इनकी न तबौं कुटिलाई गई ।।
गई लोकत ठौर ही ठौर तुम्हैं, अँखियां अब तो हरजाई भई ।।[3]

किन्तु इस प्रकार के प्रयोग छायावाद के छंद गत वैशिष्ट्य को उभारनेवाले प्रयोगों के अन्तर्गत नहीं आते । इन्हें पूर्ववर्ती युगों के प्रभाव के अवशेष रूप में ही ग्रहण किया जा सकता है ।

१- सुमित्रानन्दन पन्त - पल्लव, भूमिका, पृष्ठ ४० ।

२-सुमित्रानन्दन पन्त - पल्लव, भूमिका , पृष्ठ ३३-३४ ।

३- जयशंकर प्रसाद - चित्राधार, पृष्ठ १८३ ।

मात्रिक छंद :

मात्रिक छंदों में गीतिका, हरिगीतिका, रोला, पद्धरि, रुपमाला, ताटंक पीयूषवर्ष, शृंगार, पादाकुलक, गोपी, सखी आदि सममात्रिक छंदों का प्रयोग गति एवं यति संबंधी कुछ मौलिकता के साथ छायावादी काव्य में प्राप्य है ।

गीतिका :

यह २६ मात्राओं का छंद है जिसमें अन्त में लघु-गुरु (।ऽ) की योजना की जाती है । प्रसाद ने इस नियम का पालन करते हुए अपनी प्रारंभिक कुछ रचनायें गीतिका छंद में की हैं जैसे -

" सौरभित सरसिज युगल ए । कब होकर खिल गये
लोल अलकावलि हुई मा । नो मधुव्रत मिल गये
श्वास मलयज पवन-सा आ । मन्दमय करने लगा
मधुर मिश्रण युग हृदय का । भाव रस भरने लगा "[१]

केवल इन पंक्तियों में यति संबंधी स्वेच्छाचारिता दिखाई गई है । शास्त्रीय नियमों की अवहेलना करके प्रसाद ने इसमें १४-१२ मात्राओं के क्रम से यति का विधान किया है ।

हरिगीतिका -

द्विवेदीयुगीन कवियों के मध्य यह विशेष लोकप्रिय छंद रहा है । इसमें २८ मात्राओं वाले चरण होते हैं जिनमें १६-१२ मात्राओं के क्रम से यति का विधान होता है तथा चरणान्त में ।ऽ का नियम होता है । इसके अतिरिक्त इसकी पांचवीं, बारहवीं, उन्नीसवीं ~~एवं छब्बीसवीं~~ एवं छब्बीसवीं मात्रा का लघु होना पिंगल शास्त्र के अनुसार अनिवार्य है । प्रसाद के कानन कुसुम" में उपर्युक्त नियमों से युक्त हरिगीतिका छंद के कुछ उदाहरण प्राप्य हैं जैसे -

" दिननाथ अपने पीत कर से थे सहारा दे रहे
उस श्रृंग पर अपनी प्रभा मलिना दिखाते ही रहे
वह रुप पतनोन्मुख दिवाकर का हुआ पीला अहो ।
भय और व्याकुलता प्रकट होती नहीं किसको कहो ?[२]

१- जयशंकर प्रसाद - कानन कुसुम - नववसंत", पृष्ठ २५ ।
२- जयशंकर प्रसाद - कानन कुसुम" भक्तियोग" ,पृष्ठ ३४ ।

इसमें भी अन्य सभी नियमों का पालन करते हुए भी प्रसाद ने यति के संबंध में स्वच्छंदता अपनाई है ।

रोला :

छायावादी कवियों में पंत को यह छंद सर्वाधिक प्रिय रहा है । उनकी उच्छ्वास और परिवर्तन सदृश सुप्रसिद्ध रचनायें इसी छंद में लिखी गई है । रोला २४ मात्राओं वाला छंद है जिसमें ११-१३ के क्रम से यति का विधान होता है । पंत ने मात्राओं की संख्या तो शास्त्रानुमोदित ही रखी है किन्तु यति के संबंध में निश्चित नियम न मानकर भावानुरूप भिन्न भिन्न स्थलों पर यति का विधान किया है । इसके अतिरिक्त सामान्यत: रोला चार चरणों वाला छंद है किन्तु पंत ने कहीं कहीं भावों की अखण्डता हेतु उसमें पाँच अथवा छ: चरणों की भी योजना की है जैसे :-

" अहे एक रोमांच । तुम्हारा दिग्भू कंपन
गिर गिर पड़ते भीत । पक्षि पोतों से उड़गन ;
आलोड़ित अंबुधि । फेनोन्नत कर शतशत फन,
मुग्ध भुजंगम-सा । इंगित पर करता नर्तन
दिक् पिंजर में बद्ध । गजाधिप सा विनतानन
वाताहत हो गगन । आर्त करता गुरु गर्जन ।[१]

प्रसाद और निराला की कुछ कविताओं में भी रोला छंद व्यवहृत हुआ है । प्रसाद की कामायनी का संघर्ष सर्ग भी रोला छंद में ही लिखा गया है किन्तु यति और गण संबंधी कवि की मौलिकता के फलस्वरूप उसकी लय कुछ परिवर्तित हो गई है । पुत्तूलाल शुक्ल के अनुसार रोला के चारों चरणों की ग्यारहवीं मात्रा लघु हो तो उसका रूप बदल जाता है । इस प्रकार के छंद को उन्होंने " काव्य-छंद " माना है [२] किन्तु नामवरसिंह के अनुसार रोला और काव्य छंद एक दूसरे के समानार्थी हैं ।[३] कामायनी में रोला का यह विशिष्ट रूप भी उपलब्ध होता है-

" रुदन हास बन किंतु । पलक में छलक रहे हैं,
शत शत प्राण विमुक्ति । खोजते ललक रहे हैं ।

१- सुमित्रानन्दन पन्त - परिवर्तन, पृष्ठ ३८ ।
२- पुत्तूलाल शुक्ल - आधुनिक हिन्दी काव्य में छन्द योजना, पृष्ठ २८७ ।
३- नामवरसिंह- छायावाद - खुल गए छंद के बंध, पृष्ठ १२० -
- छायावादी कवियों ने रोला को पुनर्जीवित करके उसके काव्य नाम को सार्थक

जीवन में अभिशाप । शाप में ताप भरा है,
इस विनाश में सृष्टि । कुंज हो रहा हरा है ।।[१]

रूपमाला :

रूपमाला भी २४ मात्राओं वाला सममात्रिक छंद है, यति-क्रम में अन्तर के फलस्वरूप इसकी लय "रोला" से सर्वथा भिन्न दिखाई देती है । "रोला जहां बरसाती नाले की तरह अपने पथ की रुकावटों को लांघता तथा कलनाद करता हुआ आगे बढ़ता है, वहां रूपमाला दिन भर के काम धंधे के बाद अपनी ही थकावट के बोझ से लदे हुए किसान की तरह चिन्ता में डूबा हुआ, नीची दृष्टि किये, ढीले पांवों से जैसे घर की ओर आता है"।[२]

"रूपमाला" भी छायावादी कवियों का प्रिय छंद है । प्रसाद और महादेवी की रचनाओं में इसके उदाहरण प्राप्य हैं । "प्रसाद" की "कामायनी" के "वासना" सर्ग में इसी छंद का विधान हुआ है । किन्तु शास्त्रीय दृष्टि से रूपमाला में १४।१० के क्रम से यति, और अंत में ऽ। होना चाहिये, तथा तीसरी, दसवीं एवं सत्रहवीं मात्रायें अनिवार्यतः लघु होना चाहिये । प्रसाद ने सामान्यतः इन नियमों का निर्वाह करते हुए भी कहीं कहीं भावों की अनुरूपता के फलस्वरूप यति और गण संबंधी नियमों का उल्लंघन कर दिया है, जैसे -

आह् वैसा ही हृदय का । बन रहा परिणाम,
पा रहा हूं आज देकर । तुम्हीं से निज काम ।
आज् ले लो चेतना का । यह समर्पण दान ।
विश्व् रानी । सुंदरी । नारी जगत की मान ।।[३]

उपर्युक्त उदाहरण में ऊपर के तीन चरणों का यति-क्रम शास्त्रानुमोदित है किन्तु अंतिम चरण में सातवीं और बारहवीं मात्राओं पर दो बार यति का विधान किया गया है। प्रथम तृतीय और चतुर्थ चरणों की तीसरी, दसवीं एवं सत्रहवीं मात्रायें लघु हैं किन्तु द्वितीय चरण की सत्रहवीं मात्रा दीर्घ है ।

ताटंक :

छायावादी कवियों में प्रसाद ने ताटंक छंद का प्रचुर प्रयोग किया है । पंत की कविताओं में भी इसके उदाहरण मिलते हैं । यह ३० मात्राओं

१- जयशंकर प्रसाद - कामायनी - संघर्ष सर्ग, पृष्ठ १६६ ।
२- सुमित्रानन्दन पन्त - पल्लव, प्रवेश, पृष्ठ ४६ ।
३- जयशंकर प्रसाद - कामायनी - वासना सर्ग ,पृष्ठ १०९ ।

का छंद है जिसमें प्राचीन आचार्यों के अनुसार १६ मात्राओं के पश्चात् यति तथा चरणान्त में मगण (SSS) होना चाहिये किन्तु आधुनिक युग में गण संबंधी इस नियम का शत प्रतिशत रूप में पालन अनिवार्य नहीं समझा गया । कामायनी से ताटंक का एक उदाहरण द्रष्टव्य है :-

> माँ फिर एक किलक दूरागत । गूँज उठी कुटिया सूनी
> माँ उठ दौड़ी भरे हृदय में । लेकर उत्कंठा दूनी
> छुटरी खुली अलक । रज धूसर बाहें आकर लिपट गयी
> निशा तापसी की जलने को । धधक उठी बुझती धूनी [1]

इसमें प्रथम द्वितीय और चतुर्थ चरणों में यति एवं गण की योजना परंपरानुसार हुई है किन्तु तीसरे चरण में कवि ने अपनी स्वच्छंदतावादी प्रवृत्ति के फलस्वरूप दसवीं मात्रा पर ही यति का विधान किया है तथा अन्त में SSS के बदले ।।S रखा है । यति और गण से संबंधित कोई निश्चित नियम न मानने के फलस्वरूप प्रसाद द्वारा प्रयुक्त ताटंक की लय विभिन्न स्थानों पर भिन्न भिन्न दिखाई देती है, कहीं उसमें 'रुचिरा' छंद की छाया लक्षित होती है (१४ मात्रा पर यति) कहीं 'कुकुभ' (अन्त में SS) की । ३० मात्राओंवाले इस छंद में कहीं कहीं ३१ मात्राओं वाले चरण भी प्रयुक्त हो गए हैं ।

ऐसे मिश्रित रूप वाले छंदों को पुत्तूलाल शुक्ल ने 'ताटंकवीर' छंद की संज्ञा दी है ।[2] पंत की बादल शीर्षक सुप्रसिद्ध कविता में भी ताटंक छंद का ही प्रयोग हुआ है किन्तु गण संबंधी किसी निश्चित नियम के अभाव में उसका रूप शास्त्रीय कोटि के ताटंक छंद से भिन्न दिखाई देता है -

> "सुरपति के हम ही हैं अनुचर जगत्प्राण के भी सहचर
> मेघदूत की सजल कल्पना, चातक के चिर जीवनधर ।[3]

१- जयशंकर प्रसाद - कामायनी - स्वप्न सर्ग , पृष्ठ १८७ ।

२- पुत्तूलाल शुक्ल - आधुनिक हिन्दी काव्य में छंद योजना - पृष्ठ ३०४ ।

३- सुमित्रानन्दन पन्त - आधुनिक कवि ,पृष्ठ २३ ।

पीयूषवर्षी -

१९ मात्राओंवाला पीयूषवर्षी छंद भी छायावादी कवियों का प्रिय छंद है । निराला, महादेवी, पंत सभी ने इसके प्रचुर प्रयोग किये हैं । इसकी लय अत्यंत मंद तथा वेदना प्रधान कविताओं के अनुकूल होती है । पंत के शब्दों में " मरुभूमि में बहने वाली निर्जन तटिनी की तरह, उसके किनारे पर पुष्पों के शृंगार से विहीन जिसकी धारा लहरों के चंचल कलरव तथा हास परिहास से वंचित रहती, यह छंद भी वैधव्य वेश में, अकेलेपन में सिसकता हुआ, श्रान्त-जिह्म गति से अपने ही अकुशल से सिकुड़ धीरे धीरे बहता है ।"[१]

प्राचीन आचार्यों के अनुसार पीयूषवर्ष में सप्तक की आवृत्ति के बाद रगण (।) का प्रस्तार जोड़ने से एक चरण निर्मित होता था तथा इसमें कुल चार चरणों की योजना की जाती है । इसके प्रत्येक चरण की तीसरी दसवीं तथा सत्रहवीं मात्रा अनिवार्यतः लघु होनी चाहिये । पंत के काव्य से पीयूषवर्षी का एक उदाहरण द्रष्टव्य है :-

" इस तरह मेरे चितेरे । हृदय की
बाह्य प्रकृति बने । भी चमत्कृत । चित्र थी ;
सरल शैशव । की सुखद सुधि । सी वही
बालिका मे । री मनोरम । मित्र थी ।।[२]

इसका प्रत्येक चरण १९-१९ मात्राओं वाला है जिसमें प्रथम चरण को छोड़कर शेष तीनों में सप्तक की आवृत्ति के बाद रगण (ऽ।ऽ) का प्रस्तार जोड़ा गया है । केवल प्रथम चरण में रगण के स्थान पर सगण (।।ऽ) है । इस छंद के समस्त चरणों की तीसरी दसवीं एवं सत्रहवीं मात्रायें भी नियमानुकूल लघु है (जो रेखांकित कर दी गई है) किन्तु सप्तकों के स्वरूप में किसी भी नियम का परिपालन नहीं किया गया है । प्रत्येक चरण के दोनों सप्तकों का स्वरूप परस्पर सर्वथा भिन्न है । इस भाँति पंत ने पीयूषवर्षी के शास्त्रीय रूप में स्वेच्छानुसार परिवर्तन कर लिया है । निराला ने परिमल एवं महादेवी की " रश्मि की कुछ भाव प्रवण

१- सुमित्रानन्दन पन्त - पल्लव - प्रवेश , पृष्ठ ४६ ।
२- सुमित्रानन्दन पन्त - आधुनिक कवि ,पृष्ठ १४ ।

कवितायें भी पीयूषवर्षी छंद में लिखी गई है किन्तु इन कवियों ने भी पंत की ही भाँति इस शास्त्रीय छंद को अपनी स्वच्छंदतावादी प्रकृति के अनुरूप ढालकर ही प्रयोग किया है ।

श्रृंगार :

छायावादी काव्य में इस छंद का प्रचुर प्रयोग हुआ है । श्रृंगार की कोमल मधुर अनुभूतियों की व्यंजना हेतु यह छंद विशेष उपयोगी माना गया है, तथा छायावादी काव्य का विषय-पक्ष मूलत: श्रृंगारिक और प्रेम-प्रधान है । इसी कारण छायावादी कवियों के मध्य "श्रृंगार" बहु प्रचलित और परम रुचिकर छंद रहा है । पुत्तूलाल शुक्ल के अनुसार " इस छंद में वीणा की झंकार सुनाई पड़ती है । इसकी लय क्रमश: ऊर्ध्वमुखी होकर लहराती है और फिर उसी क्रम से अवतरित होती है, जिससे हर्ष उल्लास और आनंद की व्यंजना होती है , अत: यह छंद वियोग की अपेक्षा संयोग में अधिक सफल होता है । प्रकृति चित्रण भी इस छंद में बड़ा ही मोहक लगता है । इसकी गति ध्वनि नर्तित किशोरी के तुल्य है और रूप भी बड़ा ही मोहक , रमणीय और उन्मादक है ।"[1]

श्रृंगारिक प्रसंगों के अधिक अनुकूल होने के फलस्वरूप इसका एक नाम " मदन" छंद भी है ।[2] पुत्तूलाल शुक्ल ने इसे " अन्वर्थ नाम" की संज्ञा दी है ।

श्रृंगार १६ मात्राओंवाला छंद है जिसके चरणों का आदि भाग त्रिकल , मध्य समप्रवाह तथा अन्त गुरु-लघु (ऽ।) से निर्मित होता है । छायावादी कवियों में पंत को यह छंद विशेष प्रिय रहा है और उन्होंने इसके प्रयोग में सफलता पाई है । उदाहरणार्थ -

बोलि ! सी फैल फैल नव बात (१६ मात्रायें)

चपल, लघुपद , लल्लल, सुकुमारे ।

लिपट लगती मलयानिल गात

झूम झुक झुक सौरभ के भारे ।।[3]

१- पुत्तूलाल शुक्ल - आधुनिक हिन्दी काव्य में छंद योजना, पृष्ठ २६६ ।

२- जगन्नाथ प्रसाद भानु - छंद प्रभाकर, पृष्ठ ६२ ।

३- सुमित्रानन्दन पन्त - गुंजन, पृष्ठ ५६ ।

इसमें प्रत्येक चरण के प्रारंभ में एक त्रिकल तथा चरणान्त में की योजना हुई है । प्रसाद ने भी कामायनी के "श्रद्धा" सर्ग में इस छंद का अत्यंत सुंदर और सफल प्रयोग किया है जैसे -

IS   SI
जिसे । तुम समझे हो अभिशाप
      III   SI
      जगत । की ज्वालाओं का मूल
SI   SI
ईश । का वह रहस्य वरदान
      IS   SI
      कभी । मत इसको जाओ भूल ।[१]

पद्धरि -

इसके लक्षण श्रृंगार छंद से बहुत मिलते जुलते हैं । पद्धरि भी १६ मात्राओं का सममात्रिक छंद है । इसके चरणों के अंत में भी "श्रृंगार" की भाँति SI का विधान होता है किन्तु चरणारंभ में त्रिकल के बदले सममात्रिक लय रहती है । इनकी लय में ओजगुण का प्राधान्य रहता है । प्रसाद, पंत, महादेवी आदि सभी प्रमुख छायावादी कवियों ने पद्धरि का प्रयोग किया है जैसे -

SII   SI
केवल स्मितिमय चाँदनी रात
SS   SI
तारा किरनों से पुलक गात
IIS   SI
मधुपों मुकुलों के चले घात
SS   SI
आता है चुपके मलय वात
IIS   SI
सपनों के बादल का दुलार
IIS   SI
तब दे जाता है बूंद चार ।[२]

उपर्युक्त उदाहरण में चरणारंभ में सममात्रिक प्रवाह का पूर्णतः निर्वाह हुआ तथा चरणान्त में SI का नियम-पालन भी किया गया है ।

पादाकुलक -

यह भी १६ मात्राओंवाला छंद है जिसका प्रत्येक चरण चार चार मात्राओं से बने चार चौकलों से निर्मित होता है तथा चरणान्त में अनिवार्यतः गुरु (S) की योजना होती है। प्रसाद की रचनाओं में पादाकुलक के कुछ उदाहरण प्राप्य है जैसे -

---

१- जयशंकर प्रसाद - कामायनी श्रद्धा सर्ग, पृष्ठ ५१ ।
२- जयशंकर प्रसाद - लहर, पृष्ठ ३७ ।

खिंच जाय अधर पर वह रेखा -
जिसमें अंकित हो मधु लेखा ,
जिसको वह विश्व करे देखा,
वह स्मित का चित्र बना जा रे ।[1]

गोपी -

छायावादी काव्य में किंचित विपर्यय के साथ गोपी छंद के भी कुछ उदाहरण मिल जाते हैं । यह १५ मात्राओंवाला छन्द है जिसमें चरणारंभ में त्रिकल और अंत में गुरु (ऽ) का विधान होता है, अर्थात् शृंगार छंद के चरणांत की अंतिम लघु मात्रा हटा दी जाए तो गोपी छंद बन जाता है । छायावादी कवियों ने इसके चरणान्त के गुरु (ऽ) के स्थान पर दो लघु (।।) की योजना कर ली है ।जैसे -

सरलपन ही था उसका मन,
निरालापन ही था आभूषन ।
कान से मिले अजान नयन,
सहज था सजा सजीला तन ।। [2]

यहाँ द्वितीय पंक्ति के मात्राधिक्य के अतिरिक्त शेष सभी चरणों में १५-१५ मात्राएं, प्रारंभ में त्रिकल और अंत में लघु-लघु (।।) का नियम रक्खा गया है ।

सखी :-

यह १४ मात्राओंवाला छन्द है जिसके चरणान्त में मगण (ऽऽऽ) अथवा यगण (।ऽऽ) का विधान शास्त्रानुसार अनिवार्य माना गया है । सखी छंद की लय करुण रस की व्यंजना के लिये अत्यंत अनुकूल होती है । इस संदर्भ में पंत लिखते हैं -" सखी छंद के प्रत्येक चरण में अन्त्यानुप्रास अच्छा नहीं लगता ; दूर दूर तुक रखने से यह अधिक करुण हो जाता है, अन्त में मगण के बदले भगण अथवा नगण

१- जयशंकर प्रसाद - लहर, पृष्ठ २८।
२- सुमित्रानन्दन पन्त - आधुनिक कवि, पृष्ठ ६ ।

रखने से इसकी लय में एक प्रकार का स्वर भंग आ जाता है जो करुणा का संचार करने में सहायता देता है।"[1]

छायावादी काव्य में करुणाधिक्य के फलस्वरूप इस छंद का बहुलता से प्रयोग हुआ है और पंत के अतिरिक्त प्रसाद, रामकुमार वर्मा आदि ने भी इसे अपनाया है। प्रसाद के "आंसू" से उद्धृत निम्न पंक्तियां द्रष्टव्य हैं -

ऽ ऽ ऽ
जो घनीभूत पीड़ा थी
ऽ ऽ ऽ
मस्तक में स्मृति सी छायी
। । । ।
दुर्दिन में आंसू बनकर
ऽ ऽ ऽ
वह आज बरसने आई ।।[2]

यहां प्रत्येक चरण में १४-१४ मात्राएं हैं तथा तृतीय चरण को छोड़कर शेष सभी चरणों के अंत में मगण की योजना हुई है। तृतीय चरण में जो नियमोल्लंघन दृष्टिगत होता है, वह छायावादी कवियों की स्वाभाविक प्रवृत्ति का परिणाम कहा जा सकता है। इस प्रकार की स्वतंत्रताएं छायावादी कवियों ने प्राय: सर्वत्र ली है। नामवर सिंह के अनुसार प्रसाद के "आंसू" तथा "कामायनी" के आनंद सर्ग की रचना सखी छंद में ही हुई है[3]। किन्तु पुत्तूलाल शुक्ल ने आंसू में प्रयुक्त छंद का "हाकलि" का विशिष्ट रूप - "मानव छंद" बताया है[4] "मानव छंद" हाकलि के उस विशिष्ट रूप को कहा गया है जिसके चारों चरणों में कहीं भी एकसाथ तीन चौकलों की योजना न हुई हो।[5] आंसू में इस प्रकार के उदाहरण भी प्राप्य हैं जैसे -

"मैं अपलक इन नयनों से
निरखा करता उस छवि को।

१- सुमित्रानन्दन पन्त - पल्लव (प्रवेश) पृष्ठ ४७।

२- जयशंकर प्रसाद - आंसू, पृष्ठ १४।

३- नामवर सिंह - छायावाद, पृष्ठ १२० -

" प्रसाद का आंसू सखी छंद में है और कामायनी का आनंद सर्ग भी उसी में है।"

४- पुत्तूलाल शुक्ल - आधुनिक हिंदी काव्य में छंद योजना, पृष्ठ २५३।

५- जगन्नाथ प्रसाद भानु - छंद प्रभाकर, पृष्ठ ४७।

प्रतिभा डाली भर लाता
कर देता दान सुकवि को ।।[1]

वस्तुत: प्रसाद ने आँसू में "सखी और" "शकलि" का आधार लेकर एक स्वतंत्र छंद को जन्म दिया है, जो कवि की सघन वेदनानुभूति की समर्थ व्यंजना में पूर्णत: सक्षम रही है। इन छंदों के शास्त्रानुमोदित गण संबंधी नियमों का निर्वाह प्रसाद ने नहीं किया है। अतस्व आँसू काव्य में प्रयुक्त छंद को प्रसाद की मौलिकता के सम्मानार्थ आँसू छंद कहना भी अनुपयुक्त नहीं होगा।

पिंगल शास्त्र में वर्णित शास्त्रीय छंदों में मात्रिक छंदों में ही सब से अधिक रुचि छायावादी कवियों ने प्रदर्शित की है, अर्ध सम मात्रिक विषम मात्रिक, अथवा वर्ण वृत्तों के जो स्फुट प्रयोग खोजने पर मिल भी जाते हैं उन्हें केवल इन कवियों के संस्कारों में पड़ी हुई रीतिकालीन कविता के प्रभाव के अवशेष मात्र समझना चाहिये। जिन शास्त्रीय छन्दों का इन कवियों ने अपनी भावाभिव्यक्ति हेतु चयन किया है उनमें भी भावों की अनुरूपता को महत्व देते हुए विभिन्न परिवर्तन कर लिये हैं। इस प्रकार शास्त्रीय छंदों का भी छायावादी काव्य में नवरूपान्तर हुआ है। इस नव रूपान्तरण की प्रक्रिया में तुक, लय, गण आदि से संबंधित विविध परिवर्तनों की ओर यथास्थान इंगित किया जा चुका है। इसके अतिरिक्त कुछ अन्य विधियों द्वारा भी छायावादी कवियों ने शास्त्रीय छंदों को नया रूप प्रदान किया है, जैसे दो या दो से अधिक शास्त्रीय छंदों का मिश्रण, सममात्रिक छंदों का अर्द्धसम प्रयोग तुकान्त छंदों का अतुकान्त प्रयोग आदि।

मिश्रित छंद -

एकाधिक शास्त्रीय छंदों के योग से बने हुए मिश्रित छंदों के भी अनेक प्रयोग छायावादी काव्य में दिखाई देते हैं। जैसे प्रसाद ने कामायनी में पद्धरि और चौपाई के चरणों की सहयोजना द्वारा एक नया छंद तैयार किया है -

ऽ   ऽ।
थे श्वापद से हिंसक अधीर
ऽ   ऽ।
कोमल शावक वह बाल वीर
                  ऽ।।
सुनता था वह वाणी शीतल
                  ऽ।।
कितना दुलार कितना निर्मल

१- जयशंकर प्रसाद - आँसू, पृष्ठ १८।

कैसा कठोर है तव हृत्तल
वह इड़ा कर गई फिर भी छल ।
तुम बनी रही हो अभी धीर ।
छुट गया हाथ से आह तीर ॥[१]

इसमें प्रारंभ और अंत के दो दो चरण पद्धरि के तथा मध्य के चार चरण चौपाई के हैं यद्यपि चौपाई में भी छायावादी कवियों ने गण संबंधी किंचित परिवर्तन कर लिया है अर्थात् चौपाई के चरणान्त के गुरु - गुरु (ऽऽ) के स्थान पर छायावादी काव्य में प्राय लघु - लघु (।।) का प्रयोग हुआ है ।

इसी प्रकार कामायनी से ही पद्धरि और पादाकुलक के योग से बना एक मिश्रित छंद द्रष्टव्य है :-

तुम दान शीलता से अपनी	- पादाकुलक
बन सजल जलद बितरो न बिंदु ।	- पद्धरि
इस सुख नभ में मैं विचरूँगा ,	- पादाकुलक
बन सकल कलाधर शरद इंदु ॥ [२]	- पद्धरि

प्रसाद ने " झरना " में दोहा तथा श्रृंगार छंदों का मिश्रित प्रयोग किया है, जिसके फलस्वरूप उनकी कविता की लय सर्वथा नयी प्रतीत होती है जैसे -

बिना समझे ही रख दे मूल्य ,
न था जिस मणि के कोई तुल्य ॥
जान कर के भी उसे अमोल ,
बढ़ा कौतूहल का फिर तोल ॥

मन आग्रह करने लगा	- १३ मात्रायें
लगा फूंकने दाम	- ११ मात्रायें
चला अजाने के लिये	- १३ मात्रायें
वह लोभी बेकाम [३]	- ११ मात्रायें

१- जयशंकर प्रसाद - कामायनी - दर्शन सर्ग, पृष्ठ २५६ ।
२- जयशंकर प्रसाद - कामायनी - ईर्ष्या सर्ग, पृष्ठ २६१ ।
३- जयशंकर प्रसाद - झरना, पृष्ठ ७४ ।

इस छंद के प्रारंभिक चार चरण १६-१६ मात्राओं वाले हैं जो शृंगार छंद के समस्त लक्षणों की पूर्ति करते हैं अर्थात् उनके प्रारंभ में त्रिकल, मध्य में समप्रवाह तथा अन्त में गुरु लघु (S ।) का विधान हुआ है ।

पांचवें और सातवें चरणों में १३-१३ मात्रायें तथा छठें और आठवें चरणों में ११ मात्रायें हैं । "दोहा" में भी १३-११ के यति क्रम से २४ मात्रायें होती हैं अंत में S । का अनिवार्यत: विधान होता है तथा सम चरणों में अन्त्यानुप्रास की योजना की जाती है । उपर्युक्त छंद के अन्तिम चार चरण इन समस्त शास्त्रीय लक्षणों से युक्त है ।

शृंगार और गोपी छन्द के विभिन्न क्रमों से आयोजित अनेक मिश्रित प्रयोग छायावादी काव्य में उपलब्ध हैं जैसे -

धूल की ढेरी लगी खेलने - १६ मात्रायें
धूलि की भी थी कमी नहीं - १५ मात्रायें
झांक हो गया सरल आनंद - १६ मात्रायें
मिलेगा फिर अब हमें कहीं ?[1] - १५ मात्रायें

उपर्युक्त छंद में १६ मात्राओं वाले विषम चरण" शृंगार से तथा १५ मात्राओं वाले सम चरण गोपी छंद के हैं ।

महादेवी ने एक स्थल पर चौपाई और ताटंक के मिश्रण से नवीन छंद की सृष्टि की है -

मृग मरीचिका के चिर पथ पर
सुख आता प्यासों के पग धर
रुद्ध हृदय के पट लेता कर ,
गर्वित कहता मैं मधु हूं ! मुझसे क्या पतझर का नाता ?[2]

यहां प्रारंभ के तीन चरण १६-१६ मात्राओं के हैं तथा उनकी लय-चौपाई छंद से पूर्ण साम्य रखती है (चरणान्त के" गण" को छोड़कर , इस प्रकार की मौलिकता इन कवियों ने सर्वत्र दिखाई है ।) चतुर्थ चरण में ३० मात्रायें

१- जयशंकर प्रसाद - झरना , पृष्ठ ६० ।

२- महादेवी वर्मा - यामा-रश्मि , पृष्ठ ७४ ।

हैं तथा अंत में मगण (ऽऽऽ) की योजना हुई है जो ताटंक छंद के शास्त्रीय लक्षण हैं । किन्तु यतिक्रम में भिन्नता है, ताटंक में १६-१४ के क्रम से यति होना चाहिये, किन्तु यहां पर ८ और फिर १४ मात्रा के बाद यति रक्खी गई है, अतएव इसे 'रुचिरा' छंद भी कहा जा सकता है ।

विषम-क्रम -

उपर्युक्त सम एवं अर्द्धसम मिश्रित छंदों के अतिरिक्त छायावादी कवियों ने विषम क्रम से भी अनेक शास्त्रीय छंदों के चरणों को परस्पर मिलाकर नए छंद निर्मित किये हैं । विषमक्रम से नियोजित नव छंदों के निर्माण में सर्वाधिक सफलता निराला को प्राप्त हुई है । उनकी अनामिका की अनेक रचनायें इस प्रकार के प्रयोगों की सफल सृष्टि है । उदाहरणार्थ अनामिका में संग्रहीत उनकी 'गीत' शीर्षक रचना - (हमें जाना जग के पार) - में प्रथम चरण श्रृंगार का, द्वितीय तृतीय चरण 'गोपी' के तथा चतुर्थ और पंचम चरण श्रृंगार के है । द्वितीय अनुच्छेद के पांचों चरण श्रृंगार के हैं तृतीय अनुच्छेद में पुन: भिन्न क्रम लक्षित होता है - तीन चरण गोपी के तथा दो चरण श्रृंगार के । चतुर्थ, पंचम और षष्ट अनुच्छेद के समस्त चरण श्रृंगार के हैं । कवि की अपूर्व सिद्धि इसमें है, कि दो शास्त्रीय छंदों का विषम क्रम से मिश्रण करके भी उसने गीत के प्रवाह को पूर्ण सुरक्षित रक्खा है, दोनों छंदों की लय परस्पर घुल मिल सी गई है तथा उसमें कहीं भी विस्वरता नहीं आ पाई है ।

सममात्रिक छंदों का अर्द्धसमप्रयोग -

छायावादी कवियों ने शास्त्रीय सममात्रिक छंदों के चरणों की मात्राओं को भिन्न भिन्न क्रम से दो चरणों में विभक्त करके भी अनेक नवीन छंद गढ़ लिये हैं, जैसे -

'निखिल कल्पना मयि अयि अप्सरि	- १६ मात्रायें
अखिल विस्मयाकार ।	- ११ मात्रायें
अकथ, अलौकिक, अमर, अगोचर	- १६ मात्रायें
भावों की आधार ।'[१]	- ११ मात्रायें

१- सुमित्रानन्दन पन्त - गुंजन, अप्सरा, पृष्ठ ६२।

यहाँ २७ मात्राओं वाले सरसी छंद के चरणों को १६-१६ और ११-११ मात्राओं के चरणों में विभक्त कर नूतन रूप को जन्म दिया गया है । इसी प्रकार

जीवन की अविराम साधना - १६ मात्रायें

भर उत्साह खड़ी थी - १२ मात्रायें

ज्यों प्रतिकूल पवन में तरणी - १६ मात्रायें

गहरे लौट पड़ी थी ।।[१] - १२ मात्रायें

यहाँ २८ मात्राओं वाले परंपरागत सरसी छंद को चरणों को १६-१२ मात्राओं के क्रम से विभक्त करके उसे नव्यता प्रदान की गई है ।

निराला ने रोला के चरणों को भिन्न क्रम से विभक्त करके उसका अर्द्ध सम रूप में प्रयोग किया है जैसे -

अरुण रणमय मृदु पद रज ? - १४ मात्रायें

विद्युत घन चुम्बन ? - १० मात्रायें

निर्विरोध, प्रतिहत भी - १२ मात्रायें

अप्रतिहत आलिंगन ?[२] - १२ मात्रायें

अन्त्यानुप्रास का विशिष्ट क्रम -

शास्त्रीय छंदों में नयापन लाने के लिए छायावादी कवियों ने बहुधा उनके अन्त्यक्रम में कुछ परिवर्तन कर दिये हैं जिसके फलस्वरूप उनमें एक प्रकार की लयगत नूतनता दिखाई देती है, जैसे -

उठ उठ री लघु लघु लोल लहर ।

करुणा की नव अंगराई सी,

मलयानिल की परछाई सी,

इस सूखे तट पर छिटक छहर ।[३]

यहाँ चौपाई छंद प्रयुक्त हुआ है किन्तु अन्त्यक्रम का वैशिष्ट्य उसे परंपरागत चौपाई से भिन्न रूप में प्रस्तुत करता है । मध्यवर्ती दो चरण समतुकान्त

१- जयशंकर प्रसाद - कामायनी - कर्म सर्ग, पृष्ठ ११७ ।
२- सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला - परिमल (भरलोक) पृष्ठ ५६ ।
३- जयशंकर प्रसाद - लहर, पृष्ठ ६ ।

वाले हैं तथा प्रथम चरण के साथ अन्तिम चरण का स्वर साम्य रक्खा गया है ।

बहुधा किसी परंपरागत छंद के चरण को छंदक रूप में योजना करके छंद संबंधी नूतन प्रयोग किये गए हैं । जैसे -

" काली काली अलकों में
आलसमन्द नत पलकों में ।
मणि मुक्ता की फलकों में,
सुख की प्यासी ललकों में
देखा क्षण भंगुर है तरंग ।।[1]

इस छंद के प्रारंभिक चार चरण १४, १४ मात्राओं वाले हैं । अन्तिम चरण १६ मात्राओं का है और " छंदक " रूप में प्रयुक्त हुआ है क्योंकि इसका लय नियास अन्य चरणों से भिन्न है । इसके लक्षण पद्धरि छंद के है । निराला की " गीतिका " में इस प्रकार की अनेक सफल छंद योजनाएं प्राप्य हैं ।

प्रसाद की कामायनी के इड़ा सर्ग के अंतर्गत नव्य गीतों का विधान हुआ है किन्तु उनका मूलाधार सुप्रसिद्ध पद्धरि छंद ही है । उन गीतों में " पद्धरि के चरण को छंदक के रूप में रक्खा गया है, तथा कविता के अन्तिम चरण का तुकान्त उसके साथ मिलाकर उसे गीत का रूपाकार प्रदान किया गया है । जैसे -

" बिखरी अलकें ज्यों तर्क जाल
वह विश्व मुकुट सा उज्ज्वलतम शशिखण्ड सदृश था स्पष्ट भाल
दो पद्म पलाश चषक से दृग, देते अनुराग विराग ढाल ।।
गुंजरित मधुप से मुकुल सदृश वह आनन जिसमें भरा गान ।
वक्षस्थल पर एकत्र धरे संसृति के सब विज्ञान ज्ञान
+ + + + +
चरणों में थी गति भरी ताल ।।[2]

निराला ने भी प्रचलित शास्त्रीय छंदों के आधार पर प्राय: नूतन गीतों की सृष्टि की है जैसे -

---

१- जयशंकर प्रसाद - लहर, पृष्ठ ४८ ।
२- जयशंकर प्रसाद - कामायनी-इड़ा सर्ग, पृष्ठ १७६ ।

" नयनों के डोरे लाल गुलाल भरी खेली होली

\+ + + + +

बीती रात सुखद बातों में प्रात पवन प्रिय डोली
उठी संभाल बाल, मुख-लट, पट, दीप बुझा हँस बोली
रही यह एक ठठोली ।।[१]

\- यहाँ पर २८ मात्राओं वाले 'सार छंद' का खंडक रूप में प्रयोग हुआ है । बीच के दोनों चरण भी सार छंद के ही हैं । अंतिम १३ मात्रिक चरण सार छंद के १२ मात्रिक उत्तरार्द्ध के प्रारंभ में एक मात्रा के योग से बना है । कवि ने इस गीत के समस्त चरणों में समान अन्त्यानुप्रास की योजना की है ।

कभी-कभी किसी प्रचलित छंद के उत्तरार्द्ध की आवृत्ति द्वारा शास्त्रीय छंद को नवीन रूपाकार दिया गया है, जैसे -

" विरह का युग आज बीता
मिल न के लघु पल सरीखा
दु:ख सुख में कौन तीखा
मैं न जानी औ न सीखा -
मधुर मुझको हो गए सब मधुर प्रिय की भावना ले "[२]

इसके १४, १४ मात्राओं वाले चरण सार छंद के उत्तरार्द्ध से बने हैं ।

सारांशत: छायावादी कवियों ने छंद-शास्त्र की रूढ़ियों को तोड़कर हिन्दी कविता को बंधन-मुक्त किया और उसकी नवीन स्वच्छंदतावादी प्रवृत्ति के अनुरूप अनेकानेक नवीन छान्दस योजनाएं प्रस्तुत कीं । छायावादी काव्य में जहाँ कहीं शास्त्रीय छंदों का प्रयोग हुआ है, वहाँ भी तुक, यति, आदि से संबंधित नियमों का यथावत् पालन नहीं किया गया है, अत: शास्त्रीय छंदों का नवरूपान्तर

१- सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला - गीतिका, पृष्ठ ४६ ।
२- महादेवी वर्मा - यामा - रश्मि , पृष्ठ २२१ ।

हो गया है । इस प्रकार छायावादयुगीन कविता में छंद-प्रयोग की दृष्टि से विविधता, मौलिकता एवं नवीनता लक्षित होती है । वर्ण वृत्तों को अपदस्थ कर वर्णिक और मात्रिक छंदों में मात्रा और यति-क्रम में विपर्यय करके, छंद की मात्राओं और चरणों की संख्या घटा-बढ़ाकर, विशिष्ट अन्त्यक्रम की योजनाएं करके, तुकान्त रहित रचनायें करके, लोकगीतों तथा अन्य भाषाओं के छंदों को अपनाकर तथा यति, विराम, मात्रा गण आदि के समस्त बंधनों से मुक्त मुक्त छंद की रचना द्वारा छायावादी कवियों ने प्रकटत: छंद शास्त्र की रूढ़ियों के प्रति अपना विद्रोह व्यक्त किया, किन्तु यही प्रवृत्ति उनके छंद - लय पर विशेषाधिकार और पिंगल-शास्त्र विषयक विस्तृत ज्ञान और गहन अध्ययन का भी परिचय देती है । वस्तुत: छायावादी कवियों ने छंदों द्वारा अनुशासित न होकर, छंदों को अपने भावानुकूल चलने को बाध्य किया । इसी प्रक्रिया में शास्त्रीय छंदों का नव रूपान्तर, एकाधिक शास्त्रीय छंदों के मिश्रित प्रयोग तथा सर्वथा मौलिक अन्त्यक्रम से युक्त नवीन छंदों के रूप-निर्मित हुए । शास्त्रीय छंदों के परंपरागत चौखटे में कविता को कसने के बदले छायावादी कवियों ने कविता को उसके बंधन में भी मुक्ति के लिये सफल चेष्टायें कीं । छंद-लय पर इतना प्रबल अधिकार संभवत: खड़ीबोली हिन्दी कविता के किसी अन्य प्रवाह में नहीं दिखाई पड़ता ।

000

उ प सं हा र

विगत विवेचन में छायावादी काव्य में परलक्षित परंपरा और प्रयोगशीलता को विश्लेषित करने का प्रयास किया गया है । यहां पूर्व अध्ययन की समस्त उपलब्धियों का समाहार कर लेना उचित होगा ।

छायावादी काव्यधारा जीवन एवं काव्य में रूढ़ियों के प्रति विद्रोह और नवीन मान्यताएं लेकर अवतरित हुई । छायावादी काव्य की अधिकांश प्रवृत्तियां मूल रूप में परंपरागत काव्य में निरूपित की जा सकती हैं, लेकिन उन्हें छायावादी कवियों ने नवीन संस्कार देकर अभिव्यक्ति का नया धरातल प्रदान किया । इसीलिये छायावादी काव्य के समीक्षकों का एक वर्ग उसे परंपरा से सम्बद्ध करके पूर्ववर्ती चेतना की सहज परिणति स्वीकार करता है । लेकिन छायावादी काव्य की प्रयोगशीलता को दृष्टि में रखकर समीक्षकों का दूसरा वर्ग उसे विदेशी संस्कारों से अनुप्राणित मानता है । वस्तुतः छायावादी काव्यधारा परंपरा और नवीनता के तत्वों से युगपद रूप में अनुप्राणित है । उसमें वस्तु एवं अभिव्यक्ति के क्षेत्रों में जहां परंपरा का गरिमापूर्ण बंधाव है, वहीं प्रयोग की उन्मुक्तता भी कम श्लाघ्य नहीं है ।

अपने जन्म के प्रारंभिक वर्षों में छायावाद एक ऐसा " अज्ञात कुलशील बालक" रहा जिसे सामाजिकता का अधिकार प्राप्त नहीं हो सका । दो परस्पर विरोधी वर्गों की खींचतान से भयग्रस्त सा वह कुछ समय तक यदि फूल, तितली, निर्झर, पवन, विहंग, चंद्र, नक्षत्र आदि से ही बातें करके अपनी मनस्तुष्टि करता रहा तो इसमें कुछ भी आश्चर्यजनक नहीं है । लेकिन छायावाद न विदेशी काव्य की अनुकृति मात्र था न कोरी कल्पना या आकाश-कुसुम । वह हिन्दी काव्य की सतत प्रवहमान धारा का ही नया मोड़ था , पाश्चात्य विचारों की वायु ने उसे असंदिग्ध रूप से तरंगित किया था । इसके अतिरिक्त छायावादी कवि असाधारण प्रतिभा संपन्न और काव्य की कलागत विशेषताओं के पूर्ण ज्ञाता थे । उनका कलागत सूक्ष्म परिज्ञान ही बहुधा चिर परिचित काव्य तत्वों की नूतन संयोजना में सहायक होकर

उनके द्वारा वे मौलिक सर्जनायें करा सका, जिनके फलस्वरूप छायावादी कविता इतनी नवीन और युगान्तरकारी प्रतीत हुई । छायावादी कवियों ने अपनी व्यक्तिगत रुचियों के अनुरूप कुछ परंपरागत काव्य तत्वों के अंश ग्रहण किये तथा कुछ सामग्री पाश्चात्य अंग्रेजी रोमांटिक काव्य और बंगला के रवीन्द्र काव्य से ली और अपनी प्रतिभा के मौलिक रंग भरकर उन्हें निराले रूप में प्रस्तुत किया । उनके नयपन का रहस्य इतना ही है, अन्यथा , प्रसाद, पंत, निराला, महादेवी आदि छायावाद के मूर्दन्य कवियों की रचनाओं का अध्ययन इस तथ्य को प्रमाणित करता है कि उनकी अन्तश्चेतना में भारतीयता के संस्कार अमिट हैं । प्रसाद ने भारतीय संस्कृति को अपने साहित्य का पृष्ठाधार बनाया है । उनके सुप्रसिद्ध कामायनी महाकाव्य का कथ्य भी वेदों और उपनिषदों से गृहीत है । निराला पर भारतीय अद्वैत दर्शन के स्वामी विवेकानन्द द्वारा प्रचलित लोकमंगलकारी और व्यवहारिक रूप का गहरा प्रभाव लक्षित होता है, जिसके फलस्वरूप उनकी रचनायें समाजोन्मुख एवं दलित- शोषित वर्ग के प्रति सहानुभूति से पूर्ण हैं। पंत ने प्रकृति के व्यक्त स्वरूप में किसी अव्यक्त विराट चेतन सत्ता के दर्शन किये हैं और प्रकृति को अपने ही समान चेतना संपन्न मानते हुए उसके अनेकानेक जीवन्त चित्र प्रस्तुत किये हैं । यह उन पर पड़े हुए सर्वात्मवादी दर्शन के प्रभाव का ही परिणाम है । महादेवी ने बौद्ध दर्शन की करुणा का आधार लेकर संपूर्ण सृष्टि को एक सूत्र में पिरोने की चेष्टा की है । वैयक्तिक वेदना का विश्व वेदना में समाहार करने की जो विशिष्ट प्रवृत्ति महादेवी के गीतों में झलकती है, उसकी पृष्ठभूमि में उनका यह दु:खवादी दर्शन ही है । शिल्प के क्षेत्र में भी, प्राचीन संस्कृत काव्यशास्त्रियों कुंतक और आनंदवर्धन के 'वक्रोक्ति सिद्धान्त' और 'ध्वनि-सिद्धान्त' ने छायावादी कवियों को गहराई तक प्रभावित किया है । छायावाद में व्यंजनाओं की भरमार है, किन्तु पूर्ववर्ती कवियों सूर और घनानंद के काव्य में भी व्यंजना चमत्कार कम नहीं है । छायावादी काव्य में प्रयुक्त बहुत सी उपमाएं और अलंकार परंपरागत ही है, केवल उनको प्रस्तुत करने का ढंग नया है । छायावाद का 'मुक्त छंद' हमारे चिरपरिचित कवित्त छंद की लय पर ही आधृत है। छायावादी शैली के अधिकांश तत्व लाक्षणिकता , चित्रात्मकता, प्रतीकात्मकता आदि भी पूर्ववर्ती काव्य में प्राप्य है ।

किन्तु भारतीयता के प्रति आस्थावान रहकर भी छाया-वादी कवि रूढ़िवादी नहीं थे । पाश्चात्य विचारधारा और अंग्रेजी, बंगला आदि

के काव्य तत्वों में यदि उन्हें कहीं कुछ आकर्षक लगा तो उसे भी सहज भाव से अपनाकर उन्होंने अपनी रचनाओं में स्थान दिया है । इसके अतिरिक्त हिन्दी काव्य परंपरा की उन जर्जर रूढ़ियों के प्रति, जिनकी प्राणवत्ता वस्तुत: समाप्त हो चुकी थी, किन्तु किसी प्रखर प्रतिक्रिया के अभाव में जो निर्गलित होने से बची हुई थी, छायावादी कवि मूलत: विद्रोही थे । इसी कारण कविता के किसी भी क्षेत्र में वे लीक से बंधकर नहीं चले और उन्होंने पूर्व प्रचलित विविध रूढ़ियों को तोड़कर अपने लिए नए मार्ग का अनुसंधान किया । जहां कहीं उनकी रचनाओं में परंपरागत काव्य तत्वों की योजना हुई है वहां भी परंपरा पालन उनका लक्ष्य नहीं रही है ।

छायावादी कवि के लिये रूढ़ियों का तोड़ना ही सब कुछ नहीं था । उससे अधिक महत्वपूर्ण था - कुछ नया जोड़ना , कोई मौलिक सर्जना और नवीन काव्य मूल्यों की प्रतिष्ठा । यद्यपि सृजन की प्रक्रिया में छायावादी काव्य अतिरेकों से भरपूर दिखाई पड़ता है यथा - कल्पनातिरेक , शब्दातिरेक, अलंकार-मोह बिम्ब-मोह , अतिशय वायवीयता, अति वैयक्तिकता आदि । छायावादी काव्य के वैशिष्ट्य को उभारनेवाली और उसके उत्कर्ष की साधक प्रवृत्तियां ही जब सीमाओं का अतिक्रमणकर गई तो वे उसकी दुर्बलतायें सिद्ध हुई । उसमें कहीं कल्पना की उड़ान इतनी ऊंची हो गई है कि अभिजात पाठक वर्ग भी " वस्तु " की सही पकड़ में असमर्थ और पराजित हो जाता है, कहीं शब्दों की पुनरावृत्ति और अपव्यय के फलस्वरूप स्वरसता और भावविहीन वाग्विलास की अनुभूति होती है, कहीं चित्रों और बिम्बों की सघनता में कवि की अभीप्सित भावानुभूति फीकी और अस्पष्ट सी रह गई है, कहीं अलंकारों के अनपेक्षित बोझ से कविता इतनी दब गई है कि उसका आन्तरिक भाव सौन्दर्य अदृष्ट ही रह गया है और कहीं भाषा, व्याकरण और छंद के बंधनों को तोड़ने के आवेश में अनाकर्षक और अनौचित्यपूर्ण उक्तियों का बाहुल्य भी लक्षित होता है तथापि इन दोषों के रहते हुए भी छायावाद ने बीस-बाईस वर्ष की अल्प अवधि में ही हिन्दी काव्य संपदा में बहुत कुछ जोड़ा भी है । काव्य की श्री वृद्धि की दृष्टि से छायावाद का आकलन करने पर भक्तियुगीन काव्यधारा के अतिरिक्त अन्य कोई काव्य परंपरा उसकी समता नहीं कर सकती ।

छायावादयुगीन " कामायनी " और तुलसीदास " प्रभृत रचनाएं

जो भावों के औदात्य, चिन्तन की प्रौढ़ता, विचारों की गरिमा और स्वस्थ जीवन-दर्शन से युक्त है, छायावाद ही नहीं संपूर्ण हिन्दी साहित्य की महत्वपूर्ण उपलब्धि कही जा सकती है। हिन्दी कविता का स्वर्णयुग कहलानेवाले भक्ति युग से छायावाद की तुलना की जाए तो छायावादी कविताओं में भक्तियुग जैसी अनुभूति की निश्छलता और आत्मा की पुकार नहीं मिलेगी, किन्तु दूसरी ओर छायावादी कवियों जैसा सूक्ष्म सौन्दर्य बोध और कलामयता भक्ति युग के कवियों में नहीं दिखाई देती ।

जिस प्रकार अनुभूति और भावावेग की तीव्रता के फलस्वरूप रसार्द्रता की दृष्टि से हिन्दी का अन्य कोई भी काव्य-प्रवाह भक्तियुग की समकक्षता नहीं कर सकता, उसी प्रकार शिल्प वैभव की दृष्टि से छायावाद युग अन्यतम है। यद्यपि शिल्प वैभव के प्रति निरपेक्षता के बावजूद भक्तिकाव्य कलात्मकता की दृष्टि से भी समृद्धिमय है, तथापि उसकी कलात्मक समृद्धि छायावादी काव्य से कम है, इसमें भी कोई संदेह नहीं ।

भक्तिकाव्य के अतिरिक्त अन्य सभी काव्य युग अथवा काव्य प्रवृत्तियां तो छायावाद से बहुत पीछे हैं, वीर काव्य अपनी भाषागत अनगढ़ता के कारण और रीति काव्य अपनी अपरिष्कृत रुचियों, अतिशय शृंगारिक स्थूल वर्णनों और रूढ़िबद्धता के कारण । आधुनिक काल में द्विवेदीयुग के कवियों ने खड़ीबोली को व्याकरण के परिष्कार और संस्कार द्वारा सुस्थिर रूप दिया, यह एक महत्वपूर्ण उपलब्धि थी, लेकिन छायावादी कवियों ने खड़ीबोली को उसके विकास के सर्वोच्च शिखर पर पहुंचाया और उसके माध्यम से अपनी रम्याद्भुत कल्पनाओं, संवेदनशील भाव चित्रों तथा सशक्त बिम्बों को मूर्त करके हिन्दी कविता की संपन्नता को विवर्धित किया ।

वस्तुत: छायावाद पर लगाए जानेवाले विविध दोष-दुरुहता अस्पष्टता, कल्पनातिशय्य आदि अंशत: ही ठीक है क्योंकि छायावाद की प्रारंभिक कृतियों में ही इस प्रकार के दोष अधिक दिखाई देते हैं। कालान्तर में छायावादी कविता में उत्तरोत्तर चिन्तन की प्रौढ़ि और कलागत समृद्धि की वृद्धि हुई है। कामायनी" में छायावादी काव्य का चरम विकसित रूप लक्षित होता है।" कामायनी" छायावाद पर लगाए जानेवाले विभिन्न" प्रश्न चिन्हों" का गौरव-गाम्भीर्य युक्त" उत्तर है, और

एक मात्र यही कृति छायावाद के गौरव को अक्षुण्ण रखने के लिये पर्याप्त है । यद्यपि छायावाद का महत्त्व इतने तक ही सीमित नहीं है । 'छायावाद' ने ही पूर्व और पश्चिम के विचारों का पहले पहल साहित्यिक गठबंधन कराया और कविता के क्षेत्र में कलात्मक आन्दोलनों का शुभारंभ किया । 'खड़ीबोली' को उसने 'ब्रजभाषा' की मिठास दी और हिन्दी गीति काव्य परंपरा को नया निखार दिया । छायावादी गीतों में भावना और कला का ऐसा अपूर्व संगम उपस्थित हुआ है जिसकी समकक्षता संभवत: केवल सूर का काव्य ही कर सकता है ।

छायावाद के साथ उसकी सामाजिकता या असामाजिकता का प्रश्न बड़ी गंभीरता से जुड़ा हुआ है । इतना तो मानना होगा कि छायावादी कवि स्वयं (निराला को छोड़कर) युग और समाज के साथ कदम से कदम मिलाकर चलने में अक्षम रहे, किन्तु अपने युग के स्वप्नों, युग की माँग और युग की वास्तविकताओं से वे परिचित अवश्य थे । 'कामायनी' इस तथ्य का ठोस प्रमाण प्रस्तुत करती है । वस्तुत: छायावादी कवियों का मार्ग पृथक था । उन्होंने जीवन के यथार्थ का स्थूल लेखा-जोखा प्रस्तुत करने की अपेक्षा शाश्वत जीवन मूल्यों की भावात्मक अभिव्यक्ति को श्रेष्ठतर समझा । समाज के प्रचलित मानदण्डों को यथारूप न अपनाकर नए और स्वनिर्मित आदर्शों की प्रतिष्ठा करके उन्होंने समाज को नई चेतना से अनुप्राणित करने का प्रयत्न किया ।

छायावादी कविताएं वैयक्तिक पृष्ठभूमि पर मानव उत्थान और मानव कल्याण की भावनाओं से अनुरंजित है । प्रत्यक्ष रूप से समाज के प्रति विद्रोह और उपेक्षा भाव प्रकट करके भी छायावादी कवियों ने मानव की उपेक्षा नहीं की । 'मानव' जो समाज की जीवित इकाई और उसके समस्त उत्थान-पतन, जय-पराजय, ह्रास-विकास का मूलाधार होता है । मानव हेतु एक नवीन आदर्शलोक रचने की आकांक्षा छायावादी कवियों में प्रबलतम रूप में लक्षित होती है । छायावादी काव्य का यह मानवतावाद ही उसकी संजीवनी शक्ति है । भ्रम का एक मात्र कारण यही है कि छायावादी कवियों ने प्रत्यक्षत: संघर्ष क्षेत्र में न उतर कर सामाजिक बंधनों और अभावों के प्रति भावात्मक विद्रोह व्यक्त किया । इस प्रकार के भावात्मक विद्रोह की निरर्थकता अथवा सार्थकता के संबंध में भिन्न भिन्न मत हो सकते हैं । कवि

के दायित्व की सीमाओं का निर्धारण भी सरल कार्य नहीं है, फिर भी किसी भी विशिष्ट काव्य प्रवृत्ति का सही विश्लेषण उसे उस युग विशेष के परिप्रेक्ष्य में रखकर ही किया जा सकता है जिसमें वह जन्मी और पनपी है । वस्तुत: कोई भी रचना समाज विरोधी नहीं होती, उसमें दिखाई देनेवाले समाज विरोधी तत्व भी प्रकारान्तर से उसी समाज की झांकी प्रस्तुत करते हैं जिसमें जीनेवाला व्यक्ति अथवा कवि अपने को व्यवस्थित न कर पाने के फलस्वरूप विद्रोही बन बैठता है। छायावाद युग में भी छायावादी कविताएं ही संभव थी । पारंपरिक रूप में समाज को अपने काव्य में प्रतिबिंबित करने के बदले छायावादी कवियों की प्रयोगशील चेतना ने एक नए मार्ग का अनुसरण किया जिसके औचित्य के संबंध में भले ही मतैक्य न हो, किन्तु छायावादी कवियों के मानव-प्रेम और मानव जाति के प्रति संवेदना, सद्भावना में संदेह के लिये कोई स्थान नहीं है । अतिरेकों को छोड़कर प्रसाद, पंत, निराला, महादेवी आदि छायावाद के सभी शीर्षस्थ कवियों की रचनाओं में संपूर्ण मानवता के प्राणों की ध्वनि मुखरित हुई है ।

छायावादी काव्य सर्वथा दोषहीन था, यह कहना पक्षपात होगा किन्तु आलोचना के गलत मापदण्डों के कारण भी बहुधा किसी काव्यधारा के गुण दोष सदृश प्रतीत होते हैं । पौधा पहले अंकुर रूप में जन्म लेता है तत्पश्चात् वृक्ष बनता है । अंकुर के द्वारा वृक्ष की वास्तविक ऊँचाई को जान लेना असंभव है । छायावाद के संबंध में भी यही सत्य है । उस पूरे युग की महत्वपूर्ण प्रवृत्तियों पर दृष्टि रखकर ही छायावादी काव्य के संबंध में कोई मत निश्चित किया जा सकता है । छायावादी काव्य विकास के शिखर लहर, आँसू , कामायनी (प्रसाद) गीतिका, तुलसीदास (निराला) गुंजन (पंत) नीरजा , दीपशिखा (महादेवी) आदि रचनाओं में देखे जा सकते हैं जिनके आधार पर छायावादी काव्य विशिष्ट ही नहीं गरिमामय भी है । पूर्ववर्ती युग की रसविहीनता तथा शिल्पगत असिद्धि को सिद्धि और समृद्धि में जितनी तीव्रता से छायावादी कवियों ने बदला वह आश्चर्यकारी भी है और सराहनीय भी । श्रीधर पाठक और मुकुटधर पाण्डेय की स्वच्छंदतावादी कविताओं और कामायनी , तुलसीदास प्रभृति रचनाओं के मध्य भावना और रूप-विन्यास के बहुत से आयाम है जिन्हें केवल बीस-बाईस वर्षों में ही छायावादी कवियों ने पार कर दिखाया ।

छायावाद के प्रसाद का भाषा- सौष्ठव, पंत का कल्पना

सौकुमार्य और मनोरम प्रकृति चित्रण, निराला के मुक्त छंद, महादेवी के अनुपम कलात्मक शब्द-मणियों से सुसज्जित और रामकुमार वर्मा के अलंकृति विशेष न होने पर भी सीधे मर्म को छूनेवाले भावभीने गीत परवर्ती साहित्यकारों के लिए भी प्रेरक रहे हैं ।

नरेन्द्र शर्मा, रामधारी सिंह 'दिनकर', भगवती चरण वर्मा और हरिवंश राय बच्चन यद्यपि छायावाद युग के पूर्वार्द्ध के कवियों से शैली-शिल्पगत वैभिन्नय रखते हैं, तथापि उनका शब्द विन्यास, बिम्ब योजना, कथन भंगिमा आदि उनके प्रभावों से सर्वथा मुक्त नहीं रही है । प्रगति वाद का जन्म भी एक प्रकार से छायावाद द्वारा ही हुआ । निराला के कंठ से फूटनेवाला 'जागो फिर एक बार' का नारा ही आगे चलकर 'प्रगतिवाद' का सामूहिक स्वर बना, दिनकर, भगवती चरण, नरेन्द्र, अंचल, नागार्जुन आदि ने जिसमें अपना स्वर मिलाया । 'प्रयोगवाद' और 'नई कविता' के नाम से विख्यात होनेवाली काव्यधाराओं में छायावादी प्रवृत्तियों के अवशेष अवश्य खोजे जा सकते हैं क्योंकि पूर्ववर्ती युग की धरोहर लेकर ही कोई रचनाकार नए सृजन में समर्थ होता है । वर्तमान नयी हिन्दी कविता का मूल स्वर और उसकी अतिशय बौद्धिक निबिड़ता, अनास्था एवं सौन्दर्य विहीनता छायावाद से उसे बहुत दूर खींच ले आई है तथापि उसमें छायावादी ढंग के रोमानी भावना से रंजित तरल कोमल बिम्ब अब भी प्राय: दिखाई दे जाते हैं । मुक्त छंद आज की प्रचलित काव्य-विधा है ।

वर्तमानयुगीन अनेक कवियों ने छायावादी गीत-परंपरा को नया विस्तार दिया है, इनमें मुख्य हैं - जानकीवल्लभ शास्त्री (रूप अरूप, तीरतरंग, शिप्रा, मेघगीत, अवंतिका), सुमित्राकुमारी सिन्हा (विहाग, पंथिनी, बोलों के देवता) आरसी प्रसाद सिंह (आरसी), नीरज (विभावरी, प्राणगीत, दर्द दिया है) रमानाथ अवस्थी (रात और शहनाई) गिरिजा कुमार माथुर (धूप के धान) वीरेन्द्र मिश्र (लेखनी बेला) आदि । यह गीतकार भाव पक्ष और काव्य विधा दोनों ही क्षेत्रों में छायावादी कवियों से पर्याप्त प्रभावित हैं । छायावादी कवियों जैसी उच्चकोटि की कला इनमें नहीं है, तथापि इनके गीत अनगढ़ भी नहीं हैं । मर्मच्छेदन द्वारा पाठक-वर्ग को भाव विभोर कर देने में वे सक्षम हैं, अमांसल और अतीन्द्रिय के स्थान पर उनमें मांसल (किन्तु स्वस्थ और वासना रहित) प्रेम का चित्रण हुआ है । सच्चानुभूति और भाषागत सरलता इनके गीतों की मूलभूत विशेषताएँ

है । इस रूप में आधुनिक युगीन गीत छायावादी गीतों के एक बड़े दोष का निराकरण करते हैं ।

इनके अतिरिक्त, छायावाद के प्रतिष्ठित कवियों में अभी महादेवी वर्मा और रामकुमार वर्मा का साहचर्य हिन्दी काव्य प्रेमियों को प्राप्य है । इनकी लेखनी यद्यपि पहले की भाँति सक्रिय नहीं रह गई है, किन्तु छायावादोत्तर युग में रचित उनकी स्फुट कविताओं में भी भाव, भाषा, अथवा शिल्पगत कोई महत्वपूर्ण परिवर्तन लक्षित नहीं होता । पंत की चिन्तनधारा ने समय समय पर अनेक मोड़ लिये हैं किन्तु उनकी रचनायें आद्यन्त जनहित और विश्व कल्याण की उसी महत् आकांक्षा से युक्त दिखाई देती है जिसका प्रारंभिक रूप 'गुंजन' में सुख-दुख के समन्वय में प्रकट हुआ था । छायावाद की भाव प्रवणता को पंत बहुत पीछे छोड़ आए थे तथापि उसके संस्पर्श यत्र-तत्र उनकी नवीनतम कृतियों में भी मिल जाते हैं ।

डा० देवराज के अनुसार छायावाद का पतन अनेक वर्ष पूर्व हो चुका है । उन्होंने पतन के कारणों की भी विस्तृत व्याख्यायें की हैं । लेकिन विचारपूर्वक देखा जाए तो सत्साहित्य कभी नहीं मरता, और न किसी श्रेष्ठ साहित्यिक प्रवाह का पतन ही होता है । छायावाद के नाम पर जो कुछ लिखा गया जो नए-नए शिल्पगत प्रयोग हुए, वे सारे के सारे महत्वपूर्ण न सही, उनका एक वृहत अंश हिन्दी कविता की महत्वपूर्ण उपलब्धियों के अन्तर्गत रक्खा जा सकता है । छायावाद में शब्द मोह, बिम्ब मोह, अस्पष्टता, क्लिष्टता, निराशा, कुंठा, पलायनवृत्ति, अतिशय वायवीयता और कल्पनाशीलता आदि दोष थे, तो कोमल मसृण पदावली नादात्मक वर्ण योजनाएं, सस्वर भाषा, नवीन अप्रस्तुत, नए प्रतीक समृद्ध बिम्ब, लाक्षणिक चमत्कार , व्यंजना वैभव और नवीन छान्दस योजनाओं के साथ जीवन और काव्य की नीरसता को दूर करने वाले प्रेम और सौन्दर्य के मर्मस्पर्शी मधुर गीत तथा लोक कल्याण की कामना से युक्त उदात्त भावनाएं और विराट मानवतावादी स्वर भी था । उसने ब्रजभाषा को ही काव्योपयोगी मानने के विचार का खण्डन किया तो खड़ी बोली का परिष्कार भी किया, व्याकरण की कड़ियाँ तोड़ी तो भाषा को सूक्ष्मातिसूक्ष्म अर्थवाहिनी भी बनाया, कविता के लिये

छंद बंधन का तिरस्कार किया तो मुक्तछंद की परंपरा भी स्थापित की, मर्यादित और चिर प्रचलित काव्य शैली का विरोध किया तो हिन्दी कविता को नई और अधिक सशक्त वचन भंगिमा भी दी । इस प्रकार छायावाद का साहित्यिक योगदान कम महत्वपूर्ण नहीं है, इसीलिये उसका गौरव अक्षय है । छायावाद का अवसान हुआ है, इस अर्थ में कि आज उस प्रकार की कविताएं युग के बदले हुए परिवेश के फलस्वरूप मन को पूर्ण परितृप्ति नहीं दे पातीं । छायावाद अपने युग के अनुरूप रूपाकार ग्रहण करके जन्मा और पनपा तथा अपने परवर्ती साहित्यकारों के लिये बहुत सी महत्वपूर्ण धरोहर छोड़ गया जो वर्तमान हिन्दी कविता में नए रूप और अभिधान ग्रहण करके जीवित है ।

सहायक तथा संदर्भ ग्रंथ

(क) काव्य-ग्रंथ - छायावादी -

जयशंकर प्रसाद -

चित्राधार ; कानन कुसुम ; करुणालय ; प्रेम पथिक ;
झरना ; लहर ; आँसू ; कामायनी ।

सुमित्रानन्दन पन्त -

पल्लव ; वीणा ; ग्रन्थि ; पल्लविनी ; ग्राम्या ;
गुंजन ; युगान्त ; युगवाणी ; रश्मिबंध ; आधुनिक कवि ।

सूर्यकान्त त्रिपाठी "निराला" -

परिमल ; अनामिका ; गीतिका ; तुलसीदास ;
अणिमा ; अपरा ।

महादेवी वर्मा -

नीहार ; रश्मि ; नीरजा ; सान्ध्यगीत ; यामा ;
दीपशिखा ; आधुनिक कवि ।

रामकुमार वर्मा -

चित्ररेखा ; रूपराशि ; अभिशाप ; आकाश गंगा ; आधुनिक कवि

भगवती चरण वर्मा -

मधुकण ; प्रेमसंगीत ; मानव

माखनलाल चतुर्वेदी -

हिमतरंगिनी ; मरणज्वार ।

नरेन्द्र शर्मा -

पलाशवन ; मिट्टी और फूल ; प्रवासी के गीत ।

हरिवंशराय बच्चन -

मधुबाला ; मधुशाला ; एकान्त संगीत ; आकुल अन्तर ; निशा निमंत्रण ।

गोपाल सिंह नैपाली -

पंछी ; उमंग ; नवीन ।

रामधारी सिंह " दिनकर " -

हुंकार ; रसवन्ती ।

अन्य - (संदर्भित)

कबीरदास	कबीर ग्रंथावली	टीका १- श्याम सुन्दर दास २- पारसनाथ तिवारी ३- महेन्द्र कुमार जैन
सूरदास	सूरसागर	
तुलसीदास	रामचरितमानस	
मलिक मोहम्मद जायसी	पद्मावत	
दादू दयाल	ज्ञान सागर	
मीराबाई	मीरा गीतावली	(संपादक -गंगा प्रसाद पाण्डेय)
केशवदास	रामचंद्रिका	
बिहारीलाल	बिहारी बोधिनी	(टीका - लाला भगवानदीन)
घनानंद	सुजान सागर	
सेनापति	कवित्त रत्नाकर	(संपादक पं० उमाशंकर शुक्ल)
अयोध्यासिंह उपाध्याय	प्रियप्रवास	
मैथिली शरण गुप्त	भारत भारती यशोधरा साकेत	

(ख) शोध प्रबन्ध और आलोचना

हिंदी

आशा किशोर : आधुनिक हिंदी गीतिकाव्य का स्वरूप और विकास
वाराणसी विश्वविद्यालय प्रकाशन, १९७१ ।

ओंकार शरद (संपादक) : निराला
व्होरा एण्ड कंपनी पब्लिशर्स प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद ।

केसरी नारायण शुक्ल : आधुनिक काव्यधारा
सरस्वती मन्दिर, बनारस

केसरी नारायण शुक्ल : आधुनिक काव्यधारा का सांस्कृतिक स्रोत
सरस्वती मन्दिर, काशी

गंगा प्रसाद पाण्डेय : महाप्राण निराला
लोक भारती, इलाहाबाद

गंगा प्रसाद पाण्डेय (संकलनकर्ता) : महादेवी का विवेचनात्मक गद्य
स्टूडेन्ट्स फ्रेन्ड्स, इलाहाबाद

गणेश खरे : युग कवि प्रसाद
ग्रंथम, रामबाग, कानपुर, १९६७

गुलाब राय : काव्य के रूप
आत्माराम एण्ड संस, दिल्ली

गोपाल कृष्ण सारस्वत : आधुनिक हिंदी काव्य में परंपरा तथा प्रयोग
सरस्वती प्रकाशन मंदिर, इलाहाबाद

जयशंकर प्रसाद : काव्य कला तथा अन्य निबन्ध
भारती भण्डार, इलाहाबाद
प्रथम संस्करण, संवत् १९९६ वि०

जगन्नाथ प्रसाद भानु : छंद प्रभाकर
जगन्नाथ प्रेस, बिलासपुर ।

दूधनाथ सिंह : निराला- आत्महंता-आस्था
नीलाभ प्रकाशन, इलाहाबाद

देवराज : छायावाद का पतन

दीनानाथ शरण : हिन्दी काव्य में छायावाद
गयाप्रसाद एण्ड संस, आगरा

देवी प्रसाद गुप्त : हिंदी महाकाव्य-सिद्धांत और मूल्यांकन
अपोलो पब्लिकेशन, जयपुर

धीरेन्द्र वर्मा तथा अन्य : हिन्दी साहित्य - खण्ड ३
भारतीय हिंदी परिषद्, प्रयाग

नन्ददुलारे वाजपेयी : जयशंकर प्रसाद
भारती भण्डार, इलाहाबाद

नन्ददुलारे वाजपेयी : हिन्दी साहित्य : बीसवीं शताब्दी
लोकभारती, इलाहाबाद

नन्ददुलारे वाजपेयी : आधुनिक साहित्य
भारती भण्डार, इलाहाबाद

नगेन्द्र : आधुनिक हिंदी काव्य की मुख्य प्रवृत्तियाँ
नेशनल पब्लिकेशन्स, दिल्ली

नगेन्द्र : विचार और अनुभूति
प्रदीप कार्यालय, मुरादाबाद

नगेन्द्र : कामायनी के अध्ययन की समस्याएं
नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली

नगेन्द्र : रस सिद्धान्त
नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली ।

नगेन्द्र : भारतीय काव्यशास्त्र की भूमिका
नेशनल पब्लिकेशन, दिल्ली

नामवर सिंह : आधुनिक हिंदी साहित्य की प्रवृत्तियाँ
लोकभारती, इलाहाबाद

नामवर सिंह : छायावाद
सरस्वती प्रेस, बनारस

पुत्तूलाल शुक्ल : आधुनिक हिंदी काव्य में छंद योजना
लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

प्रतिभा कृष्णाबल : छायावाद का काव्य-शिल्प
राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली

प्रेमशंकर : प्रसाद का काव्य
भारती भण्डार, इलाहाबाद

प्रेमलता बाफना : पंत का काव्य
साहित्य सदन, देहरादून

भगीरथ मिश्र और रामबहोरी शुक्ल : हिन्दी साहित्य का उद्भव और विकास
हिंदी भवन, जालंधर व इलाहाबाद

भगीरथ मिश्र : काव्य शास्त्र
गोरखपुर विश्वविद्यालय,प्रकाशन

मोहन अवस्थी : आधुनिक हिंदी काव्य शिल्प
प्रयाग हिंदी परिषद्

रामचन्द्र शुक्ल : रस मीमांसा
काशी नागरी प्रचारिणी सभा,काशी

रामचंद्र शुक्ल : हिंदी साहित्य का इतिहास
काशी नागरी प्रचारिणी सभा, काशी

रामचंद्र शुक्ल : चिन्तामणि , भाग १
इंडियन प्रेस लि०, इलाहाबाद

रामचंद्र शुक्ल : चिन्तामणि भाग २
सरस्वती मन्दिर, काशी

रामदहिन मिश्र : काव्य में अप्रस्तुत योजना

रामदहिन मिश्र : काव्य दर्पण
ग्रंथमाला कार्यालय, पटना

रामकुमार वर्मा : साहित्य समालोचना
हिंदी भवन, जालंधर और इलाहाबाद

रामरतन भटनागर : हिंदी साहित्य : एक अध्ययन
किताब महल, प्रयाग

राम रतन भटनागर : निराला और नवजागरण
साथी प्रकाशन, सागर

रामविलास शर्मा : संस्कृति और साहित्य
किताब महल, प्रयाग

रामधारी सिंह दिनकर : संस्कृति के चार अध्याय
राजपाल एण्ड संस, दिल्ली

रवीन्द्र सहाय वर्मा : हिंदी काव्य पर आंग्ल प्रभाव
पद्मजा प्रकाशन, कानपुर

लक्ष्मीनारायण सुधांशु : जीवन के तत्व और काव्य के सिद्धांत
युगान्तर साहित्य मंदिर, भागलपुर

विनय मोहन शर्मा : कवि प्रसाद - आंसू तथा अन्य कृतियां
प्रतिभा प्रकाशन, नागपुर

विजेन्द्र नारायण सिंह : वक्रोक्ति सिद्धान्त और छायावाद
परिमल प्रकाशन, इलाहाबाद

श्यामनंदन किशोर : आधुनिक हिंदी महाकाव्यों का शिल्प विधान
बिहार विश्वविद्यालय प्रकाशन

शम्भूनाथ सिंह : छायावाद युग
सरस्वती मंदिर, बनारस

शम्भूनाथ सिंह : हिंदी महाकाव्य : स्वरूप- विकास
हिंदी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी

शान्तिप्रिय द्विवेदी : ज्योति विहग
हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग

शान्तिप्रिय द्विवेदी : कवि और काव्य
इंडियन प्रेस, इलाहाबाद

शान्तिप्रिय द्विवेदी : सामयिकी
ज्ञानमण्डल लि०, काशी

शान्ति श्रीवास्तव : छायावादी काव्य और निराला
ग्रंथम प्रकाशन, कानपुर

शचीरानी गुर्टू (संपादक) : महादेवी वर्मा
आत्माराम एण्ड संस, दिल्ली

शिवकुमार मिश्र : कामायनी और प्रसाद की कविता गंगा
रवि प्रकाशन, कानपुर

शिवनंदन प्रसाद : कवि सुमित्रानन्दन पंत और उनका प्रतिनिधि काव्य

श्रीकृष्णलाल : आधुनिक हिंदी साहित्य का विकास
हिंदी परिषद्,विश्वविद्यालय,प्रयाग

श्री कृष्णलाल : आधुनिक हिंदी कविता में ध्वनि
ग्रंथम प्रकाशन, कानपुर

सत्यपाल चुघ : महादेवी की काव्य साधना
औरिएंटल बुक डिपो, दिल्ली

सुमित्रानन्दन पन्त : गद्य-पथ
साहित्य भवन,इलाहाबाद

सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला : पंत और पल्लव
गंगा ग्रंथागार, लखनऊ

सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला : प्रबंध-प्रतिमा
भारती भण्डार, इलाहाबाद

सूर्य प्रसाद दीक्षित : छायावादी कवियों का सौन्दर्य-विधान

हर नारायण सिंह : छायावाद - काव्य तथा दर्शन
ग्रंथम, रामबाग, कानपुर

हजारी प्रसाद द्विवेदी : हिंदी साहित्य(उद्भव और विकास)
अतरचंद कपूर एण्ड संस, दिल्ली

हजारी प्रसाद द्विवेदी : विचार और वितर्क
सुषमा साहित्य मंदिर, जबलपुर

हजारी प्रसाद द्विवेदी : साहित्य का मर्म
लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

दीन : छायावाद की काव्य साधना
साहित्यिक ग्रंथमाला कार्यालय, काशी

स्फुट -

उमेश मिश्र : भारतीय दर्शन
प्रकाशन ब्यूरो, उत्तर प्रदेश सूचना विभाग

रजनीपाम दत्त : आज का भारत
पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली

रामदास गौड़ : हिन्दुत्व
शिवप्रसाद गुप्त सेवा उपवन, काशी

विवेकानन्द : स्वाधीन भारत - जय हो ।
रामकृष्ण आश्रम, नागपुर

विवेकानन्द : प्रेम योग
रामकृष्ण आश्रम, नागपुर

सरला शुक्ल (संपादित) : उर्दू काव्यधारा
विद्या मंदिर, रानीकटरा, लखनऊ

संस्कृत

१- भरत : नाट्यशास्त्र , भाग १,२,३
संपादक - रामकृष्ण कवि
ओरियंटल इंस्टीट्यूट, बड़ौदा

२- भोज : सरस्वती कंठाभरण
टीकाकार रत्नेश्वर ,
संपादक - केदारनाथ शर्मा और वासुदेव लक्ष्मण शास्त्री
निर्णयसागर प्रेस, बम्बई

३- भामह : काव्यालंकार
भाष्यकार- देवेन्द्रनाथ शर्मा

४- दण्डी : हिन्दी काव्यादर्श
व्याख्याकार - रामचंद्र मिश्र
चौखम्भा विद्याभवन, वाराणसी

५- रुद्रट : काव्यालंकार
व्याख्याकार डा० सत्यदेव चौधरी
वासुदेव प्रकाशन, दिल्ली

६- मम्मट : हिन्दी काव्य प्रकाश
भाष्यकार - सत्यव्रत सिंह
चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी

७- वामन : हिन्दी काव्यालंकार सूत्र
व्याख्याकार विश्वेश्वर
आत्माराम एण्ड संस, दिल्ली

८- कुंतक : हिन्दी वक्रोक्तिजीवित
व्याख्याकार - विश्वेश्वर
संपादक - नगेन्द्र
आत्माराम एण्ड संस, दिल्ली

९- आनंद वर्धन : हिन्दी ध्वन्यालोक
व्याख्याकार - विश्वेश्वर
गौतम बुक डिपो, दिल्ली

१०- विश्वनाथ : हिन्दी साहित्य दर्पण
व्याख्याकार - सत्यव्रत सिंह
चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी

अंग्रेज़ी

A.R.Entwistle : The Study of Poetry

Aristotle : The Poetics
Edited by L.J.Potts.

Arthour Symons : The Symbolist movement in Literature

G.C.Rosser : English Literary Appreciation

James R.Kreuzer : Elements of Poetry

Jawahar Lal Nehru : The Discovery of India

Karl Beckson and Athour Ganj : A Reader's guide to Literary terms

L. Abercrombie : The Epic

M.Dixon : English Epic and Heroic Poetry

Pope : English Verse - 1949

T.S.Eliot : Poetry and Drama

Thompson and Garrat : British Rule in India

R.C.Majumdar : An advanced history of India

R.Palme Dutta : India : Today and Tommorrow

W.P.Ker : Lectures and Notes
- Edited by R.W.Chambers

Wordsworth : Preface of Lyrical Ballads

Worsfold : Judgement in Literature

W.H.Hudson : An introduction of the study of Literature

पत्र पत्रिकाएँ

श्री शारदा - जुलाई, सितम्बर, नवम्बर, दिसम्बर सन् १९२०

सरस्वती - मार्च १९०८, मई १९२४, नवंबर १९२४, दिसंबर १९२७, जनवरी, फरवरी, मार्च, १९२८।

माधुरी - अगस्त-सितम्बर,१६२८

इन्दु - कला दो, किरण दो, सन् १६०६, मई १६१३

अवन्तिका - काव्यालोचनांक जनवरी,१६५३ , जनवरी,१६५४

माटेन्यू चैम्सफोर्ड रिपोर्ट - सन्, १६६

शब्दकोश

हिन्दी

हिन्दी साहित्य कोश - संपादक - धीरेन्द्र वर्मा

अंग्रेजी

Chamber's Dictionary

Cassell's Encyclopedia of Literature

Encycloiedia Britsmica

Oxford unior Encyclopedia

****